पण्डितपरिक्रमा

(तृतीयः स्तबकः)

कुलपतेः डॉ. मण्डनमिश्रस्य 'शिवसङ्कल्प'-
पुरोवाचा पुरस्कृता

सम्पादकः
डॉ. विजयनारायणमिश्रः

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयः
वाराणसी

UNIVERSITY BI-CENTENARY SERIES
[Vol. I]

PAṆḌITA PARIKRAMĀ

[PART THREE]

FOREWORD BY

DR. MANDAN MISHRA

Vice - Chancellor

EDITED BY

DR. B. N. MISHRA

Ex-Librarian,
Sarasvat – Bhavana Library
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi

VARANASI
1996

Research Publication Supervisor
Director, Research Institute,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

❑

Published by—
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Publication Officer,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.

❑

Available at—
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002

❑

First Edition, 500 Copies
Price Rs. 160.00

❑

Printed by—
Tara Printing Works
Kamachha, Varanasi-221 010

विश्वविद्यालयद्विशताब्दी-ग्रन्थमाला
[प्रथमं पुष्पम्]

पण्डितपरिक्रमा

[तृतीयः स्तबकः]

कुलपतेः डॉ. मण्डनमिश्रस्य 'शिवसङ्कल्प'-पुरोवाचा
पुरस्कृता

सम्पादकः
डॉ. विजयनारायणमिश्रः
पुस्तकाध्यक्षचरः, सरस्वतीभवनपुस्तकालयस्य
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये
वाराणसी

वाराणस्याम्

२०५३ तमे वैक्रमाब्दे   १९१८ तमे शकाब्दे   १९९६ तमे खैस्ताब्दे

अनुसन्धानप्रकाशनपर्यवेक्षकः —

निदेशकः, अनुसन्धानसंस्था

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये

वाराणसी।

प्रकाशकः —

डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी

प्रकाशनाधिकारी,

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य

वाराणसी-२२१ ००२.

प्राप्तिस्थानम् —

विक्रय-विभागः,

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य

वाराणसी-२२१ ००२.

प्रथमं संस्करणम्, ५०० प्रतिरूपाणि

मूल्यम्— १६०.०० रूप्यकाणि

मुद्रकः —

तारा प्रिंटिंग वर्क्स

कमच्छा, वाराणसी-२२१ ०१०.

शिवसङ्कल्पः

अयं हि **'पण्डितपरिक्रमायाः'** तृतीयः स्तबकः। विश्वविद्यालयस्यास्य प्राक्तनस्वरूपस्य काशिकराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य शोधपत्रिका १८६६ ईशवीतः १९१७ ईशवीयपर्यन्तं 'काशीविद्यासुधानिधि' -नाम्ना प्रकाशिता। तत्त्वज्ञानस्य विविधा सामग्री प्रतिष्ठिततमैर्विद्वद्वरेण्यैस्तस्यां संयोजिता। बहव आकरग्रन्था अप्येतस्यां समवेताः। सुप्रसिद्धायाः संस्कृतवाङ्मयस्य विविधज्ञानविज्ञानसम्पन्नाया अस्याः पत्रिकाया विश्वविद्यालयानुदानायोगस्यानुदानेन पण्डितपरिक्रमेति नाम्ना पुनर्मुद्रणं विश्वविद्यालयेन समारब्धम्, यस्य च प्रथमो भागो विद्वद्वरेभ्यः समर्पितः। 'पण्डितपरिक्रमायाः' द्वितीयस्तबकरूपेण "खण्डप्रशस्तिः" इति ग्रन्थस्य प्रकाशनं जातम्। सम्प्रत्ययं तृतीयस्तबकात्मकोः निबन्धात्मिकायाः पण्डितपरिक्रमाया द्वितीयो भागो विदुषां पुरस्तात् समुपस्थाप्यते।

अयं हि स्तबकस्तात्कालिकानां विदुषां विभिन्नाभी रचनाभिः सुसम्पन्नः संस्कृतवाङ्मयस्य समृद्धेः प्रतीकभूतः। यत्र च विदुषां जीवनवृत्तान्ताः, विभिन्नानां व्याकरण-साहित्य-न्याय-वेदान्त-मीमांसा-दर्शन-योग-आगम-ज्यौतिष-धर्मशास्त्र-नाट्यशास्त्रादिसम्बद्धानामुत्कृष्टतमानां ग्रन्थानां सुप्रसिद्धैर्विद्वद्वरेण्यैर्महामहोपाध्याय-**श्रीसुधाकरद्विवेदि-श्रीबेचनरामशर्म-श्रीगङ्गाधरशास्त्रि-श्रीदामोदरशास्त्रि-**प्रभृतिभिर्लिखितानां प्रस्तावनोपसंहारभूमिकादीनां संस्कृतसमाजसभावृत्तान्तवर्णन-कात्यायनशुल्बपरिशिष्टविवेचन-विचारमाधुकर्यादीनां विलासोऽभिव्यञ्जयत्यस्य विश्वविद्यालयस्य पूर्वतनीं ज्ञानसमृद्धिम्। सेयं समृद्धिराधारभूताऽस्य विश्वविद्यालयस्य प्रतिष्ठायाः स्थापनायाश्च।

श्रीमता आङ्ग्लप्राचार्येण **श्री-आर्थरवेनिस**महोदयेनाजीवनमस्याः प्रकाशनं सम्पादितम् (१९१७), तदनन्तरमियं धाराऽवरुद्धा। वस्तुतः श्री-आर्थरवेनिसमहोदया महाविद्यालयस्यास्य स्वनामधन्या आचार्या आसन्, यैः स्वकीयया साधनया संस्कृतभाषा संसेविता। प्रसङ्गेऽस्मिन् तेषां स्मृतावहं स्वकीयं श्रद्धापुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। अयं ह्यस्या एव धारायाः पुनर्मुद्रणप्रयासः पुनरपि भारते तत्त्वज्ञानस्य जीवनाधायको भविष्यतीत्यहमाशासे। अस्मिन् सुमहते प्रकल्पाय साहाय्यं प्रदत्तवते **विश्वविद्यालयानुदानायोगाय** कृतज्ञताम्, ग्रन्थस्यास्य सम्पादकाय विश्वविद्यालयीयपुस्तकाध्यक्षचराय **डॉ. विजयनारायणमिश्राय,** प्रकाशनाधिकारिणे **डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठिने** च साधुवादान्, ग्रन्थस्यास्य मुद्रकाय तारायन्त्रालयस्य सञ्चालकाय **श्रीरविप्रकाशपण्ड्या-**महोदयाय च स्वकीयां शुभाशंसां समर्पयन्नहमिमं तृतीयं स्तबकं विदुषां सेवायामुपायनीकरोमि।

वाराणसी
रामनवमी,
वि. सं. २०५३
(२८.३.१९९६ खैस्ताब्दः)

मण्डनमिश्रः
कुलपतिः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य

प्रस्तावना

लार्ड कार्नवालिस की आज्ञा से बनारस के तत्कालीन रेजिडेन्ट जोनाथन डंकन द्वारा **१७९१ ई.** में **बनारस संस्कृत कालेज** की स्थापना की गई। जे. आर. बैलेन्टाइन के पश्चात् जब **आर. टी. एच्. ग्रिफिथ** ने १८६१ में कालेज के प्रिन्सिपल के रूप में कार्यभार ग्रहण किया, तो उन्होंने काशी के पण्डित-मण्डल समुद्र से **'काशीविद्यासुधानिधि'** नामक मासिक संस्कृत-पत्रिका का प्रकाशन किया। बनारस संस्कृत कालेज के मुखपत्र के रूप में इस पत्रिका का वैकल्पिक अंग्रेजी अभिधान **'दि पण्डित'** दिया गया, जो आगे चलकर इसी नाम से प्रसिद्ध हुई। जून १८६६ में एक बड़े आकार (फोलियो साइज) में इसके प्रथम अङ्क का प्रकाशन हुआ। इसकी विषय-वस्तु, साज-सज्जा एवं सम्पादन-शैली पाश्चात्य पत्रिकाओं के अनुरूप होने से देश-विदेश के संस्कृत विद्वानों में यह शीघ्र ही लोकप्रिय बन गई। जून १८६६ से मई १८७६ तक इस पत्रिका के दश खण्ड, जिनकी सम्पूर्ण अंक-संख्या १२० होती है, का प्रकाशन फोलियो आकार में होने से पाठकों को इसे डाक द्वारा भेजने में कुछ असुविधा होने लगी। अतः दशम खण्ड के बाद इसके बृहत् आकार को समाप्त कर जून, १८७६ से लघु आकार (आक्टेव साइज) में इसका नये रूप में प्रकाशन होने लगा। इस प्रकार प्राचीनोपक्रम (ओल्ड सिरीज) में 'पंडित' के फोलियो आकार में प्रकाशित दश खण्डों से पृथक् रखने की दृष्टि से आक्टेव आकार से नवीनोपक्रम (न्यू सिरीज) में प्रकाशित होने वाले 'पंडित' के खण्डों का गणना-क्रम भी एक से प्रारम्भ किया गया जो जून, १८७६ से प्रारम्भ होकर १९१७ के ३९वें खण्ड तक चलता रहा।

'पंडित' (नूतन ग्रन्थमाला) के जून, १८७६ से मई, १८७९ तक तीन खण्डों का प्रकाशन तो किसी तरह हुआ; किन्तु आगे इसके ग्राहकों की संख्या में कमी एवं विद्वानों से अपेक्षित सहानुभूति तथा सहयोग के अभाव में इसका प्रकाशन लगभग दो वर्षों तक स्थगित-सा रहा। आगे कुछ विद्वानों एवं इसके ग्राहकों के आग्रह पर जब १८८२ में इसके चतुर्थ खण्ड का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हुआ तो इसके चार-चार अंकों को एक जिल्द में प्रकाशित करने की योजना बनी और ग्राहकों को अधिक आकृष्ट करने के लिए इसके वार्षिक चन्दे की दर डाक-व्यय सहित १२ रूपये वार्षिक से घटाकर नौ रूपये वार्षिक (डाक-व्यय छोड़कर) कर दी गई।

प्रारम्भ से ही इसका प्रकाशन एवं मुद्रण बनारस के ई. जे. लाजरस कम्पनी द्वारा अपने मेडिकल हाल प्रेस में ही किया जाता था। १८६७ के कापीराइट

अधिनियम संख्या-२४ के अन्तर्गत पत्रिका का पंजीकरण भी कराया गया था। कालेज के अन्तिम अंग्रेज प्राचार्य एवं प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ **डॉ. आर्थर बेनिस** इन्हीं **डॉ. लाजरस** के सुपुत्र थे। 'पंडित' के सम्पादकों में **गाफ़, ग्रिफिथ, थीबो** के अतिरिक्त **बेनिस साहब** की अत्यन्त सराहनीय भूमिका रही है। इनकी सेवानिवृत्ति के एक वर्ष पूर्व ही १९१७ में 'पंडित' का प्रकाशन सदा के लिये बन्द हो गया।

प्रारम्भ में संस्कृत के महत्त्वपूर्ण दुर्लभ ग्रन्थों के साथ ही इसमें लेखों, जीवनियों एवं पुस्तकों की समीक्षाएँ आदि, प्रकाशित होती रहीं। बाद में तो केवल ग्रन्थों का ही एक मात्र प्रकाशन इसके विभिन्न अंकों में धारावाहिक रूप से किया जाने लगा। इन ग्रन्थों के सम्पादन में संस्कृत कालेज के तत्कालीन विद्वानों की ही प्रमुख भूमिका रही है। संस्कृतज्ञों के अतिरिक्त हिन्दी के विद्वान् **राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द** तक ने इसमें संस्कृत में लेख लिखे। **भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र** ने इसमें प्रकाशन के लिए अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय से संस्कृत की अनेक पाण्डुलिपियों को विद्वानों के लिए सुलभ कराके इस विद्या के अभ्युत्थान में अपना अविस्मरणीय सहयोग प्रदर्शित किया है। **डॉ. राजेन्द्र लाल मित्र** द्वारा देवनागरी में रोमन भाषा के लिप्यन्तरण की समस्याओं पर उन्होंने अपने अंग्रेजी में लिखे लेखों में महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है।

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के तत्कालीन पण्डितों— पं. राजाराम शास्त्री, पं. बेचनराम त्रिपाठी, पं. बालशास्त्री, म. म. बापूदेव शास्त्री, म.म. गङ्गाधरशास्त्री, म.म. सुधाकर द्विवेदी, म.म. गङ्गानाथ झा, पं. क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि विद्वानों ने अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका एवं उपसंहार से संवलित जिन ग्रन्थों का पंडित में सम्पादन किया है, उनकी संख्या एक सौ से भी अधिक है। इन ग्रन्थों की विषयानुसार तालिका आगे प्रस्तुत की जा रही है—

वैदिक-साहित्य

१.	*शुल्बसूत्र*— बौधायन; द्वारकानाथ यज्व-कृत संस्कृत टीका सहित, जार्ज थिबो द्वारा अंग्रेजी अनुवाद	प्रा. ग्रन्थमाला ९-१० न. ग्रन्थमाला ·१	(१९७२) (१९७५)
२.	*कातीय शुल्ब-परिशिष्ट*— कात्यायन; रामचन्द्रकृत वृत्ति सहित, जार्ज थिबो द्वारा अंग्रेजी अनुवाद	न. ग्र. ४	(१८८२)
३.	*श्रौतपदार्थनिर्वचन*	न. ग्र. ४-८	(१८८२-८६)
४.	*ईशावास्योपनिषद्*— राममिश्र शास्त्री-कृत विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तानुयायी व्याख्या सहित संपादित	न. ग्र. २७	(१९०५)

५	*ईशावास्योपनिषद्*— क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा अंग्रेजी अनुवाद एवं व्याख्या सहित संपादित	न. ग्र. ३७-३८	(१९१५-१६)
६.	*केनोपनिषद्*— क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा अंग्रेजी अनुवाद एवं व्याख्या सहित संपादित	न. ग्र. ३८	(१९१६)

स्मृति-पुराण

१.	*शाश्वतधर्मदीपिका*— गङ्गाधर शास्त्री तैलङ्ग	न. ग्र. ३	(१८७९)
२.	*पराशरस्मृति*— विनायक धर्माधिकारी (नन्दपण्डित) कृत 'विद्वन्मनोहरा' व्याख्या सहित नागेश्वर पंत धर्माधिकारी द्वारा संपादित	न. ग्र. २९-३३	(१९०७-११)
३.	*महाभारततात्पर्यप्रकाश*— सदानन्द व्यास, रामसकल मिश्र संपादित	न. ग्र. ३३-३४	(१९११-१२)

भक्ति-शास्त्र

१.	*भक्तिसागर*— नारायण भट्ट, गणपति शास्त्री मोकाटे, संपादित	न. ग्र. ३३	(१९११)

भारतीय-दर्शन

१.	*सर्वदर्शनसङ्ग्रह*— माधवाचार्य, ई. बी. कावेल एवं ए. ई. गाफ़ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित, संपादित	प्रा. ग्र. ९-१० न. ग्र. १-२	(१८७४-७७)
२.	*जैनवार्त्तिक*— शान्त्याचार्य	न. ग्र. २६-२८	(१९१४-१६)

साङ्ख्य-योग-दर्शन

१.	*साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी*—तारानाथ तर्कवाचस्पति, ए. ई. गाफ़ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित	प्रा. ग्र. ७	(१८९२)
२.	*योगसूत्र*— पतञ्जलि, भोजराज कृत 'राजमार्तण्ड' टीका सहित जे. आर. वैलन्टाइन एवं गोविन्ददेव द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पादित (तृतीय अध्याय से, प्रारम्भ-अपूर्ण)	प्रा. ग्र. ३-६	(१८६८-७२)

३.	*साङ्ख्यमतनिरूपककथा*— (साङ्ख्यप्रवचन-भाष्य के चतुर्थ अध्याय पर आधारित) केशव शास्त्री द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सिहित संपादित	न. ग्र. १	(१८७६)
४.	*साङ्ख्यंतत्त्वप्रदीप*— गोविन्ददेव शास्त्री द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित	प्रा. ग्र. ९	(१८७४)
५.	*योगचन्द्रिक* (पदचन्द्रिका)— केशव शास्त्री	न. ग्र. ३	(१८७९)
६.	*योगवार्त्तिक*— विज्ञानभिक्षु; रामकृष्ण शास्त्री एवं केशव शास्त्री संपादित	न. ग्र. ५-६	(१८८३-८४)
७.	*पातञ्जलसूत्रवृत्ति*— नागेशभट्ट	न. ग्र. २५-२८	(१९०३-६)

न्याय-वैशेषिक-दर्शन

१.	*वैशेषिक-सूत्र*— कणाद; शङ्कर मिश्र कृत 'उपस्कार' एवं जयनारायण तर्कपञ्चानन कृत 'विवृत्ति' सहित ए. ई. गाफ़ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पादित	प्रा. ग्र. ३-६	(१८६८-७२)
२.	*तत्त्वचिन्तामणि* (शब्द-खण्ड)— गङ्गेशोपाध्याय; रुचिदत्त कृत 'प्रकाश' टीका सहित बालशास्त्री संपादित	प्रा. ग्र. ६-८	(१८७१-७४)
३.	*न्यायपदार्थतत्त्वसार*— हरिकिशोर तर्कवागीश; गिरीश चन्द्र राय द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित	प्रा. ग्र. ९	(१८७५)
४.	*खण्डनखण्डखाद्य*— श्रीहर्ष; शङ्कर मिश्र कृत संस्कृत टीका सहित (चतुर्थ परिच्छेद पर्यन्त)	न. ग्र. ६-१३	(१८८४-९१)
५.	*लक्षणावली*— उदयनाचार्य; शेष शार्ङ्गधर कृत 'न्यायमुक्तावली' टीका सहित सुरेन्द्रलाल गोस्वामी द्वारा संपादित	न.ग्र.२१-२२	(१९००-१९०१)
६.	*तार्किकरक्षा एवं सारसंग्रह*— वरदराज; मल्लिनाथ कोलाचल कृत 'निष्कण्टक' तथा ज्ञानपूर्ण कृत 'लघुदीपिका' सहित विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित	न.ग्र. २१-२५	(१८९९-१९०३)

७. *(सटीक तर्कभाषा)*— केशव मिश्र; गोवर्धन मिश्र कृत 'तर्कभाषाप्रकाश' टीका सहित सुरेन्द्रलाल शर्मा द्वारा संपादित — न.ग्र. २२-२३ (१९००-१९०१)

८. *न्यायसूत्र*— गौतम; राधामोहन भट्टाचार्य कृत 'विवरण' टीका सहित सुरेन्द्रलाल गोस्वामी द्वारा संपादित — न. ग्र. २३-२५ (१९२३-२५)

९. *पदार्थतत्त्वनिरूपण*— रघुनाथ शिरोमणि; रामभद्र सार्वभौम कृत 'विवेचनप्रकाश' एवं रघुदेव न्यायालङ्कार कृत टीका, विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित — न. ग्र. २५-२८, ३१, ३४-३५ (१९०३-१९०६, १९०९, १९१२-१६)

१०. *खण्डनोद्धार*— अभिनव वाचस्पति मिश्र; विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी एवं वामाचरण भट्टाचार्य, संपादित — न. ग्र. २५-३९ (१९०३-१८)

११. *न्यायसिद्धान्तदीप*— शशधराचार्य; शेषान्ताचार्य विरचित 'प्रभा' व्याख्या — न.ग्र.२५-२६,३९ (१९०३-०४, १९१७)

१२. *न्यायसार*— माधवदेव — न. ग्र. २५-२६ (१९०३-४)

१३. *पदार्थरत्नमाला* (गौतमोक्तपदार्थनिरूपण)— रघुनाथ — न. ग्र. २७-२८ (१९०५-६)

१४. *पदार्थधर्मसङ्ग्रह*— प्रशस्तपाद; श्रीधरकृत 'न्यायकन्दली' टीका सहित गङ्गानाथ झा द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पादित. — न. ग्र. २५-३७ (१९०३-१५)

१५. *न्यायसिद्धान्तमञ्जरी*— जानकीनाथ भट्टाचार्य चूड़ामणि; यादवाचार्य कृत 'न्यायमञ्जरीसार' टीका सहित जीवनाथ मिश्र संपादित — न. ग्र. २९-३४ (१९०७-१२)

१६. *कारिकावली एवं मुक्तावली*— विश्वनाथ पञ्चानन; आर्थर वेनिस द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पादित — न. ग्र. ३९ (१९१७)

१७. *न्यायसूत्र*— गौतम; विश्वनाथ पञ्चानन विरचित वृत्ति सहित — न. ग्र. ३९ (१९१७)

मीमांसा-दर्शन

१. *मीमांसाश्लोकवार्त्तिक*— कुमारिलभट्ट न. ग्र. ३-४ (१८७८-८२)

२. *शास्त्रदीपिका*— (कुमारिलमतानुयायी मीमांसासूत्र-व्याख्या-ग्रन्थ) विषमपद टिप्पणी सहित न. ग्र. ७-१३ (१८८५-९२)

३. *तत्त्वबिन्दु*— (शाब्दबोधकारणावधारणपरक ग्रन्थ) वाचस्पति मिश्र; गङ्गाधर शास्त्री सम्पादित न. ग्र. १२ (१८९२)

४. *जैमिनिसूत्रवृत्ति*— (सुबोधिनी) रामेश्वरसूरि; पर्वतीय नित्यानन्द शर्मा संशोधित न. ग्र. १८-२१ (१८९६-९९)

५. *मीमांसान्यायप्रकाश*— आपदेव; गङ्गानाथ झा संपादित न. ग्र. २६-२७ (१९०४-०५)

६. *मीमांसापरिभाषा*— कृष्णयज्वा; गङ्गानाथ झा संपादित न. ग्र. २६ (१९०४)

७. *विधिविवेक*— मण्डनमिश्र; वाचस्पति मिश्र कृत 'न्यायकणिका' सहित न. ग्र. २५-२८ (१९०३-०६)

वेदान्त-दर्शन

१. *वेदान्तसार*— सदानन्द; रामतीर्थ कृत 'विद्वन्मनोरञ्जिनी' व्याख्या, ए. ई. गाफ़ एवं गोविन्ददेव द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित प्रा. ग्र. ६-९ (१८७१-७४)

२. *अद्वैतमकरन्द*— लक्ष्मीधर; स्वयंप्रकाश यति विरचित 'रसाभिव्यञ्जिका' व्याख्या एवं ए. ई. गाफ़ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित बेचनराम त्रिपाठी, संपादित प्रा. ग्र. ८-९ (१८७३-७४)

३. *ब्रह्मसूत्रतात्पर्यविवरण*— भैरव शर्मा; बेचनराम त्रिपाठी, संपादित न. ग्र. ३-४ (१८७९-८२)

४. *कैवल्यरत्न*— वासुदेवज्ञान मुनि; ढुण्ढिराज शास्त्री, संपादित न. ग्र. ५ (१८८३)

५. *शारीरकमीमांसान्याय-सङ्ग्रह*— प्रकाशात्मा; संस्कृत व्याख्या सहित बेचनराम शर्मा, संपादित न. ग्र. ३ (१८७९)

६. *चित्सुखी*— चित्सुखाचार्य; बेचनराम शर्मा, संपादित न. ग्र. ४-६ (१८८२-८४)

७. *वेदान्तपरिभाषा*— धर्मराजाध्वरी; आर्थर वेनिस द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित न. ग्र. ४-७ (१८८२-८५)

८. *आत्मसोपान* (वेदान्तप्रकरण ग्रन्थ)— केशव शास्त्री न. ग्र. ४ (१८८२)

९. *संक्षेपशारीरक*— सर्वज्ञात्म; मधुसूदन सरस्वती कृत 'संक्षेपशारीरक-सारसङ्ग्रह' टीका सहित द्विवेद हरिनाथ शर्मा संपादित न. ग्र. ४-१० (१८८२-८५)

१०. *पञ्चदशी*— विद्यारण्य; अंग्रेजी अनुवाद सहित न. ग्र. ५-८

११. *वेदान्तसिद्धान्त-मुक्तावली*— प्रकाशानन्द, आर्थर वेनिस द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित न. ग्र. ११-१२ (१८८९-९०)

१२. *सिद्धान्तलेशसङ्ग्रह*— अप्पय दीक्षित, आर्थर वेनिस द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पादित (अपूर्ण) न.ग्र.२१-२५ (१८९९-१९०३)

१३. *सिद्धान्ततत्त्व* (वेदान्तप्रकरण ग्रन्थ)— अनन्तदेव; रामशास्त्री तैलंग सम्पादित न. ग्र. २२ (१९००)

१४. *पञ्चपादिका*— पद्मपादाचार्य; आर्थर वेनिस द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित न. ग्र. २३-२५ (१९०१-०३)

१५. *लौकिकन्यायसङ्ग्रह*— रघुनाथ वर्मा उदासीन; म. म. गङ्गाधर शास्त्री संपादित न. ग्र. २३-२४ (१९०१-०२)

१६. *सम्बन्धवार्तिक*— सुरेश्वराचार्य; वेंकटरमण अय्यर द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित न. ग्र. २३-२६ (१९०१-०४)

१७. *वेदान्ततत्त्वविवेक*— नृसिंहाश्रम न. ग्र. २५ (१९०३)

१८. *ब्रह्मामृतवर्षिणी* (ब्रह्मसूत्रवृत्ति)— रामानन्द सरस्वती; वेंकटरमण अय्यर संपादित न. ग्र. २५-३१, ३८ (१९०३-०९, १९१६)

१९. *अद्वैतसिद्धि*— मधुसूदन सरस्वती;
म. म. गङ्गानाथ झा द्वारा अंग्रेजी
अनुवाद सहित सम्पादित न. ग्र. २८ (१९१६)

२०. *अद्वैतदीपिका*— नृसिंहाश्रम न. ग्र. ३०-३८ (१९०८-१६)

२१. *भगवद्गीता*— जयराम कृतं 'सारार्थसङ्ग्रह'
('गीतार्थदीपिका') टीका सहित रामसकल मिश्र
द्वारा सम्पादित न. ग्र. ३४-३९ (१९१२-१७)

रामानुज-दर्शन

१. (रामानुजदर्शन) *तत्त्वत्रयचुलुक*
(यतिपतिमतदीपिका)— श्रीनिवासाचार्य न. ग्र. १ (१८७६)

२. *श्रीभाष्य*— रामानुजाचार्य; सुदर्शनाचार्य कृत
'श्रुतप्रकाशिका' व्याख्या एवं विषमपद
टिप्पणी सहित राममिश्र शास्त्री द्वारा
संपादित न. ग्र. ७-३३ (१८८५-१९११)

३. *वेदान्ततत्त्वसार*— रामानुजाचार्य;
जे. जे. जानसन द्वारा अंग्रेजी
अनुवाद सहित संपादित न. ग्र. ९-१२ (१८८७-९०)

४. *सङ्कर्षकाण्ड*— भास्करभट्ट प्रणीत
'भाट्टचन्द्रिका' टीका सहित
राममिश्र शास्त्री द्वारा संपादित न. ग्र. १५ (१८९३)

५. *वेदार्थसङ्ग्रह* (प्रथम बिन्दु)—
रामानुजाचार्य; सुदर्शनसूरि कृत
'तात्पर्यदीपिका' सहित राममिश्र
शास्त्री द्वारा संपादित न. ग्र. १५-१७ (१९९३-९५)

६. *स्नेहपूर्त्ति* (अद्वैतसिद्धिखण्डन)—
राममिश्र शास्त्री न. ग्र. १८ (१८९६)

७. *स्नेहपूर्त्तिपरीक्षा* (स्नेहपूर्त्तिसिद्धान्तालोचन)—
केशव शास्त्री मराठे न. ग्र. १८ (१८९६)

८. *तत्त्वमुक्ताकलाप*— वेंकटनाथ महादेशिक
कृत स्वोपज्ञ 'सर्वार्थसिद्धि' टीका सहित
राममिश्र शास्त्री द्वारा संपादित न.ग्र.१८-२२ (१८९६-९९००)

९. *आगमप्रामाण्य*— यामुनाचार्य; राममिश्र
शास्त्री सम्पादित न. ग्र. २२ (१९००)

१०. *न्यायसिद्धाञ्जन*— वेंकटनाथ देशिक,
राममिश्र शास्त्री संपादित न. ग्र. २३ (१९०१)

निम्बार्क-दर्शन

१. *वेदान्तकौस्तुभप्रभा*— केशवकाश्मीरी भट्ट प्रा. ग्र. ८-९ (१८७३-७५)

माध्व-दर्शन

१. *तत्त्वमुक्तावली*— गौडपूर्णानन्द चक्रवर्त्ती प्रा. ग्र. ६ (१८७१)

शैव-दर्शन

१. *व्याससूत्रीय शैवभाष्य*— श्रीकण्ठशिवाचार्य;
पाठभेद टिप्पणी सहित विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी
संपादित प्रा. ग्र. ६-७ (१८७१-७३)

२. *शिवज्ञानबोध* न. ग्र. २९ (१९००)

पाश्चात्त्य-दर्शन

१. *ज्ञानसिद्धान्तचन्द्रिका*— जार्ज बर्कले कृत
A Treatise concerning the principles of
human knowledge' (१७१०) का
केशव शास्त्री मराठे द्वांरा संस्कृत अनुवादप्रा. ग्र. ८-१० (१८७३-७५)

२. *मानवीयज्ञान विषयक शास्त्र*— जान लॉक कृत
`Essay concerning human understanding',
Book-III (१६९०) का ढुण्ढिराज शास्त्री द्वारा
अंग्रेजी अनुवाद न. ग्र. १-२ (१८७६-७७)

व्याकरण-शास्त्र

१. *माधवीयधातुवृत्ति*— गङ्गाधर शास्त्री एवं
दामोदर शास्त्री भारद्वाज, संपादित न. ग्र. ४-८ (१८८२-८६)

२. *काशिका*—- जयादित्य एवं वामन; हरदत्त
कृत 'पदमञ्जरी' व्याख्या सहित बालशास्त्री
संपादित न. ग्र. १०-२० (१८८८-९८)

३. *परिभाषेन्दुशेखरस्य अकाण्डताण्डवम्*—
द्विवेद हरिनाथ मनीषी न. ग्र. ६-७ (१८८४)

४. *व्याकरणदीपिका* (पाणिनिसूत्रवृत्ति)— ओरम् भट्ट; गणपति शास्त्री मोकाटे संपादित　न. ग्र. ३०-३८　(१९०८-१६)

५. *जैनेन्द्रव्याकरण*— देवानन्द मुनि; अभयानन्द मुनि कृत 'महावृत्ति' सहिंत विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी संपादित　न. ग्र. ३१-३९　(१९०९-१७)

६. *प्रौढमनोरमाखण्डन*— चक्रपाणिदत्त　न. ग्र. ३२-३४　(१९१०-१२)

७. *शाकटायनव्याकरण*— अभिनव शाकटायन कृत 'लघुवृत्ति' सहित मुन्नालाल जैन सम्पादित　न. ग्र. ३४-३८　(१९१२-१६)

ज्यौतिष-शास्त्र

१. *दिग्मीमांसा*— म. म. सुधाकर द्विवेदी　न. ग्र. २१　(१८९९)

२. *ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त*— ब्रह्मगुप्त; सुधाकर द्विवेदी द्वारा स्वोपज्ञ टीका सहित संपादित　न. ग्र. २३-२४　(१९०१-०२)

३. *याजुषज्यौतिष*— म. म. सुधाकर द्विवेदी　न. ग्र. २८　(१९०७)

४. *सिद्धान्तशिरोमणि*— भास्कराचार्य; 'वासनाभाष्य' एवं 'मारीचि' टीका सहित　न. ग्र. ३०-३९　(१९०८-०७)

काव्य-शास्त्र

१. *तत्त्वमुक्तावली*— गौड पूर्णानन्द चक्रवर्त्ती　प्रा. ग्र. ६　(१८७१)

२. *गोपाललीलाकाव्य*— रामचन्द्रभट्ट; बेचन शर्मा संपादित　प्रा. ग्र. ६　(१८७१)

३. *विद्धशालभञ्जिका नाटिका*— रांजशेखर　प्रा. ग्र. ६-७

४. *कर्पूरमञ्जरी-सट्टक*— राजशेखर; वामनाचार्य संपादित　प्रा. ग्र. ७　(१८७२)

५. *आनन्दवृन्दावनचम्पू*— कविकर्णपूर, वृन्दावन चक्रवर्ती कृत 'सुखवर्त्तिनी' टीका-सहित　वेचनराम त्रिपाठी संपादित　न. ग्र. ९-१०, १-३　(१८७४-७८)

६. *बालशास्त्रिजीवनवृत्तान्त*— गङ्गाधर शास्त्री　न. ग्र. ४　(१८८२)

७. *प्रसन्नराघवनाटक*— जयदेव; गङ्गानाथ झा द्वारा 'भावबोधिनी' टीक सहित संपादित न. ग्र. २६-२८ (१९०४-०६)

८. *वाल्मीकिरामायण*— पाठसमीक्षात्मक पाद-टिप्पणी सहित रसिकलाल भट्टाचार्य संपादित (अपूर्ण) न. ग्र. २८-३४, ३८ (१९०६-१६)

९. *सङ्कल्पसूर्योदय*— वेंकटनाथ महादेशिक (विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त-प्रतिपादक नाटक) न. ग्र. २८-३८ (१९०६-१६)

छन्द-अलङ्कार

१. *वृत्तरत्नाकर*— केदारभट्ट, अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रा. ग्र. ९ (१८७४)

२. *काव्यप्रदीप* (काव्यप्रकाश का परिवृत्त व्याख्यान)— म. म. गोविन्द प्रणीत, रामशास्त्री भागवताचार्य संपादित न. ग्र. ११-१३ (१८८९-९१)

३. *चित्रमीमांसा* (अलङ्कार)— अप्पय दीक्षित न. ग्र. १३ (१८९१)

४. *काव्यप्रकाश*— मम्मट; गङ्गानाथ झा द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित न. ग्र. १८-२१ (१८९६-९८)

उपर्युक्त सूची के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत के अनेक ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद भी समय-समय पर 'पंडित' में प्रकाशित होते रहे हैं। प्रकाशित ग्रन्थों में कुछ का आंशिक अथवा अपूर्ण प्रकाशन भी हुआ है। कतिपय ग्रन्थों के प्रकाशन-क्रम में व्यवधान के कारणों का कोई संकेत नहीं मिलता; किन्तु कुछ के विषय में ऐसे व्यवधान से सम्बद्ध जो टिप्पणी प्रकाशित की गई है, उससे पाठकों के लाभ के साथ ही इसके सम्पादकों की जागरूकता का भी परिचय प्राप्त होता है। 'पंडित' में 'पदमञ्जरी' के साथ 'काशिका' का प्रकाशन चल रहा था कि संपादक द्वारा इसके छठें अध्याय के चतुर्थ पाद की पाण्डुलिपि इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लन्दन से उपलब्ध न होने के फलस्वरूप इसके आगे प्रकाशन में गतिरोध की स्थिति की सूचना सम्पादक द्वारा पंडित के अठारहवें खण्ड के ग्यारहवें अंक (नवम्बर, १८९६) में अलग से स्लिप में छापी गई—

''महार्घस्यास्य काशिकाव्याख्यारूपस्य पदमञ्जरीग्रन्थस्य षष्ठाध्यायचतुर्थ-पादपुस्तकमेषु देशेषु नोपलभ्यत इति। लण्डननगरस्थभारतीयमहापुस्तकालयात् तत्प्राप्तिपर्यन्तमग्रे मुद्रणे विलम्बो भवितेति'' — संशोधकः।

काशिकायुक्त पण्डित के इस संस्करण का दो भागों में लाजरस प्रेस, बनारस से पुनर्मुद्रण भी किया गया, जो उस समय दोनों भाग मात्र दश रूपये में उपलब्ध हुए।

'पंडित' में प्रकाशित इस विपुल ग्रन्थराशि को अविकलरूप से पुनर्मुद्रित करना सम्भव न देखकर प्रथमतः इन ग्रन्थों की संस्कृत कालेज के तत्कालीन विद्वानों द्वारा लिखी गई वैदुष्यपूर्ण भूमिका एवं उपसंहार को ही प्रकाशित किया जा रहा है। कालान्तर में साधन-सौविध्य सुलभ होने पर तत्तद् ग्रन्थों को भी यथासम्भव प्रकाशित करने का प्रयास किया जायगा। इस दिशा में हमारे प्रयास के फलस्वरूप अभी तक 'पंडित' में प्रकाशित जिन ग्रन्थों का पूर्ण प्रकाशन सम्भव हो सका है, वे हैं— १. खण्डप्रशस्ति, २. तत्त्वमुक्तावली, ३. अद्वैतमकरन्द, ४. वेदान्तकौस्तुभप्रभा एवं ५. ईश-केनोपनिषद्। प्राचीन ग्रन्थमाला के १-५ खण्डों तक के संस्कृत में प्रकाशित लेखों, भूमिकाओं आदि का प्रकाशन **'पण्डित परिक्रमा'** प्रथम भाग में किया गया है। इसी प्रकार अंग्रेजी लेखों का संकलन **'पण्डित रीविजिटेड'** प्रथम भाग में प्रकाशित हो चुका है। पंडित के अवशिष्ट खण्ड के लेख, भूमिका एवं प्रस्तावना आदि का प्रकाशन **'पण्डित परिक्रमा'** के प्रस्तुत खण्ड में किया जा रहा है। इसी प्रकार अवशिष्ट अंग्रेजी लेखों एवं भूमिकाओं आदि को भी शीघ्र ही **'पण्डित रीविजिटेड'** के द्वितीय भाग में प्रकाशित किया जायगा।

लगभग १२० वर्ष पूर्व 'पंडित' में प्रकाशित इन ग्रन्थरत्नों का इस अवधि में पुनः प्रकाशन भी कई स्थानों से किया गया है। इसकी जो सूचना हमें सुलभ हो सकी है, उसको पाठकों के उपयोग की दृष्टि से हम यहाँ प्रस्तुत करना प्रासंगिक समझते हैं।

'पंडित' के प्रथम खण्ड (१८६६) में प्रमदादास मित्र कृत अंग्रेजी अनुवाद सहित **साहित्यदर्पण** Mirror of composition (दशम परिच्छेद) का प्रकाशन पूर्णरूप में १८६५ में एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता एवं १९५८ में मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली द्वारा किया गया है। इसी प्रकार पंडित के पंचम एवं षष्ठ खण्डों में (१८७०-७२) प्रकाशित हनुमद्विरचित **'खण्डप्रशस्ति'** का टीका सहित एक परिवर्धित संस्करण 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत हुआ है। ग्रन्थ के टीकाकार गुणविनय द्वारा मंगलश्लोक में 'फलवर्धि' नामक जिस स्थान का उल्लेख किया गया है, वह मेड़ता मार्ग (मारवाड़) पर स्थित सुप्रसिद्ध जैनतीर्थ फलोधी है। मन, वचन, काय के त्रियोग द्वारा त्रिःकृत्व नमन का जैनधर्म में अपना एक अनुपम महत्त्व है। मंगलश्लोक में त्रिःकृत्वा शब्द के द्वारा इसी नमन-पद्धति की ओर संकेत किया गया है।

गङ्गेशोपाध्याय कृत **'तत्त्वचिन्तामणि'** के शब्दखण्ड पर रुचिदत्त की **'प्रकाश'** टीका का बालशास्त्री द्वारा 'पण्डित' के ६-८ खण्डों में सम्पादन किया गया। सन् १९९२ में यादवपुर विश्वविद्यालय द्वारा दो भागों में इसका छाया-मुद्रण किया गया है।

'पण्डित' के खण्ड ९-१० तथा नूतन ग्रन्थमाला के प्रथम खण्ड में बौधायन के **'शुल्बसूत्र'** का टीका सहित प्रकाशन डॉ. थीबो के अंग्रेजी अनुवाद के साथ हुआ है। यह ग्रन्थ नई दिल्ली से १९८९ में डॉ. सत्यप्रकाश एवं रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित एवं पुनर्मुद्रित किया गया है। संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा भी अन्य टीकाओं के साथ इसका एक संस्करण १९७९ में प्रकाशित किया गया है। इसका सबसे अद्यतन पुनर्मुद्रण `Mathematics in the making in ancient India' (Calcutta, K.P. Bagchi, 1984) शीर्षक पुस्तक के पृ. ६६-१३४ के अन्तर्गत किया गया है।

माधवाचार्य के **'सर्वदर्शनसङ्ग्रह'** का सम्पादन एवं अंग्रेजी अनुवाद कावेल एवं गाफ़ द्वारा 'पंडित' के नवम खण्ड के पृष्ठ १६२ से प्रारम्भ होकर नूतन ग्रन्थमाला के द्वितीय खण्ड (१८७७-७८) के ६९ पृष्ठ तक मुद्रित है। बनारस से ही इसका षष्ठ संस्करण प्रकाशित हुआ है।

कणाद के **'वैशेषिक-सूत्र'** का शङ्कर मिश्र की टीका एवं जयनारायण तर्क-पञ्चानन की 'वृत्ति' के सहित गाफ़ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद 'पण्डित' के तृतीय खण्ड के १८५ पृष्ठ से षष्ठ खण्ड के २२८ पृष्ठ के अन्तर्गत मुद्रित हुआ है। पश्चात् बनारस से ही १८७३ में इसका पुनर्मुद्रण भी हुआ।

अभिनन्दकृत **'कादम्बरीकथासार'** एवं लोलिम्बराजकृत **'हरिविलासकाव्य'** का प्रकाशन क्रमशः द्वितीय एवं तृतीय खण्डों में हुआ है। पश्चात् इन दोनों ग्रन्थों का प्रकाशन काव्यमाला के एकादश गुच्छक में भी हुआ। मथुरादासकृत **'वृषभानुजानाटिका'** (३-४ खण्ड) का सम्पादन बेचनराम त्रिपाठी द्वारा किया गया है। पश्चात् काव्यमाला के छब्बीसवें अंक में भी इसका प्रकाशन हुआ। अमरचन्द्र सूरि कृत **'बालभारत'** महाकाव्य (खण्ड ३-६) महाभारत की कथा पर आधारित है। श्वेताम्बर-मतानुयायी कवि अपनी काव्य-प्रतिभा के लिए विश्रुत थे। इसका प्रकाशन १८९४ में काव्यमाला के ४५वें ग्रन्थाङ्क में भी हुआ है। अलबर्ट वेबर द्वारा **'काशीविद्यासुधानिधि'** के प्राचीन ग्रन्थमाला में प्रकाशित लेखों एवं ग्रन्थों की समीक्षा के प्रसंग में **'बालभारत'** के इस संस्करण की डेमेट्रियस गालानोस के 'बालभारत' के ग्रीक संस्करण से एक विशद तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई है। प्रस्तुत समीक्षा के लिए वेबर के जर्मन ग्रन्थ `Indische Streifen' खण्ड २-३ (Leipzeg, 1879) द्रष्टव्य है। जयदेव कृत **'प्रसन्नराघव'** नाटक का प्रकाशन पंडित में ही दो बार किया गया है। प्रथम प्राचीन ग्रन्थमाला के द्वितीय-तृतीय खण्ड में गोविन्ददेव शास्त्री के सम्पादकत्व में तथा द्वितीय नूतन ग्रन्थमाला के २६ से २८ खण्ड में म. म. गङ्गानाथ झा की **'भावबोधिनी'** स्वोपज्ञ टीका सहित। प्रथम का लाजरस कम्पनी, बनारस द्वारा पुनर्मुद्रण भी किया गया था; किन्तु दूसरे का सम्भवतः संशोधन की अपेक्षा, में पुनः

प्रकाशन का अवसर न उपलब्ध हो सका। कारण जो भी रहा हो म. म. गङ्गानाथ झा ने मैथिल कवि जयदेव की इस कृति पर यह व्याख्या लिखने का प्रयास अपने प्रारम्भिक काल में किया, ऐसा प्रतीत होता है।

१८८० में संस्कृत कालेज के पण्डितों द्वारा यज्ञों में प्रयुक्त पारिभाषिक श्रौत-शब्दावली का एक कोश तैयार कराया गया, जिसका प्रकाशन **'श्रौतपदार्थनिर्वचन'** अभिधान से 'पंडित' नवीन ग्रन्थमाला के चार से आठ खण्ड (१८८२-८६) में हुआ है। १९८७ में इसका तृतीय संस्करण पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है।

सदानन्द व्यास कृत **'महाभारततात्पर्यप्रकाश'** 'पंडित' नूतनग्रन्थमाला के ३३-३४ खण्ड (१९११-१२) में क्रमशः प्रकाशित है। अधुना डॉ. विद्यानिवास मिश्र की सारगर्भित अंग्रेजी भूमिका सहित 'रत्ना पब्लिकेशन्स', वाराणसी द्वारा १९९२ में इसके द्वितीय संस्करण को प्रकाशित किया गया है।

१८५४ ई. में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवाविवाह जैसी सामाजिक समस्या पर संस्कृत में **'विधवोद्वाहः'** पुस्तक लिखी और उसके माध्यम से इस विषय पर संस्कृतज्ञों का विचार जानना चाहा। काशी के पंडितों द्वारा इस विषय पर संस्कृत एवं अंग्रेजी में अपने जो विचार व्यक्त किये गये गये, वे लेख के रूप में 'पंडित' में प्रकाशित हुए हैं। इनमें बालशास्त्री द्वारा 'विधवोद्वाहविवेकः' लेख शास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने अपने गुरु राजारामशास्त्री कार्लेकर की पुस्तक 'विधवोद्वाह- शङ्कासमाधिः' (मेडिकल हाल प्रेस, काशी, १९२६) पर टीका भी लिखी थी। एतद्विषयक समस्त लेखों को 'पंडित परिक्रमा' एवं 'पंडित रीविजिटेड' के प्रथम भाग में पुनर्मुद्रित किया गया है।

गणितीय ज्योतिष-विज्ञान के क्षेत्र में बापूदेव शास्त्री के लेख 'मानमन्दिर-वेधशाला' (पंडित, अंक १, १८६६) में इस विज्ञान के यन्त्रों तथा वेधशाला का वर्णन बनारस की प्रसिद्ध मानमन्दिर वेधशाला के आधार पर किया गया है। मानसिंह के वंशज महाराजा जयसिंह द्वारा लोगों के परिज्ञान के लिए इस प्रकार की वेधशालाओं का देश के कई भागों (जयपुर, दिल्ली) में निर्माण कराया गया था। इनका दूसरा लेख 'सिद्धान्ततत्त्वविवेकपरीक्षा' (पं. २, १२ एवं २१ अंक) 'पण्डित परिक्रमा' में ७४-९० पृष्ठ तक उन्मुद्रित है। विनायक शास्त्री वेताल के 'कतिपयप्रश्नविचार' (अंक ७६-७९) में ज्यामितीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है। पश्चात् 'पंडित' के नूतन ग्रन्थमाला के इक्कीसवें एवं अट्ठाइसवें खण्ड में म. म. सुधाकर द्विवेदी के 'दिङ्मीमांसा' तथा 'याजुष-ज्यौतिष' इन दो मौलिक ग्रन्थों का भी प्रकाशन हुआ।

नन्दपण्डित कृत **'विद्वन्मनोहरा'** टीका के साथ **'पराशरस्मृति'** का प्रकाशन 'पंडित' के २९-३३ खण्ड में किया गया है। जिसकी पुष्पिका में— श्रीधर्माधिकारि-

रामपण्डितात्मजनन्दपण्डितापरनामधेयविनायकपण्डितकृतौ पराशरस्मृतिविवृतौ विद्वन्मनोहरा' इस उल्लेख से स्पष्ट होता है कि नन्द पण्डित एवं विनायक धर्माधिकारी दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इनका समय १५५३ से १६३३ ई. के मध्य माना गया है। नन्द पण्डित की 'विद्वन्मनोहरा' पुस्तक, जो उनके हस्तलेख में लिपिबद्ध थी, सरस्वती-भवन ग्रन्थालय में क्रय की गई थी। इसी ग्रन्थालय के महीधर-सङ्ग्रह में भी (अध्याय ५ और ६ मात्र) इसकी एक प्रति उपलब्ध है। सम्भवतः इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत टीका-ग्रन्थ का संपादन किया गया है।

'कुमारसम्भव' एक से सात सर्ग तक ही कालिदास कृत है, यह कतिपय विद्वानों की मान्यता है। अस्तु ए. एफ्. स्टेन्त्सलर ने उतने ही सर्ग तक का संस्करण सम्पादित किया है। विट्ठलशास्त्री द्वारा १८६६ ई. में 'पण्डित' प्राचीन ग्रन्थमाला के प्रथम खण्ड के १ से ११ अंकों तक 'कुमारसम्भव' का आठ से सत्रह सर्ग तक का पाठ प्रकाशित किया गया है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि 'कुमारसम्भव' के १७ सर्गों तथा रघुवंश के १९ सर्गों के रचयिता कालिदास ही हैं; किन्तु विट्ठलशास्त्री द्वारा संपादित 'कुमारसम्भव' के ८-१७ सर्ग एवं सीतारामशास्त्री द्वारा संपादित ९-१७ सर्ग (निर्णयसागर, १९३२) के संस्करणों को मूल स्रोत के अभाव में कुछ विद्वानों ने (८-१७ सर्ग) प्रक्षिप्तांश के रूप में स्वीकार किया है।

'मेघदूत' का अंग्रेजी में काव्यानुवाद (Messenger cloud) 'पंडित' प्रा. ग्र. २ (१८६७-६८) तथा रामनारायण शास्त्री का 'कुमारसम्भव-उत्पत्ति-विवेचन' ('पंडित' प्रा. ग्र. ३, (१८६८, १९-२२) में प्रकाशित है। इसमें स्कन्दपुराणान्तर्गत शङ्कर-संहिता के शिवरहस्य खण्ड के सम्भवकाण्ड की कथा को 'कुमारसम्भव' महाकाव्य का आधार स्वीकार किया गया है। जैसा कि तारानाथ ने स्वमुद्रित कुमारसम्भव के विज्ञानपत्र में इसका आधार 'शिवपुराण' की कथा को सिद्ध किया है, प्रस्तुत सन्दर्भ में मान्य नहीं है।

'लौकिकन्यायसङ्ग्रहः'— यह रघुनाथ वर्मा उदासीन कृत वेदान्तशास्त्र का एक प्रकरण-ग्रन्थ माना गया है। म.म. गङ्गाधर शास्त्री द्वारा इसका 'पंडित' नूतन ग्रन्थमाला में २३-२४ खण्ड में सम्पादन किया गया है। इसमें संस्कृत की प्रचलित लोकोक्तियों (न्यायों) के माध्यम से दर्शन जैसे दुरूह विषयों का स्पष्टीकरण किया गया है। लेखक के विषय में विशेष जानकारी न होने से इस विषय में सम्पादक द्वारा अधिक प्रकाश नहीं डाला गया है। १८८२ में कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा २५१ पृष्ठों में **'लौकिकन्यायरत्नाकर'** शीर्षक से अज्ञातकर्तृक रूप में एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जिसमें पूर्व ग्रन्थ संग्रह के कुछ अंश यथावत् मुद्रित हैं। भण्डारकर को राजस्थान में संस्कृत ग्रन्थों की अपनी खोज में लौकिक-न्यायसंग्रह की जो पोथी मिली, उसकी पुष्पिका में ग्रन्थकार के नाम का उल्लेख रघुनाथदास जी हैं (राज. पुरा. ग्रन्थ. ३१, पृ. ५३)।

अप्पय दीक्षित कृत **'सिद्धान्तलेश'** का आर्थर वेनिस द्वारा मात्र अंग्रेजी अनुवाद 'पंडित' न. ग्र. २१, ११, (१८९९— २५, २१, १९०३) में प्रकाशित हुआ। मूल पाठ के लिए अनुवादक द्वारा विजयनगरम्-ग्रन्थमाला में प्रकाशित इस ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या का संकेत बाएँ किनारे पर किया गया है। अच्युत कृष्णानन्द की टीका का उल्लेख भी पादटिप्पणी में (Ti) संकेत के द्वारा किया गया है। सन्दर्भ की सुविधा की दृष्टि से अधिकरण के अन्तर्गत सूत्र-संख्या दी गई है। विजयनगरम्-संस्करण के पृष्ठ ४७ तक ही अनुवाद अधूरा छोड़ दिया गया।

सरस्वतीभवन पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची का प्रकाशन 'पंडित' प्राचीन ग्रन्थमाला के खण्ड ३-९ (१८६९-१८७६) के अन्तर्गत परिशिष्ट (सप्लीमेन्ट) भाग में किया गया है। इस 'राजकीय-वाराणसी-विद्यामन्दिर-सरस्वती-भवनवर्त्ति पुस्तकसूची' में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, मीमांसा, न्यायवैशेषिक, जैनग्रन्थ आदि विषयों के ग्रन्थों का नाम, पूर्णापूर्णविवेक, पत्र-संख्या, लिपिकाल, लिपिभेद एवं ग्रन्थकर्तृनाम आदि वर्णन की सूचना इन पाँच स्तम्भों में दी गई है। आगे के खण्डों में सूची का प्रकाशन समाप्त कर दिया गया। आगे इन ग्रन्थों का समावेश सरस्वतीभवन के 'हस्तलिखितसंस्कृत-ग्रन्थ-विवरणपञ्जिका' (Descriptive catalogue of Sarasvati Bhawan library) में नवीन क्रम से अधिक विस्तृत विवरण के साथ किया गया है।

विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति **डॉ. विद्यानिवास मिश्र** के ही कार्यकाल में 'पंडित' के पुनर्मुद्रण की योजना को साकार रूप मिला। फलस्वरूप इसके प्राचीन ग्रन्थमाला के १-५ खण्डों में पंडितों द्वारा सम्पादित ग्रन्थों की भूमिकाओं, प्रस्तावनाओं एवं लेखों आदि के संकलन के रूप में 'पण्डित-परिक्रमा' के प्रथम स्तबक का प्रकाशन १९९१ ई. में सम्भव हो सका। वर्तमान कुलपति **प्रो. वि. वेङ्कटाचलम्** की सत्प्रेरणा से ही उसी क्रम में आज 'पण्डित-परिक्रमा' के तृतीय स्तबक का भी प्रकाशन हो रहा है। इस सारस्वत-कार्य की सम्पन्नता के लिये हम कुलपति-द्वय के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इसके प्रकाशन में पूर्ण तत्परता एवं हार्दिक सहयोग के लिए विश्वविद्यालय के प्रकाशनाधिकारी **डॉ. हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी** एवं तारा मुद्रणालय के सञ्चालक **श्री रवि प्रकाश पण्ड्या** के प्रति भी अपनी हार्दिक शुभाशंसा व्यक्त करते हैं।

विद्वद्विधेय
विजय नारायण मिश्र

वाराणसी
चैत्र शुक्ल १, वि. सं. २०५२
१ अप्रैल, १९९५ ई.।

विषयानुक्रमणिका

भिषग्वरो भाऊदाजी

बापूदेवशास्त्री-टोंकेकरः, राजारामशास्त्री-कार्लेकरः
बालशास्त्री-रानडे, गोविन्ददेवशास्त्री- टोंकेकरः
शिवरामगोविन्द-रानडे

[१]इन्दुप्रकाशाद्यनेकवार्त्तापत्रमुद्रितशुभसमाचारं दृष्ट्वातिप्रसन्नेन चेतसा दयासागरं सर्वशक्तिमन्तं जगत्स्रष्टारं विश्वेशं धन्यवादपूर्वकं भूयोभूयः प्रणम्य तत्समाचारं स्वीयसर्वसुहृज्जनकर्णातिथिं कुर्मः। तथा हि— अद्यत्वे परमेश्वरो जगद्धिताय एकं भिषग्रत्नं मुम्बय्याख्यपत्तने पश्चिमाशायामपरं भास्करमिव उदाययित्। स च भिषग्वरो भाऊदाजीति विख्यातनामा इङ्ग्लण्डीयचिकित्साशास्त्रेऽतिप्रवीणोऽपि महोत्साहतया भारतवर्षीयचिकित्सा-शास्त्रेऽतिपरिश्रम्याभिनवान् नानाविधानौषधपथ्यपरिहारादिप्रकारानकल्पयत्। यथा भगवान् याज्ञवल्क्यः सहस्ररश्मिमुपास्याश्रुतपूर्वं श्रुतिराशिं जगति प्रकाशयामास। तत्र महाघोरस्य वातरक्ताख्यस्य मृत्योरिव महारोगस्य समूलनिवर्तकमेकमौषधं बुद्धिसुधासिन्धुमन्थनादमृतमिव निर्माय देवादीननेकजनान् प्राशयत्। तेन चाद्य यावद्दशावराः प्राणिनोऽमरकल्पा बभूवुः। तन्मध्ये पाठशालाध्यापकः प्रसिद्धवैयाकरणष्टोंकेकरबालशास्त्री देवः। स चैतन्महारोगग्राह-दंष्ट्रापतितो यमदंष्ट्रापातमनिशमिच्छन्नप्यतिबीभत्सगलदवयवकशरीरघृणयेव मृत्युनापि दूरादेव त्यक्तः; परन्तु प्रोक्तेन भिषङ्मुकुटमणिना कृपाकटाक्षपातवशात् स्वसमीपमाहूय स्वौषधैरेव पुनर्नवकायः शशीव प्रायः पक्षान्तराल एव रोगभयान्मोचितः। स च वैयाकरणस्तस्य महानुभावस्य सदृशानुकूलं प्रत्युपकारं केवलात् तद्यशोगानाद्भगवतः शुभाशीःप्रार्थनाच्चान्यं न किमपि कर्त्तुं शक्नोमीति पत्रे मुद्रयामास। इदं तु परमद्भुतं यदीदृशासाध्यकल्पस्य महारोगराक्षसस्योच्छेदायौषधं सुस्वादु सुपानं पथ्यपरिहारौ चात्यल्पतया सुकरौ। कालोऽपि स्वस्थतायै ऋतुद्वयान्नाधिकोऽपेक्ष्यत इति। नूनमस्मै वैद्यराजायागृध्नुत्वामानित्वश्रमसहिष्णु-त्वभूतदयादिसद्वैद्यलक्षणैर्योग्यतमायायुर्वेदरहस्यमादिगुरुणोपदेष्टुमारब्धम्, गुरुविप्रतपस्विदुर्ग-तानां प्रतिकुर्वीत भिषक् स्वभेषजैरिति स्वधर्मनिरतस्य तस्य चिकित्सकवरस्य सर्वसमाचारपत्रेषु प्रशंसायोग्यस्य सद्गुणा एव दिगन्तान् प्राप्ता आतुरानाहूय रोगबन्धनान्मो-चयिष्यन्ति। अधुनाऽस्माभिरियदेव करणीयत्वेनाध्यवसीयते यदेतदीयेदृक्परोपकारपाटव-रूपलिङ्गदर्शनेनानुमितानामप्यन्यसर्वसद्गुणानां सामान्यत एव ज्ञाततया विशेषतः स्तोतुमशक्यत्वेन तस्य सत्पुरुषस्य स्तुतेः प्रति तन्निर्मातुरीश्वरस्यैव पुनःपुनस्स्तुतिस्ततश्चैत-त्प्रार्थनं यदसौ देवद्विजप्रसादाद्दीर्घायुर्भूयादिति शम्।

■

---

१. पं. २,२४ (मई १, १८६८) २७१-२७२.

श्रीमद्गोस्वामिश्रीजीवनजीमहाराजस्यौदार्यम्

श्रीरामेश्वरदत्तत्रिपाठी

अस्ति[१] किल श्रीमद्देवकीनन्दपादारविन्दमिलिन्दायमानमानसानेकभूमिपालमौलिमालाललितचरणकमलविमलतरयशोराशिधवलिताखिलदिङ्मण्डलविद्वत्कुलाखण्डलभक्तजनाज्ञानतमोनिवारणैकभास्करश्रीमद्वल्लभाचार्यान्वयरत्नाकरसुधाकरो मुम्बापुरीनिवासी श्रीजीवनजी-महाराजेति नाम्ना ख्यातिमुपगतो गोस्वामितिलकः।

तेन च परमौदार्य्यशालिना महानुभावेन स्वनिर्मिता भगवन्नन्दनन्दनाद्भुतचरितवर्णनप्रधाना खाडिल्करोपनामात्मारामशास्त्रिविरचितात्युत्कृष्टव्याख्यानसंवलिता बालकृष्णाभिधाना चम्पूः श्रीमद्विद्वद्वर्य्येण गट्टूजीति नाम्ना प्रसिद्धेन गोवर्धनशर्म्मणा रचितः प्रश्नोत्तरव्याजेन प्रायः सर्वेषां वैष्णवसिद्धान्तानां स्वसम्प्रदायस्य चोपयुक्तानां विषयाणां प्रकाशकः सत्सिद्धान्तमार्तण्डाभिधः प्रबन्धः, तथा विद्वच्चूडामणिना श्रीगोवर्द्धनाशुकविना प्रणीतो वेदान्तचिन्तामणिसमाख्यो ग्रन्थः, इत्येतत्पुस्तकत्रयं वाराणसीनिवासिभ्यः कतिपयेभ्यः संख्यावद्भ्यः प्रत्येकं श्रीमद्वाराणसीनिवासिसकलविद्यासम्पन्नवैश्यवंशावतंसश्रीबाबूहरिश्चन्द्रद्वारा समर्पितम्। एतेन चातिसन्तुष्टैस्तैस्तैर्विद्वद्वर्य्यैस्तस्य महात्मनो धन्यवादपुरस्सरमुत्तरोत्तरं तदीययशस्सम्पदाद्यभिवृद्धये प्रार्थ्यते भगवान् वृन्दावनचन्द्रः श्रीकृष्णचन्द्र इति।

■

१. पं. ५, ५५ (दिसम्बर १, १८७०) १७५-७६.

श्रीमन्महानुभावमहादेवस्वामिजीवितवृत्तान्तः

पण्डितबेचनरामशर्मा, पण्डितशीतलप्रसादत्रिपाठी
काशीस्थराजकीयपाठशालायामध्यापकौ

अभूदभूतपूर्वः[१] कोऽपि सर्वराजन्यमान्यमानपादाङ्गुलिर्निजगौरवोपार्जितसमस्तकृतिकुलकृतप्रणामाञ्जलिः सकलशास्त्रपारदृश्वा सदेहोऽपि विरागप्रचुरप्रकृतितया विदेहो वयसा वृद्धोऽपि तपश्चर्यातरुणः कृपालुतासाञ्जनोऽपि पूर्वाश्रमे रामनिरञ्जनसंज्ञां भजमानो नैकदेशवर्तिपूज्यपादद्विवेददेवदत्तश्रीधरप्रभृतिप्रसिद्धविदुषामनेकेषां राज्ञां च मन्त्रोपदेष्टा विषयद्वेष्टा परमार्थपथगामी महादेवाश्रमस्वामी।

एष किल 'आजमगढ़' इति प्रसिद्धमण्डलान्तर्गतस्य 'नगरासिकन्दरपुर' इत्याख्यप्रदेशस्यान्तः 'तुरकी' इति नाम ग्रामे घृतकौशिकगोत्रभाजो यजुर्वेदिनो हरिनारायणदत्तमिश्रात् त्र्यग्निवसुचन्द्रमिते १८३३ वत्सरे समजनि। 'कंधिया' इति नाम ग्रामे च महादेवमिश्रगृहे मन्त्रोपदेशं प्राप। नववर्षवयसोऽस्य पण्डितपुरे रामप्रसादस्य सुतयोपयमनं बभूव। ततः स्वर्गतायां तस्यां 'महुवारी' इत्यभिधाने ग्रामे अजायवशर्मत्रिपाठितनूजयोद्वाहोऽभवत्। अतश्चैका कन्योत्पद्य वर्षत्रयवयस्कैव दिवं जगाम।

षोडशवर्षवयःसमये स्वपितामहरामधनमिश्रादधीत्य पाण्डित्यमवाप्य पुनः काश्यामागत्य बालंभट्टसविधे प्राणनाथाचार्यपार्श्वे सविशेषपरिष्कारं व्याकरणमधीत्याहोबलशास्त्रिसन्निधौ मीमांसां वेदान्तं सांख्ययोगादीन्यधिजगे। एतस्मै रामधनमिश्राय महाराजः 'फतेसाह' इति नामा वारामुकुन्दनामानं रामचन्द्रपुरनामकं च ग्रामं दत्तवान्।

तदित्थं सर्वशास्त्रदक्षतामासाद्य छेछूमिश्रनामकं प्राचीनं महामहोपाध्यायं वादीन्द्रं निर्जित्य परमं गौरवमवाप।

अस्य बुद्धिविद्याप्रशंसामहोबलशास्त्रिभवदेवमिश्रदामोदरशास्त्रिकाशीनाथशास्त्रिप्रभृतयो दिगन्तविख्यातकीर्तयोऽप्यधिकं चक्रुः। अथ मिथिलां जिगमिषुः स्वजनन्याज्ञामनुरुन्धता 'हथुवा' इति प्रसिद्धराजधानीशेन छत्रधारिमहाराजेन 'भगवन् मामशरणमपहाय क्व यास्यसि, इहैव मामभिरक्षन् यथेप्सितशिष्यनिकराध्यापनं विधीयताम्, सर्वेभ्यश्छात्रेभ्यो वेतनमहं वितरिष्यामीति' पुनः पुनः सादरमुपरुध्यमानो द्वादशवर्षपर्यन्तमुमादत्तत्रिपाठिसीतारामद्विवेदप्रमुखान् शतशः पण्डितविद्यार्थिनोऽध्यापयामास।

यदा 'बाबू अलरखसिंह' इति नामा स्वपुत्रपरिणयनाय 'हथुवा' राजधानीमगमत्, तदा तेन सह गतैः सदाशिवभट्टप्रभृतिविद्वद्भिरहमहमिकया शास्त्रार्थं विधातुं कामयमानैः सार्ध-

---

१. पं. ७, ८० (जनवरी १, १८७३) १८५-८६.

मायातं स्वगुरुं प्राणनाथमाचार्यं प्रणन्तुमागतस्तथा घण्टाचतुष्टयं ब्राह्मणप्रशंसां देवगिरा विचित्र- योपपादितवान्, यथा तत्पाण्डित्यगौरवमालक्ष्य सर्व एव तुतुषुः किमपि च नोचुः। 'मझौली' इति विदितराजधानीपतिना महाराजेनाजितमल्लसिंहेनास्मै 'सिसवा', 'कर्णपट्टी' इत्यभिधानौ ग्रामौ प्रदत्तावास्ताम्।

सोऽयं महाशयो महामहिमा पितरि दिवं गते वैराग्यमयचेताः पूर्वं गयायां पितृश्राद्धं विधाय तीर्थराजमागत्याशरीरस्थितिकाषायवासा वाराणस्यामेव निवसानीति प्रार्थ्य सार्धद्वि-चत्वारिंशत्तमे वयसि शरशैलवसुशशिमिते १८७५ वैक्रमे हायने महामहिमश्रीपूर्णानन्द-स्वामिनः सकाशात् तुरीयाश्रमदीक्षामभ्युपगम्याद्यावधि काशीमिमामलञ्चकार।

अथास्मिन् क्षेत्रे क्षणभङ्गुरमात्मविग्रहमञ्जसोत्सृज्य ग्रहद्विनवेन्दुमिते १९२९ वैक्रमेऽब्दे मार्गशीर्षे दर्शतिथौ शनौ षण्णवतिवर्षमिते वयसि शाश्वतं पदं प्रविवेश।

महादेवाश्रमस्वामी दिनस्वामीव पूजितः।
काश्यां प्रकाश्य सुखदैः स्वैस्तपोभिस्तिरोहितः ॥१॥

महामनसि काष्ठजिह्वस्वामिनि स्वगुरौ शरीरं जहति महाराजेन काशीनृपेण श्रीमदीश्वरी-प्रसादनारायणसिंहदेवेनाकुलीभूयानुयुक्ते सति महादेवस्वामिनं सर्वसिद्धान्तवेत्तारं मदन्तं मामेव मन्येथा इत्युपदिष्टेनाद्यावधि तदवलम्बतो दिनान्यनायिषतेत्यलं पल्लवितेनेति शिवम्।

श्रीयुतराजारामशास्त्रिणो जीवनवृत्तान्तः

श्रीगङ्गाधरशास्त्री

[1]आसीदसीमासमशीलशाली शालीनताशून्यमतिः सभासु ॥
स भासुरो वाचि यशांसि विन्दन् गोविन्दशर्मा स्मरवैरिपुर्याम् ॥१॥

अमुष्य चानेकविधाध्वरधुरन्धरतासंपादितविमलकीर्त्तेः सार्वकालिकतपश्चर्यासु पवित्रमूर्तेस्त्रयस्तनया नयाश्रिता विधेरिव वेदा उदभूवन्, येषां कनिष्ठो वरिष्ठो गुणैः प्राप्तप्रतिष्ठोऽखिलविद्यासु समजायत सुमहितभागधेयो धीमतां धुरि गृहीताभिधेयो राजारामशास्त्रीति ।

दशसमदेशीयेऽस्मिंस्त्रिदशसमत्वं समीहमानोऽस्य ॥
उपयममविधायैव प्रापोपयमं पिताऽपि तापार्त्तः ॥२॥

अनन्तरं च यथाविधि विहिते तदौर्ध्वदेहिककर्मणि त्रिलोचनघट्टे निवसतो विहसतो मुनीनपि निजतपःसंपदा पदाक्रमणपूतवसुन्धरस्य रानडोपाख्यश्रीहरिशास्त्रिणः सविधे नातिबहुलेनैव कालेन सकलेषु काव्येषु कौमुद्यां च व्युदपद्यतायमतिमानुषमनीषो विशेषेण ।

आस्येन्दोर्यदमुष्य निःसृतवती नानाऽऽकरा कौमुदी
ध्वस्तं मानसमन्धकारमतनोन्नात्यद्भुतेयं कथा ।
चित्रं त्वेतदतीव सर्वजनताविस्मापकं श्रूयतां
काव्ये यत्स्थिरतां ततान स बुधः सूर्याश्रयात्संततम् ॥३॥

ततश्च —

यस्मिन्नास्तिकनास्तिकोभयविधे षड्दर्शने कौशलं
यन्नामग्रहणेऽधुनाऽपि विबुधा मूर्धानमाधुन्वते ।
कीर्त्तिः शारदशीतरश्मिसदृशी यस्यावनिव्यापिनी
श्रीदामोदरशास्त्रिणायममुना तर्कान् समध्याप्यत ॥४॥

व्युत्पत्तिप्रतिभाविधानकुशलः किं तत्र सोऽध्यापको
वाग्देवी किमु नित्यवासरसिका पात्रानुरागादभूत् ।
राजारामविपश्चितः किमु पुरा सत्कर्म लोकातिगं
संशेते जनता यथेत्यथ धिया तादृक् तदा जृम्भितम् ॥५॥

---

१. पं. १०, ११३ (अक्टूबर १, १८७५) १२१-१२२.

क्रमेण च प्रतिक्षणमुपचीयमानामनुपमानां वार्षिकत्रिदशतटिनीमिव प्रतिभामस्यावलोक्य पर्यालोच्य च वर्षीयस्तया स्वस्य तादृशान्तेवासिपाठने भूयांसमसह्यं परिश्रमं श्रीमते सकलवसुन्धरालङ्कारहीरवरायमाणाय नानाविधविद्याकुलनिकेतनायानेकवादिद्विरदघटाघोरकण्ठीरवाय श्रीकाशीनाथशर्मशास्त्रिणे समर्प्य सादरमिममिदमूचे दामोदरशास्त्री ।

य: सिक्त्वा श्रमवारिभिः कुसुमयन् नानाविधैर्हेतुभिः
सिद्धान्तैः फलितं विधाय बहुलैर्विद्वद्द्विजानन्ददम् ।
विद्याकल्पतरुं चिरं स्थिरतरं कुर्याद् भवन्मूलकं
रत्नं नूत्नमिमं ददामि भवते यत्नादयं पाल्यताम् ।।६ ।।

अनन्तरमस्मादपि महाशयाद् व्याकरणादीनि नानाविधानि शास्त्राण्यभ्यस्तचराणीवासाद्य सहसैव चित्रकूटमधितिष्ठतः श्रीमतोऽनेकविद्वद्विहङ्गाश्रयकल्पपादपस्य श्रीविनायकरावनृपतेर्वार्षिक्यां दिगन्तरागतपरःशतविपश्चित्सभास्तारसभाजितायां सभायां विविधशास्त्रसम्बन्धिनीषु विप्रतिपत्तिषु परमामितरदुरधिगमां प्रतिष्ठां सममेव भृशं परितुष्यतः श्रीमतो भूयसा सम्मानेन प्रापदसौ मध्यमलोकवाचस्पतिः । चित्रं चैतत्, यतः —

प्रागाश्रीयत रामेण चित्रकूटगिरिस्थितिः ।
खण्डिता वादिनां तेन चित्रकूटगिरिस्थितिः ।।७ ।।

ततो विततसाधुवादपुरःसरं प्राप्तः काशिकामचिरेणैव समागतवता कृतवता राजकीयपाठालये प्रधानतमविद्वत्कल्पसकलान्तेवासिजनपरीक्षामालोचितवता चैतस्य नानाविधेषु दर्शनेषु दृढतमां व्युत्पत्तिमलौकिकीं च प्रतिभामुपरिस्थितिं च सकलजनातिगां श्रीमतां संस्कृतादिविविधविद्याविशेषनिपुणेन जानम्यूरसाहिबेन नितरां प्रमुदितवता केवलमीदृशोत्तमतमपण्डितरत्नसहभावो भवेदतीव यशस्कर इति विचार्य कार्यं च प्राड्विवाकपदवीसमारूढस्य स्वस्य क्वचित्क्वचिद्विषये भारतदेशीयधर्मशास्त्रसंमतिसम्पादनरूपमपरं च स्वेनैव विरच्यमानानां सुन्दरतरगुणगणमण्डितानां वाग्विलासानां परिशोधनमेतदेकसुकरमिति सखिनिर्विशेषं सम्मान्य नीत आजमगढाभिधं नगरं किञ्चिन्न्यूनाधिकमवात्सीत्तत्रैव वर्षपञ्चकम् ।

अथ प्राप्योत्साहाद् बुधवरवृतं गालवपुरं
रणक्षोण्यक्षुण्णं क्षपितविमतं वीक्ष्य नृपतिम् ।।
वशे कृत्वाऽत्रत्यान् सकलसुधियो वादविमुखा-
नवापासौ मानं परममहिमानं च नृपतेः ।।८ ।।
सततं मानसं मोदं वचोभिर्योऽतनोन्नृणाम् ।।
स ततं मानसंमोदं कुतो वा नाप्नुयाद् बुधः ।।९ ।।

ततोऽक्षिशशिनागभूप्रमितवत्सरे वैक्रमे
क्रमैधितयशः शरच्छशिविकाशिताशामुखः।
मुखाम्बुजविनिःसरत्सरससारवाक्चातुरी-
विनिर्जितविवादिवाक् सदनमेष भेजे निजम् ॥१०॥

यदप्यन्तं तदानीमभजत विधवोद्वाहशङ्कासमाधिः
श्रीकाशीनाथशास्त्रिप्रणयनविषयः सर्वशास्त्रज्ञमान्यः।
तत्राक्षेपानपूर्वांस्तदुपरि सहितान् हेतुवाक्यैः समाधी-
श्चक्रेऽसौ येन पुष्टिं दधति जहुरिहासूयका दोषदृष्टिम् ॥११॥

प्रीतस्ततो गुरुवरश्चिरमार्यगृह्य-
मेनं प्रशस्य सपदि प्रथयांबभूव।
ग्रन्थेऽभिधानमदसीयमितोऽन्यथा स्तु
तत्पारितोषिकविधावनृणः कथं स्यात् ॥१२॥

अनन्तरं तदुत्तर एव वत्सरे सर्वोत्तरमहत्तरगुणविजृम्भमाणभारतीकुलनिकेतनीभवन्तं तत्रभवन्तमिमं सांख्यशास्त्रपाठने न्ययुङ्क्त सांप्रतं यशोमात्रावशेषतामापन्नः परं विचारचतुरस्तदानींतनराजकीयप्रधानपाठालयमुख्यतमाध्यक्षो बालनटैन्साहिबाख्यमहाशयः।

असंख्येष्वपि संख्यावत्स्वाद्यसंख्याश्रयो ह्यसौ।
सांख्याध्यापनकार्येऽतो नियुक्त इति युज्यते ॥१३॥

अनल्पतरकल्पनाविषयहेतुवादैस्तत-
स्ततःप्रभृति पाठितः सकलशास्त्रपूगोऽमुना।
यथा विजितवादिनः सदसि वीक्ष्य विद्यार्थिनः
सगद्गदगिरो बुधा दधति साधुवादान् बहून् ॥१४॥

नानादेशसमागतैर्बहुविधैर्व्युत्पन्नविद्यार्थिभि-
र्देशं भारतमेनमावृतवतीं स्वल्पैर्दिनैर्भारतीम्।
वीक्ष्येव प्रससार पारमुदधेर्यस्माद् यशश्चन्द्रिका
तस्याध्यापनचातुरी कथमिव प्रोच्येत मादृग्विधैः ॥१५॥

ततः परं विशत्यधिकैकोनविंशतिशततमे वैक्रमे हायने सांप्रतिकसंस्कृतपाठशाला-प्रधानाध्यक्षो नानाविधसंस्कृतादिविद्याविशदनिजाशयः श्रीग्रिफिथसाहिबाभिधमहाशयः पर्यालोच्यैनं धर्मशास्त्रपाठनधुरंधरं नियोजयामासामुत्र महताऽऽदरेण।

श्रुतिस्मृतिसदागमैश्चिरतरं समालोचितै-
र्भवेद्यदिह निर्णयो दुरुपलक्ष्यधर्माध्वनः।
स नैव सुकरः परैरिति विचार्य तं तत्क्षमं
नियोजितवतः प्रभोः सुरगुरूपमेया मतिः ॥१६॥

प्रसिध्यति गरुत्मतो गगनपक्षपातो भृशं
कलाच्युतिवशात् स्फुटो बहुलपक्षपातो विधोः।
न च द्विजपतिः परः क्व चिदपक्षपातीति किं
ववाञ्छ नृपतिस्ततः सुकृतसंकटे निर्णयम् ॥१७॥

अर्जित्वा प्रथमे वयस्यनुपमां विद्यामवद्यापहां
सन्मानं धनमाप्य मध्यमवयस्यध्याप्य विद्यार्थिनः।
कैलासोदरसोदरेण यशसा संभूष्य भूमिं ततो
वैराग्यात्त्रिदशापगातटमठे योगं श्रयन्सोऽवसत् ॥१८॥

कृतसकलविधेयो यद्यपीहाविहीनो-
ऽत्यजदिह सदनादीन् मोक्षमार्गैकनिष्ठः।
तदपि विलपदन्तेवासिबन्धिविष्टहेतो-
रधिकसदयचेताः सोऽर्जयामास वित्तम् ॥१९॥

एवमतिवाह्य कथंचिदपि पञ्चषान्वत्सरान्मत्सरादिदोषविहीनमानसो मानसारधनो धन्यजनाग्रयायी स श्रीराजारामशास्त्री द्वात्रिंशदधिकैकोनविंशतिशततमे विक्रमहायने श्रावणशुक्लद्वादश्यां संन्यस्य विन्यस्य ततःप्रभृति प्रणवार्थे धियं धिक्कृत्य निखिलं विषयजातं विहाय जीवनहेतुभूतमाहारं देहान्तं यावद्यथापूर्वमवहितचेता भाद्रपदकृष्णतृतीयायां गुरुदिने दिनेश्वरे तालमात्रोच्छ्रिते परमं पदमासाद्य योगिसुगमं महीमहीनेन यशसैव केवलमलं चक्रेऽलं चक्रे च मन्ये मोदमेदुरां हंसवाहनसभाम्।

गङ्गावारिविसृष्टनश्वरतनुः कीर्त्या वितत्यावनि-
ङ्गायत्र्याद्यपदार्थचिन्तनभवद्भूरिप्रमोदः सदा।
धर्माधर्मसुखासुखादि सकलं संत्यज्य बाह्यं भ्रमं
रम्यं प्रापदतीव तत्पदमसौ यत्प्राप्य नाप्यं परम् ॥२०॥

गुरोः कार्लेकरोपाह्वश्रीराजारामशास्त्रिणः।
गङ्गाधरो विलिखति वृत्तान्तं जीवनाश्रितम् ॥२१॥

कस्याप्येतल्लोकं स्वविरहखेदशालिनं कुर्वाणस्य जीवनवृत्तान्तवर्णनम्

अथ[१] कोऽपि [२]प्रशियादेशीयकोनिग्वर्गाभिधाननगरनिवासी श्रीमान् थियोडरगोल्डष्ट-कर-साहिबाभिधः सत्यविनयाद्यग्रगण्यगुणगणनिकरैरुपशोभमानस्तत्रैव पाठशालायां प्रधाना-ध्यापकवरश्रीपेटरबोन्साहिबमहाशयस्य[३] निकटे किञ्चित्संस्कृतमारभ्याधिकं पिपठिषुर्बोरनाम्नि (Bonn) नगरे श्रीमदतीतकन्सर्टाभिधराजकुमारवरश्रीमन्महाराज्ञीपतिना सह अगस्तिविहे-ल्मबान्स्लीगल्[४]-खीष्टमतानुयायिल्यासन्-संज्ञकाभ्यां तत्रत्यप्रधानपाठशालाध्यापकाभ्यां समीचीनं पाण्डित्यमवाप्याचिरादेव संस्कृतव्युत्पत्तिनैपुण्यपूर्णकलानिधिचन्द्रिकाभी रसिकवि-द्वज्जनमनःकुमुदिनीसम्मोदमापादयामास। ततः परं कतिपयैरेवाहोभिः पेरिसाख्यनगरम-लङ्कुर्वाणो गीर्वाणवाणीसञ्चरणै'बर्नूफ'-'लेद्रोन्'-नामस्वीयमित्रजनगणानानन्दयन् कतिपय-मासस्तत्र निवसति स्म। बर्लिनाभिधनगरे च कदाचिन्निवसन् जगन्मण्डलनाम्नि अलग्जाण्डरबोन्हम्बोल्डसाहिबकृतग्रन्थे साहाय्यमातन्वंस्ततोऽपि विविधं बहुमानं समपाद-यत्। यदीयाभ्यासशालिता संस्कृतविद्याचातुरीणां विविधदेशसञ्चारसमुत्पन्नानन्दनिकरैर्नन्द-नमिव लन्दननगरं प्रति निवसद्भी राजकीयाधिकारिजनैः सबहुमानं पञ्चाशदधिकाष्टादशशततमे ईशवीयशके महाराज्ञीपाठशालायां संस्कृतप्रधानाध्यापकपदमधिष्ठापितस्तत्र बहून् विद्यार्थिनः संस्कृतनिपुणान् व्यधात्। षट्षष्ट्यधिकाष्टादशशततमेऽब्दे संस्कृतपुस्तकानां मुद्रणाय श्रीम-द्वेल्साभिधनगरयुवराजदत्तपरमाश्रयामध्यक्षीकृतड्यूकाफ्डोमालेति सुप्रसिद्धनामधेयां नानावि-धविद्वद्धनिकवरसभासत्सभाजितां सभां परोपकारधिया विराजयामास।

स चायं सततं पाठनग्रन्थनिर्माणादिनिरत उद्भवसमये उपेक्षितेन यमपाशेनेव कण्ठगतेन रोगविशेषेण ग्रस्तो द्विसप्तत्यधिकाष्टादशशततमे खीष्टाब्दे मार्चमासीयषष्ठदिने बुधवासरे प्रातर्द्वादशात्मरश्मीनवलम्ब्योत्तरोत्तरमुन्नतिमिच्छुः श्रीमन्मसीहदक्षिणकरावलम्बं सम्पादयितु-मिव नाकमधिरुरोह। अनेन च बहवो ग्रन्था निर्मितास्तत्रातिविस्तृतः संस्कृतकोशः परमो-पयोग्यप्रसिद्धमप्रमाणशब्दालिसमलङ्कृतोऽपूर्ण एवास्ते। कृष्णमिश्रपण्डितनिर्मितस्य प्रबोधचन्द्रोदयनामनाटकस्य जर्मन्देशीयभाषयाऽवतारं चक्रे, यस्य प्रस्तावनां श्रीमान् ऐसे-न्फ्रान्साहिबो लिलेख। अयं च परमबुद्धिमान् पाणिनीयव्याकरणनिपुणो मानवकल्पसूत्रस्या-त्यन्तं परिशोधितमुद्रितपुस्तके शास्त्रीयाणां कालक्रमसम्बन्धिनीनां जिज्ञासानां शोधनानि तत्परिचायिकारूपेण प्रकाशयन्, जैमिनिन्यायमालाविस्तरस्य मूलं च संशोध्य मुद्रयाञ्चकार। तदीयकृतिश्च चतुर्भ्यो वर्षेभ्यः पूर्वम् 'अथेनिय'न्नामके शास्त्रीयोदन्तपत्रे परमदर्शनीयाऽऽसीत्।

---

१. पं. ७, ७४ (जुलाई १,१८७२) ५६.

२. Koenigsberg.

३. Peter von Bohlen (1796-1840).

4. August Wilhelm von Schlegel (1767-1845).

अयं पुनः शब्दशास्त्रार्थविचारिणीनाम्न्याः सभायाः सभ्यस्तत्र शब्दसादृश्यविषयं पुराणं चाधिकृत्य परमोत्तमान्सङ्ग्रहयोग्यान् वादानवदत्; परन्तु दुरदृष्टदूषितचित्ता न केऽपि तत्रत्याः सभासदसभालेख्यवृत्तान्तपत्रे तान् वादान् संघटयितुमेनं प्रेरयन्ति स्म। अनेन च वेस्ट्मिनिष्टर्‌रिव्यूनामकादिनियतपत्रेषु विषयदानेन साहाय्यमकारि। तत्रायं महान् विषयो रमणीयतमो महाभारताख्यः, स चेदानीं परमोत्साहशालिभिः पृथङ्मुद्रितो विराजते। भारतवर्षीयपुराणं शास्त्रं चाधिकृत्य चेम्बरसाहिबाभिधमहाशयप्रकाशिते निखिलशब्दार्थप्रकाशकोशे संगृहीताः सर्वे एतद्विरचिता एव लेखाः सन्ति।

अहो अहो ! पश्यत पश्यतैतस्य निस्सीमधीरतामुद्योगिसार्वभौमितां च, यदयं व्याकरणंमहाभाष्यस्य जीर्णमेकं पुस्तकमुपलभमानस्तच्छोधने च पुस्तकनाशं संभावयन् फोटोग्राफाभिधयन्त्रेण यथावदाभास्य तत्र शुद्धाशुद्धविवेकपुरःसरं पुनर्मुद्रणे कृतप्रयत्नः श्रीमन्महाराज्ञ्यां तत्साधनीभूतद्रव्यदानप्रतिश्रवेण जातपरमाश्रयः सादरं तन्मुद्रणे प्रवृत्तः प्राय एतद्दुर्धर्षकर्मणि प्रवर्तनेन शङ्कितरोगो निसर्गजनहितैषी, पुण्यकथायां नाटककाव्यादिषु दायभागव्यवहारेषु च विवादविषयेषु आचार्य इवायमेव सर्वजनानुमतवचनो मान्यजनमनोनन्दने नन्दनन्दनावरजः स्वीययशोराजिप्रकाशितदिङ्मण्डलोऽमासोम इव केवलं कीर्तिमात्रावशेष इदानीं सुजनतां स्मारयति।

हा ! ! ! दायभागव्यवस्थानामतीवोपकारको ग्रन्थो निर्मातव्य इति महाशयस्याशयं क इदानीं सम्पाद्य सभासदां व्यवस्थाविदां चानन्दं जनयेत्। को वा तद्देशीयानां परमोपकाराय नवनवान् ग्रन्थान्निर्माय महासंस्कृतप्रवीणस्य हृद्यं सम्पादयेदिति वयं खिन्नमनसो महामहिमजगद्विचित्रचरितेन परमकारुणिकेन भगवतैवानन्दनीया इति मुहुर्मुहुः प्रार्थयामासुरिति शिवम्।

श्रीबालशास्त्रिजीवनवृत्तान्तः

श्रीगङ्गाधरशास्त्री

अस्ति[1] स्वस्तटिनीसमीपवसतिः सङ्केतभूः श्रेयसां
काशी नाम पुरी श्रुतिस्तुतगुणा विश्वेश्वराधिष्ठिता।
दुष्प्रापं विजितेन्द्रियैरपि पदे तद् ब्रह्मणः शम्भुना
यस्यामेव सदा विनश्वरतनूमूल्येन विक्रीयते[2] ॥१॥

आसीन्निःसीमधीमज्जनविनुतयशा वेदविद्यानदीष्णः
श्रीमद्गोविन्दशर्मा शिवपदनिरतो दाक्षिणात्योऽत्र विप्रः।
तिष्य[3]प्लुष्टार्यधर्मोद्धरणकृतमतिं कल्पसूत्रप्रणायं
सत्याषाढं मुनीन्द्रं भुवि सकलबुधा मेनिरे भूसुरं यम् ॥२॥

असौ विधिवदधीतनिजवेदो व्रतस्नातः प्रसाद्योपाध्यायमध्यापयन्नन्तेवासिनोऽङ्गीकृत्य गार्हस्थ्यं धिन्वन् देवर्षिपितृगणान् पितृणामानृण्यकामो बहुषु निजाहितेषु गर्भेष्वपूर्णेषु विशीर्णेषु दूयमानमानसो विचार्य [4]कीनाशबलनाशनं गरलाशनं सरभसं शरभरूपमुपास्य भगवन्तं शङ्करं समवाप तनयमेकमेव।

जन्मोत्सवेऽस्य मुदितः कृतजातकर्मा
श्रीविश्वनाथ इति नाम विधाय तस्य।
चूडाविधिं च विरचय्य समीहमानो
मौञ्जीविधिं विधिसमीपमवाप दैवात् ॥३॥

तदनु यथावन्निर्वर्त्यामुष्यौर्ध्वदैहिकीं क्रियामसावचिरादासादितसकललिपिप्रवीणभावो मनीषाविशेषपरितोषितेन गुरुणा पञ्चम एव वत्सरे विधिवदुपनिन्ये। ततः प्रभृत्येव चाध्याप्य तायं याजुषीं शाखांमवेदाधिगमोचितेषु दिवसेषु वेदाङ्गानि च।

गुरुवरमुखनिर्यद्वेदवागेकवार-
ग्रहणजनितदार्ढ्याशेषशाखोऽश्रमेण।
कृतगुरुवरिवस्योऽशेषवेदाङ्गपारं
परिचितमिव पूर्वं तूर्णमापैष धीमान् ॥४॥

---

१. पं.४, न्यू. सि. (१८८२) २९१-३२७; २. अनेन प्रदर्शितमूल्येतरप्रतिबन्धकराहित्यं व्यज्यते।
३. कलिः; ४. यमः ।

अनन्तरं च श्रौतस्मार्तकर्मकाण्डपाण्डित्यमण्डितधिषणो धिषणोपमः सप्तम एव वत्सरेऽमत्सरेण चेतसा नानाविधदिगन्तरागतपरःसहस्रविद्वद्वरपरीक्षणविचक्षणं प्रतिपक्षक्षोणिपतिशिक्षणदक्षकौक्षेयकं चित्रकूटगिरिमधिवसन्तं श्रीविनायकरावनृपपुङ्गवं वार्षिक्यां परीक्षायामवलोक्य वितरति स्म तत्राभूतपूर्वां परीक्षामसौ मध्यमलोकचतुराननः।

[१]यद्द्वादशान्यिकतयाऽपि न पारयन्ति
शास्त्रं बुधां निगदितुं किल बालखिल्यम्।
[२]ऐकान्यिकोऽपि न बभूव यतोऽत्र तेन
[३]प्रापापदानमिह बालसरस्वतीति ॥५॥

पदक्रमजटाघनाद्यखिलवेदचर्चार्चितः
सदर्पबुधमण्डलीवचनखण्डने पण्डितः।
ततः प्रभृति सोऽभवत्सकलभूतलख्यातिमान्
नृपार्चितपदद्वयः सकलवैदिकेष्वद्वयः ॥६॥

मानसं मदमशेषवैदिका यज्जहुः पठति तत्र सुस्वरम्।
मानसं मदमवाप भूपते राङ्कवांशुकधनोन्नतं स तत् ॥७॥
अनवमो नवमे किल हायनेऽखिलपदक्रमपाठविशारदः।
मनसि कस्य न विस्मयमार्पयज्जनयति स्म ततो गुरुसंमदम् ॥८॥

ततः परं प्रशस्यमानो निरुपमानस्तत्रत्याशेषधनिकजनोपदीकृतबहुधनो गुणातिरेकरक्तराजपुङ्गवरचितपरिपुष्टवृत्तिको ब्रह्मावर्तक्षेत्रं प्रयाय तत्रत्यसम्राट्चरमहाराजबहुमानितो गालवक्षेत्रमुपेत्य द्वादशदर्शनीपारीणमखिलभूतलभूषणं श्रीकुप्पाशास्त्रिणं परितोष्य निजमनीषया तदादिष्टगालवक्षेत्रभूपकल्पितवार्षिकविपुलवृत्तिको विनयावनतपूर्वकायोऽवाप्यानुमतिं दाक्षिणात्यपरिवृढस्य समासाद्य काशिकां यतते स्म श्रव्याणि काव्यानि सपरिकराणि च दर्शनानि करतलामलकीकर्तुं स भारतीपुरुषावतारः।

[४]अनेकविबुधार्चितो [५]गुरुविशालवाग्भूषितः
[६]सुखास्पदतया श्रुतो भृशविराजदुच्चैःश्रवाः[७]।

---

१. यस्य परीक्षाकाले द्वादशाऽपपाठा भवन्ति स द्वादशान्यिकः;
२. यस्यैकोऽपपाठो भवति स ऐकान्यिकः;
३. अपदानं कर्मवृत्तम्;
४. देवैः पण्डितैश्च।
५. बृहस्पतेरध्यापकस्य च।
६. सुखस्य जनकतया उत्तमाकाशाधारतया च
७. अश्वविशेषो महती कीर्तिश्च।

त्रिविष्टपसमोऽप्यभून्न स स सुधीः [१]सुराणां प्रियो
न चापि [२]शतमन्युमानिति मनो भृशं विस्मितम् ॥९॥
[३]मोचाचूतसुधामदैकदमनं स्वाभाविकं यद्वचः
प्रागल्भ्यप्रतिभानुभावभरितं चेतश्चमत्कारदम्।
उद्यत्पार्वणपूर्णशीतकिरणन्यक्कारिकीर्त्याश्रयो
नूनं रीतिमलौकिकीमनुसरन् कोऽप्येष देवोत्तमः ॥१०॥

अथासावल्पेन कालेन सम्पादितप्रौढव्युत्पत्तिको व्रजन् द्वित्रान् वत्सरांश्चित्रकूटगिरिं नन्दनारामविहाररसिके तत्र राजरत्ने तर्ककार्कश्यं सम्पिपादयिषुः समालोच्य निजधीविभवानुरूप- मभिरूपद्विजोत्तमचक्रवर्तिनं श्रीकुप्पाशास्त्रिणं निजदेशिकं सम्प्राप्य गालवक्षेत्रं प्राकाशयत् पुरस्कृत्य प्रश्रयममुं प्रति निजाशयमभिदधे च सादरममुना।

त्वं [४]बालद्विजराजतां किल वहन् चित्रं न दोषाकरः[५]
सम्पूज्योऽसि [६]महेश्वरेण शिरसा सन्मार्गनित्याश्रितः[७]।
कस्त्वां पाठयितुं किमत्र बहुना वक्तुं त्वया च क्षमो
भाग्यैर्मेऽद्य निमित्ततां विरचयन् सानुग्रहो मय्यसि ॥११॥
नानातर्कवितर्ककर्कशतरा नैसर्गिकी ते मतिः
स्वल्पैरेव दिनैः पुरातनबुधान्नूनं स्वयं जेष्यति।
तस्माद्वैदिकमार्गरक्षणकृते मत्वाऽवतारं निजं
मीमांसासु गुरूकुरु त्वमधुना मामित्यहं प्रार्थये ॥१२॥
कण्ठे यस्य लुठन्ति वैदिकगिरः साङ्गाः किमुत्कण्ठिताः
कुण्ठीभावमुपैति यस्य पुरतो [८]जीवोऽपि युक्त्युक्तिषु।
मीमांसास्ववशिष्यते किमपरं यत्तेन लभ्यं नवं
मन्ये मान्यममुं विभाव्य वचनं तस्यैष धन्योऽतनोत् ॥१३॥
किं मां वञ्चयसि स्वयं [९]शतधृते त्वं जीवकोट्याश्रितं
श्रीमद्बालसरस्वतीमिषममुं धृत्वाऽवतारं नवम्।
नाहं पाठयितुं क्षमोऽस्मि कथमप्येनं किमेवं विधिं
वक्तुं भूतलमत्यजद्गुरुरसौ तस्योक्तिभिर्विस्मितः ॥१४॥

---

१. देवानां मद्यानां च; २. शतमन्युरिन्द्रः शतं कोपाश्च।
३. कदली; ४. बाल एवं विप्रश्रेष्ठतां बालचन्द्रतां च।
५. दूषणाश्रयश्चन्द्रश्च; ६. महाराजेन शिवेन च।
७. सज्जनमार्गं नक्षत्रमार्गं च; ८. बृहस्पतिः; ९. ब्रह्मन्।

अथैष वैशेषिकाशेषविषयविशेषज्ञतामभिलष्यन् निशम्य न चिरादागमिष्यन्तं पुण्यग्रामप्रतिष्ठितसाम्प्रतिकसम्राट्समुत्तेजितसंस्कृतसरस्वतीसदनसमस्तप्रशस्तदर्शनपारतारितपरःसहस्रशिष्यं तं श्रीमोरशास्त्रिणं गालवक्षेत्रप्राड्विवाकपरिवृढपदमलङ्करिष्यन्तमाजानजनितविपश्चिज्जनसमागमकुतूहलो विधाय वसतिं तत्रैव समागतेऽमुष्मिन् [१]सूर्येकसूर्ये सादरं परिसमाप्य तत एव द्वादशलक्षणीशेषं तनयनिर्विशेषमुपलालितोऽमुना गुणैर्धुनानो विप्रतिपन्नान् प्रसन्नान् विरचयन् पौरजनानुपसन्नान् सम्भावयन् समुचितोपचारेणासन्नषोडशानि जन्मतो हायनानि तत्रैवानुभवन् वाग्मिनां धुर्ये हर्येकतानचेतसि तस्मिन्नाचार्यवर्ये [२]पर्येषणेव दिव्यसुखानां समारूढे परं पदं नितान्तदूनोऽनूनोऽपि निखिलवसुमतीवास्तव्यविबुधेभ्योऽसौ तत्रत्यनिखिलविबुधेभ्यो[३]ऽपयाचितावासो निवासो निखिलविद्यानां निरीक्ष्य तत्रैव समागतं पाणिनीयतन्त्रोज्जीवनायेव पुनरवतीर्णं भगवन्तं पतञ्जलिं [४]विवादधीरसिकतासमेतधीरसिक[५]ताचतुर्दिशप्रक्षेपणप्रचण्डवातं निखिलगुणरत्नरत्नाकरं निशाकरं सहृदयकुमुदवनानां नानाविधप्राज्ञसम्भृतशोभासु गालवपुराधीश्वरसभासु सर्वदैव जयिनं नितान्तदयिनं कृत्स्नभारतभूतलप्रसिद्धमहिमानं श्रीराजारामशास्त्रिणं स्पृहयन्नमुष्य परिचर्यायै सविनयमुपसद्य सद्य एव निगद्य निजाशयं निश्चितमना मनागपि वसतिं तत्र नगरे विहातुं समनुज्ञाप्य कानिचिदेव दिनानि तत्रत्यपार्थिवानुरोधेन निवस्तुकामं गुरुवरश्रीराजारामशास्त्रिणं सत्वरं समवाप काशिकाम्।

येषां द्वादशदर्शनीनिपुणता लोकेषु विख्याप्यते
यद्वाग्वज्रविशीर्णवादिगिरिभिः प्राप्ता दिगन्ता द्रुतम्।
सम्राडादिकदुर्विधावधिजनैर्नोल्लङ्घितं यद्वचो
यच्छात्रैरधुनाऽपि सर्वविषये विद्याः प्रतिष्ठापिताः ॥१५॥

प्रकटनिजविहारैः काशिकां पूतमार्गां
रचयितुमिव काशीनाथमत्रावतीर्णम्।
तदवधि गुरुकाशीनाथशास्त्र्याख्यमेनं
स भृशमुपसिषेवे नाप यावद्गुरुः सः ॥१६॥

वर्षीयां समुपाश्रिताऽद्य खलु मां विद्याभिधा वल्लरी
[६]नोपघ्नं लभते नवं यदि ततो भङ्गं द्रुतं यास्यति।
स्यादेषा सफला कथं न्विति चिरं सञ्चिन्तयंश्चेतसा
पात्रं प्राप्य तमुत्तमं स मुमुदे निश्चिन्ततामाप च ॥१७॥

---

१. सूरिषु पण्डितेष्वेकोऽद्वितीयः सूर्यस्तस्मिन्; २. इच्छया; ३. इभ्या धनिनः।
४. विवादबुद्धौ रसिकता स्पृहा; ५. धीराः पण्डिता एव सिकता बालुका असारत्वादिति भावः।
६. उपघ्न आश्रयः।

आहूतः कर्तुमायः सपदि कुविधवोद्वाहशङ्कासमाधिं
प्रोद्दामाशेषवादिद्विरदविदलनाकुण्ठकण्ठीरवेन्द्रः।
सम्प्राप्तोऽथ स्वगेहं विपुलबहुमतिं प्राप्य भूपात्सपर्यां
श्रीराजारामशास्त्री विनयनतगुरुस्तेन सामोदमूचे ॥१८॥

[१]शिष्याभ्रान्तिकपूर्णदर्शनरसैः [२]कीर्तिं महीव्यापिनीं
कुर्वन्तं नयसागरं प्रतिपदारूढो[३]ऽनिशं जृम्भयन्।
यः स्वीयां द्विजराजतां[४] प्रकटयेत् पुष्णन् समस्ताः कला[५]
नव्यो बालशशी स सम्प्रति भवत्सूर्याश्रयाद्वर्धताम्[६] ॥१९॥

इत्थं गिरं गुरुवरात्स निशम्य धीरस्तं पाणिनीयनयसागरकर्णधारः।
पारीणमारचयति स्म [७]पदेऽचिरेण तुष्टः प्रकृष्टतमया किल तस्य बुद्ध्या ॥२०॥

तर्कव्याकृतिसाहितीसुहितवाग्वेदान्तशान्ताशयो
मीमांसास्वतिमांसलः कपिलगीर्व्युत्पादने कोविदः।
स्वल्पैरेव दिनैः पुराणनिपुणस्तन्त्रस्वतन्त्रः सुधी-
र्योगे गीतमतिः स तेन विदधे भूपण्डिताखण्डलः ॥२१॥

मोचा नीचतरा सिता विहसिता धिक्कारयोग्या सुधा
माकन्दोऽपि च निन्दनीयविभवो द्राक्षा न वीक्षोचिता।
वर्षारम्भविजृम्भमाणसलिलाऽमर्त्यापगासोदरे
वाग्गुम्फेऽस्य समस्तशास्त्रविषयान् सम्यक् परिष्कुर्वति ॥२२॥

काशीस्थराजवरनिर्मितपाठशालामुख्याधिकार्यथ तमादरमानपूर्वम्।
व्युत्पादनाय विनियोजयति स्म साङ्ख्ये हूणाग्रणीः प्रभुवरग्रिफिथाभिधानः ॥२३॥

अथासौ पञ्चविंशतितम एव हायने समवाप्यादेशं प्रभुवरस्य पञ्चविंशकव्युत्पादनकृतोत्साहः सोपपत्तिकानि सर्वाण्येव शास्त्राणि सङ्क्रमयति स्म शिष्यशुक्तिकाहृदयेषु सुकृतिजनोपभोगयोग्यानि सलिलानीव स्वातीघनाघनो वसुमतीवाचस्पतिः।

सा व्युत्पादनचातुरी निरुपमा सा कल्पनाकल्पता
ग्रन्थग्रन्थिविभेदियुक्तिकथने सा भास्वरा च त्वरा।
नानादेशसमेतशिष्यनिवहेऽकम्पाऽनुकम्पा च सा
प्रारम्भन्त तदाद्यहम्प्रथमिकां शिष्यौघजीवातवे ॥२४॥

---

१. शिष्येष्वभ्रान्तिकं भ्रमरहितं पूर्णाः शिष्या एवाभ्राणि मेघास्तदन्तिके पूर्णाश्च।
२. यशः पङ्कं च; ३. प्रतिपत्तिथावारूढः प्रतिपदमारूढः प्रवृद्धश्च; ४. विप्रश्रेष्ठतां चन्द्रतां च।
५. षोडशभागान् चतुःषष्टिकलाश्च; ६. रवेः सूरेः पण्डितस्य च; ७. व्याकृतौ।

वादे सादरपूजितान् बुधजनैर्जल्पेष्वनल्पक्रमान्
शिष्यान् खण्डनपण्डितान् स विदधद् वैतण्डिकानां गिराम्।
आशीताचलसेतुभूतलभृतां कीर्तिं शशिस्पर्द्धिनी-
मातेने चिरकालशोभिविभवां शास्त्रौघमध्यापयन्॥२५॥

नूनं कोऽपि स वेदशास्त्रजलधिः शीलैकरत्नाकरो
यच्छिष्याम्बुदवृन्दसङ्क्रमितवाक्तोयैर्महीं प्लावयन्।
विद्याकल्पलताः प्रतिक्षणभवत्प्रौढोक्तिभिः पुष्पिता-
श्चक्रे राजसभासु भासुरफलाः सङ्ख्यावतां माननैः॥२६॥

अथ क्रमेण निर्वाहयन् निजं कार्यं प्रकाशनेन काशीविद्यासुधानिधिपत्रे परिभाषेन्दुशेखरप्रत्यभिज्ञादर्शनादिदुरूहग्रन्थवास्तवार्थानां मुद्राक्षरैः सापत्रपाणि तन्वन्नपार्थपाठनकदर्थितविद्यार्थिसार्थानि दुर्वादिहृदयानि प्रमोदमेदुराणि च सम्पादयन् दर्शनरसिकमानसानि समूलकाषं कषंश्च कलिकालप्रबलीभवद्बालविधवापुनर्विवाहवैधताप्रख्यापनदुराग्रहग्रहाविष्टान् मोहमयीनामकनगरवास्तव्यान् बोधलेशदुर्विधानपि निबन्धकरणोद्यतान् दुराशयान् निर्माय दोषाभासनिरासनामकं स्वकीयगुरुवरप्रणीतविधवोद्वाहशङ्कासमाधिनामकनिबन्धरत्नतिलकं गाढयुक्तिपरिपूरितं चिरमन्वभवदसावखण्डपाण्डित्यसाम्राज्यम्।

भूम्यां नास्ति पुरं तदस्य सुयशो नो यत्र चन्द्रायते
राजा साम्प्रतिको न कोऽपि स पदं मूर्ध्नाऽस्य यो नार्चति।
ईदृक् कोऽद्य बुधो न योऽस्य सशिरःकम्पं गुणान् श्लाघते
का विद्वत्परिषच्च साऽस्य वचसा या चित्रतां नर्च्छति॥२८॥

वृद्धानां समुपासने रघुपतिर्नीतौ च वाचस्पतिः
सद्धर्माचरणे च धर्मतनयः श्रीहर्ष एवोक्तिषु।
त्यागे कर्णविवर्णतावहगुणो लक्ष्म्यां कुबेराधिको
नास्माभिः सदृशोऽस्य कोऽपि विबुधो दृष्टः श्रुतो वाऽधुना॥२९॥

इत्थमेष परिपूतचरित्रो निर्वहन् भुवि निजागमकार्यम्।
अत्यवाहयत कालमनल्पं कल्पनानमितवादिसमाजः॥३०॥

शुश्राव तं तुहिनशैलतटान्तशोभिमण्डीपुरीपरिवृढः समितौ कदाचित्।
सार्थाभिधो विजयसेनमहीमहेन्द्र आचार्यकार्यकरणोचितवृत्तपूतम्॥३१॥

प्रागागतो हरपुरे निजकारितायां वीक्ष्यैनमर्दितविवादिगणं सभायाम्।
हर्षप्रकर्षपरतन्त्रमनाः स नित्यं भट्टारकः स्पृहयति स्म तदर्चनाय॥३२॥

सम्प्रेष्य शीलनिलयं स्वपुरोहितं स सप्रश्रयं स्वगुरुभिः सहितं बुधं तम्।
आनाययन्निजपुरं पुरुहूतवीर्यः शिष्यैर्द्विजैश्च सह वेदविशेषविज्ञैः॥३३॥

तादृक् च पर्यचरदेनमसीमभक्तिः शीलेन तत्परतया विनयेन वित्तैः।
दुद्राव चन्द्रकिरणैरिव चन्द्रकान्तः स्वान्तं नितान्तमृदु तस्य सदा यथान्तः॥३४॥

उन्मस्तकैश्च कनकैर्जनकैः सुखानां सन्तोष्य तद्गुरुमसौ शनकैर्जगाद।
मन्त्रोपदेशविधये मयि सानुकम्पः स्याद्येन भूमिधिषणोऽयमिदं यतेथाः॥३५॥

श्रद्धातिरेकमवधार्य सगद्गदेन वाक्येन तस्य करुणावरुणालयः सः।
श्रीमद्गणेशमनुदानविधौ न्ययुङ्क्त तं वेदवागधिकमानितनैजवाक्यम्॥३६॥

कृत्वोपदेशविधिना स नृपं कृतार्थं शुश्रूषितश्चिरतरं विनतेन तेन।
सम्प्राप्तराङ्कववरांशुकभूरिवित्तैर्हृष्टद्विजैः सह महेशपुरीमवाप॥३७॥

अष्टाविंशसमासमाश्रितवयाः पूतं विधायेदृशं
वृत्तं शारदशीतदीधितियशा वित्तैर्द्विजान् मोदयन्।
आतेने स विनायकाख्यमखिना सम्प्रार्थितः प्रश्रया-
दौद्गात्रं रचितेष्टकाग्निचयनेऽप्तोर्यामनाम्नि क्रतौ॥३८॥

तेषां कायनिकायमुज्झति चिरान्नाद्यापि रोमाञ्चिता
तेषामक्षिपथे प्रमोदसलिलासारो न विश्राम्यति।
चेतः किञ्च चमत्कृतेः परवशं कार्यान्तरं नेहते
यैर्यज्ञेऽत्र सुधासमानमधुरं तत्सामगानं श्रुतम्॥३९॥

अग्निष्टोममखे जनार्दनकृते चाध्वर्यवं निर्वहन्
प्राचीनाधुनिकान् बुधान् स विदधे चित्रीयमाणांश्चिरम्।
अन्यस्मिंश्च मखे स हौत्रमतुला याज्याः पठन् सोऽतनोत्
तेनासीत् प्रकटा त्रयीनिपुणता तस्याखिले भूतले॥४०॥

गत्वाऽथ दक्षिणदिशं गुरुभिः सहैव संसेव्य तीर्थनिवहान् परिपूज्य देवान्।
संतोष्य भूसुरवरान् विपुलैः स वित्तैस्त्रिंशत्तमामनुबभूव समां समानः ॥४१॥
कुर्वन्नसावितरमानुषदुष्कराणि कार्याणि नित्यमिति भूतलभारतीशः।
काश्चित्समाः सततपाठितसर्वशास्त्रो निर्णीतधर्मविषयो गमयाम्बभूव ॥४२॥
मण्डीपुरेन्द्रगुणसंहतिभिर्बलेन सन्दान्यमानहृदयः स दयापयोधिः।
वारान् बहून्नगरमस्य जगाम राज्ञस्तेनापि शिष्यसहितो बहुशोऽर्चितोऽभूत् ॥४३॥

एवमयमतिवाहयन्ननेहसं कतिपयं पञ्चत्रिंशत्तमे हायने परित्यक्तनिखिलविषयवासनेषु सदाचारतुलितसलिलसम्भवासनेषु विहितपरःसहस्रशिष्यमतिविकासनेषु निजगुरुवर**श्रीराजारामशास्त्रिषु** ब्रह्मभूयमनुभवत्स्वनवशेषितावगन्तव्यविषयोऽपि चिराभ्यस्तसन्तताचार्यपरिचर्याऽऽकस्मिकविच्छेदविरसाशयस्ततः प्रभृत्येव विहातुकामः पाठशालाऽध्यापनादिकार्यं निवार्यमाणो निजजननीमुखनिखिलबन्धुवर्गेण सादरं सम्भावितो निजगुरुनिर्वाहितमनितरसुकरं धर्मशास्त्राध्यापनाधिकारं समर्प्य काशिकराजकीयप्रधानपाठशालाप्रभुवरेण तदनुरोधादूरीकृतप्रशस्ततदादेशो दिशन् दुरूहधर्मसङ्कटेषु स्रोपपत्तिकं लेखचातुरीसमवधीरितगीर्वाणगुरुर्व्यवस्थापत्राणि निबध्नन्ननेकविधान् निबन्धान् परिशोधयन् काश्मीरमण्डलाखण्डलप्रार्थनया तदीयसभास्तारपण्डितनिर्मितं धर्मशास्त्रनवीनप्रबन्धरत्नं निरन्तरं नानादिगागतासाङ्कव्यधर्मविषयविशयपत्रोत्तरविलेखनव्यग्रतया विस्मृताहारविहारविश्रमोऽप्यश्रमः प्रख्यापयन् निजमात्रविश्रान्तां पण्डितैकशेषतामवधार्य पाठशालीयनिजकार्यनिर्वहणक्षमान् निजान्तेवासिनो विज्ञाप्य तत्रत्यं प्रभुवरं पञ्चदशहायनमात्राधिकारसम्पादितपरःसहस्रवत्सरानश्वरविविधविद्योऽनिच्छन्त्येव वियोगखेदजनितनयनाम्बुपूरपूरितमहीतले तत्र प्रभुवरे स्वीकृत्य तत्रत्यवार्षिकपरीक्षाव्यवस्थापनं विहायासन्नचत्वारिंशे वत्सरे निजाधिकारं यतते स्म सुरनिकरं तर्पयितुं नव्यनव्यैर्हव्यैरसौ वसुमतीवसिष्ठः।

एकः सोऽत्र पवित्रचित्रचरितः साङ्गत्रयीपारगः
श्रौतस्मार्तपथप्रवीणधिषणः षड्दर्शनीमार्मिकः।
दृप्यद्दुष्टकलिद्विपाहतिदलद्विद्यालतैकाम्बुदः
पूज्यश्रीगुरुबालशास्त्रिचरणः पुंरूपवाग्देवता ॥४४॥
शुश्रूषापरितोषिताद् गुरुकुलाद्येनाधिगत्य श्रुती-
र्बाल्ये बालसरस्वतीपदभृता सर्वेऽपि विस्मापिताः।
यः कृत्स्नद्रविणार्पणादपि गुरून् व्युत्पत्तिसन्तोषितान्
सेवं सेवममन्यताद्भुतगुणो नानृण्यमप्यात्मनि ॥४५॥

य: [१]स्वात्युज्ज्वलसर्वतोमुखभृतान्तेवासिशुक्त्यावली-
निर्यन्निस्तु[२]लसूक्तिमौक्तिकसिते सारस्वते[३] स्रोतसि।
सद्यो [४]रञ्जितराजहंसनिवहाहंपूर्विकाऽभ्यर्चित-
श्चित्रं कोऽपि विशारदो[५] विजयते किं [६]शारदो वारिदः ॥४६॥

अग्निष्टोममुखान्मखानविकलं निर्वोढुमात्तव्रते
यस्मिन् होतरि हर्षमापुरमरा मोहं मुहुः सामगे।
मुख्याध्वर्यवभाजि [७]विस्मृतचरान् भागान् भृशं लेभिरे
मन्ये यज्वनि तुन्दिलाः किमधुना मुञ्चन्ति नो यद्गृहम् ॥४७॥

ह्र[८]स्वामप्यनुयाति यस्य विजयः सेनां समित्संज्ञयो-
र्लिम्पन् शीतगिरिं सितेन यशसा पिष्टं पिनष्टीव यः।
सोऽयं खण्डितवैरिमण्डलधनुर्मण्डी[९] धराऽऽखण्डलो
धत्ते मूर्ध्नि [१०]सुवर्णरत्नघटितां कोटीरवद् यद्गिरम् ॥४८॥

आचारव्यवहारसंशयभवत्कोलाहलव्याकुला
आसम्राजमकिञ्चनादिमनुजाः श्रद्धाय वेदेष्विव।
विश्वस्य प्रियपथ्यकारिवचने विश्वस्य[११] यस्यादरा-
द्धर्माध्वन्यपराधलेशविधुरा निर्वर्तयन्ति क्रियाः ॥४९॥

---

१. स्वस्यात्युज्ज्वलेन सर्वतोमुखेन भृता अध्यापिता इति यावत्। तादृशा अन्तेवासिनः शिष्या एव स्वात्यां नक्षत्रविशेष उज्ज्वलेन सर्वतोमुखेन जलेन भृताः पूरिता इति श्लेषमूलकं समस्तवस्तुविषयं रूपकम्।

२. वर्तुलमुपमाशून्यं च।

३. सरस्वतीसम्बन्धिनि सागरसम्बन्धिनि च।

४. राजानो हंसाश्च त एव राजहंसाः।

५. प्रवीणः शारदाविहीनोऽपीति विरोधाभासध्वनिः।

६. शरदि भवः सरस्वतीसम्बन्धी च। अत्रोक्तरूपकमूलकोत्प्रेक्षाश्लेषयोरेकवाचकानुप्रवेशसंकरः। विरोधाभासस्तु व्यङ्ग्यः। वृत्त्यनुप्रासेन सह संसृष्टिरिति बोध्यम्।

७. प्रतिप्रस्थातृव्यावृत्त्यर्थम्।

८. अल्पीयसीमपि पृतनां युद्धे विजयोऽनुगच्छति। यत्सेनायाः सदा जय एवेत्यर्थः। संज्ञायां नामनि ह्रस्वां सेनां विजयः शब्दः अनुगच्छति। यन्नाम विजयसेन इति भावः।

९. धनुर्मण्डयति भूषयतीति सः। धनुरिति पृथक् पदं वा।

१०. शोभनैर्वर्णरूपै रत्नैः। कनकै रत्नैर्हीरकादिभिर्घटितां वा।

११. विश्वासं कृत्वा।

वादे जल्पवितण्डयोः प्रतिसभं सोत्साहमागच्छतो
वादिन्यङ्कुगणान् स्वयुक्तिनखरैर्विद्रावितान् पश्यता।
वैतानाग्निनिषेवणैकमतिना वेदान्तशान्तात्मना
येनामीष्वधुना समापितमभूच्छार्दूलविक्रीडितम्[१] ॥५०॥

अथ श्रौतानग्नीन् विधिवदयमाधाय सदने
हविर्भिः सन्तर्प्य त्रिदशनिवहं पर्वणि सदा।
पिपासां सोमस्य प्रशमयितुमस्य व्यवसितो
बभूवाग्निष्टोमक्रतुवरविधानोत्सुकमनाः ॥५१॥

ततोऽयमधिगत्य श्रौतविधिषु देवयजनभूमिं राजयाचनीयां श्रीमतो बन्दीकृतारातिवृन्दाद् बुन्दीपुरपुरन्दरादासादितानुमतिरदसीयामात्मसात्कृत्य भुवं परिहृत्य प्रतिनिधिभावभाञ्जियज्ञोपकरणवस्तूनि सम्पादिताशेषयज्ञसम्भारोऽवधार्य माघ्यां पौर्णमास्यामग्नीषोमीययागकर्तव्यतामामन्त्रितविविधदेशवास्तव्यस्तव्यगुणभासुरभूसुरगणः प्रागेव दशभ्यो वासरेभ्योऽपूपुजद्भुवम्।

तदानुभूतभूयिष्ठमखापि मखभूरियम्।
सत्वरा चत्वरोत्सेधाद्धर्षोच्छूनत्वमाप[२] किम् ॥५२॥
गणनायकभूवराहकूर्मानथ शेषं सुरशिल्पिनं समर्च्य।
गणनाय विहारमाशु कर्तुं न्यदिशच्छिल्पविशारदान् स यक्ष्यन् ॥५३॥

ततः पश्चात्प्राग्वंशं[३] ततः [४]पुरस्तात्सदोहविर्धाने[५] पार्श्वयोश्च [६]मार्जालीयाग्नीध्रीये[७] पुरश्चोत्तरवेदिं[८] [९]चात्वालोत्करौ[१०] सदसि होत्रकधिष्णया[११] न्यौदुम्बर्यवटं[१२] हविर्धाने चोपरवान्यथावन्निर्माप्य[१३] परिकल्प्य चानल्पसौन्दर्याणि तत्र तत्र द्वाराणि संसाध्य च शुभं मण्डपमभितो विधापितोचितोपवेशनस्थानः प्रतीक्षते स्म यज्ञारम्भमहोत्सवं स यज्वनामग्रणीः।

त्रयोदश्यां माघ्यामथ कृतगणाधीशनमनो
मनोभीष्टैः शिष्टैः सह विहितनान्दीमखविधिः।
कुशासीनः पत्न्या सह सकुशपाणिः कुशलधी-
रसावन्तर्वाणिर्मखकरणसङ्कल्पमतनोत् ॥५४॥

---

१. शार्दूलस्येव विक्रीडितं पराक्रमः। एतदाख्यं वृत्तमुपक्रान्तं समापितमिति मुद्रालङ्कारश्च।
२. चत्वर एव हर्षहेतुकपुष्टत्वोत्प्रेक्षा; ३. प्राकृतिकाग्निस्थानम्; ४. होत्राद्युपवेशनस्थानम्।
५. सौत्यदिनीयसोमाभिषवस्थानम्; ६. चमसशोधनस्थानम्; ७. आग्नीध्रस्थानम्।
८. प्रधानहोमस्थानम्; ९. यज्ञियमृदाहरणगर्तः; १०. अपवृक्तपदार्थप्रक्षेपणार्थं गर्तः।
११. होत्राद्यग्रस्थस्थण्डिलानि; १२. उद्गातृच्छायाभूतौदुम्बरशाखानिखननार्थं गर्तः।
१३. गर्तचतुष्कमन्तर्मिश्रम्।

लसद्रम्भास्तम्भा किसलयचलत्तोरणवृता
कृतानल्पाकल्पा . श्रुतिशतकजल्पाकभरिता ।
यजुःसामर्ग्जन्यध्वनिभिरभिभूतान्यनिनदा
तदा तोषं केषामतुलमकरोन्नाध्वरमही ॥५५ ॥

ब्रह्मक्षत्रार्यसम्पूर्णा कीर्णा पुष्पफलैः कुशैः ।
यजुःसामर्ग्ध्वनिभृता त्रिवर्णा[1] भूस्त्रिधा बभौ ॥५६ ॥

द्वादशशतगवदक्षिण ऐन्द्राग्नाश्विनसमानतन्त्रपशुः ।
द्वादशशस्त्रस्तोत्रः प्रवर्ग्ययुक्तो रथन्तरेण युतः ॥५७ ॥

ज्योतिष्टोमः सोम्योऽग्निष्टोममखस्तदाऽमुनाऽऽरब्धः ।
श्रीयज्ञपुरुषहर्षप्रकर्षमात्रं मनसिकृत्य ॥५८ ॥

अथ पायसौदननिवेदनपूर्वं कृतसोमराजनमनः स सुधीः ।
त्वरते स्म विस्मितजनेक्षितया द्विजपूजयर्त्विज इमान्वरितुम् ॥५९ ॥

सोमप्रवाकेण पुरा वृतानां होत्रादिकानामथ ऋत्विजां सः ।
समन्त्रकं प्रारभताध्वरीन्द्रो विद्वद्वराणां वरणं सुतूर्णम् ॥६० ॥

विद्वद्वन्दितबालदीक्षितसुतः सङ्ख्यावतां सम्मत-
स्तत्र द्वादशवार्षिकोऽपि वयसा तुल्यः सुराणां गुरोः ।
होताऽऽहूतमहेन्द्रमुख्यदिविषत्सानन्दसंवीक्षितो
यज्ञे तत्र गदाधराभिधसुधीवर्यो वृतोऽभून्मुदा ॥६१ ॥

ततो जयरामशास्त्रिसदाशिवदीक्षितराजारामदीक्षिता मैत्रावरुणाच्छावाक्यावस्तूद्भावेनाव्रियन्तामुना दीक्षिष्यमाणेन ।

बाल्ये यैरुपनीय वेदमखिलं श्रौतं तथाध्यापितो
यस्मात् प्राप वसिष्ठतुल्यचरितादाधानकालेऽरणी ।
तान्नानाविधयज्ञधूर्वहतया विख्यातकीर्तीनसौ
मुख्याध्वर्यवमापयद् गुरुवरश्रीरामकृष्णाभिधान् ॥६२ ॥

---

१. द्विजा रूपाणि अक्षराणि च ।

ततस्तैत्तिरीयशाखाध्यापनधुरन्धरं श्रौतार्णवमन्थनैकमन्दरं सुत्वात्मजवेणीमाधवदीक्षितं प्रतिप्रस्थातृभावे नियुज्य पुरस्कृत्य च काशीनाथशर्माणं नेष्ट्रीये विहितसोमयागं सत्याषाढमतपारदृश्वानं जनार्दनशर्माणमुन्नेतृभावे प्रोत्साहयामास।

धृताप्तोर्यामादिक्रतुसकलनिर्वाहणधुरान्
जगन्मान्यान् धन्यान् विदितनिखिलन्यायविषयान्।
सखारामाभिख्यान्निजगुरुवरज्येष्ठसहजान्
स वव्रे ब्रह्मत्वे विशदधिषणाह्रीणधिषणान्॥६३॥

ततो नानाविधनिगमश्रौतस्मार्तशास्त्रप्रवीणं धुरीणमध्यापकानां राजारामशास्त्रिणमङ्गीकार्य ब्राह्मणाच्छंसित्वं त्रिविधश्रौतपथपारीणं काशीनाथशास्त्रिणं ग्राहयित्वाग्नीध्रीयं भट्टवंशावतंसं गोपालशर्माणं विदधे पोतारमसौ मध्यमलोकचतुराननः।

वाणीकरक्वणदनल्पगुणाढ्यवीणासंमूर्च्छनाविजयिसुन्दरसामगानम्।
गोपालकृष्णविबुधं स्तुतिकार्यधुर्यमुद्गातृतामनयदेष विशेषवेदी॥६४॥

प्रस्तोतृत्वे च प्रख्यातसामगानं बालदीक्षितं परिकल्प्य सम्पाद्य च यज्ववररघुनाथदीक्षिते प्रातिहर्त्रं वरित्वा बाबूशर्माणं सुब्रह्मण्यं पुरश्चक्रे यज्ञकर्मसु बापूभट्टाभिधसदस्यं वुवूर्षुरसौ सौम्यमूर्तिः।

अथोपविष्टान् कुशविष्टरेषु शिष्टानधीष्टान् परमप्रहृष्टान्।
पाद्यार्घ्यतोयाचमनीयपूर्वं समर्च्य यज्वा मधुपर्कदायी॥६५॥
विशालकौशेयभवान्तरीयैर्महाधनैराङ्कववस्त्ररत्नैः।
रत्नाङ्गुलीयैरपि रौप्यपात्रैरमोदयद्वेदविदां वरिष्ठः॥६६॥
श्रौत्रैर्निपीतं रसनाग्रगीतं नीतं त्वचा चन्दनतां यशोऽस्य।
मालीभवद् घ्राणसुखं किमक्ष्णोर्मुदेऽवहद्राजतपात्रशैलीम्॥६७॥
दशेदृशी मे हविषामलाभात्प्रतिक्रियाऽस्या भवतां करस्था
ऋत्विग्वरान् वक्तुमितीव रक्तरत्नाङ्गुलीयत्वमवाप वह्निः॥६८॥
तदनु चमसाध्वर्यून् रश्मीनिवात्मन उद्गतान्
विदितयशसो धातारं च प्रसर्पकपुङ्गवान्।
सुरभिसुमनोवस्त्रैः पात्रैर्गवार्पणपूर्वकं
मुदितमनसो यज्ञारम्भे व्यधात्स बुधाधिपः॥६९॥

तदनु प्राग्वंशपश्चिमद्वार उपस्थाय देवता देवयजनं गत्वा सम्पाद्य विधिना प्राग्वंशेऽग्नीन्निर्दिदेश द्रव्याणि प्रतिपत्तये ।

आज्यं पशुपुरोडाश्या यावता स्यान्मखो मम ।
तावद्यज्ञार्थमन्यत्तु भुञ्जीरन् ब्राह्मणा इति ॥७० ॥

प्रससार तदारभ्य तत्र खादतमोदता ।
द्विजानां कर्मठानां तु जज्ञे पचतभृज्जता ॥७१ ॥

अथारब्धेऽध्वरवरे विधायाहवनीये कूश्माण्डहोममंध्वर्युः सम्पादयिष्यन् प्रवर्ग्यसामग्रीमग्रेसरीकृत्य कृत्यविदामग्रणीरश्वमनुगतो ब्रह्मयजमानाभ्यामाहृत्य मृद्वराहविहतादीनि तान्यभिमन्त्र्य निष्पाद्य तैर्यथावन्महावीरान्प्रताप्य चामून् परिद्रढय्य हुत्वा सम्भारयजुर्भिः प्राक्रमत दीक्षणीयामिष्टिम् ।

पूज्याः सर्वे कथमिव सुरा एकदादौ मखेऽस्मिन्
आलोच्येत्थं कृतपरिचयो बह्वृचब्राह्मणेषु[1] ।
प्रत्याहाराकलनचतुरो दीक्षणीयेष्टिमध्ये
सोऽग्नाविष्णू प्रथमचरमौ किं तदानीमयष्ट ॥७२ ॥

अथो विहितवापनस्त्रिपथगाजले निर्मले
यथाविधि कृताप्लवोऽप्यहतवाससा वेष्टितः ।
शचीसदृशशीलया सपदि तत्र पत्न्या युतो
मनोऽभिलषितान्धसा निजजनैरमोघ्नादृतैः ॥७३ ॥

ततस्त्रिककुदञ्जनं नयनयोरसौ धारयन्
मृगाविकलचर्मणा वृततनुः शिरस्त्राणवान् ।
उदुम्बरभवं वहन् पृथुलदण्डमास्योन्मितं
तनुं मृगविषाणया स विलिखन्नभूद्दीक्षितः ॥७४ ॥

कलेस्त्रातुं वेदान् कमलभवलोकादुपगतो
वसिष्ठोऽरुन्धत्या सह किमिति नातर्कि किल कैः ।
तदोपेतं पत्न्या शिरसि मृदुजालोल्लसितया
सदःस्थं पश्यद्भिर्व्रतकृतमतिं दीक्षितममुम् ॥७५ ॥

१. अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा देवता इति तत्र श्रुतत्वादिति भावः ।

तस्मिन्नह्नि वनीपकामरतरोर्बुन्दीपुराधीशितुः
प्राप्याज्ञां नवनन्दशर्मविबुधा आचार्यलक्ष्माभिधाः।
वर्षन्ति स्म तथाविधं वसु सनीहारा[१] विहाराद्बहि-
र्वैयर्थ्यं व्यपदिश्य येन गमनेऽजायन्त लालाटिकाः[२] ॥७६॥

इति प्रथमवासरे परिसमाप्य सर्वं विधिं
विसृज्य सकलर्त्विजो रजनिविश्रमायादरात्।
वितीर्णवसुरप्यसावनिशबद्धमुष्टिस्तदा[३]
निशामनयदर्चयन् मनसि यज्ञनारायणम् ॥७७॥

तदनु परेद्युः प्रभात एव विहितनित्यक्रिये वैतानाग्नीन् ज्योतिष्मतः कर्तुमादिशत्यध्वर्यौ त्वरमाणे च याजकगणे प्रदक्षिणार्चिर्मिषेण पूर्वदिनहविरास्वादनसंजातहविरौत्सुक्ये प्रसार्य रसना याचमान इव हवींषि हुतवहे पूर्यमाणे च तेजोऽतिरेकनिष्पादितापरकृशानुशङ्कैरखिलागमपारगैर्द्विजोत्तमैर्यज्ञमण्डपे सज्जीक्रियमाणे च परिकर्मिभिस्तत्तत्प्रदेशेषु कुशसमिदादिसम्भारे निजमातृवरिवस्यावलोकनायेव त्वरयति सारथिं कमलिनीनाथे।

[४]मन्दाक्रान्तामथ रविकरैर्यज्ञशालां विशालां
संप्रेक्ष्यासावदितिमयजत्प्रायणीयाभिधेष्टौ।
यस्यां [५]धूम्याविशयमदिशत्केवलच्छान्दसानां[६]
द्रागायान्त्याः [७]सुरमुनिपथात्केशपाशः श्लथोऽस्याः ॥७८॥
सोमक्रयण्यामथ कल्पितायामेकाब्दशोणाकृतिपिङ्गलाक्ष्याम्।
प्राप्यैष यज्वोत्तरवेदिदेशं प्रावर्तत क्रेतुमशेषसोमम् ॥७९॥
परिश्रितेन च्छदिषोपरिष्टाद् वृतेन सार्द्धं शकटेन गच्छन्।
सोमाभिमुख्यं विदधच्च तस्य स्थिते तदा ब्रह्मणि दक्षिणस्याम् ॥८०॥

---

१. यज्ञसंपादनोपयोगिधनाहरणार्थं नियुक्ताः।
२. प्रभोर्भालदर्शनमात्रकार्याः द्रव्यस्य प्रभूतस्य प्राप्तत्वादिति भावः।
३. कदर्यः विधिबलान्मुष्टिबन्धनकृदिति विरोधपरिहारः।
४. किञ्चिदाक्रान्ताम्। वृत्तनामोद्घाटनान्मुद्रालङ्कारश्च।
५. धूमसमूहसंशयम्।
६. न तु चतुराणां तेषां त्वदितिकेशपाशनिश्चय एवाभूदिति भावः।
७. तत्र कश्यपसन्निधावदितेः सत्त्वादिति भावः।

आस्तीर्य च क्षौमवरं मृगाजिने सहेमहस्तेन ममे स सोमम्।
यथाविधि स्वर्चितमङ्गुलीभिस्ततो न्यबद्ध्नाद्वसनेन तेन ॥८१ ॥

गोहेमाजाधेनुवत्सवृषैरनडुहाऽतनोत्।
गोयुगेन च वस्त्रेण सोमक्रयमसौ कृती ॥८२ ॥

निर्दिश्य सोमक्रयणानथासौ श्रुत्युक्तगन्धर्वमहत्तरेभ्यः।
निष्कास्य सोमक्रयिणं स लोष्ठैर्न्यवेशयत्तं शकटे च सोमम् ॥८३ ॥

युक्ते वृषाभ्यां शकटे प्रयाति सुब्रह्मणीयाभृति सामगे च।
स्तुवत्यमुं होतरि मन्द्रमृग्भिः शोभा गिरां पारमगात्तदानीम् ॥८४ ॥

अथाग्नीषोमीयेऽसितधवलवर्णे पशुवरे
प्रक्लृप्ते तं कर्णे दधदधृतदण्डो व्रतिवरः।
प्रतीक्ष्यासौ सोमं कृतवृषवरोन्मोचनविधि-
स्तदानीमातिथ्यां व्यधित विमलामिष्टिमचिरात् ॥८५ ॥

अग्नीषोमातिथ्यमस्यां विधाय प्रोन्मुच्याथो धूर्वहं चोत्तरस्थम्।
वारुण्यर्चा गन्धपुष्पोपहारैः सोमस्यार्चामेष यज्वा व्यधत्त ॥८६ ॥

आप्यायनं निह्नवनं तदानीं राज्ञो विधायाखिलऋत्विजोऽथ।
मुदा बभुर्ब्रह्मपुरोगमास्ते ब्रह्मर्षयः शक्रमिवार्चयित्वा ॥८७ ॥

अथ प्रवर्ग्यं विधिना विधातुं प्राग्वंशजद्वारगणं पिधाय।
आच्छाद्य पत्नीं वसनेन तत्र प्रचक्रमे याजकवर्यसंघः ॥८८ ॥

पश्चाद्धोताऽध्वर्युरासीत्पुरस्तात्प्रस्तोताऽभूद्धोतृयाम्ये तदानीम्।
आग्नीध्रोपाध्वर्युवर्यावुदीच्यां ब्रह्मा यष्टा गार्हपत्यस्य याम्ये ॥८९ ॥

खरे महावीरममी विधाय जलं मदन्तीस्थमुपस्पृशन्तः।
प्रपठ्य शान्तिं मधुरस्वरेण प्रवर्ग्यमारब्धुमथायतन्त ॥९० ॥

अग्नीधि रौहिणहविःकरणैकताने प्रस्तोतरि प्रथितसुस्वरसामगाने।
होतर्यभिष्टुवति धर्ममनेककार्यवीक्षाऽऽकुलाः सदसि विप्रवरा बभूवुः ॥९१ ॥

सामाकर्णननिश्चलाः कतिपये चित्रार्पितानां दशां
होतृस्तोत्रसुपूर्णकर्णविवरा अन्ये शिरोधूननम्।
एणीचर्मधवित्रधुक्षितशुचीनध्वर्युमुख्यान् परे
दृष्ट्वा पूतमनस्कतामुपगता यज्वानमस्ताविषुः ॥९२॥

[१]प्राग्वंशे विशदे स्थितिं विदधतां शुद्धाशयानां तदा
प्राग्वंशे विशदे स्थितिर्बुधजनैर्निश्चीयते स्माद्भुतम्।
प्रत्यक्षापि तदाऽनुमामजनयत्सा येन तस्मिन् क्षणे
जिग्युस्तेन परान् विवादरसिकान् वैशेषिकाः[२] साग्रहम् ॥९३॥

अथोपयमनीं स्रुचं विदधता करेऽध्वर्युणा
हुते हविषि तत्क्षणं सरसितार्चिषा वह्निना।
स्वतृप्तिरुदिताऽथ वा पुनरमुष्य याञ्चा कृते-
त्यभून्न विदुषामपि प्रशमितो विवादस्तदा ॥९४॥

अथ विधाय समापनमस्य ते पठितशान्तिकृतेतरवाग्गणाः।
उपसदिष्टिमनिष्टनिवारिणीं त्वरितकृत्यविधिं प्रवितेनिरे ॥९५॥

अध्वर्युहोतृक्रियमाणकार्यधारावगाहिश्रुतिनेत्रजातम्।
एकक्षणे ज्ञानयुगं तदानीं निर्दिश्य सांख्या अजयन् विपक्षान् ॥९६॥

व्याचष्टाऽग्नीद्देवपत्नीः समस्ताः सुब्रह्मण्यश्चाह्वयामास शक्रम्।
पौर्वाह्णिक्यौ ते समाप्यैवमिष्टी सद्यश्चक्रुस्ते दिनान्तोक्तरूपे ॥९७॥

प्रवर्ग्ये साधु विहिते तदा मखशिरश्चिरात्।
अयुज्यत समर्थोऽभून्मखो येन फलार्पणे ॥९८॥

श्रीमद्धरिश्चन्द्रमुखा दिनेऽस्मिन्महार्हवस्त्रादिबहूपहारैः।
यज्ञेशशुश्रूषणकारिणः स्वमपावयन्नागरिका महेच्छाः ॥९९॥

---

१. प्राक् वंशे इति पदद्वयम्।

२. प्रत्यक्षपरिकलितमप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिका इति वदन्त इति भावः।

द्वितीयदिवसेऽखिलं परिसमाप्य चैवं विधिं
विसृज्य सकलर्त्विजो रजनिविश्रमायादरात्।
वितीर्णविभवोऽप्यसावनिशबद्धमुष्टिस्तदा
निशामनयदर्चयन् मनसि यज्ञनारायणम् ॥१०० ॥

अथ तृतीयदिने स बुधाग्रणीः प्रमुदिताखिलऋत्विगुपक्रमम्।
समतनोद्विधिबोधितकर्मणां कृतसमस्तविलोकनशर्मणाम् ॥१०१ ॥

तदनु यथाविधि विहितयोः पौर्वाह्णिकयोः प्रवर्ग्योपसदोर्यज्ञधूर्वहाग्रयाय्यध्वर्युरग्रेण प्राग्वंशं यथोपदिष्टान् प्रक्रम्य प्रक्रमान् समपादयन् महावेदिमध्यमन्त्रयच्चामूं यजमानः। तदन्वापराह्णिकयौ प्रवर्ग्योपसदौ समापयामासुरध्वर्युपुरोगमा ऋत्विजः सह यजमानेन।

तस्मिन्नह्नि कृताभिनन्द्यविनयोऽमेठीपुराधीश्वरः
साष्टाङ्गं प्रणिपत्य यज्ञपुरुषं दत्वाऽतुलां दक्षिणाम्।
भक्त्युद्रेकभवत्प्रभूतपुलकः सानन्दवाष्पो मुहुः
चक्रे विस्मितमानसान् बुधजनान् श्रद्धाभृतेनात्मना ॥१०२ ॥

तृतीयदिवसेऽखिलं परिसमाप्य चैवं विधिं
विसृज्य सकलर्त्विजो रजनिविश्रमायादरात्।
वितीर्णविभवोऽप्यसावनिशबद्धमुष्टिस्तदा
निशामनयदर्चयन् मनसि यज्ञनारायणम् ॥१०३ ॥

अथ चतुर्थदिनारम्भे ससंरम्भमम्भसा विमलेन परिशोधिताखिलशरीरेष्वपि यज्ञवाटप्रवेशयोग्यतायां संदिहानेष्विव साशङ्कमितस्ततोऽवलोकयत्सु प्रविशत्सु यज्ञमण्डपं परःसहस्रेषु प्रेक्षकेषु प्रभातप्रभृत्येव कथञ्चिदासादितप्रवेशनिर्गममार्गेषु त्वरमाणेषु याजकवरेषु सन्निवेशयत्सु च तत्तदवकाशेषु यज्ञपात्रबर्हिःसमिदादीनि परिकर्मिषु प्रावर्तन्त पौर्वाह्णिकप्रवर्ग्योपसदौ सद्य एव चापराह्णिक्यौ ते विधातुमध्वर्युमुखा मखधुरन्धराः।

उद्वासयिष्यन्नथ स प्रवर्ग्यमग्नीन्मुखानुत्तमदक्षिणाभिः।
अजादिभिस्तोषयति स्म यज्वा स्वोत्साहसंधुक्षणदक्षिणाभिः ॥१०४ ॥

मुहुः प्रस्तोत्रोक्ते मधुरमधुरे सामनि मुदा
तदा वार्षाहारे विधुतशिरसस्ते दिविषदः।
श्रुतेष्टाहोत्रीया यदजहुरथ स्वं स्वरविदं
तदा हाहाकारादनुगतपदार्थोऽयमभवत् ॥१०५ ॥

प्रवर्ग्यमुद्वास्य स विप्रवर्ग्यो गणस्तदैवोत्तरवेदिदेशे।
त्वरायुतोऽथोपसदा प्रचर्य कुशैर्महावेदिपिधानकारी ॥१०६॥

कृत्वा हविर्धानविशेषकार्यं खात्वा तथैवोपरवानमुष्मिन्।
आग्नीध्रधिष्ण्यादि विधाय तूर्णमौदुम्बरीगर्तमुखं ततान ॥१०७॥

प्रणीय चैवोत्तरवेदिकाग्निं तथा हविर्धानमपि प्रणीय।
सदोहविर्धानसमस्तमार्जालीयेषु निर्माप्य च शुद्धमण्डपान् ॥१०८॥

सदसि होत्रकधिष्ण्यविधेः परं विरचितोत्करयोग्यविधिस्तदा।
धृतपशुत्रययागविधित्वरो न हि तदाऽऽलभत क्षणविश्रमम् ॥१०९॥

ऐन्द्राग्नाश्विनपशुयुगसमानतन्त्रे तदारब्धे।
अग्नीषोमीयपशौ तिलमात्रः सदसि नावकोशोऽभूत् ॥११०॥

तदनु यथाविधि निर्वृत्ते वैसर्जनहोमेऽग्नीषोमप्रणयनोत्तरं विसृष्टायां चावान्तरदीक्षायां सत्वरं विधाय यूपसम्मानादिपाशुकं कृत्यं व्यधात्पाशुकं मन्थनममन्थरमाविर्भावयिष्यन्नृत्विजां गण आशुशुक्षणिम्।

तदा किल पुरतो निरुद्धदृष्टिपथावकाशान् प्रागागतान् प्रेक्षकानपसारयतां कियच्चिरंमवलोकयथ दूरादागतानामस्माकमपि नयनयोर्महोत्सवं सम्पादयितुं विधातुं चात्मानं पूततमं क्षणमन्तरदानाय प्रसीदतेति पाश्चात्यानां कथं वयममीभिरलसशिरोमणिभिर्बाध्यामहे चिरादागत्य सप्रार्थनमासादितावकाशाः पश्चादागतैर्यद्यमीषामीदृशी यागावलोकनश्रद्धा कथमिमे प्रागेव नोपयाता इति पुरःस्थितानां किं वृथा कलकलं तनुथ वाक्कलहकारिणां सम्मर्देन भवतां वयमपि कदर्थिता न पारयामो द्रष्टुमिति पार्श्वस्थानां जोषमाध्वं किं न पश्यथ राज्ञोऽपि निर्दयसंमर्दितानलब्धावकाशान्विप्रकृष्टदेशावस्थितान् वाक्कलहेन भवतां विरच्यमानयज्ञक्रियान्तरायाः प्रेक्षन्ते सभ्रूभङ्गममी किलाध्वर्युमुखा इति व्यवस्थापकानां किमेवं भाषध्वे न कुप्येयुर्दयामयनिजाशयाः स्वतन्त्रप्रज्ञा न स्खलेयुरस्मत्सांराविणेन महाशयाः पश्यन्ति सकरुणमेव भवद्भिरभिभूयमानानस्मानिति दम्यमानानां च व्यप्नुवति रोदसीरन्ध्रं महति कोलाहले।

कृत्वोपाकरणाज्यसंस्कृतिमुखान् सर्वान् विधीनध्वरे
यन्मैत्रावरुणाय मन्द्रनिनदैरध्वर्युरादिष्टवान्।
तेनैतत्क्षण एव मूर्च्छित इवालेख्यार्पितश्रीरिव
प्रायः सोऽध्वरमण्डपोऽभवदलं क्षुब्धार्णवाभोऽपि सन् ॥१११॥

गभीरमधुरस्वरामथ पुरोऽनुवाक्यां मुदा
　　प्रशास्तरि पठत्यलं त्वरितवाहनान्वेषिणाम्।
मखो हरिसभासदां कलकलेन वा पूरितः
　　प्रशास्तृनिनदेन वेत्युदभवन्नृणां संशयः ॥११२॥

किं मैत्रावरुणेन मन्द्रमधुरव्याहारिणाऽऽकर्षितः
　　किं होत्रुत्तमयाज्यया निजबलाद् वृन्दारकाणां गणः।
किं वाध्वर्युवषट्क्रियाश्रुतिभवत्संरम्भपूर्णस्तदे-
　　त्येवं भूरिविवादसान्द्रसदसा नानन्दि कस्को जनः ॥११३॥

वपा अथ नृपार्चितो हुतवहे हुता मन्त्रविन्
　　निरीक्ष्य न ममौ मुदा वपुषि यज्वनामग्रणीः।
प्रमोदनयनाम्बुभिर्न्निबिडपूरितोरस्थलः
　　सुतृप्तविबुधार्पितां दधदिवैष पुष्पाञ्जलिम् ॥११४॥

सामोदं करतालिकाः कतिपये तस्मिन्क्षणेऽवादयन्
　　नृत्यन्ति स्म मुदा विसंष्ठुलपदं केचित्तदा संसदि।
इन्द्राग्न्यश्विमुखान्मखेऽत्र सुहितानस्ताविषुश्चापरे
　　नानाभावविभाविता इति जना उच्चावचं चक्रिरे ॥११५॥

तूर्याडम्बरशम्बराम्बरचलद्गीर्वाणवृन्दाकुलः
　　काष्ठातीतनिनादकारिनलिकाध्वानैर्निरुन्धन् श्रुतीः।
सम्प्राप्तातुलदक्षिणद्विजवराशीर्वादसंनादितोऽ-
　　जैषीद्यज्ञवरः स धर्मजकृतं तं राजसूयाध्वरम् ॥११६॥

गाम्भीर्येण पयोनिधिं सुरतरून् दानेन मत्या गुरुं
　　नीत्या शुक्रमनुत्तमेन यशसा शीतद्युतिं शारदम्।
यो धर्मेण युधिष्ठिरं विजयते यस्य प्रसादादभूद्
　　विद्वद्वृन्दनिकेतनेषु सततं सा चञ्चलाऽचञ्चला ॥११७॥

भूमीमण्डलमण्डनायितयशा मण्डीपुराखण्डलः
सर्वस्वार्पणतुष्टसद्गुरुकृपापीयूषधाराधरः।
सोऽयं शोभननामकं द्विजवरं संप्रेष्य तस्मिन्दिने
सर्वानभ्यभवन्निजैर्वितरणैर्यज्ञेश्वरप्रीतिकृत् ॥११८॥
पितापुत्रीयायामथ मधुरकण्ठं गिरि तदा
स सुब्रह्मण्यायां सविधि विहितायां मखिवरः।
शृतेषु च्छागेषु प्रतिपशु पुरोडाशहवनं
विधातुं प्रारब्धं त्रिदशगणसन्तोषफलकम् ॥११९॥
तदैव वसतीवरीरप उपाहरन् सत्वरा
द्विजाः सुरनदीतटात् स्फुटतरातपच्छायतः।
समन्त्रकमसादयन् द्रुतममूश्च शालामुखा-
लनापरदिशि क्षमाः परदिनीयसुत्याविधौ ॥१२०॥
अस्तशैलशिखरं गते रवावङ्गयागविधिरुत्तमोऽभवत्।
स्विष्टकृच्चरमकृत्यसंभृतो मोददः सकलनाकिसन्ततेः ॥१२१॥
विधाप्य वसतीवरीपरिहृतिं चतुर्थे दिने
विभूष्य सकलर्त्विजोऽध्युषितशोभनाग्नीध्रकान्।
प्रजागरकृते वधूं विधिबलादमूं बोधयन्
असाववसदादरात्सततसोमगोपायिता ॥१२२॥

अथ पञ्चमेऽह्नि स्तोकविश्रान्तेषु श्रान्तेष्वपि सौत्यदिनसम्प्राप्तिजप्रहर्षपरिपूर्णस्वान्तेषु चिरविश्रान्तेष्विव त्वरमाणेषु याजकेषु रात्रितृतीयभागारम्भ एव निर्मलं गाङ्गमम्भोऽवगाह्य सन्नद्धेषु बद्धपरिकरेणाशीतिवार्षिकेणापि यूनोऽपि वैलक्ष्यलक्षीकृतान्विदधताऽध्वर्युणा हुतास्वाग्नीध्रीये यज्ञतनुषु प्राक्रामयत् सवनीयस्य पशोस्तन्त्रं सर्वतन्त्रस्वतन्त्रोऽसौ मन्त्रविदामग्रणीः।

उपांशुपात्रप्रमुखानि तत्र प्रयुज्य पात्राणि खरेऽखिलानि।
यथावकाशं चमसान् परिप्लवां न्यवेशयच्चाधवनीयपात्रम् ॥१२३॥
पुरोधुरं पूतभृतं निवेश्य स्थालीस्ततश्चैकधनाः स्रुचोऽथ।
कृत्वोऽपरे ग्राववरांश्च सम्मुखान् राजानमासादयदेषु यज्वा ॥१२४॥
सविश्वरूपाभिधसामगान उपाकृते प्रातरथानुवाके।
मुदा तदा निर्वपति स्म सम्यगध्वर्युवर्य्यः सवनीयमाशु ॥१२५॥

धानाः करम्भान् यवजान् विधाय व्रीहीनगृह्णात्परिवापहेतोः।
ततः पुरोडाशनिमित्तमेतानामिक्ष्यमेकीकृतवान् पयोऽथ ॥१२६॥

अथैकधनाद्याहरणे जाते प्रचारे च दधिग्रहस्यांश्वदाभ्ययोश्चोपांशुप्रचारे च निष्पन्ने सोमस्य राज्ञो महाभिषवेऽन्तर्यामप्रचारोत्तरं गृहीतेषु विधिना ग्रहेषु गीते च सुस्वरमास्तावे बहिष्पवमान उद्गात्रा व्याघारितेषु धिष्ण्येष्वभूदाश्विनग्रहणम्।

ग्रहेषु सज्जेषु ततोऽखिलेषु प्रावर्तताग्नेयपशोः स यागः।
अध्वर्युमैत्रावरुणावथाग्नीद्धोता च चक्रुः किल यत्र कार्यम् ॥१२७॥

अथ हुतायामाग्नेयपशुवपायां निर्वर्तिते च ग्रहावकाशोपस्थाने सवनीयप्रचारद्विदेवत्यप्रचारशुक्रामन्थिप्रचारेषु निष्पादिते च भक्षे विरचितसकलसामाजिकसाधुवादे चाच्छावाकवादे ऋतुग्रहप्रचारोत्तरभाविन्यैन्द्राग्नग्रहणे कृत उदीरिते च मन्द्रमाज्यशस्त्रे होत्रा वैश्वदेवग्रहणसमनन्तरं मधुरतरं गीते चोद्गात्राऽऽज्यस्तोत्रे होत्रा च प्रउगशस्त्रे निगदितेषु मैत्रावरुणप्रभृतिभिरुक्थ्यपर्यायेषु निष्ठामटीकत सवनाहुत्यन्तशेषकर्मपरिशोभितं प्रातःसवनम्।

शस्त्रस्तोत्रप्रचुरनिनदो देवतामोदहेतु-
स्तत्र प्रातःसवनविहितः सोऽभवत्सोमहोमः।
यस्मिन्नक्ष्णां शतकदशकं बिभ्रदेको महेन्द्र-
श्चित्रं नानाविधविधिभवाश्चर्यसाक्षी बभूव ॥१२८॥

औदुम्बरीतलनिषण्णकुशाप्रसारि-
प्रस्तोतृसाममधुरस्वरजाततोषाः।
उद्गातृगीतिकृतकर्णसुखाः सभास्था
नैव प्रयातमविदन् क्षणवद्दिनं तत् ॥१२९॥

होतुः शस्त्रं प्रथममभवत्स्तोत्रपूर्वं प्रशास्तु-
स्तस्मादग्रे प्रथमसवने ब्राह्मणाच्छंसिनोऽथ।
अच्छावाकस्य च परमतः शस्त्रमाश्चर्यरूपं
चैवं माध्यान्दिनसवनगा स्तोत्रशस्त्रालिरासीत् ॥१३०॥

समाप्यासौ प्रातःसवनमिति शक्रादिविबुधान्
हविःसोमैस्तृप्तान् पुनरपि हविर्भिर्मदयितुम्।
अथारेभे माध्यन्दिनसवनमाश्चर्यचरितो
विदित्वा गीर्वाणान् कृतपशुपुरोडाशमनसः ॥१३१॥

अथ प्रतायमानेऽभिषवादिमाध्यंदिनसवने स्तूयमाने सुस्वरं ग्रावस्तुता राजनि कृते ग्रहग्रहणे ग्रहावकाशोपस्थानात् परं सदसि गीयमाने च माध्यंदिनपवमाने धिष्ण्यव्याघारणे विहिते संपादिते च दधिधर्मे सवनीययागशुक्रामन्थिष्वनुष्ठितेषु ।

चतुष्पदगवीर्मखे प्रददुरेव याज्याः पुरा
कथं रजतधेनवः कुशवृते प्रदेया इह ।
इति श्रुतिविचक्षणः समवधार्य तस्मिन् मखे
ददौ सुरतरूपमः सदसि गास्तदाऽऽष्टापदीः ॥१३२॥

मदीयतातं ज्वलनं हविर्भिः पुष्णद्भिरस्म्यद्य कृतोपकारम् ।
इत्थं विचिन्त्ये वसुवर्णमृत्विक्करेषु गोरूपधरं तदाऽभात् ॥१३३॥

तदैव चमसाध्वर्युप्रसर्पकमुखान् द्विजान् ।
विपुलाभिर्दक्षिणाभिः स यष्टा समतोषयत् ॥१३४॥

तदा स्वयमुपागतः किमु शतक्रतुः सादरं
दिदृक्षुरमुमध्वरं जनमितीव विस्मापयन् ।
समेत्य युवकाशिकापुरवरेश्वरः श्रद्धया
समर्प्य विपुलं वसु व्यधित भूषितं तत्सदः ॥१३५॥

सोमेनापहृतानि किं सुतधिया चेतांसि तद्वीक्षिणां
किं वा मोदसुधासमुद्रलहरीभग्नानि निर्यान्ति नो ।
किं सामश्रुतिमूर्च्छितानि यदमी प्राप्ताः क्रतोर्मण्डपं
निश्चेष्टा निरगुः समस्तदिवसं नेतः सभायां स्थिताः ॥१३६॥

तदनु कृते मरुत्वतीयप्रचारे तृतीयमरुत्वयीयग्रहणे च मरुत्वतीयशस्त्रमुद्गिरति होतरि माहेन्द्रग्रहणे च नन्दयति महेन्द्रं पृष्ठ्यस्तोत्रेषु प्रगीयमाने चोद्गात्रा परितोषितसकलसभास्तारान्तरे रथन्तरे निगदति निष्कैवल्यशस्त्रं होतरि विरचिते माहेन्द्रेण सहातिग्राह्यप्रचारे वामदेव्यस्तोत्रपूर्वकमुक्थ्यपर्यायेषु प्रशास्त्रोदीरिते शस्त्रे नौधसस्तुतिपूर्वके ब्राह्मणाच्छंसिना कालेयस्तोत्रपूर्वकमच्छावाकेन समाप्यत माध्यंदिनं सवनाहुत्यन्तशेषकर्मालङ्कृतं सवनम् ।

माध्यंदिनं सवनमित्थमसौ समाप्य सद्यस्तृतीयसवनोत्सुकमानसोऽभूत् ।
श्रद्धावतां सततवैधविधौ रतानां किं श्रान्तिराश्रयति चित्तशरीरवाचः ॥१३७॥

अथ तृतीयसवनारम्भे ससंरम्भमनुष्ठितेष्वादित्यग्रहग्रहणयागमहाभिषवेषु गृहीतेषु ग्रहेषु जाते चाशिरावनयने ग्रहावकाशोपस्थानादुत्तरं सदसि गीयमान आर्भवपवमानेऽङ्ग्यागसवनीय-प्रचारप्रस्थितप्रचारेषु कृतेषु विधीयमाने पिण्डदाने सावित्रग्रहणप्रचारयोरुत्तरं वैश्वदेवग्रहे गृहीते तारमुदीरयति वैश्वदेवशस्त्रं होतरि सघृतसौम्ययागमनुव्याघारितेषु धिष्ण्येषु पात्नीवतग्रहण-प्रचारयोः परस्तादुद्गात्रा गीयमाने यज्ञायज्ञियाख्येऽग्निष्टोमसामनि होतर्यानन्दयत्याग्निमा-रुतशस्त्रेण विरचितसितोष्णीषानृत्विजः प्रतिधिष्ण्यं प्रज्वलितानग्नीन् सामाजिकांश्च ध्रुवावनयने कृते चमसप्रचारसमनन्तरमनुष्ठितेष्वनुयाजादिषु हारियोजनग्रहणप्रचारशोभितमवासासीद्यज्ञ-पुच्छादिसवनाहुत्यन्तशेषकर्मसमलङ्कृतं तृतीयसवनम् ।

तुष्यद्धोत्रकसप्तकोक्तविलसत्प्रस्थानयाज्याभृतं
माद्यच्छक्रमुखाखिलादितिसुतस्तोत्राग्र्यशस्त्रावृतम् ।
दीप्यज्ज्वालहुताशभासितदिशं तं पश्यतां मण्डपं
संभ्यानां विधिसंसदीव परमो मोदस्तदानीमभूत् ॥१३८॥

ऐकान्यिकत्वमपि यन्न बभूव होतुः शस्त्रं तदा निगदतो निशि वैश्वदेवम् ।
तेनास्य चित्रचरितस्य जनातियायि शीलं बभूव भृशनन्दितविश्वदेवम् ॥१३९॥

आग्निमारुतमथान्तिमशस्त्रं वर्जितस्खलितमेष उदीर्य ।
साधुवादविवशाद्यजमानात् प्राप कण्ठगतमौक्तिकहारम् ॥१४०॥

अस्माकमस्त्यग्निरसौ पुरस्तान्मरुत्किमायास्यति वा न वाऽद्य ।
परीक्षितुं किं त्विति शुक्लवस्त्रैः शिरः प्यधाद्याजकयाज्यवर्गः ॥१४१॥

पश्वङ्गयागरुचिरं कृतसोमयागं धानाकरम्भसुरसाज्यहविःप्रपूर्णम् ।
जज्ञे तृतीयसवनं सुरभूसुराणां सौहित्यकारि विधिदूषणलेशशून्यम् ॥१४२॥

यो यज्ञान्तरदुर्लभैर्निजगुणैस्त्यागैश्च भक्त्या कृतै-
र्युक्तो दूषणलेशशून्यनिखिलानुष्ठानशस्त्रस्तुतिः ।
प्रायश्चित्तविशोधनाय विदधे तस्मिन् स सुत्वा मखे
प्रायश्चित्तघृताहुतीः प्रमुदितः शेषं च कृत्यं निजम् ॥१४३॥

स पञ्चमदिनेऽखिलं परिसमाप्य चैवं विधिं
विसृज्य सकलर्त्विजो विधिविसृष्टसख्यान्मुदा ।
कृताखिलविधिक्रमः प्रमुदितैर्बुधैर्वन्दितो
मखाम्बुनिधिपारगः प्रणमति स्म यज्ञेश्वरम् ॥१४४॥

अथ चिरातीतेऽपि यागे प्रतिक्षणतत्स्मरणसमुद्भूतप्रभूतरोमाञ्चकञ्चुकितैरासादितामन्दानन्दैरपि कण्टकावृतैरिव निरन्तरनिर्यन्नयनाम्बुपूरतया सम्पादयिष्यद्भिरिव चिरपरिश्रान्तस्य तस्य यज्वनो निकट एवावभृथोचितं तोयपूरमध्वरवरावलोकनौत्सुक्यनिर्निमेषेक्षणतया हविःसुहितसोमरसास्वादनजनितमदाक्रान्तनिद्रालुनिर्जरन्यासीकृतामिवास्वप्नतां वहद्भिरवभृथावगाहनोत्कैर्मानसारधनैर्महाजनैः परिवृतो निष्पीडनसञ्जातग्लानितया स्पन्दितुमक्षममिव नीरसविधदेशप्राप्तय इव स्वयमपि नीरसविधतां दधानमुपवेश्य सम्राडासन्द्यां राजानं गायद्भिः सुस्वरं सामानि सामगैः स्तोष्यद्भिः स्तुवद्भिः स्तुतवद्भिश्च होत्रकैर्विविधयज्ञायुधधरैरध्वर्युपुरोगमैश्च सङ्गृहीतावभृथीयेष्ट्युपकरणैः प्रयताचरणैः परिशुद्धान्तःकरणैः सर्वतो निरुद्ध्यमानगमनमार्गः परिकर्मिभिः सोमपानमत्तप्रसुप्तगीर्वाणगणबोधनायेव तन्निनीष्वौपवाह्यनिबहाह्वानायेव दिवमाक्रामता भेरीनिस्साणतूर्यप्रमुखवादित्रनिनदेन विदार्येव रसातलं संपिपादयिषुर्यज्ञशरणधारणवेतनं शेषप्रभृतिभुजङ्गपुङ्गवानां विनिर्गत्य प्रदक्षिणक्रमेण क्रतुस्थानादविरलपौरकरयुगलपतत्पुष्पवृष्टिरचितमृदुलास्तरसंचरणेन तिरोभावयन् भूगमनक्लेशमानुयात्रिकाणामन्तरान्तरा सामगानकृतसमस्तजनसंवननो ध्रियमाणातपत्रतया पवित्रतममात्मानं पादैरस्प्रष्टकामेनेव दिनकरेण परिहृतावकाशो यशोनिशाकरप्रकाशशमिततापातिरेकतया निमित्तमात्रतामातन्वन् हेमन्तस्य रविमन्दीकृतौ प्रतिपदं प्रणमद्भिर्बिभ्रद्भिश्चरणाङ्कितमहीपरागं सानुरागं शिरस्सु भक्तिभरितैः सुचरितैरनुगम्यमानः संप्राप्य त्रिलोकीतीर्थमौलिललामभूतां सकलसुरासुरमुनिनिषेवितसलिलां भगवत्या भागीरथ्या विभूषितां मणिकर्णिकामारभतावभृथीयामिष्टिम् ।

श्रद्धाऽनुद्धतबुद्धिभिः परिवृतः पौरैर्विशुद्धाशयैः
संरुद्धप्रसरः स यज्ववृषभः संघीभवद्भिश्च तैः ।
इष्टिं शिष्टवरिष्ठदृष्टचरितो हृष्टैः सुरैर्नन्दितां
तस्मिन् तीर्थवरे पुरारिमतनोत्संप्रीणयिष्यंश्चिरम् ॥१४५ ॥

धृतावतारः किमु काशिकापतिः किमेष यज्ञेश्वर एव साक्षात् ।
जनैरिति स्वीकृतचित्रतर्कैर्मुहुः प्रहर्षादभिवीक्ष्यमाणः ॥१४६ ॥

निवारिताशेषनृपालवेषस्तरिं समारुह्य मयूरचिह्नाम् ।
भक्तिप्रकर्षानतकाय ईश्वरीप्रसादनारायणसिंहभूपतिः ॥१४७ ॥

सिष्णासुरेत्यावभृथे तदानीं प्रणम्य यज्वानममुं सहर्षम् ।
जनान् समेतान् मणिकर्णिकायां श्रद्धाम्बुधौ मज्जयति स्म चित्रम् ॥१४८ ॥

विहितावभृथेष्टिनाऽमुना नृपपौरौघनिरन्तरे तदा ।
जनिताखिलदोषशोधनं शुचि सस्ने मणिकर्णिकाजले ॥१४९ ॥

प्रागेवाखिलतीर्थमौलिमणितां प्राप्ता शिवानुग्रहा-
द्यासौ मणिकर्णिकाऽवभृथजामासाद्य शुद्धिं पराम्।
दोषान् मानसकायिकोक्तिजनितान्निर्मूलयेत्सत्यमि-
त्यस्नासीद्धृतनिश्चयोऽखिलजनो जज्ञे च शुद्धः क्षणात्॥१५०॥

उद्धृता जलबिन्दवोऽत्रशिरसा यैः सादरं धारिता-
स्तेभ्यः स्वाधिककालजं शुभफलं दातुं दरिद्रो विधिः।
किं वा दास्यति यज्वनेऽधिकफलं श्रुत्वेति गौर्या वचो
नूनं मुक्तिमवेत्य सर्वसुलभामीशोऽपि मूकोऽभवत्॥१५१॥

अथासौ चिरमवगाह्य सप्रमोदं जाह्नवीजलमापाद्य च कृतकृत्यता कृत्स्नजनस्य तूर्णमुत्तीर्णोऽहते वाससी परिधाय पुरोधायाध्वर्युमुखाननुगम्यमानः पत्न्या प्रतिपदं प्रणमद्भिः संजिघृक्षद्भिश्च चरणोदकं बहुभिरास्तिकजनैः क्रियमाणविलम्बोऽपि जनयन् शुभाशीर्वादकुशलप्रश्नादिना तेषामुन्मस्तकं प्रमोदमासाद्य यज्ञवाटं प्रविश्य प्राग्वंशं संतर्प्य चोदयनीयायामिष्टौ देवताः परितर्प्य मित्रावरुणावामिक्षया संमालक्ष्य भृशपरिश्रान्तानृत्विजो विधाय पूर्णाहुतिमुदवसानीयेष्टिस्थाने प्रदक्षिणीकृत्य प्रदक्षिणार्चिषो हुतवहानासादितस्वनिकेतन आधाय विधिनाऽग्नीन् हुत्वा च सायं होममभूत्सर्वतः कृतकृत्यः।

धन्या सा जननी शशीव जलधेर्यस्या अभूत्रागसौ
श्रौतस्मार्तसमस्तदर्शनविदा या वन्दिता चामुना।
धन्येयं नगरी वसिष्ठमिव यं देधेऽधुनैषाऽऽत्मना
धन्यश्चापि वयं यदङ्घ्रियुगले मूर्ध्ना नमामो मुहुः॥१५२॥

कृत्वा शक्रमुखान् सुरान् स सुहितान् दत्वाऽतुला दक्षिणा-
श्चक्रे ब्राह्मणतर्पणं चिरतरं नानाविधेनान्धसा।
यस्मिन् षड्रसशालिभक्तरुचिरापूपादिसंतर्पिता
मन्यन्ते स्म महीसुरा दिविषदः किञ्चिद्धविर्वञ्चितान्॥१५३॥

कस्को नाजनि भूसुरोऽत्र सुहितः को नाप वा दक्षिणाः
का वीथी जनिता सिता न यशसा के श्रोत्रिया नार्चिताः।
केऽन्तर्वाणिवराः सभासु महतीं नापुः सपर्यां ततः
को वा विस्मयपूरमग्नहृदयो नास्मिन्मखेऽजायत॥१५४॥

इष्टं विधायेत्थमसौ प्रहृष्टः पूर्तैरलङ्कर्तुममुष्य भूमिम्।
तूर्णं समाज्ञापयति स्म कारीन् निर्मातुमाराममिहाभिरामम् ॥१५५ ॥

घनं कदलिकावनं तदनु तत्र जज्ञेऽचिरात्
प्रफुल्लनवमल्लिकाप्रमुखवृक्षषण्डान्वितम्।
यदीयसुमपूरितं स्थलमवेक्ष्य नूला जनाः
पुरा सुरकरोज्झिते सुमगणे न संशेरते ॥१५६ ॥

अथाशु मल्लीकरवीरबिल्वधात्रीमुखानोकहशोभमानम्।
स्थलं ससंरम्भविजृम्भमाणरम्भाशतस्तम्भभृतं बभौ तत् ॥१५७ ॥

संप्राप्तमानन्दवनेक्षणार्थं मन्दादरं नाकगतौ पुनः किम्।
भूनन्दनं स्थानमिदं यतोऽत्र संदृश्यते भूसुरवृन्दमेव ॥१५८ ॥

किं वञ्चितं विष्णुपदाभिधानादानन्दनं नन्दनमीक्षणानाम्।
यज्ञस्य विष्णोः पदमेतदाप्य प्रतिष्ठितं वीक्ष्य जहर्ष लोकः ॥१५९ ॥

ततो दृढं कारयति स्म तत्रोपलैर्विशालैः कृतबन्धमन्धुम्।
माधुर्यनैर्मल्यतुषारताभिर्यदम्बु गङ्गाम्ब्वतिसंदधाति ॥१६० ॥

अत्रान्तरे हिमगिरेः समुपागतेन मण्डीपुरेश्वरनिदेशवशंवदेन।
दूतेन तन्नगरयानकृतेऽर्थ्यमानो यातुं स निश्चितमनाः सुधियां वरिष्ठः ॥१६१ ॥

गोष्ठीनजालवनपत्तनपार्थिवश्रीगोविन्दरावनृपसोमपुरोहितेन।
सप्रश्रयं प्रणमता वदता निजाङ्घ्रिपूजोत्सुकं नृपममुं परिचर्यमाणः ॥१६२ ॥

प्राप्य प्रयागमवगाह्य सिताऽसितान्तः संतर्प्य देवपितृपूर्वमनेकविप्रान्।
भूपेन नम्रशिरसा विनतेन तेन निन्ये निजं गृहमनेकविधोपचारैः ॥१६३ ॥

भूपोऽथ तं विदधतं स्वगृहं सुपूतं शीलेन शीतकरशीतलकोमलेन।
चक्रे पयोनिधिगभीरमपि क्षणेन मोदाऽमृतामलचलल्लहरीपरीतम् ॥१६४ ॥

स्वीकृत्य तस्य स नमस्यगुणः सपर्यां पर्यायभाषिबुधमण्डलमण्डितायाम्।
भूपस्य संसदि मनांसि नृणां समस्तशास्त्राविरोधमुपपाद्य चिरादतार्प्सीत् ॥१६५ ॥

हुंकारमात्रपरिभूतविवादिवर्गः संप्रार्थितो नृपवरेण पदानतेन।
शैवीं विधाय दुरितक्षयदक्षदीक्षां तस्मै स पार्थिवशिवार्चनमादिदेश ॥१६६ ॥

मुक्तः कथञ्चिदमुना विरहासहेन मण्डीपुरेन्द्रमवलोक्य नितान्तभक्तम्।
प्रासादनिर्मितिभृशोत्सुकमानसोऽथ तूर्णं व्यभूषयदसौ निजयज्ञशालाम् ॥१६७॥

उत्सृज्य तत्रान्धुमशेषभूततृप्त्यै स सुत्वा सुरसद्म कर्तुम्।
जातत्वरः प्रेरयति स्म शिल्पपारीणबुद्धीनथ तत्र कारीन् ॥१६८॥

अथ निरूप्य शुभं मुहूर्तं निर्वर्तिते शिलान्यासे स्थूलस्थूलोपलशकलचक्रवालभिद्यमानरसातलविवरनिःसरत्फणाभृत्फूत्कारमनुकुर्वति पर्वताहूतप्रचुरप्रस्तरसमीकरणचटत्कारे विवदमानेषु स्वस्वशिल्पनैपुण्यवर्णनपुरःसरं विविधवास्तुनिर्माणविषये कारिवरेषु सम्भाव्येव चिरमात्मानं प्रतार्य मलयेन पर्वतवतीं दिशमाश्रितं भगवन्तं कुम्भसंभवं दिदृक्षुतया पुनः काशिकां समागतं सहैव धर्मपत्न्या लोपामुद्रया यायजूकममुं प्रसादयितुमिव संनिदधतं विन्ध्यपर्वतं संशाययत्यतिशयितोदग्रग्रावराशौ मसृणीकरणगुणप्रतिबिम्बिता इवोद्यानमध्योद्यत्फलपल्लवतल्लजवेल्लिता वल्लीः समुत्कीर्णाः प्रकाशयद्भिराकल्पमनल्पां जल्पाकजनजेगीयमानामसमानाममुष्य कीर्तिमम्बरपथातिथीभवन्तीमुत्तम्भयितुमिव धृतविग्रहैः स्तम्भैः शिवपरिचर्यागतरजताचलविमलाधित्यकाविशयसंपादनालङ्कर्मीणैः कुड्यैश्च समलङ्कृतं विस्तृतवितर्दिकासनाथसर्वतोभागतयाऽभितो निषण्णपान्थजनवर्ण्यमानरामणीयकं यज्ञमिव विततप्रस्तरवेदिकं[१] प्रतिपक्षक्षोणीपतिसमागममिव संभ्रमदयोधरावरणं[२] राजभवनमिव विचित्रमत्तवारणं[३] वैशेषिकनयमिव [४]द्रव्यगुणस्थिरीकरणप्रवीणं वणिगापणमिव धृतपृथुलतुलं[५] सर इव बहुकीलालं[६] कृतं [७]विशालमपि [८]चन्द्रशालाशोभितशिरःप्रदेशं मनोन्नतमपि[९] विमानाधिकश्रीकं[१०] [११]टङ्कपरिष्कृतमपि [१२] विटङ्कशोभाश्रयमाकल्पस्थायिनं दृढं पुरतः सभामण्डपमण्डितमभिनवं निरमीमपत्प्रासादम्।

मन्ये यत्र सुरापगातटचलद्वीचीभृशान्दोलन-
प्राप्तोत्कर्षतुषारमन्दपवने वासाय बद्धस्पृहः।
कैलासाचलनित्यवासविरसो मन्दादरो मन्दरे
सान्निध्यं बहुमन्यते स्म सगणः श्रीपार्वतीवल्लभः ॥१६९॥

---

१. दर्भमुष्टिः वेदिश्च पाषाणानां वितर्दिका च।

२. संभ्रमदौ त्वराजनकौ योधानां रावरणौ यत्र; सम्यक् भ्रमदयःकीलं धरत्यावरणं यत्र।

३. मदयुक्ता गजा यत्र; विचित्रो मत्तवारणो निर्यूहो यत्र।

४. द्रव्यादिसाधकत्वात्; धनानश्वरतासंपादकत्वाच्च; ५. स्तम्भाधारप्रस्तरा मानदण्डाश्च।

६. बहुजलं कृतं कीलैरलंकृतं च; ७. विस्तृतं शालारहितं च; ८. शिरोगृहेण।

९. प्रमाणेन; १०. प्रमाणशोभारहितं व्योमयानापेक्षया रम्यं च।

११. शस्त्रविशेषैर्निर्मितम्; १२. टङ्कजन्यशोभारहितं कपोतपालिकाभूषितं च।

तस्मिन्सुन्दरमन्दिरे दृढतरे संपूर्णकल्याकृतौ
पत्नी तस्य बतार्च्यदेवनिवहानाह्वातुकामा किमु।
शैवं प्राप पदं प्रसूय तनयामल्पायुषं हा यतः
श्रेयांसि प्रबलान्तरायसहितान्याप्तागमे शुश्रुम ॥१७०॥
पुत्रीकृत्य विधानतो द्विजसुतं पञ्चाब्ददेशं मृतां
वैतानाग्निसमस्तपात्रसहितां संस्कृत्य स प्रेयसीम्।
तादृग्दारवियोगशङ्कुमनिशं चित्ते वहन् दुःसहं
धैर्येणैव यथापुरं कतिपयं कालं बुधोऽयापयत् ॥१७१॥
शमीतरुरिवोद्वहन् हृदयदाहिदुःखानलं
ज्वरेण महता बत प्रतिदिनं प्रशुष्यत्तनुः।
विचार्य चपलाचलं भवमसौ निसर्गारसं
त्वरामतनुतादराद्धरिहरप्रतिष्ठाविधौ ॥१७२॥
सज्जीकृत्य समस्तवस्तुनिचयं देवप्रतिष्ठोचितं
मूर्तीः श्वेतदृषद्भिरुत्तमतमाः संपाद्य च द्योसदाम्।
वृत्वाऽऽचार्यमशेषतद्विधिविदं संभाव्य चर्त्विग्गणं
प्रारब्धुं निदिदेश तीव्ररुजयाक्रान्तोऽपि वैधं विधिम् ॥१७३॥
नन्दाग्न्यङ्कधरामिताब्दगसिताषाढे दशम्यां विधा-
वास्थाप्यन्त यथाविधानममुना तत्पञ्चसूत्रीमितम्।
रुद्रैकादशकं फणीन्द्रशयनः सूर्यो गणेशः शिवा
गङ्गाभैरवतार्क्ष्यमारुतिवृषश्रीदक्षिणामूर्तयः ॥१७४॥
आहूता विबुधास्तदावनिगुरुं नालोक्य संस्थापने
निर्धार्यातिरुजार्दितं तमगमन् या दुर्दशां दुःखिताः।
स्मर्तुं वक्तुमिमां विलेखितुमपि स्याम क्षमाः स्यान्न चे-
च्चेतो दूनतमं सगद्गदजडा वाणी तनुः स्तम्भिता ॥१७५॥
श्रद्धोद्रेकमनीदृशेऽपि समये दृष्ट्वा प्रमोदेन वा
नायातो नियतं रुजार्दित इति प्राप्तेन शोकेन वा।
निर्यद्बाष्पजलाकुलाक्षियुगलाः सभ्याः शिलान्निश्चला
नाविन्दन्त विशेषदर्शनविधौ दाक्ष्यं सधैर्या अपि ॥१७६॥

पूर्वेऽहन्यधिवासितान्सुरवरान् संस्थाप्य तस्मिन्दिने
संप्राप्तं सह ऋत्विजं गुरुवरं संपूज्य धेन्वादिभिः।
सम्यक् पर्यवसायिताखिलविधिः कृत्यावशेषोज्झितो
ब्रह्मण्येव निवेश्य चित्तमनिशं रागं भवेऽसौ जहौ ॥१७७॥

श्रोतुं वक्तुमपाटवं यदभवद्द्रष्टुं मनाक्स्पन्दितुं
तच्चित्तभ्रमसंनिपातजमिति भ्राम्यन्ति केचिन्मुधा।
संध्योपास्तिशिवार्चनश्रुतिशिरः पाठावधानैर्वयं
संपन्नः प्रणवैकतानहृदसावित्येव मन्यामहे ॥१७८॥

आरोग्यार्थिभिरर्पितं बहु हसन् यद्भेषजं सोऽपिबत्
संपत्तित्वरितः कृताखिलविधिर्मत्वा जनान् बालिशान्।
आशिश्वासिषया रुजा धृतित इत्यूचुः क्षणावेक्षका
ब्रह्मात्मैक्यविभावनादिति वयं नित्येक्षका मन्महे ॥१७९॥

इत्थमतिवाह्य स्तोकमनेहसमालोचयन्नेकदिनावशिष्टमुत्तरायणं वसुमतीं विहातुकामो व्यावर्तितनिखिलविषयवासनः प्रणवार्थैकतानमना वितीर्य विप्रनिवहेभ्यो भूरिशो दानानि चिरकालसकलविद्याभारवहनश्रान्त इव बहुमन्यमानो दीर्घनिद्रां त्रयश्चत्वारिंशत्तमे वर्षे यशसैव भूमण्डलममण्डयन्मन्ये च नियतमवापदखण्डब्रह्मरूपताम्।

नातथ्यां किमपीह वाचमवदं नावर्णयं बन्दिव-
न्नात्युक्तिं क्वचिदाश्रयं न कविताप्रागल्भ्यमीषद् व्यधाम्।
नूनं विस्तरवीक्षणालसमतीन् दृष्ट्वा जनान् संकुच-
द्वाक्यः किन्तु गुणैकदेशकथनेनापात्रयं स्वं वचः ॥१८०॥

श्रीमत्तातनृसिंहशास्त्रिचरणस्वर्वृक्षसंसेविनः
पूज्यश्रीगुरुबालशास्त्रिकरुणापीयूषपूतात्मनः।
नन्दाग्न्यङ्कमहीमिते विरचिता संवत्सरे वैक्रमे
स्याद् गङ्गाधरशास्त्रिणः कृतिरियं विद्वज्जनानां मुदे ॥१८१॥ इति ॥

॥ इति श्रीबालशास्त्रिजीवनवृत्तान्तः ॥

बालभारतस्योपसंहारवर्णनम्

श्रीबेचनरामशर्मा
सांख्यशास्त्राध्यापकः
काशीस्थराजकीयपाठालये

[1]यद्भ्रूभङ्गलवेन संसृतिरियं संजायतेऽनारतं
यत्पादाम्बु पुनाति भूमिवलयं शंभोर्जटालङ्कृतिः।
यं ध्यत्वा निजकर्मसिद्धिमनिशं सर्वे लभन्ते जना-
स्तं नौमि प्रतिसंध्यमीश्वरमहं भक्तानुकम्पापरम्॥१॥

अपि च—

यदीयदयया मयैतदुरुकाव्यमुट्टङ्कितं
समापितममायाऽवति निजं जनं योऽञ्चितः।
तडिल्लसितविभ्रमा ननु रमापि यं सेवते
त्रिसंध्यमनुवासरं शिरसि तत्पदं धारये॥२॥

अथेदं बालभारतनामकं काव्यमष्टादशपर्वघटितं चतुश्चत्वारिंशत्सर्गमितं कविहृदयहारकमनवलोकितचरं महाशयपाञ्चालदेशज्ञातचरगवर्नरश्रीमेक्लौट्साहेबवर्येण काशिकराजकीयपाठशालायां कुतश्चित् परिक्रीय स्वनाम्ना संस्थापितं विदुषां दृग्गोचरीभावाय काशीविद्यासुधानिधिनामके पण्डितपत्रे मुद्रणार्हमाकलय्यैकमेव पुस्तकमालम्ब्याशुद्धिबाहुल्यान्महता प्रयत्नेन मया परिशोध्य परिशोध्यारम्भत एकादशसर्गपर्यन्तं मुद्रितम्।

अथ पुस्तकस्यैकस्यैवावलम्बतो मुद्रणेन कारणेन नातितुष्टमनसा प्रति पुस्तकालयं वाराणस्यामस्यां पुनः पुनरन्विष्यमाणं पुस्तकान्तरं महामनसः श्रेष्ठिवरस्य निसर्गतो विद्वदुपकृतिपरस्य **हरिश्चन्द्रेतिसुगृहीतनामधेयस्य** धनिकवर्यस्य सरस्वतीसद्मतस्तदाज्ञयैकमपरमपि पुस्तकमासादितम्। ततश्च पुस्तकान्तरसाहाय्यान्नातिश्रमभृता मया ऋजुरीत्यैव द्वादशतमसर्गमारभ्य त्रिचत्वारिंशत्तमसर्गपर्यन्तमङ्कितम्। मध्ये मध्ये च समीचीनं तदीयं पाठमासाद्य पाठान्तरमपि मुद्रितम्।

अथ चतुश्चत्वारिंशत्तमसर्गमुद्रणावसरे प्रोक्तचरपुस्तकान्तरमपि खण्डितमालक्ष्य पुनस्तदेकमेव पुस्तमालम्ब्य मुद्रयितुकामेन मया दैववशान्मध्ये कतिपयैरक्षरैः पदैः पादैश्च

---

१. पं. ६, ६४ (सितम्बर १, १८७१) ८८-८९. काव्यस्यास्य भूमिका 'पण्डितपरिक्रमा'-प्रथमस्तबके १६१-१६२ पृ. द्रष्टव्या।

रिक्ततां विभाव्य पुस्तकान्तरं चालभमानेन तत्पुस्तकस्य पाठं यथावस्थितमेवागत्याङ्गीकृत्य रिक्तस्थानेषु- - - एवमाकाराक्षराद्यभावसूचकरेखालेखपुरःसरं नातिहृष्टमनसा चतुश्चत्वारिंशत्तमसर्गोऽपि मुद्रित इति।

यदा च क्वचिच्चत्वारिंशत्तमसर्गस्यादर्शान्तरं लप्स्ये तदा पुनर्मुद्रयिष्य इति मदीयां प्रार्थनामाकलयन्तु गुणैकग्रहिणः सुधिय इति।

अथ च प्रतिसर्गमादावग्रिमसर्गश्लोकसंख्यासूचकं ग्रन्थाग्रम् (२५८) इत्येवमङ्कघटितं प्रकारमन्तेऽपि विधान्तरेण दृश्यमानत्वादुपैक्षिपि। सर्गसमाप्तिसमये च पुस्तकद्वयेऽपि इति श्रीत्यादिघटितेषु वाक्येषु पण्डितश्रीमदमरचन्द्रविरचिते इति श्रीबालभारतनाम्नीति क्वचिदुपलभ्य क्वचिच्चानुपलभ्येकयैव परिपाट्या श्रीमदमरचन्द्रविरचिते बालभारतनाम्नीत्येव प्रायो विनिवेशितमिति।

तदित्थमिदं बालभारतनामकं काव्यं सहृदयकविहृदयाह्लादजनकं परमकारुणिकस्य सकलजनमनोऽभिलषितपरिपूर्तिकारकस्य समग्रपरिश्रमान्तर्यामिणो दयाब्धेः श्रीमतो भगवतः परमेश्वरस्यानुकम्पयातिमहदपि मुद्रणविधया समाप्तिं नीतम्। अस्यैव च भगवतः कृपया दिगन्तेषु व्याप्य मुदमावहतु सुधियामवलोकनेनेति।

अत्राज्ञानाद्भ्रान्तिवशाद्वानवहितचित्ततो वा यत् किंचिदशुद्धिमत् पद्यं मुद्रितमुपलक्ष्येत, तदनुकम्पया सुधियः शोधक्षाम्यन्तु च मदीयभागः स्वतः सदुपकृतिपराः सन्तो महामहिमान इत्यलं बहुविलेखनेन तथाविधेषु महात्मसु विपश्चिद्वरेष्विति शिवम्।

■

गोपाललीलाख्यकाव्यस्य उपक्रमवर्णनम्

श्रीबेचनरामशर्मा
सांख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयपाठालये

[1]वदन्ति किल गोकुले वसति केऽपि वृन्दावने
लसन्तमगदन् परेऽथ मथुरागतं केचन।
अहं तु सकलस्थले सुलभतां गतं ध्यायता-
मचिन्त्यविभवं प्रभुं हृदि वसन्तमाराधये॥१॥

अथेदं गोपाललीलाख्यं काव्यं खवेदशरशशिमितविक्रमसमासमीपलब्धजनुषा तैलङ्गदेशगतकाङ्करग्रामनिवासिना लक्ष्मणभट्टात्मजेनेलंमगारुनामकजननीजठररत्नाकरजेन भारद्वाजगोत्रेण कृष्णयजुःसंबन्धितैत्तिरीयशाखेन सोमयाजिना रामचन्द्रेति सुगृहीतनामधेयेन कविरत्नेन भट्टेन कृष्णकुतूहलाद्यनेकसत्काव्यनिर्मात्रा विद्वद्वरेण विरचितं समयद्युमणिपरिशोषितानेकतत्कृतकाव्यसुधाकरत्वेऽपि दैववशादेकं काव्यामृतं महाशयवर**हरिश्चन्द्रश्रेष्ठिनः** सरस्वतीसद्मतस्तत्कृपया समासाद्य तत एव च सर्ववृत्तान्यवगत्य विदुषामवलोकनक्षमं चेदं सुविभाव्य काशीविद्यासुधानिधिनामनि पण्डितपत्रे मुद्रणाय प्रार्थितेन विद्वज्जनहृदयकमलप्रसत्तिभास्वता सुविदुषा महाशयेन श्रीमद्ग्राफसाहेबवर्येण प्रभुवरेण दत्तानुमतिकः सकलसहृदयबुधवरचेतःकुतूहलाय तत्तद्देशेषु प्रचिकाशयिषया सम्प्रति प्रतिपादितचरसुनामनि पत्रेऽस्मिन् मुद्रयितुं प्रवृत्तोऽस्मीति।

अयं किल रामचन्द्रकविः स्वजन्मभुवि तैलङ्गदेश एव व्याकृतिकाव्यसाहित्यादिविद्या अर्जयित्वा पुरुषोत्तमक्षेत्रमागत्य ज्येष्ठभ्रातुर्वल्लभाचार्याच्छराग्निबाणशशिमितविक्रमहायनजातजन्मनो रामानुजाचार्यविष्णुस्वामिमध्वाचार्यनिम्बार्काचार्यप्रवर्तितानां क्रमेण श्री[2]रुद्रमाध्वसनकोपपदानां यथाक्रमं विशिष्टाद्वैतशुद्धाद्वैतशुद्धद्वैतद्वैताद्वैतमतसंबन्धिनां सुप्रसिद्धानां चतुर्णां वैष्णवसम्प्रदायानां मध्ये विष्णुस्वामिशिष्यपरम्परागतसप्तशततमशिष्यानन्तरजविल्वमङ्गललब्धविष्णुस्वामिमतप्रवर्तकाद्भागवतादिव्याख्याकर्तुः प्रस्थानत्रयभाष्यनिर्मातुर्दक्षिणस्यां दिशि कृष्णानामनदीतीरे विद्यानामधेयनगरे कृष्णदेवाभिधराजराजानुमत्या वैष्णवैराचार्य इति कृतां पदवीमभिषेकपुरःसरं प्राप्तवतः सकाशात् सर्वाणि शास्त्राणि मतानि च समधीत्य ज्येष्ठभ्रात्रा तेन वल्लभाचार्येणोपयमनार्थं बोबोध्यमानोऽपि विरक्तप्रकृतिकतया तदसंपाद्यैवायोध्यामागम्य संन्यासीभूय कालक्रमेण परमधाम जगामेति।

---

१. पं. ६.६५ (अक्टूबर २, १८७१) १०८-१०९.

२. ब्रह्मेति पाठान्तरम्।

अस्य वल्लभाचार्यस्य सम्प्रदाये जागरूका वल्लभीयगोस्वामिनाम्ना प्रसिद्धा अद्यापि वैष्णवा बहव उपलभ्यन्ते।

एतन्मते शुद्धाद्वैते जीवपरमेश्वरयोः सेवकसेव्ययोरंशांशिभावो जलबिन्दुजलाशययोरिव, सर्वं चेदं दृश्यजातं परमेश्वरादाविर्भवति, तमेव लूतातन्तुरिवाप्येति च, मायिकगुणरहितः परमेश्वरः श्रीकृष्णो भगवानुपास्यदेवः, एतदुपासनयैव सर्वलोकोपरितनगोलोकप्राप्तावानन्दाविर्भावान्मोक्षो नान्यदेवोपासनया, अन्यदेवोपासनापरश्रुतयस्तु श्रीकृष्णविषयकपरानुरागप्राप्तिद्वारा परम्परया मोक्षसाधिकाः, माध्वमते शुद्धद्वैते जीवः कदापि नेश्वरभावमापद्यतेऽस्मिन् मते तु जीवः श्रीकृष्णाख्य एव परमेश्वरे जलबिन्दुर्जलाशय इवाभेदभावमापद्यत इत्यलमतिप्रसङ्गेनेति शिवम्।

■

गोपाललीलाख्यकाव्यस्य उपसंहारवर्णनम्

[1]ग्राहेणातितरां गृहीतचरणो युध्वा स्वशक्त्या परं
ह्रासं प्राप्य महाह्रदेऽतिविकलो मज्जन् गजेन्द्रोऽवशः।
शुण्डादण्डधृतैकपद्ममदितप्राप्तश्च मुक्तिं यत-
स्तं वन्दे करुणानिधानमसकृद्वृन्दारुवृन्दस्तुतम् ॥१॥

अथेत्थं गोपाललीलाख्यं महाकाव्यं मञ्जुलपद्यवलीकं भूभारावताराय लब्धजनुषो मथुरानगरीवर्णनमारभ्य कंसवधादनूग्रसेनाय राज्याधिकारप्रदानपर्यन्तं या भगवतः श्रीकृष्णस्य लीला तत्तात्पर्यकं सुप्राचीनं पञ्चाशदधिकद्विसहस्रश्लोकसंख्यामितमेकमेव सुदुर्लभं पुस्तकं राधारमणचरणचिन्ताचञ्चरीकाच्छ्रीमद्धरिश्चन्द्रश्रेष्ठिश्रेष्ठादुपलभ्य महता प्रयत्नेन संशोध्याद्यावधि मुद्र्यमाणमिदानीं सकलपरिश्रमसाफल्यकारिणः सर्वान्तर्यामिणः परमकारुणिकस्य श्रीमतः परमेश्वरस्यानुकम्पया निष्प्रत्यूहं मुद्रणविधया समाप्तिं नीतम्।

अस्योक्तचरनामधेयस्य काव्यस्यैकपुस्तकत्वेऽपि तट्टिप्पण्यां क्वचित् क्वचिदुपलब्धानि पाठान्तराणि समीचीनान्यवधृत्य स्थले स्थले मयापि मुद्रितान्यवसेयानि।

■

---

१. पं. ६, ७१ (अप्रैल १, १८७२) २७३.

विद्धशालभञ्जिकाख्यनाटिकायाः प्रस्तावना

श्रीवामनाचार्यः
ज्योतिःशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयपाठालये

[१]अथ प्राचीनोत्तमसरसालंकृतिकाव्यरसांस्वादलोलुपानां सहृदयानां कविवराणां मुदे पठनपाठनादिप्रचाराभावाल्लुप्तप्रायां रसिकजनमनोनन्दिनीं चारुविषयां नाटकेष्वद्वितीयां विद्धलशालभञ्जिकाख्यां नाटिकां प्रकाशयितुमिच्छुरादौ तावद् नाटिकारचयितृस्वरूपगुणादि-वर्णनं कुर्वे ।

एतन्नाटिकारचयिता सूर्यवंशीयो यायावरकुलजन्मा सत्यवतीतनूजो रघुकुलावतंसस्य निर्भरराजस्य महेन्द्रपालस्योपाध्यायोऽतिशूरः केरलक्षितिपालः क्षात्रविद्यानिपुणः संस्कृत-प्राकृतादिसर्वभाषाभिज्ञः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता श्रीराजशेखराभिधो बालकविः कविराजो राजाऽऽसीत् । अयं च केवलया प्राकृतभाषया कर्पूरमञ्जर्याख्यं सट्टकाभिधं नाटकविशेषं प्राकृ-तबहुलातिप्रौढसंस्कृतभाषया विद्वन्मनोहरां विद्धशालभञ्जिकाभिधां नाटिकां बालरामायणाख्यं नाटकं चेति त्रयं संग्रन्थ्य श्रीशङ्कराचार्यपादपूज्येभ्यः समर्प्य तेभ्यो लब्धस्वाभिमतवरो बभूवेति शङ्करविजये श्रीमाधवाचार्येण वर्णनादस्य कवेरतिप्राचीनत्वं गम्यते ।

तत्रोक्तनाटकत्रितयादेकं बालरामायणाख्यं नाटकं श्रीगोविन्ददेवशास्त्रिभिर्महता परिश्र-मेण संशोध्य पूर्वमेव मुद्रितम् । नाटिका चेयं शृङ्गाररसप्रधाना स्थलविशेषेऽद्भुतरसगर्भिता चतुर्भिरङ्कैरुपनिबद्धास्ति ।

तथा चैतत्काव्यस्य सूक्तीनां श्रवणेन सत्काव्यपठनजनितफललाभो भवेदेतत्कवेरेतादृश-गुणवत्त्वं च प्रथमाङ्कस्थसूत्रधारोक्त्या स्फुटमवसीयते । तथा हि—

किमपरमपरैः परोपकारव्यसननिधेर्गणितैर्गुणैरमुष्य ।
रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः ॥

आकर्ण्य च गोष्ठीगरिष्ठस्य कृष्णशङ्करशर्मणो वाचः —

पातुं श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सतां संमता
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः ।
भोक्तुं स्वादुफलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं
तद्भ्रातः शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः ॥

---

१. पं. ६, ६५ (अक्टूबर २, १८७१) ११७.

अथ चास्य काव्यस्य पुस्तकं श्रीगोविन्ददेवशास्त्रिशोधितकतिपयपत्रकं सम्पूर्णं द्वितीयं च खण्डितं श्रीमन्महाराज्ञीसंस्थापितकाशिकराजकीयपाठशालीयसरस्वतीभवनात् संप्राप्य सम्यक् संपूर्णं संशोध्येदानीं संस्कृतपाठशालाध्यक्षश्रीप्रभुवरसाहेबानामनुज्ञया काशीविद्यासुधानिधिपत्रे मुद्रणद्वारेमं ग्रन्थं प्रकाशयितुमुद्यतोऽस्मि। तदत्र प्रकाशितमेतदुत्तमं काव्यं रसिकजनानां मनःसु परमां मुदमातनोत्विति शम्।

■

विद्धशालभञ्जिकाख्यनाटिकाया उपसंहारः

श्रीवामनाचार्यः
ज्योतिःशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयपाठशालायाम्

[१]इत्थं विद्वज्जनस्वान्तानन्दजननी श्रीराजशेखरकविराजप्रणीतविद्धशालभञ्जिकाभिधा नाटिका सर्वत्र संस्कृतवाण्या प्राकृतभाषाया अर्थलेखनेन पाठनाद्यनेकव्यापारवताऽपि यथा कथञ्चिल्लब्धावकाशेन मया सुसंस्कृत्य प्रतिमासं मुद्रणेन देवदेवस्य जेतुः श्रीमदनङ्गरूपिणः श्रीकृष्णस्य भगवतः कृपया निर्विघ्नतया प्रकाशिता। अत्र प्रथमद्वितीयाङ्कयोः स्तम्भोत्कीर्ण-शालभञ्जिकापुत्तलिकोपवर्णनादस्या विद्धशालभञ्जिकानाम्ना व्यपदेशः। अत्र च प्रायः शृङ्गाररस एवोपलभ्यते। नाटिकालक्षणं चोक्तं साहित्यदर्पणे षष्ठपरिच्छेदे—

नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः॥
स्यादन्तःपुरसंबन्धा संगीतव्यापृताऽथ वा।
नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा॥
संप्रवर्तेत नेताऽस्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः।
देवी पुनर्भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा॥
पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः।
वृत्तिः स्यात् कौशिकी स्वल्पविमर्शाः संधयः पुनः॥ इति।

सेयं नाटिका सुरुचिराऽऽलङ्कारिकाणां विदुषां पठनगठनयोग्या महता परिश्रमेण संशोध्य काशीविद्यासुधानिधेः पञ्चषष्टितमाङ्कमारभ्य द्वासप्ततितमाङ्कपर्यन्तैरष्टभिरङ्कैरेतत्पत्रसु-धाचकोरमनोविनोदनाय संप्रकाशिता ज्योत्स्नेव रसिकजनमानसकुमुदानि विकासयन्ती मामकान् संशोधनादिपरिश्रमान् सफलयतादिति जगदीशमुपयाचते।

■

१. पं. ७, ७३ (जून १, १८७२) १९-२०.

कर्पूरमञ्जर्यभिधनाटकविशेषस्य सट्टकस्य प्रस्तावना

श्रीवामनाचार्यः
ज्योतिःशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयपाठालये

[१]अथ खलु तत्रभवान् सकलविद्याविनोदचतुरो बालरामायणविद्धशालभञ्जिकानिर्माता दौहिकिकुलजो यायावरो बालकविः कविराजो राजशेखराभिधः पूर्वोक्तनाटिकोपक्रमे दर्शितगुणगणः केवलया प्राकृतभाषया काव्यविशेषं सट्टकं निर्ममे । तल्लक्षणं चोक्तं साहित्यदर्पणे षष्ठपरिच्छेदे—

सट्टकं प्राकृताशेषपाठ्यं स्यादप्रवेशकम् ।
न च विष्कम्भकोऽप्यत्र प्रचुरश्चाद्भुतो रसः ॥
अङ्का जवनिकाख्याः स्युः स्यादन्यन्नाटिकासमम् ॥ इति ।

अत्र कर्पूरमञ्जर्याः कुन्तलेशसुताया नायिकाया विवाहोपवर्णनाद् एतत्काव्यनामापि कर्पूरमञ्जरीति प्रसिद्धम् । तथा च पारिपार्श्वकवचनम्—

चंदबालधरिणीहरिणको चक्कवत्तिपअलाहणिमित्तम् ।
एत्थ सट्टअवरे रससोत्ते कुंदलाहिवसुदं परिणेदि ॥

एतत्कविना स्वस्य सर्वभाषानिपुणत्वं द्योतयितुं सट्टककरणं स्वाभिधाज्ञापनं च पारिपार्श्वकोक्त्या सूचितम् । तथा हि सव्वभासाचदुरेण तेण भणिदं जेव्व, जहा—

अत्थणिवेसा ते च्चिअ सद्दा ते च्चिअ परिणमंता वि ।
उत्तिविसेसो कव्वो भासा जा होइ सा होउ ॥
परुसा सक्किअबन्धा पाउअबन्धो इदो वि सुउमारो ।
पुरिसमहिलाणं जेत्तिअ महंतरं तेत्तिअ च्चेअ ॥

तथा—

बालकई कइराओ णिब्भरराअस्स तह उवज्झाओ ।
इअ जस्स परंपरए अप्पा माहप्पमारूढो ॥

सो अस्स कई—

---

१. पं. ७, ७३ (जून १, १८७२) २०.

सिरिराअसेहरो त्तिहुअणं पि धवलअंति।
हरिणंकपडिसिद्धीए णिक्कलंका गुणा जस्स॥

अथास्य ग्रन्थस्यैकमेव पुस्तकमशुद्धतरं प्राकृतच्छायासहितं संप्राप्य पुस्तकान्तरान्वेषण-परोप्पलब्धपुस्तकान्तर एतदेव पुस्तकं महतायासेन संशोध्याधुना प्रभुवर्यस्य श्रीमतो गाफ-साहेबस्याज्ञया काशीविद्यासुधानिधिपत्रे मुद्रणद्वारेमं ग्रन्थं प्रकाशयितुमुद्यतोऽस्मि।

प्रार्थये चाहं रसिकजनमनोनन्दनौ संगतावुमामाधवौ, यदेतत्काव्यं मुद्रितं सत्सज्जन-मनस्सु परमां मुदमातनोत्विति शम्।

आनन्दवृन्दावनचम्पूकाव्यस्य प्रस्तावना

श्रीबेचनरामशर्मा
सांख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयपाठालये

[1]सरलं सुजने खलेऽतिवक्रं करुणासिन्धुमपारमात्मभक्ते।
अतिकोपनमासुरे कदम्बे परमं धाम भजामि रामसंज्ञम्॥१॥

प्राचीनसत्कवीनां सत्काव्यं मृगयता मया लब्धम्।
चम्पूनामककाव्यं चम्पूनामुत्तमं मनोहरणम्॥२॥

कविकर्णपूररचितं वासवदत्तादिभिः समानगुणम्।
अपहायाखिलमस्मादेतन्मुद्रार्थमस्मि दत्तमतिः॥३॥

कः सति सुधासमुद्रे धत्ते बुद्धिं सरःसु मलिनेषु।
पक्वे चूतफले को लभ्ये कुरुते धियं फलेऽन्यस्मिन्॥४॥

श्रीमद्ग्रिफिथप्रभुवरसाहेबाग्रयस्य काव्यतत्त्वविदः।
संमतिमाज्ञायाहं प्रावर्तिषि मुद्रणाय हृष्टमनाः॥५॥

अमृतस्यामृतसिन्धौ योगः संशोभते न चान्यत्र।
काव्यं सुधामयमिदं काशीविद्यासुधानिधेर्योग्यम्॥६॥

सूरिमनःकैरवमपि काशीविद्यासुधानिधेर्योगात्।
प्राप्य विकाशं लभतामेतत्काव्यामृतौघनिस्यन्दम्॥७॥

स्वोत्कर्षहेतुं किल मन्यमाना व्यासा अमूं निह्नुवते स्म चम्पूम्।
वृन्दावनस्था अधुना तु सर्वे बुधा रसास्वादसुखं भजन्ताम्॥८॥

वृन्दावने भागवतप्रसङ्गे चम्प्वा अमुष्या वचसां व्रजानाम्।
शुश्रूषयाकृष्टहृदो जनौघाः परःसहस्रा मिलिता अभूवन्॥९॥

सुखवर्तिनीतिनाम्ना वृन्दावनचक्रवर्तिना विहिता।
व्याख्यास्ति मुद्रयिष्ये तामपि सार्धं सुखप्रबोधाय॥१०॥

---

१. पं. ९, १०१ (अक्टूबर १, १८७४) १०३-६.

एकं हरिश्चन्द्रवणिग्वरस्य सरस्वतीसद्मन एव पुस्तम् ।
परं भवानन्दसुधीन्द्रवर्यादापं दुरापं बहुधातिशुद्धम् ॥११ ॥

अस्ति प्रसिद्धालवरेतिसंज्ञा सुराजधानी तदधीशमान्यः ।
तद्राजसंबन्धिसुधीप्रधानमयं भवानन्दबुधोऽस्ति गौडः ॥१२ ॥

अथास्याश्चम्पवा निर्माता कविकर्णपूरो वेदयुगबाणेन्दुमिते (१५२४) ख्रीष्टाब्दे नदियाभिधप्रदेशान्तःपातिकाञ्चनपल्लीनामग्रामे वैद्यकुलोद्भवशिवानन्दसेननाम्नः श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुप्रियपार्षदात् प्रादुर्बभूव । अस्य कवेः पूर्वं परमानन्ददास इत्यभिधानमासीत् ।

किन्तु कृष्णचैतन्यमहाप्रभुचरणैः स्ववितीर्णकाव्यशक्तेरेतत्कवेः काव्यामृतरसतुष्टैः कवीनां कर्णपूरोऽसीति मत्या कविकर्णपूर इति नामान्तरमकारि । स्वयं हृदोपदिश्यापि श्रीनाथपण्डितद्वारा पुनरुपदिष्टश्च ।

एतच्चास्य चम्पूकाव्यस्य व्याख्याकृता "तथा ही"त्यारभ्य कृष्णचैतन्यचरितामृतस्थगद्येनाभिहितम् । तदहमपि प्रदर्शयामि —

"तथा हि कथा श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते । एकदा महाप्रभुर्द्वित्रप्रियसहचरसङ्गी स्वपार्षदप्रवरस्यैतत्पितुः श्रीशिवानन्दसेनस्य सपरिजनस्य रथयात्रादर्शनच्छलेन स्वचरणान्तिकमागतस्यावासमागतः, तेन च ससंभ्रमं वन्दितचरणः, तत्र च बाल्यविलासं प्रपञ्चयन्तं पञ्चवर्षवयसमेतं पित्रा कारितवन्दनमालोक्य साधुस्तवायं पुत्रो जात इत्यभिनन्द्य कृपयैतच्छिरसि चरणं दिधीर्षुर्बाल्यावेशेन मुखं व्यादत्तवन्तमेनं कौतुकेन चरणाङ्गुष्ठमास्वादयामास, दिव्यकाव्यकर्तृत्वशक्तिमप्यलक्षितं संचारयामास, वद वद कृष्ण कृष्णेत्युवाच च, ततोऽसौ शिशुरुत्फुल्लमुखो ब्रूहि ब्रूहीति पित्रादिभिः प्रयुज्यमानोऽपि यदि नानुजगाद, प्रभुरपि विस्मयमभिनीय विश्वमेव कृष्णनाम ग्राहयितुमहमशकं न पुनरिममेकमेवेत्युवाच, तदा श्रीस्वरूपगोस्वामिभिरुक्तम्, भगवता स्वयमेव स्वनाम महामन्त्रमुपदिष्टोऽस्मि कथं पुनस्तमुच्चैरुच्चारयामीत्येवमस्य गम्भीरं हृदयमनुमीयत इति, परे द्यवि वत्स वद किञ्चिदित्युक्त एव प्रभुणा, शीघ्रं पद्यमेकं बबन्ध ।

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दावनतरुणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥१ ॥ इति ।

ततः संतुष्टेन भगवता कविकर्णपूर इति नाम तद्दिनमारभ्य कृतवता तदभीष्टं मन्त्रराजमपि हृदैव स्वयमुपदिश्यापि लोकरीतिख्यापनाय समये श्रीनाथपण्डितद्वारापि पुनरसावुपदिदेश" इति ।

अनेन कविकर्णपूरेणालङ्कारकौस्तुभचैतन्यचन्द्रोदयगौरगणोद्देशदीपिकाबृहत्कृष्णगणोद्देशदीपिकानन्दवृन्दावनचम्प्वादयोऽनेके काव्यग्रन्था रचिताः ।

एतेषु प्रथमोऽलंकारादिज्ञानाय रसव्यङ्ग्यध्वनिगुणादिविषयमयश्चतुर्भिः परिच्छेदैर्द्विसहस्रसंख्यश्लोकैः पूरितः किरणनाम्न्या ग्रन्थकर्तुरिव टिप्पण्या भूषितोऽलङ्कारकौस्तुभो नाम। द्वितीयः कृष्णचैतन्यलीलोद्बोधको दशभिरङ्कैः पूरितः सहस्रत्रयसंख्याकश्लोकमितो रूपगोस्वामिप्रणीतचरकानुकरणस्वरूपश्चैतन्यचन्द्रोदयनाटकनामा। यदन्ते कृष्णचैतन्यमहाप्रभुजन्मशको नाटकनिर्माणशकश्च प्रदर्शितः। तथा च तत्रत्यपद्यम्—

"शाके चतुर्दशशते रविवाजियुक्ते (१४०७)
गौरो हरिर्धरणिमण्डल आविरासीत्।
तस्मिंश्चतुर्नवतिभाजि (१४९४) तदीयलीला-
ग्रन्थोऽयमाविरभवत् कतमस्य वक्त्रात्" ।।इति।

तृतीयो गौरगणोद्देशदीपिकानामको मन्दाक्रान्ताप्रभृतिदीर्घच्छन्दोभी रचितः सपादद्विशतसंख्याकश्लोकमितश्चैतन्याचार्यपार्षदवर्णनरूपः। चतुर्थो बृहत्कृष्णगणोद्देशदीपिकाभिधः कृष्णचैतन्यगणोद्देशक उक्तचरैरेव विस्तारितैर्विषयैः पूर्णः पञ्चशतसंख्याकश्लोकमितः। पञ्चमो भगवल्लीलावर्णनात्मको गद्यपद्यरचनासंवलितो द्वाविंशतिस्तबकः प्रायो द्वादशसहस्रश्लोकसंख्यामितः सम्प्रत्येव मुद्रणाय प्रस्तोष्यमाण आनन्दवृन्दावनचम्पूसमाख्यः। स्तबकविषयविभागश्च टीकाकृता प्रदर्शितः। तथा हि—

"नन्दोत्सवादिरासान्तां होलादोलादिकाधिकाम्।
श्रीकृष्णलीलां जग्रन्थ कर्णपूरो महाकविः।।
एकेन स्तबकेनाह वृन्दारण्यं तदास्पदम्।
बाल्यलीलां ततः षड्भिः प्रादुर्भावमुखां हरेः।।
ततस्तु पञ्चदशभिर्लीलां कैशोरवर्तिनीम्।
एवं द्व्यधिकया चम्पूर्विंशत्या स्तबकैः कृता।।इति।

यद्यप्यस्या निर्माणसमयो मया नोपलब्धस्तथापि चैतन्यचन्द्रोदयनाटकोक्तशकसामीप्यमस्या अप्यनुसन्धेयम्, तन्नाटकस्यास्याश्चम्प्वाश्चैककर्तृकत्वात्।अस्याश्चम्पूत्वं तु—

"गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते"।

इति लक्षणादवसेयम्।

एतट्टीकाकारश्च कश्चन वृन्दावनचक्रवर्ती प्रतिभाति। तथा च तदन्त्यपद्यम्—

राधासरस्तीरकुटीरवर्तिनः प्राप्तव्यवृन्दावनचक्रवर्तिनः।
आनन्दचम्पूविवृतिप्रवर्तिनः सन्तो गतिर्मे सुमहानिवर्तिनः।।इति।

अत्र दीर्घदीर्घेषु गद्येषु यावन्मूलवाक्यं तावन्मात्रव्याख्याया झटिति बुद्धावारोहणार्थं मूलवाक्यमध्ये व्याख्यायां चाङ्का उपन्यस्ताः। अतिह्रस्वेषु गद्येषु बहुवाक्यान्तेऽप्युभयत्रोपन्यस्ताः। क्वचिच्च टीकाभावान्मूलवाक्यान्त एवेत्यप्यनुसन्धेयम्।

असौ वारं वारं निरूप्यमाणनामा पूर्वं प्रतिपादितजन्मशको गौरो हरिरिति कृष्णचैतन्यमहाप्रभुरिति कृष्णचैतन्य इत्यभिधीयमानः पूर्वावस्थायां विश्वम्भरेति प्रसिद्धनामा कालवशादुत्सन्नं भक्तिमार्गं पुनः संस्कृत्य प्रचारयितुमवशिष्टैतत्कृत्यः श्रीकृष्णपरमात्मैव साक्षात् परमेश्वरो गौरवर्णधारी नवद्वीपनगर्यां पुरन्दरमिश्राच्छचीनामतत्पत्न्यां प्रादुर्बभूवेति भक्तिमार्गावलम्बिभिर्वङ्गदेशीयैर्लक्षशस्तन्मतानुयायिभिर्मन्यते। उक्तमेतच्चैतन्यचन्द्रोदयनामनाटके। तथा हि—

"गौडक्षोणी जयति कतमा पुण्यतीर्थावतंस-
प्राया यासौ वहति नगरीं श्रीनवद्वीपनाम्नीम्।
यस्यां चामीकरचयरुचेरीश्वरस्यावतारो
यस्मिन् मूर्ता पुरि पुरि परिस्यन्दते भक्तिदेवी"॥

"कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं गाढं लीयतां चित्तभृङ्गः"॥इति।

"वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये"॥इति।

"गौरत्विषा कपिशयन् ककुभः समन्तादानन्दभोगपरिलोपितबाह्यवृत्तिः।
आबालवृद्धतरुणैरथ लक्षसंख्यैर्लोकैरभूत् प्रणयिभिः परिपूज्यमानः"॥इति च।

अस्य प्रचारणीयं मतं तु श्रीकृष्ण एव सविशेषं ब्रह्म तस्योपासनं सनन्दनाद्युपगीतमविकलः पुरुषार्थः, तस्य साधनं नामसंकीर्तनप्रधानो विविधभक्तियोग इति।

यदा चैषोऽवततार तदा शम्भुरद्वैताचार्यनाम्ना, सङ्कर्षणो नित्यानन्दावधूतनाम्ना, नारदः श्रीवासनाम्नाविरासीत्।

एवमन्येऽपि केचन प्रियसहचराः पार्षदाः, केचन सहायाः, केचन शिष्या इति।

अस्य ज्येष्ठभ्राता विश्वरूपस्तु दारपरिग्रहमकृत्वैव स्वीयं महः पुरीश्वरे संस्थाप्य पूर्वमेव परिव्रज्य तिरोभूतः। तथा च चैतन्यचन्द्रोदयपद्यानि —

"अद्वैताचार्यवर्यो भगवदनवमं शाम्भवं धाम साक्षा-
न्नित्यानन्दावधूतो मह इति महितं हन्त साङ्कर्षणं यः।
श्रीकान्तश्रीपतिभ्यामपि सह विजयी श्रीलरामेण सार्धं
कोऽपि श्रीवासनामा द्विजकुलतिलको नारदीयं हि तेजः ॥

आचार्यरत्नहरिदासमुरारिगङ्गादासादयः सहगदाधरपण्डिताद्याः
विद्यानिधिप्रभृतयोऽपि च वासुदेवाचार्यादयः सहमुकुन्दमुखास्तथान्ये ॥

श्रीवक्रेश्वरवान् नृसिंहसहितः शुक्लाम्बरेणाच्युतः
श्रीदामोदरशङ्करौ च जगदानन्दं च मुख्यं दधत्।
नानाभावविलासलास्यरसिकः प्रेमास्पदानां गणो
यद्बाल्यावधि बान्धवः स जगतीत्राणाय भूमिं गतः ॥

अस्याग्रजस्त्वकृतदारपरिग्रहः सन् संकर्षणः स भगवान् भुवि विश्वरूपः।
स्वीयं महः किल पुरीश्वरमापयित्वा पूर्वं परिव्रजित एव तिरोबभूव" ॥इति ।

तथास्य प्रभोः प्रियपरिजनाः श्रीदामोदरस्वरूपश्रीरामानन्दरायरूपसनातनाद्या नमस्कृति-परैतच्चम्पूपद्यव्याख्यात्राभिहिताः। अपरं च—

श्रीवल्लभाचार्य इति प्रसिद्धः श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुश्च ।
काश्मीरिवर्यो बुधकेशवोऽमी मिथश्च मित्राणि मिथः सहायाः ॥

तदेवंप्रभावः कृष्णचैतन्यमहाप्रभुः कृतदारपरिग्रहः कियन्तं कालं नीत्वाथ सातिशयं विरक्तः कलत्रमपि परित्यज्य काषायवसनो वृन्दावनमध्युवास। अन्ते च ततः परावृत्य जगन्नाथपुर्यां तनुमहासीदित्यादिकथाविस्तरश्चैतन्यचन्द्रोदयादौ द्रष्टव्यः।

अस्यैव भगवतः कृपया कविकर्णपूरस्य काव्यनिर्माणप्रौढिमाजनीति कविकर्णपूरेण चैतन्यचन्द्रोदयेऽभिहितम्।

"अस्योच्छिष्टप्रसादादयमजनि मम प्रौढिमा काव्यरूपी" इत्यादीति, कृतं पल्लवितेनेति शिवम्।

तातप्रतिश्रुतवचः परिपालनाय राज्यं जहौ रविसमो वनमध्युवास।
हत्वा जगद्रिपुगणं भरतानुरोधादङ्गीचकार च ससीतमजं तमीडे ॥

स एव भगवान् मम प्रसुवतान्मनोवाञ्छितं
करोतु सफलं श्रमं प्रथितिमेतु चम्पूरियम्।
अहर्निशमनेकधा स्वजनकामनावाप्तये
तनोति वपुरञ्जसा निजजनानुकम्पापरः॥

काशीस्थराजसम्बन्धिपाठशालीयपण्डितः।
सांख्यशास्त्राधिकार्यस्मि त्रिपाठी बेचनाभिधः॥

■

आनन्दवृन्दावनचम्पूकाव्यस्य उपसंहारः

[१]सकृदपि स्मृतिगोचरतां गतः सकलमङ्गलमाशु तनोति यः।
तमिह कारुणिकं परमेश्वरं जनमनीषितसिद्धिकरं भजे ॥१॥

आनन्दवृन्दावननामचम्पूः श्रीकर्णपूरेण विनिर्मितैषा।
श्रीमज्जहाँगीरमहीमहेन्द्रसभाप्रधानेन महामहिम्ना ॥२॥

पारसीकगिरि संनिपुणोऽयं ग्रन्थनिर्मितिकृदास च तत्र।
अन्यदस्य निखिलं जनिवृत्तं प्राङ्मयास्ति विनिवेदितमेव ॥३॥

तथा च तत्कृतपारसीकपदप्रधानाभिधसन्दर्भस्य पद्यम्—

"श्रीमज्जहाँगीरमहीमहेन्द्रप्रसादमासाद्य निदेशरूपम्।
करोत्यदः संस्कृतपारसीकपदप्रधानं कविकर्णपूरः"॥ इति।

अस्या उपक्रमे यो मयाभ्यधायि प्रवृत्तिहेत्वादिः।
तद्दर्शनतः शेषं वृत्तं जानन्तु विद्वांसः ॥४॥

अस्याश्चम्प्वा मुद्रणारम्भसमाप्तिसमयौ च निरूप्येते—

ख्रीष्टाब्देऽब्ध्यद्रिनागौषधिपतिमितिके १८७४ मासि चाक्तूबराख्ये
सव्याख्यारम्भि चम्पूर्बुधजनसुमनोमोदिनी मुद्रणाय।
हस्त्यद्यष्टेन्दुसंज्ञायुजि १८७८ शरदि तथा मासि चागस्तसंज्ञे
सैषा नीता सटीका मुरहरकृपया मुद्रयित्वा समाप्तिम् ॥५॥

सेयं काव्यरसज्ञसज्जनमनोमोदायनं सर्वथा
दुष्प्रापा यदभूदशेषविदुषां तस्मान्मया मुद्रिता।
भूयादद्य दृशां गता विषयतां संख्यावतां येन मे
श्रान्तिः स्यात् सफला परिश्रमफलं को नाम नाकाङ्क्षति ॥६॥

मुद्रणावसरे चास्या मध्ये मध्ये स्वसंकेतितार्थसूचका बहवो बिन्दवो मयोपन्यस्तास्तेषामभिप्रायश्चाग्रिमपद्यद्वयेनोच्यते।

यत्राविभागोऽभिमतः पदानां विभज्य बिन्दुर्निहितोऽस्ति तत्र।
क्वचित् पदानामवसानबोधी क्वचिच्च शब्दैक्यमतेर्विधायी ॥७॥

---

१. पं., ३ न्यू. सि., (अगस्त १, १८७८) १८९-१९२.

स्पष्टप्रतीत्यै प्रथमोऽस्ति बिन्दुः परोऽवसानाश्रयकार्यसिद्ध्यै।
तृतीय आस्ते यमकानुरोधात् पाठाय तुल्याकृतिबुद्धिकारी ॥८॥

एतेषामुदाहरणानि यथायथं मतिमद्भिरिमान्यधो निवेशितानि ज्ञेयानि।

गजाद्रिवसुचन्द्र१८७८मितख्रीष्टाब्दगतजुलाईसंज्ञकमासमुद्रितपण्डितपत्रे—

पृ. १०४ प. १ चकार. इति। पृ. १०८ प. ११ श्रमबाधाः लयावाप्त्या। पृ. १०८ प. १८ महे. उत्सवे। पृ. १०९ प. १२ उज्जगाम. अभ्युत्थितवती। पृ. ११३ प. १४ ललितोपवनकुञ्जराणाम्. अजिरेषु. उपविविशुरित्यन्वयः। पृ. ११३ प. १६ मत्या. ऊढेन। पृ. ११६ प. २४ यद् यस्मात्. अयमिन्दुस्तव। पृ. ११७ प. १३ चषकात्. एकस्मात्. चषकात्. चषकान्तः अन्यस्त। पृ. ११९ प. २५ तदाकलनखेदेव खे. देववधूततिरपि। पृ. १२२ प. १७ विगतत्रपे तत्र. पेशलताशलता। इत्यादि।

अस्याश्चम्वाः प्रस्तावनावर्णनावसरे एकाधिकशततमे पण्डितपत्रे चतुरधिकैकशततमे पृष्ठे पञ्चमपङ्क्तौ "पित्रा कारितवन्दनम्" इत्यस्य स्थाने "पित्रा कारिवन्दनम्" इति तथा तत्रैव षडधिकैकशततमे पृष्ठे पञ्चत्रिंशत्तमपङ्क्तौ "रविसमो वनमध्युवास" इत्यस्य स्थाने "रविसमा वनमध्युवास" इति च मुद्रितमवलोक्य विपुलचम्वामस्यां बहून् मुद्रकदोषास्तर्कयता तथैव स्वस्यापि प्रायः स्खलनमाशङ्कमानेन ग्रन्थविस्तरभिया शुद्धिपत्रं विधायान्ते मुद्रयितुमशक्नुवता च मया विचारनिपुणा गुणैकावचयसंनियुक्तमतयः क्षमासाराः संख्यावन्तः प्रार्थ्यन्ते।

तीर्णो बाहुबलेन किं न जलधिश्चम्पूर्यदेषा मया
नीताद्यास्ति समाप्तिमायततमा मुद्राविधानात्मना।
अस्यां मुद्रकशोधकभ्रमवशाद् या स्यादशुद्धिः क्वचित्
तां क्षाम्यन्तु विपश्चितः श्रमविदः कृत्वाञ्जलिं प्रार्थये ॥९॥

गौरीग्रामे कान्यकुब्जप्रसिद्धे पूर्वं जाता यस्य नित्यं न्यवात्सुः।
अद्याप्यास्ते तत्र यद्बन्धुवर्गो वास्तव्यो यो जन्मना काशिकायाः ॥१०॥

काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालये नियुक्तोऽहम्।
सांख्याध्यापनकृत्ये बेचनरामस्त्रिपाठ्युपाख्योऽस्मि ॥११॥

॥ युग्मम् ॥

व्याकरणदीपिकाया भूमिका

श्रीगणपतिशास्त्री मोकाटे

[१]इह खलु यत्किमपि गीर्वाणवाणीमयं न्यायवैशेषिकादिशास्त्रमधिजिगांसवो जना आदौ व्याकरणशास्त्रमेव सर्वशास्त्रोपकारकमिति मन्वाना इन्द्रचन्द्राद्यनेकविद्वत्तमप्रणीतेषु व्याकरण-स्मृत्यन्तरेषु सत्स्वपि सकलव्याकरणतत्त्वसञ्चयाद्यनेकगुणगरिष्ठां समस्तशब्दशास्त्रातिशायिनीं लौकिकालौकिकोभयविधशब्दसाधुत्वप्रदर्शिकामष्टभिरध्यायैरुपनिबद्धां पाणिनीयस्मृतिमेवा-ध्येतुं प्रवर्तमाना दृश्यन्त इति न तिरोहितं विदुषाम्। तदस्याः पाणिनीयस्मृतेरतिदुरूहगभीरार्थ-प्रतिपादकभाष्यकैयटादितः शब्दतत्त्वं निर्णेतुं न शक्नुवन्तीति पर्यालोचयद्भिः परमकारुणिकै-र्महामहोपाध्यायभट्टोजीदीक्षितैः सूत्रपाठव्युत्क्रमेण तत्तत्प्रकरणान्युपनिबध्य पाणिनीयसूत्र-व्याख्या सिद्धान्तकौमुदी नाम व्यरच्यत। सा च यद्यपि सम्प्रति सकलगुणगरिष्ठतया सर्वस्मिन् भारते वर्षे पठनपाठनैरतिप्रचुरप्रचारा चकास्तितमाम्। तथाप्यत्रोपनिबद्धानां फक्किकानामति-दुरूहतया न सा मन्दसाधारणानुपकरोतीत्यालोच्य सुकुमारमतीनां सुखेन तदर्थावबोधाय महान्तमुपकारमादधाना सूत्रार्थतदुदाहरणप्रत्युदाहरणप्रदीपिका व्याकरणदीपिका नाम सरला पाणिनीयसूत्रवृत्तिर्व्यरच्यत **श्रीधोंडभट्टविश्वरूपात्मजेन वैद्यनाथभट्टविश्वरूपापरनामधेयेन ओरम्भट्टेन**। ग्रन्थकारश्चायं महाराष्ट्रकुलोत्पन्नः शेखरकारादर्वाचीन एव **काशीनाथशास्त्रि-**समानकालिक इति अभियुक्तव्यवहारादिना ज्ञायते।

उक्तशास्त्रिणश्च **महामहोपाध्यायबालशास्त्रिणां** परमगुरवो वैयाकरणकेशरीति नाम्ना प्रथितयशसो राजकीयसंस्कृतपाठशालायामध्यापयन्तो वैक्रमे १९१६ संवत्सरे पाठशालां विससर्जुः वैक्रमे १९१९ संवत्सरे च परलोकं जग्मुरिति ग्रन्थनिर्माणकालो द्विपञ्चाशद्वर्षेभ्यः पराचीनं वेति सुस्पष्टमेव।

इयं चामुद्रिता सती न सर्वेषां जनानामुपकारं कुर्यादित्यालोच्य काशीस्थराजकीयसंस्कृत-पाठशालीयसरस्वतीभवनाध्यक्षैः श्रीविद्वद्वर**विन्ध्येश्वरीप्रसाद**पण्डितैः प्रोत्साहितस्तेभ्य एवैकं नातिशुद्धं पुस्तकं समासाद्य लाजरसयन्त्रालयाध्यक्ष**भगवतीप्रसाद**महोदयैः प्रवर्तितोऽहं संशोध्य प्राकाशयमिमां वृत्तिम्। तदिमामवलोकयन्तु शास्त्ररसिकाः क्षाम्यन्तु च दृष्टिदोषेण सीसका-क्षरयोजकदोषेण वानुपलक्षितानशुद्धिदोषान् सफलयन्तु च मामकीनं परिश्रमं गुणैकपक्षपातिन इत्यभ्यर्थयते

"मोकाटे" इत्युपाह्वगणपतिशास्त्री।

---

१. पं. ३८, न्यू. सि. (१९१६) १-२.

परिभाषेन्दुशेखरस्य अकाण्डताण्डवस्य प्रस्तावना

श्रीद्विवेदहरिनाथमनीषी
काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयाध्यापकः

[१]नमः परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीविशुद्धानन्दसरस्वतीपूज्यपादेभ्यः सुधीवरेभ्यः श्रीबालशास्त्रिश्रीकैलासचन्द्रशर्म्मशिरोमणिद्विवेदश्रीदेवदत्तशर्म्मचरणेभ्यश्चाज्ञानध्वान्तप्रचण्ड-मार्त्तण्डेभ्यो गुरुवरेभ्यः ।

यस्मै सर्वमभीष्टं स्याद् यः स्वरूपेण भासते ।
अभावाप्रतियोगीशो भासतां सर्वहृद्ययम् ॥१ ॥

सुतादिवाञ्छोर्म्यभिदोलितां मे मनोजबाणाहितरन्ध्रपूर्णाम् ।
अनेकजन्मार्ज्जितपुण्यपापपाषाणभारैः सुविदीर्य्यमाणाम् ॥२ ॥

तारुण्यनक्रोग्रधनादिलाभस्वातन्त्र्यदंष्ट्रावलिगर्भमाप्ताम् ।
स्वान्याबलापाङ्गतिमिङ्गिलौघपुच्छावलीजर्ज्जरितार्द्धभागाम् ॥३ ॥

कुतर्कदुष्कर्कटसंगृहीतशास्त्रावलीक्षेपणिकाग्रभागाम् ।
संसारवात्सल्यमहाहिगीर्णसद्गुर्वरित्रार्द्धविशालदेहाम् ॥४ ॥

स्वमातृवात्सल्यकृपाणभिन्नवैराग्यसत्कूपकगाढमूलाम् ।
आपातरम्याखिलकर्म्ममाध्वीपानप्रमत्तानरिपोतवाहाम् ॥५ ॥

संसाररत्नाकरदुर्निवारनारीजनावर्त्तविघूर्णमानाम् ।
क्रोधादियादोगणवज्रदंष्ट्रागृहीततत्तन्निजयोग्यभागाम् ॥६ ॥

अनादिकर्म्मोर्ज्जितभद्रदुःखसमूहभारोद्वहनेन जीर्णाम् ।
लोकैषणाहस्तभतीव्रझञ्झावाताहिताऽस्वस्थतिकां मनीषाम् ॥७ ॥

निमज्जतीं क्षुद्रतरिं भवाब्धौ हाहाऽशरण्यां मतिबाह्यकीर्त्तेः ।
लोकोत्तराचारतपःप्रभावाद्विचित्रविद्याधरकर्णधारात् ॥८ ॥

अनाथदेहोद्धरणैकहेतुगृहीतकाशीस्थसुपूज्यमूर्त्तेः ।
श्रीविश्वनाथाद्गुरुपूज्यतातात् कोऽन्यो भवेत् पारयितुं समर्थः ॥९ ॥

॥पद्याष्टकमेकक्रियान्वयि ॥

---

१. प. ६ न्यू. सि. (१८८४) ५४१-५४३.

घटादिकं स्वावयवप्रतिष्ठाभावस्य सिद्धं प्रतियोग्यपीत्थम्।
स्ववृत्तिधर्म्मात् सदिवावभाति यत्सत्तया तत्परमं महोऽहम्॥१०॥

स खलु भगवान् सर्वान्तर्यामी जगत्साक्षी सच्चिदानन्दमूर्त्तिः स्वीयाऽनाद्यविद्या-विस्फूर्जितं समस्तं स्थावरजङ्गमात्मकं परमार्थतो बाधितमप्यधिष्ठानभावेन स्वेच्छयैव परिकल्पयन्ननुभवन्निव कल्पितेनैव विलक्षणसम्बन्धेनान्तःकरणवृत्तिसुखदुःखादीन्, परिच्छेद-मल्पज्ञतादिकं चाप्त इवेति सर्वजनीनः सहजः प्रसिद्धोऽनुभवः।

एवं दीनभावमाप्तस्येव जगत्प्रभोर्विस्मृतस्वकण्ठगतहारप्राप्तिरूपपुरुषार्थ आप्तपरपुरुष-वाक्यानीव स्वस्वरूपप्रकाशलक्षणपरमपुरुषार्थे परमार्थतः सद्रूपेऽप्यसन्त्यपि गुरुवेदान्तवाक्या-दीनि मार्त्तण्डमण्डलगतरन्ध्रवत्स्वप्नशुभाशुभसूचकनानाविधपदार्थवच्च पराभिमतसद्रूपतत्त-च्छुभाशुभेष्विवोपयुज्यन्त इत्यपि बहुषु वेदान्तमहामान्यनिबन्धेषु विस्तरेणाऽभ्यधायि।

एवं ते वेदान्तमहामान्यनिबन्धाः प्राचीनतरसंस्कृतभाषायामेवोपनिबद्धा इत्यपि सुप्रसि-द्धमेव। एवं च तद्भाषाज्ञानप्रधानोपायभूतव्याकरणस्य वेदाङ्गमुख्यत्वं महाभाष्यकाराद्यभिहितं युक्ततममेव।

अथ सर्वजनकमनीयस्वस्वरूपप्रकाशमारुरुक्षूणां प्रथमकक्षाभूतं व्याकरणमधिजिग-मिषूणां यथा परिभाषेन्दुशेखराभिधानो ग्रन्थ उपकरोति यावत्यश्चास्य टीका या च तत्संपा-दनानुसंधानादेर्मूलग्रन्थविषयपरिशोधनोपयोगिता यावांश्च तत्संपादने परिश्रमो या च तासां टीकानां सत्त्वेऽप्यभिनवटिप्पण्या आवश्यकता यश्चानया ज्ञानवृद्ध्यादिस्तत्सर्वं सारासारविवे-काख्यां सपरिकरपरिभाषेन्दुशेखरव्याख्यां निर्मातुं मुद्रयितुं च प्रारिप्सवो महतीं भूमिकामा-स्थापयन्तो **गुरुवरबालशास्त्रिण** एव षट्षष्ट्युत्तराष्टादशशततमखीष्टशकदशममासप्रकाशिते पण्डितपत्रे मुद्रयित्वा प्राकाशयन्, निरमिन्वन्नमुद्रयंश्च यथावकाशं तृतीयपरिभाषापर्यन्तामुक्त-व्याख्याम्।

अधुना मद्गुरुवराणां प्रागुक्तोद्योगापूर्तिलक्षणं बहुजनमनःशङ्कुं तत्सौहार्दपारवश्येनोद्धा-रयितुं बद्धपरिकराणां माननीयप्रधानानां श्रीयुतपण्डितवर**बेचनरामशर्म्मत्रिपाठिनां** प्रोत्साहन-मेवैकमवलम्ब्य सारासारविवेकप्रौढधिषणाशततमांशमनीषाविकलोऽलभमानश्च तावतीष्टीका मुद्रिता अपि भैरवीशाङ्करीत्रिपथगामान्युदेवीरुदरपूर्त्यादिव्यापारव्यग्रचित्ततया सर्व्वत्रानवलोक-मानोऽवलोकमानश्च स्थले स्थलेऽत्यल्पमनीषतया याथार्थ्येन तत्तात्पर्य्यमनधिगच्छन्नप्यहमन्व-र्थनामकमकाण्डताण्डवाभिधानं मूलग्रन्थस्वरूपविवरणं चतुर्थीं परिभाषामारभ्य यथावकाशं सङ्कलयितुं समीहे।

संयाचे च मान्यविद्वज्जनान्, मदीयं साहसमनाकलयन्त एनदक्षरशोऽवलोकयन्तोऽस्य सारासारौ विवेचयन्त आविष्कुर्वन्तश्च मयि पूर्णदयां परिशोधयन्तश्चास्य रभसादिलिखितस्थ-लान्येनदध्याप्यग्रन्थगणनानर्हमप्यध्याप्यवर्गे स्वकीयाशीराशिभिर्निवेशयन्त्विति।

यतो भवेच्चेदेनेनापि कस्यचिज्ज्ञानवृद्धिस्तर्हि सर्वस्याप्युद्योगस्य मदीयस्य संभाव्यते साफल्यम् ।

आशासे चैतस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्या, संस्कृतविद्यावर्द्धनासाधारणरसिककाशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयाध्यक्षप्रधानप्रभुवरडाक्टरथीबोसाहेबमहाशयस्यैतदसाधारणकारणरूपया परमयोन्नत्या च बोधस्वरूपः सर्वान्तर्यामी परमात्मा प्रसीदत्वितीति ।

■

माधवीयधातुवृत्तेर्भूमिका

श्रीदामोदरशास्त्री, श्रीगङ्गाधरशास्त्री
व्याकरणशास्त्र-साहित्यशास्त्राध्यापकौ
काशिकराजकीयप्रधानपाठालये

[1]इह किल भारतवर्षे सकलदर्शनानां प्रचारे सत्यपि साम्प्रतं वेदाङ्गेषु प्रधानमिति व्युत्पत्सु जनानामसाधारणोपकारनिदानमिति च व्याकरणं विद्वद्भिरतीवाद्रियते। तच्च भगवता पाणिनिना सूत्रपाठगणपाठधातुपाठलिङ्गानुशासनैश्चतुर्धा विभक्तमतिसंक्षिप्ततया न्यूनांशपरिपूरणेनात्यावश्यकाक्षेपसमाधिप्रदर्शनेन च मुनिना कात्यायनेन संपादितकल्पवैशद्यमपि विस्तृतेन व्याख्यानेन भगवता भाष्यकारेण पतञ्जलिना सुपरिष्कृतं विजयतेतराम्। क्रमेण संप्रदायस्य विरलीभावेन भाष्यस्य गूढाशयतया तत्रत्यानामभ्युपगमवादानामेकदेशिवादानां सिद्धान्तवादानां च दुरूहतया मन्दमतीनां ततोऽभीष्टसिद्धावन्तरायमालोच्य सरलान् निबन्धान् निर्मिण्वतामर्वाचां विभिन्ना-विभिन्ना शैली लक्ष्यते केचन सूत्रपाठक्रमेण व्याचख्युस्ततः शब्दसिद्धौ भूयांसं विलम्बमवगम्य तत्तच्छब्दसाधुत्वोपयोगिनां भिन्नभिन्नप्रकरणपठितानामपि वचनानामेकत्र संकलनपूर्वकं चापरे तेऽपि धातुपाठे व्यत्यासकरणे विशेषमलभमानास्तं तथैवोददीधरन्। वेदभाष्यकारः सकलविद्वन्माननीयमनीषी माधवाचार्यस्तु शब्दयोनिश्च धातव इत्यभियुक्तोक्तिं सर्वं नाम धातुजमाह शकटस्य च तोकमिति भाष्यकारोक्तिं च मनसिकृत्य सर्वानेव शब्दान् साक्षात्परम्परया वा धातुप्रकृतिकानेव मन्यमानो धातुपाठमेव मुख्यस्थाने प्रकल्प्य तद्व्याख्यानक्रमेण तिङन्तरूपाणि कृदन्तरूपाणि तत एव सुब्विभक्तितद्धितादिप्रत्ययांश्च प्रदिदर्शयिषुः प्रामाणिकभाष्यकारादिवचनोपन्यासपुरःसरं धातुवृत्तिनामिकां नातिविस्तरां वृत्तिं निर्ममे। तामिमां वृत्तिं सौष्ठवातिशयादनल्पजनोपकरणीं निश्चिन्वता विद्यैकपक्षपातिना काशिकराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालाध्यक्षेण श्रीयुतथिबोसाहिबमहाशयेनानुमतावनासादितशुद्धपुस्तकावपि खण्डिताखण्डितानि द्वित्राणि पुस्तकाणि समाहृत्य प्रावर्तावहि काशीविद्यासुधानिधिनामकपत्रद्वारा तत्प्रकाशने। सम्प्रत्युपलब्धपुस्तकानामत्यशुद्धतया चिरं विचार्य शोधयन्तावपि यत्र द्वित्रेष्वपि पुस्तकेष्वेकरूपमेव पाठमीक्षावहे तं तथैव निवेशयावहे प्रार्थयावहे च महोदयान् कस्यापि समीपे पवित्रं चेत्पुस्तकं स्यात्तर्हि तत्प्रेषणेनानुगृह्णन्तु येन तदुत्तरमपि निर्दूषणं भवेदेतत्कार्यमन्ततः शुद्धिपत्रद्वारापि। मुहुरर्थयावहे च भगवन्तं सर्वान्तर्यामिणं जगदीश्वरं दुःसाधमेतत्कार्यं निरन्तरायं परिपूर्यतां तन्वन्तु चावयोः परिश्रमं फलेग्रहिममुष्मिन्नयनार्पणायासपरिग्रहानुग्रहेण विद्याविनोदरसिका इति।

संवत् १९३९ ज्येष्ठकृष्ण १४ भौमे,
सन् १८८२, मई १६

---

१. पं., ४ न्यू. सि., (१८८२) १३६-१३७.

माधवीयधातुवृत्तेरुपसंहारः

श्रीभारद्वाजदामोदरशास्त्री
व्याकरणप्रधानाध्यापकः
काशिकराजकीयपाठशालायाम्

[१]पुरा किल काशिकराजकीयप्रधानपाठशालाध्यक्षैः श्रीयुतथिबोसाहेबमहाशयैरनुमतेन महामहोपाध्यायश्रीयुतगङ्गाधरशास्त्रिणा मया च खण्डितान्येव द्वित्राणि पुस्तकानि काशीस्थ-राजकीयपुस्तकालयतस्समासाद्य काशिविद्यासुधानिधौ मुद्रयितुमुपक्रान्तामपि धातुवृत्तिं पुस्तकानामत्यन्ताशुद्धतयाऽपरिपूर्णतया च भ्वादिगणपर्यन्तामेव मुद्रयित्वा विरमितमावाभ्यां तन्मुद्रणम् ।

तामिमां वृत्तिं सौष्ठवातिशयादनतिविस्तृतत्वाच्च व्याकरणनिखिलविषयानल्पेनैवायासे-नावजिगमिषूणामभ्यसिसिषूणाञ्चात्यन्ताह्लादप्रदामाकलय्य तस्या मुद्रणे दत्तचित्तैराङ्ग्लदेशम-लङ्कुर्वाणैः श्रीयुतवेनिससाहेबमहोदयैस्तत एव पुस्तकद्वयं समासाद्य तत्प्रकाशने नियुक्तोऽपि सम्प्रेषितपुस्तकद्वयस्य चापरिपूर्णतया कथमयं कार्यभार उद्वहनीय इति चिन्तयमानः काशि-कराजकीयपाठशालीयत्रुटितपुस्तकेष्वन्तिमं पत्रद्वयं श्रीयुतविन्ध्येश्वरीप्रसादपण्डितानां साहाय्येन समासाद्य परिज्ञाय च ग्रन्थसमाप्तिं तन्मुद्रणे प्रवृत्तोऽहं पुस्तकानामत्यन्ताशुद्धतया महता परि-श्रमेण संशोध्य प्राकाशयं माधवीयां धातुवृत्तिम् ।

इयञ्च नाम्ना माधवीया धातुवृत्तिर्न तु माधवनिर्मितेति—

तेन मायणपुत्रेण सायणेन मनीषिणा ।
आख्यया माधवीयेयं धातुवृत्तिर्विरच्यते ॥

इति ग्रन्थकर्तुः श्लोकत एव निर्धार्यते ।

अयञ्च सायणो माधवसहोदरः[२] कम्पराजसुतसंगममहाराजप्रधानामात्यः स्वकुलनाम्नैव प्रसिद्धिं गतः । एतस्य कुलनाम सायणेति—

---

१. पं., १८, न्यू. सि., ११ (नवम्बर, १८९६) ६०९-१०.

२. अयं च माधवाचार्यस्य कनिष्ठो भ्राता वेदार्थप्रकाशकश्चेति—

स प्राह नृपतिं राजन् सायणार्यो ममानुजः ।
सर्वं वेत्त्येष वेदानां व्याख्यातृत्वे नियुज्यताम् ॥

इत्यादितैत्तिरीयसंहिताभाष्यग्रन्थसन्दर्भतो निर्णीयते ।

श्रीमत्सायणदुग्धाब्धिकौस्तुभेन महौजसा ।
क्रियते माधवार्येण सर्वदर्शनसंग्रहः ॥

इति श्रीयुतमाधवाचार्यनिर्मितसर्वदर्शनसंग्रहश्लोकतो निश्चीयते । अत एव माधवाचार्याणाम्—

पूर्वेषामतिदुस्तराणि सुतरामालोड्य शास्त्राण्यसौ
श्रीमत्सायणमाधवः प्रभुरुपन्यास्थत्सतां प्रीतये ।
दूरोत्सारितमत्सरेण मनसा शृण्वन्तु तत् सज्जना
माल्यं कस्य विचित्रपुष्परचितं प्रीत्यै न सञ्जायते ॥

इत्यादिषु साय्णमाधव इत्युल्लेख उपपद्यते । अस्य च ग्रन्थकर्तुरुत्पत्तिसमयादिकं वृत्तं माधवसहोदरत्वाद् माधववृत्तेनैव गतार्थमिति तद्विषये लेखनीव्यापारश्चर्वितचर्वणमिवेति नेह प्रतायते ।

सम्प्रति चोपलब्धानां पुस्तकानामत्यन्ताशुद्धतया संदिग्धेषु स्थलेषु भाष्यवृत्तिकैयटपदमञ्जर्यादिग्रन्थपर्यालोचनादिमहाप्रयासेन निर्णीतेष्वपि पाठेषु अन्यत्र च भ्रान्त्या सीसाक्षरव्यत्यासेन शोधकदृष्टिदोषेण वाऽपर्यालोचितानशुद्धिदोषान् क्षाम्यन्तु प्राचीनग्रन्थपरिशीलनशालिनो गुणैकपक्षपातिनो विद्वांसः, सफलयन्तु च मामकीनं परिश्रमं धातुवृत्तिपठनपाठनपर्यालोचनादिनेति भृशमभ्यर्थय ।

भाद्रसुदि १ भौमे
संवत् १९५३

■

शाकटायनव्याकरणस्योपसंहारः

श्रीमुन्नालालजैनः

[1]यो वाकलीवाल उपाह्वपन्नालालेति लोकप्रथितः प्रकीर्तिः।
आबालमभ्यस्तसमस्तजैनसिद्धान्तसंसिद्धविशुद्धबोधः ॥१॥
महर्षिसँस्मारकरार्षलुप्तप्रायार्यग्रन्थान् बहुशो विशोध्य।
संस्कारसंस्कारितसंस्कृतार्थो जीयाच्छतं संस्कृतसंस्कृतार्थः ॥२॥
श्रीमज्जिनेन्द्रचरणाम्बुजजातमोदः कामादिहायनविधौ कृतवीर्यकृत्यः।
स्वर्गापवर्गगममार्गविसूचकश्च सोऽयं करोतु मम बोधसमृद्धिभूतिम् ॥३॥

अथाद्य श्रीमज्जगन्नमस्करणीयं प्रातःस्मरणीयं जैनजातिसमुत्पन्नविदुषामविदुषाञ्चानेकविधोपकारकं सामान्यतः खलाखलाखिलभारतीयोपकारकं श्रीगुरुवर्यपन्नालालवाकलीवालचरणसरोजद्वयं प्रणम्य तेषामनेकोपकारकरणकार्यमनुस्मृत्य तद्वशीभूय प्रमोदप्रस्फुटितचेतसा तच्चरणचञ्चरीकेण मया समाप्यते कर्णाटकलिपितः प्रतिबिम्बीकृतस्यास्य शब्दतन्त्रस्यालङ्कृतिरिति।

॥ शिवं भूयात् ॥

■

---

१. पं. ३८, न्यू. सि. (१९१६) ७०५.

काशिकाया उपोद्घातः

श्रीदामोदरशास्त्री

काशिकराजकीयपाठालये व्याकरणशास्त्राध्यापकः

[१]नमः श्रीपूज्यपादभ्यो बालशास्त्रिभ्यो गुरुवर्येभ्यः। साम्प्रतं किल भारतवर्षेऽत्रत्यपुरातन पण्डितरत्नप्रगीतानि नानाविधदर्शनपुस्तकानि यवनसाम्राज्यकालादारभ्य दुरवस्थां प्राप्नुवन्नित्यतिरोहितं परीक्षकाणां, येषां नामानि केवलं क्वाचित्कफक्किका वा श्लोकान् वा परिदृश्यमान पुस्तकेषु निरीक्ष्य निर्ध्याय च तदर्थगाम्भीर्यमुत्कण्ठमानाः सकलतत्तत्पुस्तकनिरीक्षणेऽनुभूतचिरतदन्वेषणपरिश्रमा अनुपलभ्य तानि भृशं खिद्यन्ते भूयांसो विपश्चितः। तामिमां न्यूनतामपसारयितुकामैः प्रशस्योद्योगैः साम्प्रतिकसम्राडधिकृतप्रधानमहोदयैः प्रसह्य महान्तमर्थव्ययमूरीकृत्य चिरपरिश्रमं मुहुरन्विष्य नानादेशेषु संस्कृतशास्त्रपुस्तकानि सम्पाद्य विशदमुद्रणशैलीं विपुलीक्रियमाणैर्नवनवोदितमूर्तैरिव तदीययशःशशधरैराह्लाद्यमाना विद्वज्जनचकोरा मन्ये नातिचिराद्विस्मरिष्यन्ति तदलाभसमुद्भूतं प्रभूतं खेदमासादयिष्यन्ति साकल्येन संस्कृतपुस्तकानि सम्पादयिष्यन्ति च तैः स्वसमीहितम्। अथापि देशान्तरेषु पाणिनीयतन्त्रसम्बन्धिनां पुस्तकानां नातिसम्पत्तिं समालोच्य निर्धार्य चैतद्देशे व्याकरणाभ्यासशैलीबाहुल्यं तदीयप्राचीननिबन्धान् प्रचिकाशयिषुभिः काशिकसंस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यक्षवरैः **श्रीयुतग्रिफिथसाहिब**महोदयैः समुद्योजिता अस्मद्गुरुवर**श्रीबालशास्त्रि**पूज्यपादाः काशिकां प्रकाशयन्।

सा तदानीमप्राप्य विख्यातवैदुष्यश्रीहरदत्तमिश्रनिर्मितां तद्व्याख्यां पदमञ्जरीं केवलैव मुद्रिता नातिप्रियाकरोति सव्याख्यकाशिकापर्यालोचनसमुत्सुकान्, अनन्तरं तत्पदमलङ्कुर्वाणैः संस्कृतविद्यानदीधिषणैः श्रीयुत**डाक्तरथिबोसाहिब**महोदयैरालोक्य पाठशालीयविद्यामन्दिरेऽसंशोधितमेकमेव पदमञ्जरीपुस्तकमनुचिन्त्य तावन्मात्रेण मुद्रणकार्यनिर्वाहवैधुर्यमासाद्य द्वित्राणि माधवीयधातुवृत्तेरपूर्णानि पुस्तकानि सम्भाव्य पदमञ्जरीपुस्तकान्वेषणे विलम्बं तस्याः संशोध्य मुद्रणे नियुक्तावहं श्रीयुतगङ्गाधरशास्त्री च पुस्तकानामपरिष्कृततया चिरानुभूतपरिश्रमौ भ्वादिगणं काशीविद्यासुधानिधिपत्रेऽमुद्रयाव। अनन्तरं चैकमेव भृशमशुद्धं पुस्तकमाकलय्य पुस्तकान्तरसाहाय्यविरहेण विरमितमावाभ्यां सम्मुद्रणम्। अथेदानीं संस्कृतविद्यारसास्वादनचतुरैः श्रीयुतवेनिससाहिबवर्यैः पदमञ्जरीप्रकाशने नियुक्तोऽहं तदीयं पुस्तकान्तरमन्वेषयन् सम्प्राप्य परिपूर्तिरहितमपि संशोधितमेकं पुस्तकं सम्प्राप्तं प्रकाशयितुं यते, प्रार्थये च सर्वदेशस्थितान् महाशयान् माधवीयधातुवृत्तेः पदमञ्जर्या वा उपलम्भे प्रबोधयितुं येन प्रकाशितसकलप्रतीका सा सम्पादयितारं यशोभागिनं कुर्यादिति शम्।

---

१. पं. १० न्यू. सि. ५ (मई, १८८८) २४३-४४.

काशिकाया उपसंहारः

श्रीबालशास्त्री
काशीस्थराजकीयप्रधानपाठशालायां धर्मशास्त्राध्यापकः

[1]इयं काशिकाख्या पाणिनीयसूत्राणां वृत्तिः परमेश्वरप्रसादेन समाप्तमुद्रणाऽभूत्। प्रागहमस्या मुद्रणेऽनासादितशुद्धपुस्तकोऽपि प्रभुवरश्रीग्रिफिथसाहिबादेशेन विदेशीयमहाशयप्रोत्साहनेन च खण्डितैरशुद्धैश्च द्वित्रैः पुस्तकैः संकलितसमग्रप्रबन्धः कथमिदं कार्यं समाप्येतेति साशङ्क एव प्रावर्त्तिषि। अत्रान्तरे मिलितेन गुर्जरप्रान्तस्थसकलपाठशालाध्यक्षपदवीमलङ्कुर्वता श्रीमता ब्यूलरसाहिबमहाशयेन मयि महान्तमनुग्रहमाविष्कुर्वता स्वपाठशालास्थप्रार्थितोक्तपुस्तकाध्यायप्रेषणेन काश्मीरमण्डलाहृतशारदाक्षरलिखितैतत्पुस्तकप्रापणेन च साहायकं संपादयता भृशं लघूकृतपरिश्रमः सुखेन समापयं प्रस्तुतपुस्तकसंशोधनम्। मया च समाहृतेषु द्वित्रेष्वपि पुस्तकेषु बहुत्रासंबद्धा अपि पाठा अदृश्यन्त यानहं परिवृत्तियोग्यान्निश्चिन्वन्नपि ग्रन्थकर्त्रैव तथोपनिबद्धान्मन्यमानस्तथैवालेखयममुद्रयं च। अन्ये चात्र सीसाक्षरयोजकदोषेण शोधकदृष्टिदोषेण च प्रमादतोऽनुपलक्षिता अशुद्धिदोषा गुणैकदत्तदृष्टिभिर्महाशयैः क्षम्यन्तामिति प्रार्थये। निवेदयामि चेदं मुद्रणारम्भकाले वामन एव जयादित्यापरनामेति निवेदितं न तथैव प्रतिपत्तुमर्हमपि त्वेतौ भिन्नावेव पण्डितौ निबद्धवन्तौ काशिकामिति। भट्टोजिदीक्षितकृतप्रौढमनोरमायां तद्धितप्रकरणस्थबह्वल्पार्थादिति सूत्रे एतच्च सर्वं जयादित्यमतेनोक्तं वामनस्तु मन्यते इति तयोः पार्थक्येन प्रदर्शनात्। प्रथमद्वितीयपञ्चमषष्ठा जयादित्यकृतवृत्तय इतरे वामनकृता इत्यभियुक्ता इति तत्रत्यशब्दरत्नग्रन्थाच्च। अन्यच्च निवेदयामि निबन्धकारोऽयं जैन इत्यनुमीयत इति। सकलैरास्तिकैः शिष्टैरादृतस्य ग्रन्थारम्भसमये मङ्गलाचरणस्याशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशान्यतमस्याप्युपेक्षणात्। वृत्तौ भाष्ये इत्यादिप्रबन्धमुखपद्ये समाहृत्यान्यतन्त्राणीत्यमरश्लोकसमानच्छायोपलम्भाच्च। इदं च दृढतरमस्य नास्तिकत्वे प्रमाणं यदसौ कुत्रत्यानपि कतिपयान्प्रयोगानुपलभ्य तेषां च सूत्रवार्त्तिकैः सिद्धिमपश्यन्स्वतन्त्र इव बहूनि वचनानि कल्पयामास यमाच्चेत्येवमादीनि सूत्रमध्ये च प्रचिक्षेप बहूनि पदानि ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल्, क्वरप्ख्युनामित्यादिरूपेण येनाद्य यावदास्तिकानामपर्यालोचितरहस्यानामङ्गपारायणैकप्रवणानां पारायणेषु वैगुण्यमुपलभ्यते। आस्तिको हि सूत्राभङ्गादिप्रयासेनापि सूत्राक्षरैरेव रूपाणि साधयितुं यतेत तथाप्यशक्नुवन्नसाध्वेतदित्यभिदधीत न तु शास्त्रं कल्पयेदन्यथयेद्वा। एवं संमाननोत्सञ्जनेति सूत्रे संमाननोदाहरणं नयते चार्वी लोकायते इत्यप्यत्र प्रमाणं चार्वी बुद्धः तत्संबन्धादाचार्योऽपि चार्वी स लोकायते शास्त्रे पदार्थान्नयते उपपत्तिभिः स्थिरीकृत्य शिष्येभ्यः प्रापयति युक्तिभिः स्थाप्यमानाः सम्मानिताः पूजिता भवन्ति इति हि

लिखितमनेन। आस्तिको हि साङ्ख्ये योगेऽन्यस्मिन्वाऽऽस्तिकशास्त्रे शिष्याणां व्युत्पादनेन संमाननमभिप्रेयात्र तु नितरां विरुद्धे लोकायते व्युत्पादनेन। आसंश्च तस्मिन्त्समये भूयांसो जैनाः पाणिनीयतन्त्रे निष्णाता न्यासकारप्रभृतयः। न्यासकारस्य जैनत्वं हि—

जयन्ति ते सदा सन्तः सर्वोपायैरुपार्जितम्।
गुणानां सुमहद् वृन्दं दोषाणां च विवर्जनम्॥
अन्यतः सारमादाय कृतैषा काशिका यथा।
वृत्तिस्तस्या यथाशक्ति क्रियते पञ्जिका तथा॥

इति ग्रन्थारम्भस्थपद्यद्वयेन इति श्रीबोधिसत्त्वदेशीयाचार्यजिनेन्द्रबुद्धिपादविरचितायां काशिका-विवरणपञ्जिकायां प्रथमाध्याय इत्युपसंहारेण च व्यक्तमेव। मन्ये चेदमेव निरीक्ष्य नास्तिक-कृतनिबन्धपठनपाठनाभ्यामास्तिकजनानां दुरितमाशङ्कमानैरार्षप्रमाणैकबद्धादरैरास्तिकशिरो-मणिभिर्भट्टोजिदीक्षित-हरिदीक्षित-नागेशभट्टप्रभृतिभिः पण्डितवरैरपसार्याप्रामाणिकानि वचनानि तादृशा उत्तमतमा निबन्धा व्यधीयन्तावर्ण्यन्त चासाधवः क्वाचित्काः प्रयोगास्तथा-त्वेनैव यत्र कृतादराणामर्वाचां शास्त्ररसिकानां स्मृतिपथादपि दूरापेता बभूवुस्तात्कालिकाः कतिपयेऽप्रामाणिकाः प्रबन्धाः। अस्त्वेतत्सर्वं गुणा अपि वृत्तावस्यां भूयांसः सन्ति सर्वेषु सूत्रेषु पूर्वपूर्वसूत्रस्थपदसंबन्धप्रदर्शनेन सरलवृत्तिनिबन्धेन बहुतरोदाहरणप्रत्युदाहरणदानेन च सूत्रार्थप्राञ्जलीकरणमुखा विषयविवेचनप्रभृतयश्च येषु भृशं तुष्यन्तो रसिका विपश्चितोऽति-प्राचीनां व्युत्पित्सुजनानां महान्तमुपयोगमादधानां वृत्तिमिमां पठनपाठनाभ्यासगोचरीकृत्य सफ-लयेयुर्मामकीनमिमं परिश्रममिति मुहुरर्थये परमेश्वरमिति।

श्रीचक्रपाणिदत्तकृतस्य

प्रौढमनोरमाखण्डनग्रन्थस्य प्रस्तावः

श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदी

[१]महर्षिपाणिनिकृतसूत्रपाठाध्याय्यास्तथा तद्व्याख्यानस्य महर्षिपतञ्जलिकृतमहाभाष्यस्य एवं कौण्डन्यवृत्तेः, काशिकावृत्तेः, भोजराजकृतसरस्वतीकण्ठाभरणाभिधवृत्तेरपि क्रममनादृत्य कैयटहरदत्ताद्याचार्याणां मतं च क्वचिद्विखण्ड्य सिद्धान्तकौमुदीं तद्व्याख्यां च श्रीभट्टोजिदीक्षिताः प्रणीतवन्त इति नैव तिरोहितमस्ति विदुषाम्; किन्तु—

"अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तृतः।
तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः"[२] ॥

इति कृद्वृत्तौ दुर्गसिंहोक्तमवलम्ब्य श्रीचक्रपाणिदत्तेन प्रौढमनोरमाग्रन्थस्य खण्डनं कृतम्। एवं पण्डितसम्राड्जगन्नाथेनापि प्रौढमनोरमाकुचमर्दनाख्यं खण्डनं कृतमित्युभयोरन्वेषणे कृते मयैकं चक्रपाणिदत्तकृतप्रौढमनोरमाखण्डनपुस्तकं वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयपुस्तकालये वर्तमानं विक्रमीय- १८५९ संवत्सरे लिखितमनतिशुद्धं समधिगतं मुद्रणद्वारा तत्प्रकाशने प्रवृत्तम्। अस्य ग्रन्थस्य समालोचने कृते भट्टोजिदीक्षितपौत्रेण कृते शब्दरत्नग्रन्थे तद्व्याख्याने बालम्भट्टापरनामधेयवैद्यनाथभट्टपायगुण्डेकृते भावप्रकाशे च "इति खण्डनकारोक्तमपास्तम्"[३] इत्यादिदर्शनान्माननीयत्वेनास्मिन् ग्रन्थे महासमादरः सञ्जात इति काशीविद्यासुधानिधिनामकेऽस्मिन् मासिकपत्रे प्रकाशितः सन्नचिरेणैव सर्वेषां सुलभो भवेदित्येतदर्थाय मुद्रयितुमारब्धोऽधिकं तु समाप्ते मुद्रणे निरूपयिष्यामीति शिवम्।

बनारस
गवर्नमेण्टसंस्कृतकालेजपुस्तकालये,
१७ फरवरी, १९११ई.

---

१. पं., ३२, न्यू. सि., (मार्च १९१०) १-२.

२. तिमिङ्गिलो मत्स्यभेद इत्यमरकोशे। राघवो मत्स्यभेदेऽपीति कोशः।

३. दीर्घेत्युपलक्षणं यणोऽपि प्रत्यासत्त्या ऋन्निमित्तकार्यमात्रस्य तेन वारणात्। अत एवाह— **गुणेति**। ऋतो ङीत्यनेनेति भावः। यत्तु गुणे तस्य स्थानिवत्त्वेन दीर्घो न यणिति जगन्नाथादिस्तन्न तथासति बाधकस्य जागरूकत्वात् पूर्वस्यैव स्थानिक्त्वाकच्च। एतेन गुणोत्तरमपीत्यादिखण्डनकृदाद्युक्तिरपास्ता। वार्तिकस्य साधारणत्वादाह। भाष्ये चेति। सर्वत्रेत्युक्त्या तस्य प्रकृतिभावपरत्वेनावङ्परत्वमिति खण्डनकृदुक्तिः परास्ता। खण्डनकारोक्तिं खण्डयितुमाह। तस्येति। चाक्रवर्मणस्येत्यर्थः। अनुसर्तव्यत्वादितीति। एतेन नलोपं प्रति नुटोऽसिद्धत्वान्नुट् स्यादिति मूलोक्तं चिन्त्यमिति खण्डनकारोक्तमपास्तम्। यत्तु प्रत्ययान्तपयुर्दासे कार्ये सुब्लोपनिमित्तप्रत्ययलक्षणं नेत्यत्रेदं मानं विशेषापेक्षत्वात्। एवं चाहनित्यत्र तिङ्लोपनिमित्तप्रत्ययलक्षणस्य तत्र कार्ये दुर्वारत्वेनाधातुरिति न कार्यमिति खण्डनकृत्। तत् खण्डयति। न चेति। ज्ञापकमिति।

चित्रमीमांसाया उपसंहारः

मानवल्ल्युपाख्यो श्रीरामशास्त्री
साहित्यशास्त्राध्यापकः,
काशिकराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालायाम्

[1]इह किल काव्यसुधारससमास्वादलोलुपान्तरङ्गाणां रसिकधुरीणानां मनसि न तावदनलङ्कृतं काव्यं "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननमि"त्युक्तदिशा परां मुदमादधातीति लक्षिताः खलु बहुशोऽलङ्काराः सोदाहरणोपन्यासं मान्यवरैर्दण्डिमम्मटभट्टजयदेवादिभिः काव्यादर्शकाव्यप्रकाशचन्द्रालोकादिषु ग्रन्थेषु। तेषु च सर्वेष्वपि प्रायशो लक्षणानां लक्ष्यसमन्वयमात्रपर्यवसन्नतया न भवेदतीव प्रमोदो मीमांसारसिकानां प्रगल्भधियामिति समुपक्रान्तः किल प्राचीननवीनमतखण्डनमण्डनपुरःसरमुपनिबन्धुं परेण संनाहेनायं चित्रमीमांसानामकोऽलङ्कारग्रन्थो निखिलशास्त्राब्धिपारदृश्वना स्वतन्त्रप्रज्ञेन तत्रभवता **अप्पयदीक्षितेन**।

अयं च तावन्महानुभावः कदा कुत्र को वा किं कर्मा वाऽऽसीदिति जिज्ञासां तु तत्कृतसिद्धान्तलेशसंग्रहमुद्रणावसरे मद्भ्रातृचरणमहा**महोपाध्यायश्रीगङ्गाधरशास्त्रि**लिखिता भूमिकैव शमयिष्यतीति नास्ति किल तत्र विशेषलेखोपयोगः।

अवशिष्यते परमधुना ग्रन्थविषये यदयं ग्रन्थो ग्रन्थकृता साकल्येन निरमायि न वेत्यादिको विचारः। तत्र तावदेतत्कर्तृकेऽद्यत्वे पठनपाठनादिपथं जागरूकतयाऽवतीर्णे कुवलयानन्दे तत्र तत्र "विस्तरस्तु चित्रमीमांसायां द्रष्टव्य" इत्यादिलेखदर्शनात् पूर्वमिमं ग्रन्थं प्रणीय पश्चात्सप्रणीत इत्यनुमातुं शक्यम्। एवमिदानीमनुपलभ्यमानेष्वप्यलङ्कारेषु तत्र तथाविधलेखदर्शनाद् अस्मिन्नपि ग्रन्थे "श्लेषसमासोक्तिप्रकरणे विवेचयिष्यामः" इत्यादिलेखदर्शनाच्चेदानीं तदनुपलम्भेऽपि ग्रन्थकृता साकल्येनायं ग्रन्थो व्यरच्यतेत्यनुमातुं शक्यम्। देशान्तरेष्वपि कृतान्वेषणैरस्माभिरुत्प्रेक्षाप्रकरणान्तस्यैव भागस्योपलम्भाद् रसगङ्गाधरे चेदानीमुपलभ्यमानालङ्कारविषय एव खण्डनमण्डनादिदर्शनादन्यत्र च तददर्शनाच्चिरादयमुत्प्रेक्षान्त एव भाग उपलब्धिविषय इत्यप्यध्यवसीयते। अवशिष्टभागाऽनुपलम्भकारणं च न परमार्थतो निश्चेतुं शक्यते।

तस्य चास्य समुपलभ्यमानस्य भागस्य पर्यालोच्य विचारचातुर्यमान्ध्राक्षरैर्मुद्रितस्यापि एतद्देशे तल्लिप्यज्ञानात् पुस्तकस्य चाशुद्धप्रायत्वात्तत उपकाराभावं समीक्ष्य प्राचीनसंस्कृतग्रन्थरत्नप्रकाशनलालसेन गुणैकपक्षपातिना काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठालयप्रधानाध्यक्षेण श्रीमता **आर्थर्वेनिससाहिब**महाशयेनास्मत्प्रभुवर्येण तच्छोधनाय समादिष्टोऽहं समाहृत्य जयपुरनगरान्मदीयसुहृत्तम**द्राविडवीरेश्वरशास्त्रि**सकाशादेकं प्राचीनं शुद्धं च परं च, वङ्गाक्षरलिखितं प्राचीनं काशीसंस्कृतपाठालयपुस्तकालयस्थम्, अपरं चान्ध्राक्षरमुद्रितम्, इति पुस्तकत्रयं

१. पं. १३, न्यू. सि. १०, (अक्टूबर, १८९१) ५२१-५२२.

निवेश्य तत्र तत्रोपलभ्यमानान् पाठभेदान्, उपन्यस्य च तत्तत्स्थलेषु रसगङ्गाधरकारोट्टङ्कितान् **नागेशभट्ट**विचारितांश्च मतभेदान्, संयोज्य च क्वचित् क्वचिद् विषमपदार्थप्रकाशिकाभिरभिनवाभिष्टिप्पणीभिः, सावधानं संशोध्य प्रकाशितवानस्मि समुपलभ्यमानमेवोत्प्रेक्षान्तं भागं काशीविद्यासुधानिधिनामके पत्रे। तस्य च बहुमूल्यत्वात् तद्ग्रहणाऽक्षमाणां रसिकवराणां तत्सौलभ्याय पृथगपि संमुद्रितः किल श्रीमद्भिः डाक्टर ई. जे. लाजरस्कम्पनीनामकैर्मुद्रायन्त्राधिपतिभिः। यावच्छक्यं सावधानं परिशोधितेऽप्यत्र यदि मदीयदृष्टिदोषाद् मतिदोषात् सीसकाक्षरयोजकादिदोषाद्वा सुलभानि स्खलितानि दृग्गोचरीभवेयुर्मर्षयिष्यन्त्येव गुणैकदृष्टयो विपश्चिदपाश्चात्या इति बाढं निश्चिन्वन् प्रार्थयेऽत्र नयनार्पणप्रयासाङ्गीकारेण मत्परिश्रमसफलीकरणायान्तर्वाणिवरानिति शम्।

भाद्रपदसुदि १५ भृगौ,

संवत् १९४८.

चिन्तामणेः शब्दखण्डस्य रुचिदत्तीयटीकासहितस्य भूमिका

श्रीबालशास्त्री
व्याकरणशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयपाठशालायाम्

[1]सम्प्रति तार्किका अनुमानखण्डे दीधितिं भावानन्दीं माथुरीं जागदीशीं गादाधरीं च विशेषतोऽभ्यस्यन्ति, ता एताः साक्षात् परम्परया वा चिन्तामणेरेव व्याख्या इत्युपजीव्यत्वात्तदभ्यासस्य चिन्तामणेरनुमानखण्डं सम्यक् पठनपाठनादिप्रचारगोचरीभावमापन्नं वर्तते। शब्दखण्डे तु व्युत्पत्तिवादशक्तिवादशब्दशक्तिप्रकाशिकापदवाक्यरत्नाकरादयः स्वतन्त्रा एव ग्रन्थाः सरलत्वाट्टीकानपेक्षत्वाच्च प्रचरिताश्चिन्तामणेस्तु शब्दखण्डोऽतिसंक्षिप्तसंस्कृतग्रथितत्वाद् गहनार्थत्वाच्चावश्यं व्याख्यामपेक्षत इति क्रमेण मन्दप्रचारो भूत्वा सम्प्रति तथाऽस्तंगतो यच्छुद्धानि पुस्तकान्यपि तस्य नोपलभ्यन्ते पठनादिना तु दूरे स्थीयताम्। परमयं तर्कतन्त्रस्यैव नान्वर्थचिन्तामणिः; किन्तु सर्वेषां दर्शनानां शिरोमणिभावमर्हति, यतोऽस्यैकस्य कृत्स्नस्य तत्त्वतोऽवगमे सर्वेषु शास्त्रेषु साधीयान् प्रवेशो भवतीति मम परमो विश्वासः। अतोऽयमस्मिन् पत्रे प्रभुवर्यस्य श्रीमतो **ग्रिफिथमहाशयस्य** तथा श्रीमतो **गाफमहाशयस्य** चानुज्ञया प्रकाश्यते। तेन च सहैव प्रतिपत्तिसौकर्याय **रुचिदत्तविरचिता** तद्व्याख्याऽपि मुद्र्यते। अयं च रुचिदत्तोऽतिप्राचीनः प्रौढतमव्युत्पन्नश्चेत्युपलब्धतत्पुस्तकजीर्णतया गम्भीरार्थकतल्लेखेन चानुमीयते। संक्षिप्तरचनया च मैथिलत्वमस्य संभाव्यते। चिन्तामणेस्तु रचयिता न्यायतन्त्रस्याद्याचार्यः श्रीमान् **गङ्गेशोपाध्यायो** मैथिलः। तमिमं सव्याख्यं चिन्तामणेः शब्दखण्डं **श्रीयुताष्टपुत्रोपाख्यपण्डितबालकृष्णशास्त्रिपण्डितवामनाचार्यपण्डितवंशीधरशर्मभिर्दत्तैः** पुस्तकैः संशोध्य काशीविद्यासुधानिधिचकोरलोचनगोचरं कर्तुं समुत्सहते।

■

---

१. पं. ६, ६६ (नवम्बर, १८७१) १२७.

शब्दचिन्तामणेरुपसंहारः

श्रीबालशास्त्री
व्याकरणशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयपाठशालायाम्

[१]अत्यर्थमनुगृहीतोऽस्म्यद्य भगवता जगदीश्वरेण यच्चिररात्राय समेधितः शब्द-चिन्तामणिप्रचारगोचरकामनाकुमुदिनीनिकरोऽद्य काशीविद्यासुधानिधिना सुपुष्पितः कामं सम्पादितः षट्षष्टात्प्रभृति त्रिनवतिपर्यन्तैरष्टाविंशत्याऽङ्कैः। भूयश्चाष्टपुत्रोपनामक**बालकृष्ण-शास्त्रिणां** पुस्तकेनैतच्चिन्तामणिशोधने साहाय्यमालम्बितम्, परं रुचिदत्तीयव्याख्यापुस्तकम-पूर्ववादमारभ्यैकमेव **वंशीधर**पण्डितीयमुपलब्धम्, तच्चातिजीर्णमशुद्धतरमासीदत्यन्तं त्रुटित-सन्दर्भं च परं कथं कथमपि योजयित्वा परिशोधितम्। तदप्यासमाप्तेर्न लब्धम्; किन्तूप-सर्गार्थनिरूपणप्रस्ताव एवोपरतम्। उपलब्धपुस्तके च "प्रसङ्गादाह। उपसर्गास्त्विति। तत्र, स्वार्थविशेषे, शक्तिर्वा, धातोरिति शेषः। धातोरिवेति। न चैवं नानार्थत्वेऽपि प्रकर्षार्थमादाय प्रतिष्ठेत्यादौ स्थितिप्रकर्षधीः स्यादिति वाच्यम्। स्थापूर्वप्रशब्दस्य गतावेवानादितात्पर्य्येण तत्र तस्यासाधुत्वात्, तात्पर्याभावेनैव तदबोधकत्वाद्वा। तेन विनेति। यद्यप्युपकुम्भमित्यादौ धातुं विनापि तत्प्रयोगस्तथापि तदतिरिक्तस्थले धातोः प्रागेव तत्साधुत्वमिति भावः। धातोस्त्विति। औपसंदानिकशक्तेस्त्वयाङ्गी" एतत्पर्यन्तमस्त्यत ऊर्ध्वं प्रायो द्वित्रपत्रावशेषमेव तत्स्यादिति दृढं सम्भावयामि। सम्प्रार्थये चैतत्सुधानिधिचकोरान् यदि कस्यचित्पुस्तकमन्दिरमेषा रुचिदत्ती-याऽलङ्कुर्वाणा स्यात् स महाशयोऽवशिष्टमेतदंशमेतत्पत्रे प्रकाशनाय मां प्रति प्रेषयित्वाऽनु-गृह्णात्विति। सप्रश्रयं च प्रेक्षकान् विज्ञापयामि, यत्सोल्लासममुमन्वर्थचिन्तामणिं मुहुर्मुहुर्निशम्य यथेष्टं शास्त्रीयरमणीयतरविषयरूपरत्नराशिं समुपचित्य मामकं परिश्रमं ते सफ-लयन्ताम्, क्षमन्तां च शोधकमुद्राक्षरविन्यासकतत्संयोजकाद्यनवधानकृतान् दोषान्। यथा च केषुचिच्चिन्तामणिपुस्तकेष्वेवान्त उपलभ्यमानः श्लोकः—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधत सज्जनाः॥ इति।

■

१. पं. ८, ९३ (फरवरी २, १८७४) २१५.

न्यायसूत्रविवरणस्य विज्ञापनम्

श्रीसुरेन्द्रलालशर्मा

[१]रघुनन्दनभट्टाचार्यविरचितैकादशीतत्त्वग्रन्थस्य राधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्यविरचित-दीपख्यटीकायामादौ—

"भवेऽस्मिन् कान्तारे मुहुरटनदुःखैकविकलः
समीहे संलब्धं तव चरणपाथोजशरणम्।
न योगो ज्ञानं वा भजनमपि वा यद्यपि हरे
तथाप्याशा दीर्घा तव च करुणा किं न कुरुते॥

वन्दे श्रीकृष्णमानन्दघनं परममीश्वरम्।
राधास्वर्णलतासङ्गतमालरुचिविग्रहम्॥
श्रीराधामोहनो दीपं करोति शुभदर्शनम्।
एकादश्यादितत्त्वानां पूर्वाचार्यमतेक्षया"॥इति।

तत्रान्ते च— "इति कलियुगपावनावतारश्रीमदद्वैतवंशसम्भवश्रीराधामोहनगोस्वामि-भट्टाचार्यविरचितैकादशीतत्त्वटिप्पणी सम्पूर्णा। शकः १७५०।

शाके व्योमसुताद्रिचन्द्रपरिमे शम्भुं मुहुः संस्मरन्
भाद्रे सूर्यजवासरे कृततिथौ पक्षे च कृष्णेतरे।
राधामोहनशर्मणः कृतिमिमां टीकां मुदैकादशी-
तत्त्वस्येव धरामरो हरिहरो यत्नाद् व्यलेखीत् स्वयम्"॥ इति।

इदं तु हुग्लिबुधोदययन्त्रालयमुद्रितैकादशीतत्त्वपुस्तके दृश्यते।

बाबूराजेन्द्रलालमित्र एल्. एल्. डि., सी. आई. ई. महोदयकृतनोटिस्अब्दिसंस्कृत-मेनुस्क्रुप्ट्सनामकपुस्तके १० खण्डे ११३ पृष्ठे महामहोपाध्यायश्रीयुक्तहरप्रसादशास्त्रिमहा-शयैः एकादशीतत्त्वदीपपुस्तकस्य निरूपणं कृतम्। तत्र—

---

१. पं. २३, न्यू. सि. (१९०१) १२५-१३०.

"लिखितैकादशीतत्त्वटीका भारतशर्मणा।
पक्षवेदाब्धिभूमानेऽब्दे[1] पीताम्बरदेशतः॥

१७४२" इति लिपिकालो दत्तः। तत्रैव शास्त्रिमहोदयैः कोलब्रूकसाहबमहाशयस्य मित्रं राधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्य आसीदिति लिखितम्।

कलिकातानगरमुद्रितामरादिकोषचतुष्टयपुस्तके—

"श्रीमदमरकृतकोषः पुरुषोत्तमकृतत्रिकाण्डशेषश्च।
हारावल्यभिधानं मेदिनीकरस्य नानार्थः॥१॥
नगरे कलिकात्ताख्ये कोलब्रूकसाहबाज्ञया।
श्रीविद्याकरमिश्रेण कृतसूचीसमन्वितः॥२॥
वेदर्त्वष्टकलानाथसम्मिते विक्रमाब्दके।
मुद्राक्षरेण विप्रेण बाबूरामेण लेखितः॥३॥ इति दृश्यते।

एतेन १८६४ विक्रमसंवत्सरे कोलब्रूकसाहबसमय आयाति। एकादशीतत्त्वटीकाप्रणेतुर्न्यायसूत्रविवरणप्रणेतृत्वस्वीकारे महामहोपाध्यायश्रीयुक्तहरप्रसादशास्त्रिमहाशयवाक्यस्य सप्रमाणत्वे च १८६४ विक्रमसंवत्सरे राधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्य आसीदिति लभ्यते।

सम्भाव्यते चेदं न्यायसूत्रविवरणप्रणेतुरेव राधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्यस्य एकादशीतत्त्वटीकाप्रणेतृत्वम्। यतः स एव कुत्रचित् "इति श्रीराधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्यविरचित" इति लिखति स्म, क्वचिच्च "इति श्रीराधामोहनविद्यावाचस्पतिगोस्वामिभट्टाचार्यविरचित" इति लिखति स्म, क्वचिच्चाद्वैतवंशसम्भवादिशब्देन स्वोत्कीर्तनं कृतवान्। यथा अस्मिन्नेव न्यायसूत्रविवरणे प्रथमाध्यायाद्याह्निकान्ते "इति श्रीराधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्यविरचितन्यायसूत्रविवरणे प्रथमाध्यायस्याद्याह्निकविवरणम्" इति लिखितवानिति पञ्चमाध्यायान्ते च "इति श्रीराधामोहनविद्यावाचस्पतिगोस्वामिभट्टाचार्यविरचिते गौतमसूत्रविवरणे पञ्चमाध्यायविवरणम्" इति लिखितवानिति। हरिदासकृतकुसुमाञ्जलिकारिकाटीकोपरि राधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्येण टीका कृता[2]। तत्र द्वितीयस्तबकान्ते च "इति श्रीराधामोहनविद्यावाचस्पतिगोस्वामिभट्टाचार्यविरचिता हरिदासीयकुसुमाञ्जलिद्वितीयस्तबकव्याख्या समाप्ता"। इति लिखति स्मेति च दृश्यते। तथैव एकादशीतत्त्वटीकान्तेऽपि विद्यावाचस्पतिपदं विहाय कलि-

१. यद्यपि गणितशास्त्रेऽब्धिशब्देन समुद्रशब्दपर्यायेण चत्वार इति व्यवह्रियते। परं तु चतुष्ट्वग्रहणे लेखक एव प्राचीनस्तदा ग्रन्थकारः कुत्र तिष्ठेदिति सप्त समुद्रा एवाब्धय इत्यनुसृतं लेखकेन।

२. तत्रायमाद्यश्लोकः—

शिशुरसि दुग्धमुखस्त्वं कलयसि मुरलीं कुतोऽतिचित्रम्।
इति गोपीस्मितवचनैः सस्मितवदनो हरिः पातु॥ इति।

युगपावनादिपदानि योजयित्वा लिखितवानिति नासम्भवः। तथात्वे चास्य नदियाप्रदेशान्तर्गतशान्तिपुरग्रामनिवासित्वमायाति यतोऽद्वैतवंशसम्भूता गोस्वामिनः शान्तिपुरनिवासिनः। प्रवादोऽप्येवमेव शान्तिपुरनिवासी राधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्य एव न्याये धर्मशास्त्रादौ च बहुधा ग्रन्थान् रचितवानिति। उपलभ्यन्ते च अनुमानखण्डे जगदीशगदाधरादिकृतग्रन्थोपरि यथोक्तगोस्वामिभट्टाचार्यविरचितानि क्रोडपत्राणीति। नोपलभ्यते चैवंलक्षणाक्रान्तो राधामोहनगोस्वामीत्याख्यया प्रसिद्धः कश्चिदन्यो विद्वानिति।

एकादशीतत्त्वटीकादीपप्रणेतुर्न्यायसूत्रविवरणप्रणेतृत्वास्वीकारे महामहोपाध्यायश्रीयुक्तहरप्रसादशास्त्रिमहाशयवाक्यास्वीकारेऽपि अस्मिन् न्यायसूत्रविवरणे ३२ पृष्ठे १८ पङ्क्तौ "बाधादिग्रन्थे जगदीशैरप्युक्तत्वादिति" इति लेखदर्शनात् तत्त्वचिन्तामणिटीकादीधितिव्याख्यातृजगदीशतर्कालङ्कारभट्टाचार्यात् पश्चाद्भावी राधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्य इत्यत्र नास्ति विवादः।

वाराणसीस्थमेडिकलहालनामकयन्त्रालयमुद्रितसटीकप्रशस्तपादभाष्यपुस्तकविज्ञापने वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालापुस्तकालयाध्यक्षैः श्रीयुत**विन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदि**महाशयैः "जगदीशभट्टाचार्यकृतशब्दशक्तिप्रकाशिकापुस्तकस्य १६२४ शालिवाहनशकलिखितस्योपलम्भात् तत्समयात् पूर्वं तद्ग्रन्थकर्तुः स्थितिरिति सुव्यक्तम्" इति लिखितम्।

तत्त्वचिन्तामणिव्याख्यातृ**मथुरानाथ**स्य दीधितिकारानन्तर्यं व्याप्तिपञ्चकग्रन्थे "तच्चागुणवत्त्वमिति साधर्म्यव्याख्यानावसरे गुणप्रकाशरहस्ये तद्दीधितिरहस्ये च स्फुट"मिति "अत एव निविशतां वा वृत्तिमत्त्वं साध्यसामानाधिकरण्यं वेति केवलान्वयिग्रन्थे दीधितिकृत" इत्यादिलेखदर्शनात् पक्षताग्रन्थे संशयपक्षताव्याख्यानावसरे दीधितिकृद्व्याख्यानस्य मथुरानाथेन भट्टाचार्यास्त्वित्यादिना प्रदर्शनाद् दीधितिग्रन्थोपरि मथुरानाथकृतटीकोपलम्भाच्चावगम्यते। व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावग्रन्थीयमथुरानाथकृतव्याख्यानस्य जगदीशेन नव्यास्त्वित्यादिना प्रदर्शितत्वेन व्याप्तिपञ्चकद्वितीयलक्षणस्य मथुरानाथीयव्याख्यानस्य जगदीशेन केचित्त्वित्यादिना प्रदर्शितत्वेन च मथुरानाथतर्कवागीशानन्तर्यं जगदीशतर्कालङ्कारस्यायातीति। एवं च मथुरानाथतर्कवागीशानन्तरं १६२४ शकाब्दतः पूर्वं जगदीशतर्कालङ्कारस्य समय इति निश्चीयते। जगदीशतर्कालङ्कारानन्तर्यं च राधामोहनगोस्वामिभट्टाचार्यस्येति सिद्धम्।

दीधितिकारसमयस्तु १४०७ शाकवर्ष इति अस्मन्मुद्रिततर्कभाषाग्रन्थविज्ञापने द्रष्टव्यम्।

इदं च न्यायसूत्रविवरणपुस्तकमेकमेव वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयभूतपूर्वप्रधानन्यायाध्यापक**कालीप्रसादशिरोमणिभट्टाचार्य**महाशयसङ्गृहीतं तदीयदौहित्र**श्रीयुतनीलकमलभट्टाचार्य**महाशयसमीपतोऽस्माभिः प्राप्तम्। अस्मिंश्च ग्रन्थे नवीनरीत्या व्याख्यानकौशलं ग्रन्थकृता प्रचुरतया प्रदर्शितम्। क्वचिच्च सूत्रपाठोऽपि विलक्षणतया धृतः। क्वचिच्च सूत्रमप्यधिकं धृत्वा व्याख्यातम्। यथा प्रथमाध्याये प्रथमाह्निके प्रत्यक्षलक्षण-

सूत्रव्याख्यानन्तरं १४ पृष्ठे २१ पङ्क्तौ "सविकल्पकमपि द्विविधं संस्कारोद्भवतदनुद्भवभेदादित्याह। संस्कारोद्भवा प्रत्यभिज्ञा"। इत प्रत्यभिज्ञासूत्रमेकमधिकं दृश्यते, एवमग्रेऽपि। विश्वनाथपञ्चाननकृतं वृत्तिव्याख्यानमपि स्वव्याख्यानकौशलं दर्शयित्वा क्वचित् केचिदित्यादिना क्वचिद् यद्वेत्यादिना प्रायशो दर्शितम्।

तदिदं न्यायसूत्रविवरणपुस्तकं प्राप्य अस्य व्याख्यानरीतिं चावलोक्य प्रकाशयितुकामः वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यक्षश्री१०८मदार्थर्वेनिससाहबमहाशयानामाज्ञयाहं मुद्रयित्वा प्रकाशितवान्।

इदानीन्तनानां सूत्रभाष्यविषये बहूनां विप्रतिपत्तिमुपलभ्य वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालासाहित्याध्यापकमहामहोपाध्यायश्रीयुतगङ्गाधरशास्त्रि- सी. आई. ई. महाशयैः वाराणसीस्थमेडिकलहालनामकयन्त्रालयमुद्रितन्यायभाष्यपुस्तके सूत्रभाष्यनिर्णयः कृतः। तत्र च विवेचकानामपरितोषमनुभूय प्राचीनोक्तसूत्रप्रमाणवाक्यानां टिप्पण्याकारेण सन्निवेशोऽस्माभिः कृतः। यत्र च सूत्रप्रमाणं प्राचीनग्रन्थकारैरुक्तं स्पष्टतोऽस्माभिर्न लब्धं तत्र वाचस्पतिमिश्रविरचितो न्यायसूचीनिबन्ध एव प्रमाणतया शरणीकृतः। सूत्रविषये पाठान्तराण्यपि तथैव दर्शितानि।

अस्मिन् मुद्रितन्यायसूत्रविवरणपुस्तके अस्मत्प्रमादवशात् सीसकाक्षरदौर्बल्यादिदोषाच्च यद्यदशुद्ध्याद्यादिकं तत्सर्वं शोधयित्वा क्षमासारा हि साधव इति गुणैकदर्शिनः क्षन्तुमर्हन्ति सन्त इति प्रसीदतु च भगवान् सर्वशक्तिः सर्वान्तर्यामी व्यापारेणानेन श्रीबालगोपालदेव इति च प्रार्थयते।

सुरेन्द्रशोकाविर्भावः

श्रीव्रजकिशोरदत्तशर्मा
वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयसंस्कृतलेखकः

रामाभ्रग्रहभेशसंमितशके ख्यातेशवीये मधौ[1]
शुक्लार्द्धे च हिमांशुजेऽहनि तिथावीशे निशीथे ह्यदः।
श्रीगोस्वामिसुरेन्द्रलालमतिमान् लेखालयं हा गतो
वृत्तं मुञ्चति कज्जलाश्रु विकला ह्याकर्ण्य मे लेखनी॥१॥
सूरेरमुष्य सुरधामगमं निशम्य को वज्रतुल्यहृदयो व्यजहान्न सद्यः।
अश्रूणि विह्वलकरैः परिदेवनैः स्वैर्दिङ्मण्डलं न खलु शोकमयं व्यधत्त॥२॥
अथ खेदनितान्तविक्लवा जनता दुर्भरदुःखजल्पिनी।
वसुधां निजलोचनाम्बुभी रुदती क्लेदयतीह निर्भरम्॥३॥
सुरधामगते बुध! त्वयि जनता हा विधुरातिदुःखिता।
निखिलप्रिय! सान्त्वभाषणैर्वद तां को ह्यनुसान्त्वयिष्यति॥४॥
अतिशोकिततबन्धुतास्वनान् समुपाकर्ण्य च मण्डलं दिशाम्।
द्विगुणैरपि तत्प्रतिस्वनैः समरोदन्निखिलार्त्तिवर्द्धकैः॥५॥
अयि धीर! निशम्य को न वै तव सुज्ञातिविलापनिस्वनम्।
अतिविह्वलमानसोऽधुना ह्यह हा मूर्च्छति संरुदन् भुवि॥६॥
क्व च ते सुमते! वचोऽमृतं क्व दयाकीर्णनिरीक्षणं सुधीः!
क्व च धीर! तवास्ति धीरता प्रियता क्वास्त्यधुना च नम्रता॥७॥
नवनीतसमं हि ते सदा हृदयं निर्भरविश्रुतं सुधीः!
अधुना कथमन्यथा च मे तदिदानीं परितप्यते मनः॥८॥
क्व विहाय गतो बुधाऽधुना बहुशो दुःखधुरां ददद्धि नः।
परदुःखनिरासने भवाननुरक्तो मनसाऽनिशं भृशम्॥९॥
अयि कारुणिक! द्रुतं हि नो दयया देहि शुभं स्वदर्शनम्।
अथ मन्तुरपीह कोऽपि चेदविवेकेन प्रिय क्षमस्व तम्॥१०॥

पण्डितसुरेन्द्रलालतर्कतीर्थस्य पञ्चत्वमेव मार्चमाससम्बन्धिपण्डितपत्रप्रकाशने विलम्बे कारणमिति विज्ञापयति यन्त्रालयाध्यक्षः।

---

१. अभ्राङ्गग्रहभेशसंमितसमे श्रीवैक्रमे चैत्रिके—इति पाठान्तरम्।

सटीकतर्कभाषाया विज्ञापनम्

गोवर्धनमिश्रकृततर्कभाषाप्रकाशाख्यतर्कभाषाटीकायाम्
श्रीसुरेन्द्रलालशर्मा

[1]यत्तर्कभाषामनुभाषते स्म गोवर्धनस्तर्ककथासु धीरः।
तेनानवद्येन सुधांशुगौरी कीर्तिर्गुरूणाममृताधिकास्तु॥
विजयश्रीतनूजन्मा गोवर्धन इति श्रुतः।
तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिर्मितिम्॥
श्रीविश्वनाथानुजपद्मनाभानुजो गरीयान् बलभद्रजन्मा।
तनोति तर्कानधिगत्य सर्वान् श्रीपद्मनाभाद्विदुषो विनोदम्॥

इति रामकृष्णगोपालभाण्डारकरमहाशयसङ्कलित१८८२-८३खीष्टाब्दीयरिपोर्ट्पुस्तके २१३ पृष्ठे 'गुरुर्निर्मितिं तर्कानुभाषां विविच्य तनुते' इति लेखदर्शनेन गोवर्धनमिश्रः केशवमिश्रस्य शिष्य इति सिद्ध्यति। बलभद्रजन्मेत्यनेन च बलभद्रोऽस्य गोवर्धनमिश्रस्य पितेति विजयश्रीतनूजन्मेत्यनेन च विजयश्रीर्गोवर्धनस्य मातेति चावगम्यते। विश्वनाथानुजपद्मनाभानुज इत्यनेन चास्य गोवर्धनस्य विश्वनाथपद्मनाभौ द्वौ ज्येष्ठभ्रातराविति निश्चीयते।

पण्डितविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदिमुद्रितवाराणसीसंस्कृतसिरीजस्थसटीकप्रशस्तपादभाष्य भूमिकातो भाष्यटीकाकिरणावल्या एका पद्मनाभरचिता किरणावलीभास्करनामिका टीका वर्तत इति ज्ञायते। तत्पुस्तकं वाराणसीस्थबालसरस्वतीभवनपुस्तकालये वर्तते तत्र चायमारम्भश्लोकः—

उपदिष्टा गुरुचरणैरस्पृष्टा वर्धमानेन।
किरणावल्यामर्थास्तन्यन्ते पद्मनाभेन॥

अन्ते च—

यस्तर्कदुस्तरतरार्णवकर्णधारो वेदान्तवर्त्मनिरताध्वगसार्थवाहः।
श्रीपद्मनाभरचितेन दिवाकरेण तुष्टोऽमुनास्तु सुकृती बलभद्रमिश्रः॥

इति श्रीबलभद्रमिश्रात्मजपद्मनाभविरचितः किरणावलीभास्करः समाप्त इति लिखितमस्ति। पिटर्सन्महाशयकृतरायल्एसियाटिक्सोसाइटीसम्बन्धि १८८४-८६ खीष्टाब्दीयजर्नलपुस्तके २६१ पृष्ठायां कणादरहस्यनामकटीकामधिकृत्यादौ—

---

१. पं. २३, न्यू. सि. (१९००-१९०१) पृ. ११७-१२८.

जयति पुरनिहन्तुः क्षोभपञ्चेषुबाणो
　　जनिरचति पुमर्थानेककल्पद्रुमाणाम् ।
युगपदसुरजानां तद्द्रुहां त्रासहास्यौ
　　निरवधिगुणसीमा कोऽपि भीमा कटाक्षः ॥

स्तम्बेरमाग्रणीयं भ्रमरकुलं दानपानरमणीयम् ।
प्रद्योतमानगण्डस्थलमण्डलमण्डनं जयति ॥
आरचय्य प्रयत्नाद्यैरिहैकाशीतिकारिकाः ।
आचार्यपद्मनाभेन व्याख्या सम्प्रति तन्यते ॥

अन्ते च—

न प्रार्थयामि भवतो दुर्वृत्ताः प्रार्थये साधून् ।
अङ्गीकृतमपि येषां शेषादिभिरप्यहो दूभूष्य ॥(?)
यद्यदत्र विनिक्षिप्तं नव्यं सिद्धान्तवर्तिना ।
पद्मनाभेन तैः प्रीतः प्रगल्भोऽस्तु गुरोर्गुरुः ॥

इति श्रीसन्मिश्रश्रीजगद्गुरुबलभद्रात्मजविश्वनाथानुजविजयश्रीगर्भसम्भवसकलशास्त्रारविन्दप्रद्योतनभट्टाचार्यमिश्रश्रीमत्पद्मनाभकृतौ स्वकृतराद्धान्तमुक्ताहारव्याख्याने कणादरहस्यं समाप्तमिति, एवं लिखितमस्ति । बलभद्रात्मजेत्यनेन विजयश्रीगर्भसम्भवेत्यनेन विश्वनाथानुजेत्यनेन च गोवर्धनाग्रजन्मैव पद्मनाभः किरणावलीभास्करकणादरहस्ययोः कर्तेति नात्र विवादावकाशः । अस्पृष्टा वर्धमानेनेति किरणावलीभास्करस्थलेखदर्शनेन च गोवर्धनाग्रजपद्मनाभस्य तत्त्वचिन्तामणिप्रणेतृगङ्गेशोपाध्यायात्मजवर्धमानोपाध्यायादर्वाचीनत्वमिति स्पष्टत एवावगम्यते ।

रामकृष्णगोपालभाण्डारकरमहाशयसङ्कलित १८८२-८३ ख्रीष्टाब्दीयरिपोर्ट्पुस्तके चिन्नभट्टकृता तर्कभाषाप्रकाशिकानामिका एका टीका वर्तते । चिन्नभट्टस्तु सहजसर्वज्ञस्य पुत्रः सर्वज्ञस्य भ्राता विजयनगरस्य राजा हरिहरोऽस्य सहायक आसीत् । स च चिन्नभट्टः चतुर्दशशताब्दिशेषभागे आसीदिति लिखितम् । तर्कभाषाटीकाकृच्चिन्नभट्टापेक्षया तर्कभाषाकृतः केशवमिश्रस्य प्राचीनत्वमाञ्जस्येनैव सिद्ध्यति । एवं सति केशवमिश्रस्य तर्कभाषाटीकाकृद्गोवर्धनगुरुत्वेन तत्समानकालत्वे सिद्धे गोवर्द्धनाग्रजपद्मनाभस्य च वर्धमानोपाध्यायानन्तरत्वे चिन्नभट्टस्य च चतुर्दशशताब्दिशेषभागस्थायित्वे स्वीकृते केशवमिश्रस्य चतुर्दशशताब्दिशेषभागपूर्वत्वं वर्धमानोपाध्यायानन्तरत्वं पद्मनाभादिसमानकालिकत्वं च शक्यमवगन्तुम् ।

पिटर्सन्महाशयकृताल्वर्राजधानीस्थपुस्तकालयसूचीपुस्तके पद्मनाभकृतप्रशस्तपाद-भाष्यसेतुमधिकृत्य—

स्मृतिपथमुपनीय श्रीमतस्तातवक्त्राद्
उचितमुपचितार्थं वाक्यमत्यादरेण।
जयति विरचितोऽसौ पद्मनाभेन यत्ना-
दुदयनकृतिपारप्राप्तये सेतुरुच्चैः ॥

उदयनकृतिचन्द्रिकया वृद्धो भाष्याम्बुधिः परितः।
बालानामपि सुगमस्तत्र मया रच्यते सेतुः॥
बलवशीकृतदुर्दमभूपतिर्निजभुजार्जितलोकसमुन्नतिः।
अगतिकार्थिजनस्य परा गतिर्जयति वीरवरः पृथिवीपतिः॥
भाष्याम्भोनिधिसेतौ वीरवरीयें यशोहेतौ (यशेहेतौ)।
रचितो द्वितीयो भागो विदुषा श्रीपद्मनाभेन॥
श्रीपद्मनाभविदुषा पित्रुपदिष्टात् समाहृत्य।
विशदीकृतः प्रयत्नात् कृतिषु विनोदाय गूढोऽर्थः॥
भाष्याम्भोनिधिसेतौ वीरवरीये यशोहेतौ (यशे हेतौ)।
चरमो लक्षणभागो रचितः श्रीपद्मनाभेन॥
अमुनानृणीकृता वयमन्यवदान्याद्विशिष्टेन।
प्रत्युपकारधियायं रचितो ग्रन्थस्ततोऽस्माभिः॥

इति लेखदर्शनात् पद्मनाभेनैव भाष्यसेतुनामिका टीका कृतेत्यवगम्यते। यद्यप्यत्र दृढतर-प्रमाणाभावेन बलभद्रमिश्रपुत्रपद्मनाभेनैवायं सेतुः कृत इति न निश्चयः, तथापि समानकालिकत्वानुमानेन द्वयोः समानपितृभक्तिदर्शनेन च सम्भाव्यत इदमिति ब्रूमः।

तथा हि टर्ड्साहबमहोदयप्रणीतराजस्थानेतिहासदर्शनेन बुन्दीनगरे १३४१ खीष्टाब्दात्परं १४१९ खीष्टाब्दपर्यन्तसमयमध्ये वीरसिंहो राजासीदित्यवगम्यते। तत्र वीरसिंहः छन्दोऽनुरोधेन वीरवरपदेन वीरेन्द्र इत्यर्थमाश्रित्य पद्मनाभेन सङ्गृहीत इति सम्भाव्यते बलभद्रमिश्रपुत्रपद्म-नाभस्य च यथोक्तयुक्त्या चतुर्दशशताब्दिमध्ये स्थायित्वसम्भवः। ऋणयुक्तः पद्मनाभो मिथिलाप्रदेशाद् बुन्दीप्रदेशं गत्वा वीरसिंहादनृणो जात इति अमुनानृणीकृता वयमिति लिखितवानित्यपि सम्भाव्यते। पुस्तकं च तत्रैव लिखितमिति तत्प्रदेश एव प्राय उपलभ्यत इत्यपि सम्भाव्यते।

इत्थं च पद्मनाभसमानकालिककेशवमिश्रोऽपि १३४१ख्रीष्टाब्द-१४१९ख्रीष्टाब्दमध्य आसीदिति सम्भाव्यते । अन्ततो वर्धमानोपाध्यायानन्तरकालिकः चित्रभट्टस्थितिकालचतुर्दश-शताब्द्यन्तभागपूर्वकालिकः केशवमिश्र इत्यत्राविसंवाद एवेति ।

केचिन्मैथिलास्तु किंवदन्तीमात्रसहाया मिथिलाप्रदेशान्तर्गतसरिसवग्रामनिवासी अभिनववाचस्पतिमिश्रस्य पौत्रः केशवमिश्रस्तर्कभाषाद्वैतपरिशिष्टालङ्कारशेखरालङ्कारसर्वस्वादिबहु-ग्रन्थप्रणेता इत्याहुः ।

अभिनववाचस्पतिमिश्रश्च पक्षधरमिश्रसमानकालिकः । तथा च गाथा—

शङ्करवाचस्पत्योः सदृशौ शङ्करवाचस्पती ।
पक्षधरप्रतिपक्षी लक्ष्यीभूतो न च क्वापि ।।इति ।

केशवमिश्रस्याभिनववाचस्पतिमिश्रपौत्रत्वे प्रमाणं यथा केशवमिश्रकृतद्वैतपरिशिष्ट-नामकधर्मशास्त्रप्रबन्धे यद्यपि परमगुरुचरणैस्तत्त्वालोके लाघवात् पर्युदासलक्षणया द्वयोरेक-वाक्यतापि स्वीकृतेति लिखितम् । द्वैतपरिशिष्टग्रन्थेऽपरत्रापि अत एव यत्र दशावेधी नास्ति, अग्रिमदिने चैकादशी वर्धते, तत्रापि वर्धमानैकादश्युपोषणं शास्त्रार्थ इति कृत्यमहार्णवे पर-मगुरव इति लेखो दृश्यते तत्त्वालोकस्य च वाचस्पतिमिश्रप्रणीतन्यायसूत्रव्याख्यारूपत्वेन कृत्यमहार्णवस्यापि वाचस्पतिमिश्रप्रणीतत्वेन गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठं गुरौ पितरि दुर्भर इति कोषाद् गुरुशब्दस्य पितृवाचकत्वावगतेः किंवदन्त्यनुरोधेन परमगुरुशब्देन पितामहबोधनं सम्भवतीति परमगुरुत्वेऽविवाद एवेत्यपि वर्णयन्ति ।

पक्षधरस्य च वक्ष्यमाणयुक्त्या दीधितिकारसमानकालिकत्वं दीधितिकारस्य श्रीकृष्णचैतन्यप्रभुसमानकालिकत्वमिति वर्णयन्ति गौडाः । तत्राभिनववाचस्पतिमिश्रापेक्षया षड्दर्शनटीकाकृद्वाचस्पतिमिश्रस्यातिप्राचीनत्वे प्रमाणं पश्यामः । तथा हि गङ्गेशोपाध्यायकृततत्त्वचिन्तामणिग्रन्थे अत एव प्रत्यक्षपरिकलितमप्यर्थमनुमानेन बभुत्सन्ते तर्करसिकाः, न हि करिणि दृष्टे चीत्कारेण तमनुमिमतेऽनुमातार इति वाचस्पतिवचनयोरविरोध इति लेखदर्शनात् षड्दर्शनटीकाकृद्वाचस्पतेर्गङ्गेशापेक्षया प्राचीनत्वमायाति तत्त्वचिन्तामणेरपि अभिनववाचस्पतिकृता टीका वर्तते तत्पुस्तकं वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीय-पुस्तकालयाध्यक्षपण्डित**विन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदि**समीपे वर्तत इत्यभिनववाचस्पत्यपेक्षया षड्दर्शनटीकाकृद्वाचस्पतेरतिप्राचीनत्वमायाति । अभिनववाचस्पतिमिश्रकृतन्यायतत्त्वालोक-नामिकायां न्यायसूत्रटीकायां बाधनालक्षणं दुःखमिति सूत्रव्याख्यानावसरे दुःखविषयबुद्धिविषयप्रमेयत्वमेव दुःखमिति सूत्रंव्याख्यानावसरे दुःखविषयबुद्धिविषय-प्रमेयत्वमेव दुःखलक्षणमिति वाचस्पतिमिश्रा इति लेखो दृश्यते, ततश्च ज्ञायते षड्दर्शनटीकाकृद्वाचस्पतिरेतदपेक्षयातिप्राचीन इतिं । तत्रैव न्यायतत्त्वालोके उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुरिति सूत्रव्याख्यानावसरे चिन्तामणिकृतस्त्वित्यादिना

गङ्गेशोपाध्यायलेखधारणाच्च। न्यायसूचीनिबन्धात्मकसूत्रसूचीग्रन्थस्य षड्दर्शनटीकाकृद्वाचस्पतिप्रणीतत्वम्—

नमामि धर्मविज्ञानवैराग्यैश्वर्यशालिने।
निधये वाग्विशुद्धीनामक्षपादाय तापिने॥

इति तात्पर्यटीकान्यायसूचीनिबन्धयोरुभयत्रैकाकारमङ्गलाचरणं दृष्ट्वा निश्चीयते। न्यायसूचीनिबन्धे चान्ते—

न्यायसूचीनिबन्धोऽसावकारि सुधियां मुदे।
श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्कवसुवत्सरे॥

इति लेखदर्शनात् पक्षधरसमानकालिकवाचस्पत्यपेक्षया तस्यातिप्राचीनत्वं ज्ञायते। अभिनववाचस्पतिमिश्रश्च भैरवनारायणराजाश्रितः पण्डित आसीदिति—

भादृग्भादृग्भादृग्भा भैरवभूपतिदेवसभा।

इति वाचस्पतिप्रणीतभैरवनारायणनरपतिसभावर्णनगाथादर्शनेन,

श्रीवाचस्पतिमिश्रेण मिथिलेश्वरसूरिणा।
लिख्यते मुनिमूर्द्धन्यश्रीगौष्यात्ममतं महत्॥

इति वाराणसीस्थमेडिकलहालनामकयन्त्रालयमुद्रितविजयनगरसंस्कृतसीरीज़सम्बन्धिन्यायभाष्यपुस्तके न्यायसूत्रोद्धारस्थस्य पद्यस्य दर्शनेन चावगम्यते।

एतावत्पर्यन्तस्य प्रामाणिकतास्वीकारेऽपि तर्कभाषाटीकाकर्तृचिन्नभट्टस्य चतुर्दशशताब्दिशेषभागस्थायित्वे तर्कभाषाकर्तुश्च तत्पूर्वकालस्थायित्वे सिद्धे—

वक्षोजपानकृत् काणसंशये जाग्रति स्फुटे।
सामान्यलक्षणा कस्मादकस्मादपलप्यते॥

इति दीधितिकारं प्रति पक्षधरकृतभर्त्सनकिंवदन्तीसिद्धगाथायां वक्षोजपानकृदिति अतिबालकदीधितिकारसम्बोधनेन दीधितिकारकाले पक्षधरस्यातिवृद्धत्वसूचनेऽपि केशवपक्षधरवाचस्पतीनामतिदीर्घजीवित्वं विना यथोक्तसमयसामञ्जस्यासम्भवेन अतिकष्टकल्पनया अतिदीर्घजीवित्वं तेषामङ्गीकृत्य सामञ्जस्यसम्भवेऽपि तर्कभाषाकर्तुः केशवमिश्रस्य द्वैतपरिशिष्टप्रणेतृत्वे प्रमाणप्राप्तेर्नास्माकमत्र सर्वथाश्वासः।

केचित्तु द्वौ पक्षधरमिश्रौ एको गङ्गेशकृततत्त्वचिन्तामणिग्रन्थस्यालोकनामटीकाकारोऽपरश्च दीधितिकाररघुनाथशिरोमणिसमानकालिकः, आलोककारश्च वर्धमानोपाध्यायानन्तरकालिको दीधितिकारपूर्ववर्तीति प्राहुः, तत्र च दृढतरप्रमाणाभावान्नास्माकमादरः। यत्तु डाक्तर-

राजेन्द्रलालमित्रसम्पादिते हस्तलिखितग्रन्थसूचीग्रन्थे प्रत्यक्षालोकस्यैकं पुस्तकं ऊनषष्ट्यधिकशततमे लक्ष्मणसंवत्सरे लिखितं तेनोपलब्धमिति दृश्यते, तन्न समीचीनं प्रमाणं येन पक्षधरद्वयं कल्पनीयं स्यात्।

अपरश्च केशवनामधेयः काव्यप्रदीपनामालङ्कारग्रन्थकर्तुर्गोविन्दस्य पिता आसीदिति—

सोनोदेव्याः प्रथमतनयः केशवस्यात्मजन्मा
श्रीगोविन्दो रुचिकरकवेः स्नेहपात्रं कनीयान्।
श्रीमन्नारायणचरणयोः सम्यगाधाय चित्तं
नत्वा सारस्वतमपि महः काव्यतत्त्वं व्यनक्ति॥

इति काव्यप्रदीपप्रथमश्लोकदर्शनाज् ज्ञायते। स च मिथिलाप्रदेशान्तर्गतमटसीमरिग्रामनिवासी ठक्कुरोपाधिकोऽद्याप्यस्मिन् ग्रामे तद्वंशीया वर्तन्त इति मैथिलानां किंवदन्त्या ज्ञायत इत्यलमतिविस्तरेण।

अस्यास्तु न्यायप्रदीपाख्यटीकाया एकमेव पुस्तकं प्राप्तमस्मात्तदप्यतिजीर्णम्, तस्यान्ते एवं लिखितं वर्तते—

समाप्तं॥ शुभमस्तु॥ लिखितं वासुदेवकायस्थकाशीदत्तसुपुत्रेण शुभमस्तु। संवत् १६६० समय आषाढवदी द्वितीया पुस्तकसमाप्त॥ शुभं भवतु॥ ग्रन्थो न्यायप्रदीपाख्यो निर्मितो विश्वकर्मणा। निर्माय खलु संख्यातो वाणाक्षिरामभूमिभिः॥ १३२५॥ श्रीरामचन्द्राय नमः॥६॥इति।

एवं च १६६० संवत्सरलिखितटीकाग्रन्थादेव तत्पूर्वसमयवर्तित्वं टीकाकर्तुरवगम्यते। अस्यां टीकायां प्रायश उदयनाचार्यकुमारिलभट्टवरदराजादीनां प्राचीनतमानामेव कारिकादय उद्धृताः, तत्त्वचिन्तामणिटीकाभावप्रकाशकर्तू रुचिदत्तस्यापि नामोल्लेखपूर्वकं मतमुद्धृतम्। यथास्मिन् पुस्तके ५५ पृष्ठायां, १८ पङ्क्तौ रुचिदत्तस्तु यत्कर्मजदुःखप्रागभावोऽस्ति तस्य भोगेनैव नाशः तत्प्रागभावस्य प्रतियोगिजनकत्वनियमात्, अन्यथा प्रतियोगिरूपनाशकाभावे तस्यात्यन्ताभावत्वापत्तेरित्यादि।

रुचिदत्तस्तु पक्षधरमिश्रशिष्य इति चिन्तामणिभावप्रकाशटीकायामादौ—

अधीत्य रुचिदत्तेन जयदेवाज्जगद्गुरोः।
चिन्तामणौ ग्रन्थमणौ प्रकाशोऽयं प्रकाश्यते॥

इति श्लोकदर्शनेनावगम्यते जयदेवस्यैव पक्षधरनामान्तरत्वे सर्वसम्मतत्वात्। पक्षधरस्य च दीधितिकारसमकालिकत्वं दीधितिकारगुरुत्वप्रवादेन दीधितिकारं प्रति—

वक्षोजपानकृत् काणसंशये जाग्रति स्फुटे।
सामान्यलक्षणा कस्मादकस्मादपलप्यते ॥

इति पक्षधरकृतभर्त्सनगाथया चावगम्यते। एवं च दीधितिकारस्यापि श्रीगौराङ्गपरनामधेय-श्रीकृष्णाचैतन्यदेवसमकालिकत्वमित्यवधार्य एतदुपयुक्तसरलानतिविस्तृतटीकासहितमेत-न्मुद्रयित्वा प्रकाशयितुकामः टीकापुस्तकमूलपुस्तकान्तरसहायार्थी टीकापुस्तकादिकमलभमान इच्छामात्रसहाय आसम्। इह च वाराणसीस्थराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालीयपुस्तकालयेऽ-नतिवृस्तृतमेकमेवन्यायप्रदीपाख्यटीकापुस्तकं मूलपुस्तकत्रयं चावलोक्यात्रत्यराजकीयप्रधान-संस्कृतपाठशालीयप्रधानाध्यक्षश्री१०८मद्आर्थरवेनिससाहबमहाशयानामाज्ञया मुद्रयितुमार-ब्धेन मया प्रथमतस्तर्कभाषाया मूलपुस्तकत्रयमत्रैवलब्धम्। टीकापुस्तकान्तरश्च हस्तलिखित-पुस्तकानां मुद्रितसूचीपत्रेष्वनुपलभ्यात्यन्तदुर्लभतां मन्यमानेनात्रत्यपुस्तकालयस्थद्वयोर्वासुदे-वसार्वभौमशिष्यत्वप्रवादेन चैतन्यजीवनचरितादिदर्शनेन चावगम्यते। श्रीकृष्णचैतन्यप्रभुश्च १४८५ खीष्टीयाब्दे जगन्नाथमिश्राज्जात इतीतिहासदर्शनेन,

शाके चतुर्दशशते रविवाजियुक्ते गौरो हरिर्धरणिमण्डल आविरासीत्।

इति चैतन्यचन्द्रोदयलेखदर्शनाच्च निश्चीयते। एवं सति तत्कालवर्ती रुचिदत्त आसीदिति १६६०संवत्संवत्सर(१६०३)खीष्टाब्दपूर्वं १४८५ खीष्टाब्दानन्तरं मध्ये न्यायप्रदीपाख्यटीका-कारो विश्वकर्मा आसीदित्यसंशयमवगम्यते। न्यायप्रदीपाख्यटीकाकारश्च विश्वकर्मा प्रक्रियाप्रदीपनामकग्रन्थकर्तेति एतट्टीकापुस्तके प्रेत्यभावव्याख्यानावसरे १५२ पृष्ठायां क्त्वाप्रत्ययार्थस्तु प्रक्रियाप्रदीपेऽस्माभिर्निरूपितस्तत्रैवानुसन्धेय इति लेखदर्शनादवगम्यते।

श्रीमान् केशवमिश्रो न्यायसूत्रानुसारिबालकोपयोगिग्रन्थानतिविरलानुपलभ्य न्याय-सूत्रानुसारिषोडशपदार्थतत्त्वनिरूपणाय सरलतमं तर्कभाषानामकं प्रथमपाठार्थिबालकानां परमोपकारकं ग्रन्थं रचितवान्। अत एव ग्रन्थस्यादौ—

बालोऽपि यो न्यायनये प्रवेशमल्पेन वाञ्छत्यलसः श्रुतेन।
सङ्क्षिप्तयुत्त्यन्विततर्कभाषा प्रकाश्यते तस्य कृते मयैषा॥ इति।

मध्ये च प्रमाणनिरूपणानन्तरम्—

चत्वार्येव प्रमाणानि युक्तिलेशोक्तिपूर्वकम्।
केशवो बालबोधाय यथाशास्त्रमवर्णयत्॥इति।

अन्ते च तावतैव बालव्युत्पत्तिसिद्धेरिति च स्वीयग्रन्थस्य प्रयोजनं स्वयमेव दर्शितम्। ग्रन्थस्यापाततः श्रवणमात्रेण सहजार्थबोधत्वेऽप्यतिविस्तृतबहुटीकादर्शनाद् दुरवबोधभावा-र्थतावगम्यते। तत्र च—

टीकानामानि		टीकाकर्तृनामानि
न्यायप्रदीपः	—	विश्वकर्मा ।
तर्कभाषाप्रकाशिका	—	गौरीकान्तसार्वभौमभट्टाचार्यः ।
तर्कभाषाप्रकाशः	—	केशवमिश्रशिष्यगोवर्द्धनमिश्रः ।
बालबोधिनी	—	- - - - -
तर्कदीपिका	—	केशवभट्टः
तर्कभाषाप्रकाशिका	—	कौण्डिनदीक्षितः ।
[१]तत्त्वप्रबोधिनी	—	गणेशदीक्षितः ।
तर्कभाषाप्रकाशिका	—	चिन्नभट्टः चैतन्यभट्टो वा ।
युक्तिमुक्तावली	—	नागेशभट्टः ।
तर्कभाषाप्रकाशिका	—	बलभद्रः ।
परिभाषादर्पणम्	—	भास्करभट्टः ।
तर्कभाषासारमञ्जरी	—	माधवदेवः ।
न्यायप्रकाशिका	—	. . . . . .
न्यायसङ्ग्रहः	—	रामलिङ्गः ।
तर्कभाषाभावः	—	रोमविल्ववेङ्कटबुद्धः ।
उज्ज्वला	—	गोपीनाथः ।
		मुरारिभट्टः ।
		भिन्नीभट्टः ।
		गुण्डुभट्टः ।
		नारायणभट्टः ।

तदिदं तर्कभाषापुस्तकमेकमस्मत्पितृचरणसङ्गृहीतास्मद्देशस्थपुस्तकालये दृष्ट्वा गौतमीयसूत्रपाठार्थिनां परमोपकारकमिदमित्यवधार्य एतदुपयुक्तसरलानतिविस्तृतटीका-सहितमेतन्मुद्रयित्वा प्रकाशयितुकामः टीकापुस्तकमूलपुस्तकान्तरसहायार्थी टीकापुस्तकादि-

१. गणेशदीक्षितकृततत्त्वप्रबोधिनीटीकाया न्यायविलासाख्या विश्वनाथभट्टकृता एका टीका वर्तते। तत्राद्यश्लोकार्धं यथा व्याख्यां तत्त्वप्रबोधिन्यां विश्वनाथः स्वमातरमिति वर्णोलमहाशयकृततञ्जौर-पुस्तकालयसूचीपुस्तके दृश्यते।

कमलभमान इच्छामात्रसहाय आसम्। इह च वाराणसीस्थराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालीयपुस्तकालयेऽनतिविस्तृतमेकमेव न्यायप्रदीपाख्यटीकापुस्तकं मूलपुस्तकत्रयं चावलोक्यात्रत्यराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालीयप्रधानाध्यक्षश्री१०८मद्**आर्थर्वेनिससाहब**-महाशयानामाज्ञया मुद्रयितुमारब्धेन मया प्रथमतस्तर्कभाषाया मूलपुस्तकत्रयमत्रैव लब्धम्। टीकापुस्तकान्तरस्य हस्तलिखितपुस्तकानां मुद्रितसूचीपत्रेष्वनुपलभ्यात्यन्तदुर्लभतां मन्यमानेनात्रत्यपुस्तकालयस्थमेकमेव पुस्तकं क्वचिल्लुप्ताक्षरमतिजीर्णमासाद्य तर्कभाषा मुद्रयितुमारब्धा महतायासेन। मुद्रितेषु तु कतिपुचिदंशेषु स्वदेशं गत्वा पितृचरणसङ्गृहीत-पुस्तकालयस्थं वङ्गाक्षरलिखितं तर्कभाषामूलपुस्तकमपि गृहीतम्। यदस्मिन्मुद्रितपुस्तके चतुर्थपुस्तकत्वेनावकल्पितम्। अस्मिंश्च पुस्तके बहवोऽधिकाः पाठाः पाठान्तराणि च बहूनि वर्तन्ते। तानि तानि पुस्तकप्राप्त्यनन्तरं तत्तत्स्थले टिप्पण्याकारेण प्रायः सन्निवेशितानि।

अस्मिन्कार्येऽस्मद्गुरुचरणा वाराणसीस्थराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालीयप्रधानाध्यापकनैयायिकशिरोमणिमहामहोपाध्यायश्रीयुक्त**कैलासचन्द्रशिरोमणिभट्टाचार्य**चरणाः परम-सहाया अस्माकम्। अत्रत्यराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालीयपुस्तकालयाध्यक्षैः श्रीयुक्त-**विन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदि**भिरपि स्थलविशेषदर्शनेनोपकृतोऽस्मीति।

अस्मिन् मुद्रितपुस्तकेऽस्मत्प्रमादवशात् सीसकाक्षरदौर्बल्यादिदोषाच्च यद्यदशुद्ध्यादिकं तत् सर्वं शोधयित्वा क्षमासारा हि साधव इति क्षन्तुमर्हन्ति गुणमात्रदर्शिनः सन्त इति। प्रसीदतु च भगवान् सर्वान्तर्वर्ती सर्वज्ञो व्यापारेणानेन श्रीगोपालदेव इति प्रार्थयते।

■

व्याससूत्रीयशैवभाष्यस्योपक्रमवर्णनम्

श्रीबेचनरामशर्मा

साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[१]पाणिभ्यामवलम्ब्य जानुयुगलेनाध्यङ्गणं रिङ्गणं
कुर्वन् नन्दयशोदयोरगणितानन्दं भृशं नन्दयन्।
वीक्ष्य स्फाटिककुट्टिमे प्रतिफलद्रूपं प्रमोदं व्रजन्
नग्नः कङ्कणकिङ्किणीझणझणत्कर्ताघहर्तास्तु नः ॥१॥
मञ्चादाचुम्ब्य चाङ्के न्यधित धृतिमती स्वाञ्चलान्तः पिधाय
सानन्दं नन्दपत्नी तनयमनयत द्रष्टुमिष्टं पुरारेः।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा स हृष्ट्वा स्म किरति करतो भस्म सुस्मेरवक्त्रः
कृत्वा पुत्राय यस्मै नतिमतिथिरथादाच्च भिक्षां स्तुमस्तम् ॥२॥

अथाहमस्यां वाराणस्यां विपश्चितां कौतुकाधायिनं कमप्यपूर्वं निबन्धमनुसरन्नेकस्यानवलोकितचरस्य विद्वद्वृन्दचेतोविनोदसाधनस्य विविधागमविधायिश्रीश्वेताचार्यान्तेवासिश्रीकण्ठशिवाचार्यविरचितस्य श्रीशङ्कराचार्योपबृंहितब्रह्मप्रतिपादकतापरव्याससूत्राणां साकारशिवनिरूपणतात्पर्यकस्य श्रीमद्रामानुजाचार्यानुमतश्रीजानकीजानिरामचन्द्रवन्निखिलजगन्निर्माता भक्तानुकम्पार्थं धृतशरीरो भूतेश एव सर्वश्रुतिशिरसां तात्पर्यविषयभूत इति वादिनां शैवानां महानिधिरूपस्य महार्थस्य नातिविस्तरस्य प्रायः पञ्चषशतव्यतीतसमयानुमेयरचनस्य सुप्राचीनस्य सपादचतुःसहस्रश्लोकसंख्यामितस्य निबन्धराजभूतस्य भाष्यस्य नीलकण्ठीयेत्यपराभिधानस्य स्पर्शतोऽपि प्रायः शतखण्डायमानपत्रकमतिजर्जरमेकं पुस्तकं निसर्गतो विद्वदुपकृतिपरस्य नैकगुणनिलयस्य **श्रीमद्बृद्धिचन्द्रश्रेष्ठिनः** सरस्वतीसदनरत्नाकराद्रत्नमिवासाद्य पुनः प्रयतमानोऽपि पुस्तकान्तरमलभमानः केनापि क्रियमाणायां विद्वन्मण्डलसभायां प्रतिव्यक्ति विद्वद्वारानेतत् पुस्तकं परिपृच्छन् पुराणकीर्तनवृत्तिना हरिकृष्णाभिधप्रसिद्धवेदान्तिविदुषा प्रायो वेदान्तसन्दर्भभूरिसंग्रहभृता काश्यामलभ्यमप्येतन्ममान्तिकेऽत्यन्तान्वेषणप्रयासेनोपार्जितमेकं पुस्तकमस्तीति दत्तमुत्तरमवगम्य प्रयत्नतः पुनः पुनः प्रार्थ्यमानादभिहितचरनामधेयात् तत्पण्डितादपरमपि तदुपलभ्य मुद्रणविधौ सरलतामवगच्छन् प्रमुदितमना

१. पं. ६, ७२, (मई१, १८७२), २८७-८८.

मनीषिमनोरञ्जनायैतत् पण्डितपत्रद्वारा सर्वत्र प्रचिकाशयिषुर्महामहिम्नां सर्वदोचितसरणि-योजितचेतसां काशिकराजकीयपाठशालाप्रधानाध्यक्षाणामुदग्रविदुषां श्रीमतां ग्रिफिथसाहेब-प्रभुवराणामवश्यं मुद्रणार्हमिदमस्त्यस्मिन् पण्डितपत्रे मुद्र्यतामित्येवंरूपामाज्ञामवाप्य काशीविद्यासुधानिधिनामकेऽस्मिन् पण्डितपत्रे सम्प्रति मुद्रयितुं बद्धपरिकरोऽस्मीति शिवम् ।

■

शैवभाष्यस्योपसंहारवर्णनम्

श्रीबेचनरामशर्मा
सांख्यशास्त्राध्यापकः
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[1]यन्नामस्मरणान्नरस्य निखिलं कृत्यं क्रियातश्च्युतं
पूर्णं याति स एव देवनिवहैराराध्यमानः प्रभुः।
लीलाकल्पितकायकोऽतिकरुणोऽस्माकं शरण्योऽस्तु यं
कर्तारं जगतामुशन्ति विपदां हर्तारमीशं हरिम् ॥१॥

तदेवमेतत् परमेश्वरस्य कृपावशादद्य समाप्तिमाप्तम्।
वेदान्तसूत्रोपरि शैवभाष्यं श्रीकण्ठशैवोदितमङ्कनेन ॥२॥

द्वौ पुस्तकावहमवापममुष्य जीर्णौ यौ दक्षिणोत्तरगती सकले स्थलेऽपि।
वैमत्यमित्थमवलोक्य मयावशेन पाठान्तराणि सुबहूनि समर्पितानि ॥३॥

द्वासप्ततितमपण्डितपत्रादारभ्य चतुरशीतितमम्।
पण्डितपत्रं यावद्भाष्यस्यास्य स्थितिर्ज्ञेया ॥४॥

निम्बार्करामानुजवल्लभेन्द्रमध्वाह्वयो वैष्णवसम्प्रदायाः।
तथेतरे शङ्करभास्करौ च श्रीकण्ठविज्ञानपदादिभिक्षू ॥५॥

वेदान्तसूत्रोपरि भाष्यकारा अष्टावमी सन्ति महानुभावाः।
श्रीकण्ठशैवस्य तदेतदासीद् भाष्यं दुरापं यदमुद्रि यत्नात् ॥६॥

विज्ञानभिक्षोरपि भास्करस्य निम्बार्कनाम्नश्च दुरापमस्ति।
भाष्यं तदाप्स्यामि यदा तदैव विमुद्रयिष्यामि विदन्तु विज्ञाः ॥७॥

बुधा विगतमत्सराः शृणुत मत्कृतं प्रार्थनं
कृपां कुरुत पश्यतातिविरलप्रचारं मुदा।
जहीत यदि दूषणं गुणगणं च गृह्णीत भोः
प्रचारयत भाष्यमित्यतिशयेन सज्जोऽञ्जलिः ॥८॥

---

१. पं. ७, ८४ (मई १, १८७३) २६७.

यायादिदं प्रतिदिशं प्रथितिं जगत्यां
भायान्मनःसु विदुषां सफलोऽस्तु यत्नः।
इत्थं पुनः पुनरहं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
याचे परेश्वरमलं बहुलेखनेन ॥९॥

आत्मपुराणवर्णनम्

श्रीबेचनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[१]अलिककलितचञ्चच्चन्द्रकान्तिच्छटाच्छ-
प्रशमितनिजवासोद्भासनायासवाञ्छम् ।
रुचिरुचिरपुरन्ध्रीकोटिधिक्कारिसव्य-
स्थितगिरिसुतयातिभ्राजमानं भजेऽहम् ॥१॥

अथ वेदान्तोपनिषत्तात्पर्यमवधारयितुमनसां विपश्चितामुपकाराय तात्पर्यबोधिनीनाम्नीं भगवद्गीताव्याख्यां सूत्रदीपिकाख्यां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं कौषीतक्याद्युपनिषट्टीकां दीपिकाभिधानां निर्मायापि मन्दधियामनेकग्रन्थसंपादनोद्योगमविदधतां बहुविधनिबन्धालोडनभीरूणामतिसुलभ संदर्भं मृगयतां सावधारणमनेकोपनिषत्सारार्थमनवगच्छतां वेदान्ततात्पर्यमवगन्तुमिच्छतां कलिकालमहिम्ना सर्वथापचीयमानमतीनां परमालस्यजुषां संख्यावतां प्राचुर्यं सम्भावयद्भिः कृपाम्बुधिभिर्द्रविडान्ववायमवतंसयद्भिर्दक्षिणदिग्जनिभिः परमहंसपरिव्राजकाचार्यानन्दात्मपूज्यपादान्तेवासिभिः सकलशास्त्रपारावारपारदृश्वभिः श्रीशङ्करानन्दमुनिभिर्निखिलवेदान्तोपनिषत्सारसागरावगाहसुखप्रदं विषयिणामपि केवलं श्रवणवाचनमात्रेण विषयवैराग्योपजननद्वारा ब्रह्मानन्दावाप्तिसाधकं ब्रह्मप्रतिपादनपरं तत्तत्कथोपबृंहणपूर्वकमर्थतः सर्वोपनिषद्रत्नघटितमतिसुगमं गुरुशिष्यसंवादरूपं पद्यमयमष्टादशाध्यायात्मकमात्मपुराणं नाम विशेषतः कावेरीतीरनिवासिस्वशिष्योद्देशेन केवलं स्नेहतः पुराणपरिपाट्या निरमायि । तथा चोक्तमष्टादशाध्यायस्थद्विचत्वारिंशदधिकपञ्चशततमपद्ये स्वयमेव—

"इदं गुरुः स्वशिष्याय कावेरीतीरवासिने ।
उक्तवान् श्रद्दधानाय स्नेहादेव च केवलात्" ॥ इति ।

एतत्पद्यार्थपर्यालोचनया कावेरीतीरेऽस्य प्रबन्धस्य निर्मितिरिति निश्चीयते । एतत्पद्यव्याख्यात्रा "**अस्य ग्रन्थस्योत्पत्तिदेशमाह, इदं गुरुरिति**" इत्यवतरणमवतारयतोररीक्रियते चेति ।

यद्यपि शङ्करानन्दभगवतो नोद्भवसमयः प्रतीयते, तथापि विद्यारण्येन गुरुत्वपुरस्कारपुरःसरं वन्द्यमानत्वाद्विद्यारण्यमुनेर्गुरुरासीदिति प्रतीत्यैनयोः पौर्वापर्याभावः प्रतीयत एवेति । तथा चोक्तं विद्यारण्यमुनिभिः पञ्चदशीप्रारम्भे ।

---

१. पं. ९, ९८ (जुलाई १, १८७४), ४१-४३.

"नमः श्रीशङ्करानन्दगुरुपादाम्बुजन्मने"॥ इति।

भिन्नश्चायं शङ्कराचार्यादित्यप्यवसीयत एव। शङ्कराचार्यस्य विद्यारण्यमुनेश्च कालयोर्दूरान्तरत्वेन प्रसिद्धत्वाद्गुरुशिष्यभावायोगात्। एतदात्मपुराणव्याख्याविधायकेन प्रथमाध्यायविवरणावसानावसरकृतपद्यस्यास्मिन्नेव प्रत्ययेऽनुकूलत्वाच्च। तथा च तत् पद्यम्—

"श्रीशङ्करानन्दमुनेः प्रबन्धः श्रीशङ्कराचार्यमतानुगामी"॥ इति।

अस्य प्रथमाध्याय ऐतरेयोपनिषदर्थनिरूपणं, द्वितीये कौषीतक्युपनिषत्सारार्थप्रकाश इन्द्रप्रतर्दनाख्यानं, तृतीये कौषीक्युपनिषत्सारार्थप्रकाशे गार्ग्याजातशत्रुसंवादः, चतुर्थे बृहदारण्यकमधुकाण्डसारार्थप्रकाशके ऋष्यसंवादः, पञ्चमे बृहदारण्यके याज्ञवल्क्यकाण्डसारार्थप्रकाशे ऋषियाज्ञवल्क्यसंवादः, षष्ठे बृहदारण्यकयाज्ञवल्क्यकाण्डसारार्थप्रकाशे याज्ञवल्क्यजनकसंवादः, सप्तमे खिलकाण्डसारार्थप्रकाशस्तत्र याज्ञवल्क्यमैत्रेयीसंवादः, अष्टमे श्वेताश्वतरोपनिषत्सारार्थप्रकाशे श्वेताश्वतरसंन्यासिसंवादः, नवमे काठकोपनिषत्सारार्थप्रकाशे यमनचिकेतः संवादः, दशमे तैत्तिरीयोपनिषत्सारार्थप्रकाश आनन्दवल्लीभृगुवल्लीनारायणीयव्याख्यानम्, एकादशे जाबालगर्भब्रह्मपरमहंसहंसारुणेयक्षुरिकामृतनादमहदात्मप्रबोधकैवल्योपनिषदामेकादशानां सारार्थप्रकाशः, द्वादशे छान्दोग्यसारार्थप्रकाश आरुणिश्वेतकेतुसंवादः, त्रयोदशे छान्दोग्यसारार्थप्रकाशे सनत्कुमारनारदसंवादः, चतुर्दशे छान्दोग्यसारार्थप्रकाशे प्रजापतीन्द्रविरोचनाख्यायिका, पञ्चदशे तलवकारोपनिषदर्थप्रकाशः, षोडशे मुण्डकोपनिषत्सारार्थप्रकाशस्तत्राङ्गिरःशौनकसंवादः, सप्तदशे प्रश्नोपनिषदर्थप्रकाशे पिप्पलादसुकेशसंवादः, अष्टादशे नृसिंहपूर्वोत्तरतापनीयसारार्थप्रकाश ईशावास्योपनिषत्सारार्थप्रकाशश्चेति।

तदित्थं संक्षिप्याष्टादशाध्यायाभिधेयार्थनिरूपणं मतिमद्भिरवसेयम्।

अस्य प्रबन्धस्य सर्गप्रतिसर्गादिपञ्चविधपुराणलक्षणसमन्वितत्वात् पुराणत्वम्। तदुक्तमष्टादशतमाध्यायोपान्तेऽष्टत्रिंशदधिकपञ्चशततमादिपद्यैर्मूल एव शङ्करानन्दमुनिभिः। तथाहि—

"सृष्टिः स्थितिश्च संहारो विश्वस्यास्मिन् हि तिष्ठति।
भूतानां भौतिकानां च वंशोऽपि च महानयम्॥५३८॥
स्वायंभुवस्य च मनोः कीर्तनं चात्र विद्यते।
यस्मिन् मन्वन्तरं सर्वमन्तर्भवति सर्वदा॥५३९॥
व्यापारा अपि वंश्यानां भूतादीनां महात्मनाम्।
राज्ञां यशांसि कीर्त्यन्ते पुराणेऽस्मिन्ननेकधा"॥५४०॥

एतद्व्याख्यानमनुपदमात्रवर्णयिष्यमाण**काकारामपण्डित**रचितं प्रसङ्गात् प्रदर्श्यते। इदमेव च दिक् प्रदर्शनं तद्व्याख्यानसौष्ठवस्यानुसन्धेयम्। तद्यथा—

"अस्मिन् प्रसिद्धं पुराणलक्षणं समन्वितं करोति, "**सृष्टिरिति**", सर्गपदोक्ता विश्वस्य सृष्टिः, तदुपलक्षिता स्थितिश्च, तथा प्रतिसर्गः संहारोऽस्मिन् ग्रन्थे तिष्ठति प्रतिपाद्यते, तथा भूतानामाकाशादीनां भौतिकानां विराडादीनां च वंशोऽत्र तिष्ठतीत्यर्थः ॥५३८ ॥ मन्वन्तरसत्त्वमप्यत्र दर्शयति, "**स्वायंभुवस्ये**"ति, स्वायंभुवमनोः कीर्तनमुत्पत्त्यादिवर्णनमत्र चतुर्थाध्याये त्रयोदशाधिकत्रिशततमश्लोकमारभ्य विद्यते, येन तद्विभूतिभूतानां सर्वेषां मनूनां कीर्तनं कृतप्रायं भवति, तदेतदुक्तं "**यस्मिन् मन्वन्तर**"मित्यादिना ॥५३९ ॥ वंश्यानुचरितं वंशभवानां व्यापारः, सोऽप्यत्र विद्यते, आकाशादीनां भूतानां तद्विकाराणामिन्द्रियादीनां तथा मनुवंशानां तथा मनुवंश्यानां प्रतर्दनादीनां राज्ञां च ये व्यापारास्तेषामत्र कीर्तनादित्याह, "**व्यापारा अपीति**" ॥५४० ॥इति ।

अथ वाराणसीस्थवृद्धकालेश्वरसमीपवर्तिमठमधिवसतो वाङ्मयमात्रपारावारविहारिणः कृपालुतया संसारतप्तान् वेदान्तोपदेशेनोद्धरतो वेदान्ततात्पर्यबोधने परमोत्कृष्टतामेतत्पुराणस्यावकलयतो निजगुरोः **श्रीमद्विश्वेश्वराश्रमयतिवर**स्यार्थगरिमभृतैतत्पुराणसम्बन्धिसुस्पष्टव्याख्यानाय निदेशं शिरसि निदधता काश्मीरमण्डलालङ्कृतिजम्बूनामराजधान्यवाग्दिग्विभागवर्तिव्यासगङ्गाभिधनदीनिकटगामिबब्भराभिधपुरीनिवासिना सारस्वतद्विजात्यन्तर्गतसप्तशाखमुणीहाराख्यजात्यन्तर्गतं दत्तकुलमलङ्कुर्वता द्विचत्वारिंशदधिकाष्टादशशतमितवैक्रमाब्दगतपौषसुदिद्वादशीलब्धजनुषा कृष्णचन्द्रात्मजदिलारामनामतातसविधे किञ्चिदधीत्य पञ्चविंशकल्प- शरद्यध्ययनाय काशीमिमामायातवता समग्रविद्याबृहस्पत्यहोबलशास्त्रिविश्वेश्वराश्रमयतिवर्यप्रभृतिभ्यो व्याकरणपूर्वोत्तरमीमांसातर्कपातञ्जलसांख्यमुखाखिलशास्त्राण्यधीत्य यथाशक्ति वसुविद्यावितरणेन बहुविद्यार्थिनो विदुषश्च सन्तोषयता विद्वन्मण्डलाग्रेसरत्वपदवीमनुभवता हनुमत्कुलदैवतेन **काकारामेति** विख्याताभिख्येन सूरिवरेणाद्रिशशिनवभूमितवैक्रमाब्दाधिकाश्विनसिताष्टम्यां दिवं भूषयता पञ्चवसुनागमितवैक्रमाब्देऽखण्डब्रह्मानन्दसुखसाक्षात्कारोपलम्भिका सत्प्रसवाख्या व्याख्यास्य पुराणस्य व्यधायि ।

तस्यास्य प्रबन्धस्य क्वचित् क्वचिन्मूलरूपेण क्वचिदेव चोक्तचरटीकया सहोपलभ्यमानस्य बहुभिर्यत्नैरपि क्वचित् क्वचिदनुपलभ्यमानस्य सुप्रचारार्हस्यापि क्रयविक्रयादिव्यापाररहितस्यातिविरलप्रचारतामवलोक्यानन्दात्मयतिवरस्य सुप्रचिचारयिषापिपरिषुसूर्यरामपुत्रमनसुखरामेरितनागरद्विजातीयजीर्णदुर्गाभिधराजधानीनिवासिभिस्तद्राजधानीप्रभुवितीर्णप्रधान-मन्त्रिपदप्रतिष्ठायुग्भिर्वेदान्तशास्त्रनिष्णातैर्झालापदाङ्कितैः संपद्रामसुतैर्गोकुलजीति सुगृहीतनामभिर्भावनगरराजधानीनिवासिभिस्तदधीशदत्तोपमन्त्रिपदभृद्भिः परमानन्ददाससूनुभिः श्यामलदासशर्मभिश्च निगदितचरानन्दाभिधयतिवरसुप्रचिचारयिषापूर्तितत्परैः सुदामनगरीस्थवेदान्तशास्त्रनिपुणजीवनरामतनूजजयकृष्णसूरिकृतोत्तेजनां मनसुखरामप्रेरणां च सफलयद्भिरेतदपूर्वप्रबन्धदिदृक्षुसूरिजनोपचिकीर्षामतिकृद्भिः स्वद्रव्यव्ययेन काशिकनृसिंहभारतीयतिवरादेकमेकं च प्रोक्तजयकृष्णसूरेः पुस्तकमुपलभ्य नासिकक्षेत्रवास्तव्यनारायणाङ्गजखाडल्करोपाह्वात्माराम-

(आपा) शास्त्रिभिः प्रशोध्य मुम्बईपत्तनवर्तिगणपतकृष्णाजी मुद्रायन्त्रालये तदधिपात्माराम-काह्नोबाभिधेन लौहमुद्राक्षरैर्मुद्रणं कृतमासीत् ।

अथास्य वेदान्तशास्त्रप्रतिपाद्यार्थनिरूपणे परमोत्तमस्य मूलमात्रस्याल्पस्य प्रसिद्धतर-वाराणसीस्थराजकीयसरस्वतीमहामन्दिरेऽवलोकितचरस्य बहुलप्रसादगुणजुषो वेदान्त-शास्त्रार्थविविदिषावद्रसिकजनात्यन्ताह्लादकस्य प्रबन्धवर्यस्येमां सुमुद्रणसौभाग्यवत्तां निरीक्ष्यातिप्रमुदितमना एतत्सम्पादकानामद्भुतलोकोपकारशीलतां पश्यन् स्वयमखिलविद्वज्ज-ननयनगोचरीकरणाय सत्यां समग्रोपलब्धौ प्रचिकाशयिषुरप्यनायाससंसिद्धमनोरथः कृतकृत्यः सम्पन्नोऽस्मीति । स्मरिष्यामि च सम्पादकानामिमामुपकारितामिति ।

तथा पुस्तकरूपेण त्रिवलि यन्मुद्रितं, पत्राणि च सुदृढानि यद्योजितानि, सुमनोहराणि महान्ति च यदक्षराणि मुद्रितानि, तदेतत् सर्वं मन्मनसोऽतिप्रीतिमुत्पादयतीति ।

आत्मा पुराणः प्रतिपाद्यतेऽस्मिन् सर्वाणि वेदान्तवचांसि यत्र ।
वन्दिव्रजत्वं कलयन्ति नैव प्रयान्त्यनन्तस्य कदापि पारम् ॥१॥

रामकृष्णमहासूरिव्याख्ययेदमलङ्कृतम् ।
निसर्गाद्रुचिरं वक्त्रं कुण्डलेनेव शोभते ॥२॥

नाहमत्रालिखं किञ्चिदपूर्वं विदुषां गणः ।
जानातु क्षमतां चैव चापल्यं क्षमया समः ॥३॥

भूमिकातश्च टीकातो मूलतश्च क्वचित् क्वचित् ।
भावमादाय विद्वांसोऽलेखिषं भवतां मुदे ॥४॥

श्रीमतः शास्त्रविज्ञस्य न्याय्याध्वोचितचेतसः ।
ग्रिफिथेत्यभिधानस्य साहेबाग्र्यस्य सुप्रभोः ॥५॥

निदेशं शिरसि न्यस्य प्रावर्तिषि महात्मनः ।
विदाङ्कुर्वन्तु धीमन्तः किमन्यैर्बहुलेखनैः ॥६॥ इति शिवम् ॥

आज्ञां प्राप्य विघट्टिते कथमपि द्वारे प्रविष्टो हरिः
साष्टाङ्गप्रणतिं विधाय तनुते यावत् स्तुतिं शूलिनः ।
गौर्यङ्कस्थगणेशशुण्डललनात् तावन्मणिं [1]गुप्तवां-
स्तद् दृष्ट्वाम्बिकया सहातिविहसन्नीशोऽस्तु नः श्रेयसे ॥७॥

---

१. तावल्लम्बितशुण्डके गणपतौ स्वं कौस्तुभं ग० - इति पाठान्तरम् ।

काव्यप्रदीपस्य आभाषः

पण्डितरामशास्त्रिभागवताचार्यः

इह[१] खलु प्राचीनेष्वर्वाचीनेषु गुरुषु लघुषु च परश्शतेषु साहित्यशास्त्रनिबन्धेषु सत्स्वपि दृश्यश्रव्योभयविधकाव्यव्याकृतिकृतिनि साङ्गोपाङ्गसाहित्यपदार्थसार्थसमष्टिसमुद्भासनभासुरे जाग्रत्यपि च साहित्यदर्पणप्रबन्धे निष्प्रतिबन्धं काव्यप्रकाशो नाम प्रबन्धराजः श्रीराजानक-मम्मटभट्टकृतिः कृतिभिर्मीमांसान्यायव्याकरणादिशास्त्रव्यायामविनीतमतिभिः सहृदयहृदयाग्रे-सरैःकोविदप्रवरैरध्ययनाध्यापनव्याख्यानदूषणभूषणप्रभृतिभिर्विविधाभिर्विधाभिरभितः प्रचुर-प्रचारतां नीयमानो मानोन्नतिमतितरान्नीयते यथा, नो नाम तथेतरः, अत्र हि लोकोत्तरोदात्तमुद्रया सारार्थोदारगभीरगहनसंक्षिप्ताक्षरतया साहित्यशास्त्रीयप्रधानपदार्थमहास्कन्धाः शब्दार्थाभिधा-लक्षणाव्यञ्जनाध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्यदोषगुणालङ्कारादयः प्रतिक्षेपसमाधानादिभिर्न्यरूपयिषत तथा, यथा खल्वखिलेषु साहित्यग्रन्थेषु कृतमतयो निरर्गलं स्वयमेवाध्ययनाध्यापनादिक्षमा उतापि वा शास्त्रान्तरावबोधक्षमाः सम्पद्यन्ते।

निबन्धश्चायं साहित्यदर्पणसाहित्यरत्नाकरादिभ्यः पुरातनः, निबन्द्धा खल्वस्य श्रीमान्-राजानकमम्मटभट्टः काश्मीरकः। सोऽयं कश्मीराधीश्वरस्य **यशस्करदेव**महाराजस्य समये बभूवेति केचित्, तथा हि, श्रीमदभिनवगुप्तस्य भ्राता **मनोरथगुप्तो** नामासीदित्याह स्म स एव—

"भ्राता ममैव शिवशासनरूढचित्तः
प्रेप्सुः परात्मनि मनोरथगुप्तनामा"॥

इति परात्रिंशिकातत्त्वविवरणे। मनोरथगुप्तश्च श्रीमतो यशस्करदेवस्य धर्माध्यक्षोऽभूत्, यथाह स्म तन्त्रालोकविवेके जयरथः —

"श्रीमान् यशस्करनृपः सचिवं समस्त-
धर्मस्थितिष्वकृत पूर्णमनोरथाख्यम्" ॥इति।

श्रीमानभिनवगुप्तश्चेतः प्राङ् नवमशतकस्य पूर्वार्द्धोद्भूत इति—

"[२]इति नवतितमेऽस्मिन्वत्सरेऽन्त्ये युगांशे
तिथिशशिजलधिस्थे मार्गशीर्षावसाने"॥

---

१. पं. १३, न्यू., सि. २ (फरवरी १८९१) ६७-७८.

२. प्रतीकत्रयमिदं श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादपण्डितेन वैशेषिकदर्शनभूमिकायां गृहीतम्, उक्तं च प्रकाशकृद्य-शस्करदेवकालिक इति।

इतीश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिन्यां तदीयोक्तित एवावगम्यते, अन्त्ये युगांशे तिथिशशि-जलधिस्थे, ४११५ मिते कलियुगाब्द इत्यर्थः। नवतितमेऽस्मिन्वत्सरे इति तु काश्मीरक-व्यावहारिकतदानीन्तनवर्षाभिप्रायेणोक्तमिति बोध्यम्, प्रकाशकृच्च श्रीमदभिनवगुप्तस्य शिष्यः स्यात्। यथाऽसौ काव्यप्रकाशे रसनिरूपणप्रकरणे श्रीमद्भट्टलोल्लटश्रीशङ्कुकभट्टनायक-मतानि रसास्वादोदयविषयाण्युपन्यस्य तान्यरोचयंश्चरमं स्वसिद्धान्तभूतं मतं प्रतिपाद्याऽभ्य-धात्— "इति श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तपादाः"। पादपदेन च निबन्द्धारो गुरून् व्यपदिशन्तीति शिष्टाचारः सुप्रसिद्ध एव। तदेवं प्रकाशकृद्यशस्करदेवसमयेऽभूदिति लभ्यत इति।

काश्मीराधीश्वरस्याऽनन्तदेवमहाराजस्य राज्यसमयवर्त्ती भवेदिति तु मम युक्तं प्रतिभाति। प्रकाशे उदात्तालङ्कारोदाहरणे हि "भोजनृपतेस्तत्त्यागलीलायित"मिति पठ्यते। महाराजः श्रीमान्भोजराजश्चानन्तदेवसमसमय इति।

"स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ।
सूरी तस्मिन्क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ॥

इति राजतरङ्गिणीतः (श्लोक. २५९) स्फुटम्। स चेति। अनन्तदेवश्चेत्यर्थः। अनन्तदेव-महाराजराज्यं १०८५ तमवैक्रमाब्दादारभ्य ११३७ तमं वैक्रमाब्दं यावत्। श्रीमद्भोजमहाराज-राज्यञ्च १०५३ तमात् ११०८ तमवैक्रमाब्दं यावत् सुप्रसिद्धम्। इत्थं च भोजमहाराजराज्या-दुत्तरं एकोनत्रिंशतं वत्सरान् श्रीमदनन्तदेवमहाराजराज्यमभूत्, प्रकाशकृच्च श्रीमदभिनवगुप्तस्य शिष्य इति अनन्तराजराज्यकालिकः स्यात्। न च मा भूदितः प्राचीनः, अर्वाचीनस्तु किमिति न स्यात्। श्रीमदभिनवगुप्तस्य पादपदेन व्यपदेशस्तु साक्षादिव परम्परितशिष्यत्वेऽपि कर्त्तुं शक्य एवेति वाच्यम्, यत इतः प्रागष्टमशतकस्थात्प्रकाशो- परिसंकेताख्यटीकाकर्त्तुर्माणिक्य-चन्द्रात् प्राचीनत्वमस्य तदुक्त्यैव सिध्यति, तथा हि—

"माणिक्यचन्द्राचार्येण तदङ्घ्रिकमलालिना।
काव्यप्रकाशसंकेतः स्वान्योपकृतये कृतः॥
रसवक्त्रग्रहाधीशवत्सरे मासि माधवे।
काव्ये काव्यप्रकाशस्य संकेतोऽयं समर्थितः॥इति।

अत्र ग्रहाधीशपदेन ग्रहाणां चन्द्रादीनामधीशः सूर्यः, स च द्वादशात्मेति द्वादश बोध्यन्त इति १२१६ लभ्यन्ते। संख्या चेयं वैक्रमी, वैक्रमाब्दव्यवहारस्यैवैतद्देशेषु प्रचुर-प्रचारात्। यदुक्तमार्यविद्यासुधाकरे यज्ञेश्वरेण— "विक्रमार्कसमयात्पञ्चाशदधिकैकादशशती-मिते ११५० संवत्सरे गुर्जराधिपो जयसिंहनामा बभूव। तदानीं श्रीपत्तनेऽधिवसतो देवसूरिनामकजैनाचार्यस्य शिष्यो माणिक्यनामा कश्चित्पण्डित आसी"दित्यादि। न च तेन सह पूर्वोक्तस्य विरोधोऽस्तीति शङ्कनीयम्, यतः तदानीमित्यस्याधिवसत इत्यनेनान्वयो न त्वा-सीदित्यनेनेति मम युक्तं भाति।

श्रीमान् मम्मटभट्टः खलु काव्यादर्शकाव्यालङ्कारवामनसूत्रभट्टोद्भटालङ्कारादिकानलङ्कार-ग्रन्थान्परस्परविलक्षणार्थसार्थसङ्कुलितान् आलोच्य साहित्यशास्त्रपदार्थान्परस्सहस्रशाखांश्च तांस्ताननुगमय्य दृश्यश्रव्योभयकाव्यसाधारणानसाधारणानेव साहित्यतन्त्रस्य महास्कन्धान्- ध्वनिगुणालङ्कारादीन् कारिकाभिः १४२ द्वाचत्वारिंशदुत्तरशतमिताभिः सूत्रयामास च व्याचचक्षे च तानि स्वयमेव काव्यप्रकाशाख्यया वृत्त्या।

महेश्वरन्यायालङ्कारस्तु—"सुकुमारान् राजकुमारान् स्वादुकाव्यप्रवृत्तिद्वारेण गहने शास्त्रान्तरे प्रवर्त्तयितुमग्निपुराणादिभ्य उद्धृत्य काव्यरसास्वादकारणमलङ्कारशास्त्रं संक्षिप्य भरतमुनिः प्रणीतवान्, मम्मटभट्टस्तु ताः कारिकाः सोदाहरणं व्याख्यातुं कारिकाग्रन्थप्रथममङ्गलभूतां नियतिकृतनियमेत्यादिकारिकामुत्थापयति ग्रन्थारम्भ इत्यादी"ति प्रतिज्ञायोपापीपदत्—"तस्यैतत्कारित्वं च तदीयसंहितायामालाङ्कारिकाणां दर्शनेन परामृशतीत्यत्र प्रथमपुरुषस्वरसेन च निर्णीयते। वृत्तिकृतः कारिकाकारित्वे तु परामृशामीत्येवंनिर्देश एवोचितः स्यात्। अत एव "अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः" इति कारिकायामेव नव रसा भाव्येरन्। अत एव च "समस्तवस्तुविषयं श्रौता आरोपिता यदा" इति समस्तवस्तुरूपककारिकायाम् 'श्रौता आरोपिता' इति बहुवचनमविवक्षितमिति वृत्तावेव व्याख्यातम्। स्वीयकारिकात्वे तु "श्रौतावारोपितौ यदेत्येवोच्येत" इति तदेतत्तावन्न विचारचारु, [१]प्रकाशीयरससन्दर्भव्याकोपापत्तेः। तथा हि, "कारणान्यथ कार्याणी"त्यादिकारिकायुगलेन ग्रन्थकृत्स्वयं रसं निरूप्य स्वोक्तार्थेऽप्रामाण्यशङ्कां पराकर्त्तुमाह "उक्तं हि भरतेन, विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति"रिति भरतमुनेरेव कारिकाकारित्वे तु तद्वचसैव तद्वचसः प्रामाणिकत्वसम्पादनं वृत्तिकृत उन्मत्तप्रलपितप्रायं सचेतसां चेतसि न खल्ववकाशमासादयितुमीष्टे, न च पूर्वोक्तप्रमाणवाक्यं तु भरतप्रणीतनाट्यशास्त्र इत्यर्थकम्। नाट्यशास्त्रे च तस्य प्रकृतग्रन्थकारित्वाभावात्तदुक्तं भरतेनेत्येवमुक्तं न तु ग्रन्थकृतेति साम्प्रतम्, यतः, खल्वेतावताऽपि भोः 'तदुक्तं ग्रन्थकृता नाट्यशास्त्रे, इतीत्थं वक्तव्यमभून्न पुनः परोक्षवाचा। नैतावताऽपि पुनः सचेतनचरितवैदेशिकस्य तेनैव तत्प्रमाणनस्य कथमप्युत्तरं दत्तं भवति। एवम् "माला तु पूर्वव"दिति कारिकायां रूपकप्रकरणे मालोपमातुल्यतया मालारूपकस्यातिदेशमुद्रया व्युत्पादनं कारिकाणां वृत्तिकृत्प्रणीतत्वमन्तरा नेतरमुपपद्यते—

अनयेनेव राज्यश्रीर्दैन्येनेव मनस्विता।
मम्लौ साऽथ विषादेन पद्मिनीव हिमाम्भसा॥

इत्येवं माला तु न लक्षिता, एवंविधवैचित्र्यसहस्रसम्भवादुक्तभेदानतिक्रमाच्चेत्येवं मालोपमायाः कारिकानुक्ताया वृत्तावेव निरूपणात्।

---

१. यद्यपि प्रकृतग्रन्थस्य (प्रदीपस्य) नास्त्येवंजातीयकवस्तुकृतो विशेषस्तथाप्येवंलक्षणस्य विषयस्य बहुलविद्वज्जनजिज्ञासाविप्रतिपत्त्यादिग्रस्ततया तन्निर्णयो भवति युक्तरूपः। श्रीमहेशचन्द्रन्यायरत्नमहाशयेन चायमर्थः काव्यप्रकाशभूमिकायामुट्टङ्कितोऽपि नाऽशेषविशेषतो निर्णीतो माहेश्वरयुक्तिसमष्टिनिराकरणेनेति ममायमायासः प्रसक्तः।

न च "त्रिलोपे च समासगे"ति सूत्रस्थचकारेण समुच्चितेति सूत्रे लक्षिताया एवोत्तरत्रातिदेशोपयोगित्वमिति वाच्यम्, "माला तु न लक्षिता" इति वृत्तिविरोधापत्तेः। न च न लक्षितेत्यस्य न विशेषतो लक्षितेत्यर्थ इति वाच्यम्, एवं हि स्वारसिकार्थमपहाय कुसृष्टावभिनिवेशे बीजस्य वक्तव्यत्वापत्तेः; प्रत्युत रसग्रन्थव्याकोपापत्तिबाधितत्वात्। तुष्यतु भवानिति तथार्थाभ्युपगमेऽपि पूर्वं हि सूत्रकृता माला विशिष्य स्वयमलक्षिता कथमुत्तरत्रातिदेष्टुं शक्यते, विशेषोपदेशमन्तरा श्रोतुर्बुद्धावनारोहे सुतरामतिदेशासम्भवात्। सामान्यतोऽप्युपदेशश्चेह न वक्तुं शक्यः, उक्तभेदानतिक्रमाच्चेति द्वितीयहेतोस्तथा सत्यकिञ्चित्करत्वापत्तेः। न हि खलूपदिशन्नेव स्वातन्त्र्येण सहृदयोऽन्तर्भावमन्यत्र तस्य शास्ति। किञ्चैवं सति गुणत्रयस्यैतदितरैरालङ्कारिकैरनुररीकारस्य कारणं नैवोपदर्शयितुं पारयिष्यति भवान्। मम तु प्राचीनैरेवंविधेषु सुसूक्ष्मेष्वर्थेषु साक्षात्खण्डनमण्डनादिमुद्रया संक्षिप्तस्वीयसूत्रादिष्व[१]नुपदिष्टेष्ववर्चीनानां नानाविधा गुणदोषादिविभागप्रकल्पनाः प्रवृत्ता इति तदनन्तरं प्रकाशकृता तत्सर्वं परिमीमांस्य युक्तियुक्तोऽनुभवविभवसाक्षिकः सुसंक्षिप्तः साहित्यसिद्धान्तकल्पः प्रकाशित इति सर्वं समञ्जसम्। अत एव च [२]तददोषावित्यादिकाव्यलक्षणादेः खण्डनाद्यर्वाचीनानामुपपद्यते। यत्तूक्तं तदीयसंहितायामासां कारिकाणां दर्शनमिति, तत्तु चक्षुषी निमील्य यतः, सुचिरात्सर्वसमष्ट्याऽनुपलभ्यमानायां तदीयसंहितायामेवमुक्तेः साहसमात्रविलसितत्वात्, उपलभ्यमानग्रन्थभागे चानुपलम्भादेव। न हि न्यायालङ्कारः खलूपलब्धवान्न पुनर्दर्पणरसगङ्गाधरकारादयः साहित्यकाव्यादिपारदृश्वान इत्युच्यमानमप्यमानं कश्चन श्रद्धास्यति। शृङ्गारहास्येति रतिर्हासश्चेति श्लोकयोर्भरतसूत्रभूतयोर्ग्रहणेऽपि न खलु तावता सर्वस्य कारिकासन्दर्भस्य भरतीयत्वं वक्तुं शक्यम्, अन्यथा कर्णावतंसेति पद्यस्य वामनवृत्तिस्थत्वेन तदीयत्वस्यापि वक्तव्यत्वापत्तेः।

यच्च वृत्तिकृतः कारिकाकारित्वे तु परामृशामीत्येवमेवोचितत्वादिति, तदपि नोचितम्, परोक्षप्रिया इव हि देवा इति न्यायेन "केनाप्यत्र मृगांक्षि राक्षसपतेः कृत्ता च कण्ठाटवी" इतिवद् ग्रन्थकाराः संवृतिमुद्रयाऽऽत्मानं व्यपदिशन्ति, बादरायणः जैमिनिरित्यादि शास्त्रकाराः, अर्वाञ्चोऽपि च "ग्रन्थकृत्स्मरति स्म अनुभवहेतुः सकल" इति। एवमेव साहित्यदर्पणमुक्तावल्यादिषु। न ह्येषु भिन्नकर्तृकत्वं स्वप्नेऽपि प्रामाणिकाः शङ्कन्ते, प्रत्युत वयं तु समानकर्तृकेषु व्याख्येयव्याख्यानेषूत्तमपुरुषप्रयोगमेव नोपलभामहे। यच्चोक्तमत एवाष्टौ नाट्ये रसाः स्मृता इति कारिकायाम्—अष्टरसकथनेऽपि निर्वेदस्य प्रथमोपादानस्वरसेन नवमः शान्तरसो वृत्ता-

---

१. अलङ्कारसूत्रत्वेन प्रसिद्धानि शौद्धोदनिकृतानि वामनकृतानि च सन्ति। तत्र वामनसूत्राणि गद्यरूपाणि, शौद्धोदनिसूत्राणि ग्रन्थान्तराणि च कारिकारूपाणि।

२. यथा दर्पणे "तत्र कश्चित्तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापीति, स च" इत्यादि। रसगङ्गाधरे च "यत्तु येनास्यभ्युदितेन चन्द्र—इत्यत्र समासोक्तिरनुग्राहिकेति मम्मटभट्टैरुक्तम्, तत्र विचार्यत" इत्यादि "परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिरिति समासोक्तेर्लक्षणस्य तैरेवोक्तत्वात्" इत्यन्तम्। एवम्— "ग्रन्थकृत्संस्तौती"ति काव्यप्रदीपस्य ग्रन्थकृन्मम्मटभट्ट इत्युद्द्योतः। "तत्र तददोषौ शब्दार्थौ—इति प्रकाशकारेणोक्त"मिति रसप्रदीपः।

वङ्गीकरिष्यते, कारिकाणां वृत्तिकृत्प्रणीतत्वे तु कारिकायामेव नवरसा भाव्येरन्" इति। तत्तु न किञ्चित्। "निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः" इति कारिकायामेव शान्तः प्रतिपादित इति 'कारिकायामेव नव भाव्येर'न्नित्यहो अनर्थापत्तिविभीषिका। न चेदमर्द्धं प्रक्षिप्तमन्यथा पूर्वत्रैव नव स्युरिति वाच्यम्, सन्त्येव हि पूर्वत्र नव, "नवरसरुचिराम्" इत्यत्र व्यक्तमेवोक्तत्वात्, निर्वेदेत्यर्द्धस्य प्रक्षिप्तत्वशङ्कायां तु केनाक्षरेण पुनर्वृत्तौ शान्तः किलोक्त इति प्रतिवक्तव्यत्वापत्तेश्च "शान्तोऽपीति, तस्य लक्षणं विभावादयश्चोक्ता दर्पणे—" इति प्रतीकपूर्वकभवदुक्तेरेवास्मदर्थे प्रमाणत्वाद् एकत्र यन्नोक्तास्तत्तु नाट्ये एतेऽष्टौ रसा भूम्नाऽभिनेया भवन्तीति तान् प्रागभिधाय भूयः शान्तोऽपीति शान्तमप्याह। शान्तस्य एकीयविवादास्पदत्वादपि स्वातन्त्र्येण वाचोयुक्तिरेव युक्तिमती, इतरथा कथं मुनिप्रणीतत्वनयेऽपीदं श्रीमता समाधेयं स्यात्। यदपि च "समस्तवस्तुविषयं श्रौता आरोपिता यदेति समस्तवस्तुविषयरूपककारिकायां श्रौता आरोपिता इति बहुवचनमविवक्षितमिति वृत्तावेव व्याख्यातम्। स्वीयकारिकात्वे तु श्रौतावारोपितौ यदेत्येवोच्येते"ति, तदप्यकिञ्चित्करम्, "वर्णाः पदं प्रयोगार्हाः" इति दर्पणपदलक्षणे वर्णा इति बहुवचनमविवक्षितमिति वदन्नपि स्वयं मूलकृद् वर्णौ वर्ण इति वा नाह, तथाऽत्रापि संख्याया अविवक्षितत्वं तु सर्वथाऽपि कर्त्तव्यमेव चेत्तर्हि प्रायो बहुत्वविशिष्टविषयकोदाहरणसद्भावात्तथोक्तमिति को विशेष इति भवानेव भावयत्विति प्रतिज्ञामात्रं कारिकाणां भरतीयतावचः।

तदित्थं श्रीमान्मम्मटभट्टराजानको नियतिकृतीत्याद्याभिः १४२ द्विचत्वारिंशदुत्तरशतमिताभिः कारिकाभिः साहित्यशास्त्रसारं सूत्रयित्वा स्वयमेव ताः पुरुषान्तरदुरवबोधा बुद्ध्वा व्याचकार। अथ परिकरालङ्कारान्तं व्याख्याय गीर्वाणगुरुसभासभाजितेऽस्मिन्नपरः कश्चन शेषं पर्याययामासेति श्रीतातचरणेभ्योऽशृणवम्, प्राप्नवञ्चानन्दकविकृतनिदर्शनाख्यटीकास्थं पद्यं प्रमाणमपि।

"कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः।
प्रबन्धः पूरितः शेषो विधायाऽल्लटसूरिणा"।।इति।

प्रबन्धः, व्याख्यायमानः काव्यप्रकाशग्रन्थ इत्यर्थः। प्रकाशकारेण च शब्दव्यापारविचारो नाम ग्रन्थान्तरमपि प्रणीतम् "इह हेयोपादेयानां हानोपादाने प्रमाणादेव। तच्च निश्चयात्मतया प्रामाण्यं भजते। निश्चयश्च शब्दसाहित्येनार्थं विषयीकरोती"त्येवं तस्यारम्भे, समाप्तौ च "इति निखिलविपश्चिच्चक्रवर्त्तिश्रीराजानकमम्मटाचार्यविरचितः शब्दव्यापारविचारः समाप्तः" इति भवति। शब्दव्यापारविचारस्तु लघुरेव ग्रन्थः। प्रथमतः शब्दव्यापारविचारः प्रणीतः, पश्चात्तु काव्यप्रकाशः।

तदेनं निबन्धरत्नं प्रतीकोट्टङ्कनशून्यप्रव्यक्तार्थप्रतिनिधिवाक्यात्मकप्रतिच्छायापरपर्यायपरिवृत्तिमुद्रया पदे पदेऽपेक्षितैस्तैस्तैः शास्त्रीयैर्विशेषैर्युक्तिकलापैश्चाप्याययन् विचक्षणचूडा-

मणिः पदवाक्यप्रमाणेषु कृती सहृदयाग्रेसरष्ठक्कुरोपनामा महामहोपाध्यायः श्रीमान्गोविन्दो विवृणोति स्म। तदिदं विवरणं काव्यप्रदीपः प्रदीप इति च व्यवह्रियते। [१]प्रदीपकृच्चायं मैथिलब्राह्मणो भडौराग्रामे श्रीकेशवठक्कुराच्छ्रोत्रियाख्याग्रजन्मप्रवराज्जन्म लेभे। इतः प्राक् पञ्चमशतकोत्तरार्द्धवर्त्त्ययमिति मन्यामहे।

[२]पिता खल्वस्य केशवठक्कुरः, माता सोनोदेवी, श्रीहर्षश्च कनीयान् भ्राता, रुचिकरश्च वैमात्रेयो भ्राता, पुत्राश्च विद्यापतिर्मधुसूदनो जनार्दनो नरसिंहश्चेति चत्वारः। सर्वे चैते श्रोत्रियाः। एवं ह्यत्र भवति सर्वजनीना प्रथा, यथा— श्रीमान्गोविन्दठक्कुरः खलु निसर्गत एवासीद् भगवन्नारायणचरणसंस्मरणाह्लादसुधाप्यायितान्तरङ्गः प्रह्लाद इव बाल्येऽपि खल्वस्य भगवद्गुण-गणानुस्मरणसुधांशुसमुल्लासेन प्रेमाम्भोधिरभिवर्द्धमानोऽमानिवाङ्गेष्वमन्दानन्दाश्रुपूरमिषतो नेत्रपात्रयोः परीवाहतामुवाह। अकृतभगवच्चरणानुस्मरणो न नाम शैशवेऽप्यकृताऽशनम्। न्याये च मीमांसायां च व्याकरणे चाधीती ज्यायसो भ्रातू रुचिकरकवेरेवान्तिके काव्येषु च साहित्यशास्त्रे च पारदृश्वतामुपार्जिजत्। भगवच्चरणपरिचरणचणश्चायमभ्यर्चनावसरे, यावन्नि-खिललक्ष्मोपपन्नौ भगवच्चरणौ न ध्यानपथातिथी अभूतान्न तावद् ध्यानाद्विरमन्नासीत्। प्रति-भातयोस्तु तयोः पुनः पाद्यादिसपर्यापर्याप्त्या पर्युपासीन आसीद्यावज्जीवम्। कदाचिदेकदाऽसौ पुरुषोत्तमक्षेत्रमभिप्रतस्थे। अथ कथमपि मध्येमहावनं सार्थभ्रष्टोऽवतमससमये किलाऽयं स्फारस्फुरत्स्फटाटोपविकटभोगेन केनचित्काकोदरेण प्रतिरुद्धमार्गो ग्रस्तम्मन्योऽन्यं विनिर्मोको-पायमपश्यन्नघासुरोदरकन्दरविवर्त्तिनां गोगोपालवत्सानामुद्धर्त्तारं भगवन्तं गोपालबालं प्रार्थयाम्बभूव—

"नाथ प्रार्थनया कया नहि मया भूयो भवानर्थितः
कस्यां वा भवता कृपां कलयता चालस्यमध्यासितम्[२]।
नीर्लज्जोऽस्मि तथाऽप्यनन्यशरणः श्रीमन्तमभ्यर्थये
कालव्यालमुखान्तरालपतितं गोपाल! मां पालय"॥

अथाऽकस्मान्मयूरोऽदृश्यत कोकूयमानो, यमुपश्रुत्यैनं प्रति गम्भीरसंरम्भोऽपि सहसाऽपससर्प च विलिल्ये च क्वचन बिले स बिलेशयः, अयं च यथेष्टमिष्टं देशमभ्यवर्तिष्ट।

१. "सोनोदेव्याः प्रथमतनयः केशवस्यात्मजन्मा श्रीगोविन्दो रुचिकरकवेः प्रेमपात्रं कनीयान्" इति काव्य-प्रदीपप्रथमश्लोकाच्च "ज्येष्ठे सर्वगुणैः कनीयसि वयोमात्रेण— श्रीहर्षे त्रिदिवं गते" इति ग्रन्थोपा-न्तश्लोकाच्च स्फुटमेव। तत्र सोनोदेव्याः प्रथमतनय इति प्रतिज्ञातत्वाद्रुचिकरकविर्वैमात्रेयो ज्यायानिति व्यवतिष्ठते। श्रीहर्षश्चायं खण्डनखण्डखाद्यनैषधचरितादीनां निबन्द्धुः कान्यकुब्जाधीश्व-रीयश्रीहर्षाद्भिन्नः, यथा चेदं तथा खण्डनखण्डखाद्यभूमिकायां निरूपितं मया। रुचिकरोऽप्ययं रुचि-दत्तादिभ्यो भिन्न एव.।

२. नालस्यमध्यासितमिति प्रायो मैथिला आहुस्तत्र तु भवता अकृपामिति पूर्वत्र च्छेदो द्रष्टव्यः।

किञ्च, कदाचित् किल कस्यचिद्राज्ञस्सुतोऽभूद्ग्रहग्रस्तः, यं चिकित्सकाश्च तान्त्रिकमान्त्रिकाश्च स्वस्वौषधविद्याबलेन निर्मोचयितुमशक्ता भूयो भूयो राज्ञा विज्ञाप्यमानाश्च संप्रार्थ्यमानाश्च गूढोपहासमाहुः स्म, राजन् ! गोविन्दमन्तरा नान्यः कश्चनैनमस्मासु मोचयितुं प्रभवतीति । राजा तु विह्वलहृदयत्वात्तमुपहासमपरिचिन्वन् स्वामात्यानादिदेश, गोविन्दोऽन्विष्यताञ्चाकार्यताञ्च झगित्येवेति । कुत्र गोविन्दः, कुत्र गोविन्द इति गवेषयन्तश्च ते तमासादयामासुश्च बलादिवाऽऽनिन्युश्च । राजा प्रार्तिथत ब्रह्मन् ! उज्जीव्यतां मे सुतः, सर्वथा त्वां शरणं प्रपद्यामहे । अथ गोविन्द आह स्म सस्मयञ्च सविस्मयं च, राजन् नाहं मान्त्रिकस्तान्त्रिको वाऽस्मि, अहन्तु शास्त्रपण्डितोऽस्मि, नात्रार्थे किञ्चिदपि कर्तुं क्षमः । भवान्नाम्ना विभ्राम्यति । न हि भगवतः कृतिमन्यथयितुं कृती जगतीतले कश्चन जनः । अथ भवान् यथाशक्ति प्रतिविदधातु पुरस्तात्परस्ताद्धातुरीहितसंकीर्त्तनं तावदास्तामिति निर्बन्धबन्धुरव्यापारे राज्ञि चायं दयापूराऽऽपूरेणेव परिवाहितनयनो दुःखकीलोत्कीलित इव च कण्टकाङ्कितकायो भगवन्तमिति ह स्म प्राह—

"दयालोरसमर्थस्य दुःखायैव दयालुता, ।
दीनोद्धारधुरीणस्य सा तवैकस्य शोभते" ॥

व्याहृत्य चैवं दयावशोऽवशः पुरश्चर्यां सात्त्विकीमनुतष्ठौ च निर्मुमुचे च स राजपुत्रो ग्रहावेशादेष च दयाक्लेशात्—इति ।

सोऽयमसौ विद्वद्वृन्दारको द्वौ प्रदीपौ द्वे च दीपिके जग्रन्थ ग्रन्थान्, तत्र काव्यप्रदीपोऽयमास्ते । अपरस्तु पूजाप्रदीपो नामाऽस्ति तस्मिंस्त्वशेषविशेषवती देवपूजेतिकर्त्तव्यता च तदङ्गोपाङ्गस्नानसन्ध्योपासनादिश्च निरूपितौ स्तः । दीपिकया त्वेका उदाहरणदीपिका नाम, या काव्यप्रदीपे प्रतिच्छायारूपव्याख्याशैलीस्वीकारात्प्रकाशोदाहरणानां व्याख्यातुमपारितानां व्याख्याभूताऽस्ति । अपरा तु का सा (दीपिका) इति मैथिलेभ्यो जिज्ञासितेऽपि न वयमिदानीं यावदुपलभामहे । अन्याप्यस्तीति तु स्वयमाहास्यैवान्ते—

"दीपिकाद्वितयं कन्ये प्रदीपद्वितयं सुतौ ।
स्वमतौ सम्यगुत्पाद्य गोविन्दः शर्म विन्दति" ॥इति ।

प्रायः प्रकाशनिर्माणात्परस्तान्नाऽभूवन् न्यायमीमांसादिशास्त्रधुरीणा ये एनन्नापठन्नापीपठन् वा, तदित्थमस्य भूयिष्ठाः सन्ति टीकाः, बह्व्यश्चास्माभिः पठिताश्च दृष्टाः श्रुताश्च, तथाप्यस्य काठिन्यं पदे पदे शास्त्रीयेष्वर्थेषु नापैति प्रदीपादृते इति प्रकाशहार्दसर्वस्वमवबुभुत्सूनां प्रकाशस्याध्येतॄणामध्यापयितॄणां च सौकर्यसंपिपादयिषुणा परश्शतकार्यभारमन्थरमनोरथेन मया चिररात्राय स्थितम् । अथ श्रीमताऽस्मदुपाध्यायराममिश्रशास्त्रिवर्येण बहुशः प्रोत्साह्यमानः साम्प्रतिकात्यत्र प्रधानसंस्कृतपाठशालाध्यक्षेण संस्कृतकृतविद्येन विद्योदयानुरागिणा विद्वज्जनसन्तोषसंभृतादरेण श्रीमता **आर्थर् वेनिस एम्. ए.** प्रभुणा चानुज्ञातोऽहमेतस्य संस्करणे

प्रावृतम्। अस्मिंश्च संस्करणे प्रदीपस्य त्रीणि पुस्तकानि ममान्तिके सन्ति, एकमत्यत्रपाठशालीयसाहित्यशास्त्राध्यापकश्रीयुतगङ्गाधरशास्त्रिणाम्, द्वितीयमत्यत्रपुस्तकालयाधिकृतश्रीपण्डितविन्ध्येश्वरीप्रसादस्य तृतीयं गौडाक्षरलिखितमेतत्पाठशालीयपुस्तकालयस्यैव। चतुर्थं तु खण्डितमिव मदीयमेवाऽस्ति। प्राङ्निर्दिष्टानि चैतानि त्रीण्यपि पुस्तकानि प्रायः शुद्धानि सन्ति, तुरीयन्तु नातिशुद्धम्।

प्रदीपस्य च टीका अपि मया गवेषिताः, प्राप्ते च महामहोपाध्यायनागेशभट्टस्योद्द्योत इत्येका, वैद्यनाथमहोपाध्यायस्य चापरा तत्रोभयोरेकाऽपि विशुद्धा नाधिगता पुस्तकतः, न च सुपर्याप्तार्था दृष्टा ग्रन्थतो यदा, तदा टीकामस्यान्यदाऽप्याप्याय्य मुद्रयिष्यामि प्रदीपपुस्तकदौर्लभ्यप्रयुक्तप्रकाशार्थसार्थयथार्थावबोधप्रत्यूहव्यूहापोहस्तु तावदास्तामित्यालोच्य तत्तत्पुस्तकादिपाठापपाठविवेचनपूर्वकं प्रदीपमात्रं संशोध्याऽङ्कनां लम्भयितुं प्रावर्ते।

यः साधुपाठः स मूले स्थापितः, पुस्तकान्तरोपलब्धानि पाठान्तराणि त्वधष्टिप्पण्यां दर्शितानि, तथा पुस्तकेष्वनुपलब्धा अपि उदाहरणादीनां मूलपुस्तकेषु ये केचिद्विलक्षणाः पाठास्तेऽपि दर्शिता इतीत्थं साम्प्रतं पाठमात्रमत्र पुस्तके मया प्रादर्शि तदेवं संशोधनादिसंस्कारे संपाद्यमानेऽप्यत्र मुद्रकादिदोषेण वा ममैव दृष्टिदोषेण मतिदोषेण वा यदशुद्धं स्यात्तच्छोधयन्तो विद्वांसो हृदयालुदयालवोऽधुना खल्वेनेन प्रकाशार्थसार्थसंप्रकाशमश्नुवानाः प्रदीपकृतमभ्यर्चन्तु सबहुमानसाधुवादैरिति।

■

ब्रह्मसूत्रतात्पर्यविवरणस्य प्रस्तावना

श्रीबेचनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम् .

उद्यद्दैत्यसहस्रसैरिभमुखान् क्ष्माक्षिप्त्यलंविक्रमा-
निन्द्रादिप्रबलप्रतापविबुधध्वस्तातिगर्वव्रजान्।
तूर्णं चूर्णपराक्रमानकृत या देवैः स्तुता भक्तितः
सा मां पातु समस्तलोकजननी भक्तानुकम्पावनी ॥१॥

अथाहमस्मिन्नवसरे काशीविद्यासुधानिधौ मुद्रणार्हं प्राचीनं पुस्तकमनुसरन्निमं ब्रह्मसूत्र-तात्पर्यविवरणाभिधानं ग्रन्थं **श्रीमन्नारायणदास**नामकस्य यतिवरस्य वेदान्तविद्यारसिकशिरोमणेः सरस्वतीसद्मन्युपलब्धवानस्मि, स एष वेदान्तसूत्राणां संक्षिप्य तात्पर्यं सुस्पष्टं निरूपयतीत्यलसधियां विनापि गुरुसमीपोपसर्पणं वेदान्ततात्पर्यावगमायालमित्युपयोजकतामस्य पश्यन्नेतन्मुद्रणाय परविचारचणश्रीमत्प्रभुवर**नेस्फील्डसाहेब**दत्तानुमतिकः साम्प्रतं बद्धपरिकरोऽस्मि।

इमं च वेदान्तसूत्रानेकविवृतिपर्यालोचनया श्रीमच्छङ्करभाष्यभावनया चोदितसत्प्रतिभः प्रायो नानादर्शनसारसङ्ग्रहे चिकीर्षां धारयन् केनचिदतिप्रतापवता लोकोपकाराभिसन्धिमता प्रभुणातिसुलभवेदान्तविवृतिरचनाय प्रेरितस्तिलकोपनामा **भैरवशर्मा** कश्चिद्दाक्षिणात्यो वेदाब्धिवसुचन्द्रसंमितशरदि निरमासीत्।

तदेतत् सर्वमस्य ग्रन्थस्याद्यन्तस्थपद्यदर्शनतः स्फुटीभविष्यतीति कृतं तत्तत्पद्यविलेखनेन।

अत्र प्रथमाध्यायप्रथमपादसूत्रान्तेषु प्रथमा संख्या सूत्रक्रमसूचिका, द्वितीयोपलभ्यमाना संख्या त्वधिकरणसूचिका, तत्रापि पूर्वाधिकरणसंख्यातो विप्रकृष्टा पराधिकरणसूचिका संख्या मध्यगतसूत्राण्यपि स्वाधिकरणेऽन्तर्भावयति, पादान्तरसूत्रान्तेषु तु प्रथमा संख्या सूत्रक्रमसूचिका, द्वितीया तत्तदध्यायादारभ्य सङ्कलितसूत्रसंख्याक्रमसूचिका, तृतीया तूपलभ्यमाना तत्तदधिकरणसूचिका, सममन्यदिति ध्येयम्।

अस्य ग्रन्थस्य श्लोकसंख्या तु शतद्वयाधिकत्रिसहस्रीप्रमितावकलनीया।

---

१. पं. ३, न्यू. सि. (जनवरी १, १८७९) ४६९-४७०.

यद्यप्ययं ग्रन्थ एतत्संवत्सरापेक्षयैकादशाधिकशततमसमानिर्मितत्वान्नातिप्राचीनस्तथापि वेदान्तसूत्रतात्पर्यावबोधसौलभ्यसाधकतया शास्त्रान्तरपरिपक्वधियां महान्तमुपकारं करिष्यतीति ममापि मुद्रयितुं प्रवृत्तिः फलवती स्यादित्येतदङ्गनायाहं प्रावर्तिषीति सुधीभिराकलनीयमिति शिवम्।

काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयीयसंख्यावान्।
सांख्याध्यापनकारी बेचनरामोऽस्मि कान्यकुब्जोऽहम्॥१॥

ब्रह्मसूत्रतात्पर्यविवरणस्योपसंहारः

श्रीबेचनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

स्वस्वाभिलाषपरिपूर्तिकृते यमीशं
कारुण्यसिन्धुमनघं प्रणमन्ति सन्तः।
प्रारम्भकर्मणि नमामि तमेव सिद्ध्यै
सर्वार्थदं सकलमङ्गलमूलभूतम् ॥१॥

लब्ध्वा निद्रां चिरमतितरां पण्डिताख्यं सुपत्रं
जाग्रद्भावं पुनरुपगतं यत्कृपालेशमात्रात्।
नित्यं रागादिव भजति यं श्रीः समेषां गुणानां
जीयात् स्वामी स किल सुधियां प्राप्य पूर्णं सुखायुः ॥२॥

निशम्य यत्पण्डितपत्रसिद्धिं प्रमोदमापं परमं दुरापम्।
चिरं तदेतत् स्थिरतामुपेयादितीश्वरं साञ्जलिरर्थयेऽहम् ॥३॥

ब्रह्मसूत्रतात्पर्यविवरणं मुद्रितमर्धमयासीत्
तत्कुत्रादि निवेदितमेव मया प्रथमं यदभासीत्।
किं त्ववशिष्टतदर्धविमुद्रणमस्ति मया करणीयं
प्राप्तनिजप्रभुसम्मतिरद्य ततः प्रयते रमणीयम् ॥४॥

एष ग्रन्थः क्वापि नैवाप मुद्रां नो वा प्रायो लभ्यते यत्नतोऽपि।
तस्माच्चैतस्याङ्कनेऽहं सयत्नो दर्शं दर्शं मोदमायान्तु विज्ञाः ॥५॥

काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयीयसंख्यावान्।
सांख्याध्यापनकारीबेचनरामोऽस्मि कान्यकुब्जोऽहम् ॥६॥

■

शारीरकमीमांसान्यायसङ्ग्रहस्य प्रस्तावना

श्रीबेचनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

सदिव जगदिदं विभाति यस्मिन्
सति चिति मोदमयेऽद्वयेऽत्यसङ्गे।
कलयति हृदि यज्जनोऽनुवेलं
भवतरणाय तदद्य भावयेऽहम् ॥१॥

[१]अथाहं योगशास्त्रीयनानापूर्वग्रन्थानङ्कयितुं पूर्वं कृतप्रतिज्ञोऽपि सम्प्रति वेदान्तशास्त्रीयसन्दर्भा मुद्र्यन्तां तत्र यूरोपीयानां संख्यावतामधुनातिशयिनी हि प्रवृत्तिरिति परमविचारचणश्रीमत्प्रभुवरनेस्फील्डसाहेबानुज्ञया वेदान्तीयसन्दर्भानञ्चिकयिषुरेकमतिप्राचीनमष्टाविंशत्यधिकषोडशशततमे वैक्रमेऽब्दे लिखितं पुस्तकं प्रसिद्धतमकाशिकराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालास्थव्याकरणशास्त्रप्रधानाध्यापकश्रीवस्तीरामपण्डितादवाप्य द्वितीयं कोड़वारप्रदेशसन्निहितपण्डितपुरवास्तव्यस्य स्वज्येष्ठभ्रातुः **श्रीभवानीदत्तशर्म**पण्डिताद् व्याकरणमनुत्तममभ्यस्य महानुभावभारतवर्षाद्वितीयविद्वद्वर**श्रीमद्रामनिरञ्जनस्वामि**भ्यो वेदान्तसांख्ययोगादिशास्त्रं सम्यगधीत्य काशीमागत्य प्रोदितचराभिधानपाठालये व्याकरणाशास्त्रे द्वितीयाध्यापकतापदलाभानन्तरं तत्रैव प्रथमाध्यापकतापदमलङ्कृत्य क्रमेण षट्त्रिंशद्वर्षपर्यन्तं वृत्तिमूरीकृत्य ततोऽपि विरज्यार्धमासिकलाभेन संतुष्य स्वसदने निवसतः प्रतिपूर्वाह्णापराह्णं विश्वनाथादिदेवयात्राः कुर्वाणस्य शिष्टपरिग्रहणीयाचारस्य महानुभावस्य सर्वशास्त्रविदुषः श्रीमतो देवदत्तेति सुगृहीतनामधेयस्याव्यवहितपूर्वशरदि पौषमासे कृष्णपक्षे तृतीयायां दिवं गतस्य पौत्रेणाल्पे वयसि संपादितापूर्वव्याकरणकाव्यसाहित्यसांख्यादिविद्येन नूतनापूर्वविदुषा **श्रीहरिनाथपण्डितेन** स्वपितामहसञ्चितमतीव जर्जरमष्टादशाधिकपञ्चदशशतमवैक्रमाब्दविलिखितं वेदान्ति**भगवत्प्रकाशात्म**विरचितं दुर्लभतममपूर्वं पुस्तकं प्रदत्तमुपलभ्य प्रहृष्टमनाः साम्प्रतं मुद्रयितुं प्रवृत्तोऽस्मि। 'अस्मिंश्च शारीरकमीमांसान्यायसङ्ग्रहनामनि ग्रन्थे शारीरकमीमांसाभाष्यीयपूर्वपक्षोत्तरपक्षाधिकरणप्रतिपादिनामनेकसूत्राणां मध्ये तत्तदधिकरणप्रथमसूत्रपरिग्रहपुरःसरं सङ्क्षेपेण तत्तत्समयाधिकरणार्थो निरूप्यते। एष च न साधारणजनसुगमः; किन्तु विशिष्टविद्वद्गम्यः, मुद्रितश्च विद्वत्तमानां दृष्टिविषयतां गत्वावश्यमुपकारं मुदं च तेषां जनयि-

---

१. पं. ३ न्यू. सि. (अक्टूबर १, १८७८) २७५-७६.

ष्यतीति मत्प्रयत्नसाफल्यावकाशः सम्भाव्यते। अत्र च सूत्रव्याख्ययोरन्ते विद्यमाना अङ्का न सूत्रक्रमबोधकाः; किंतु ग्रन्थक्रमसूचका मध्ये मध्ये बहूनां व्याससूत्राणामनुपादानादिति ध्येयमित्यलं पल्लवितेनेति।

सकलजनमनीषितप्रपूर्तिं रचयति यः स्मृतमात्र एव कामम्।
अनुपमकरुणार्णवं तमेकं निजमनसेप्सितसिद्धये भजेऽहम् ॥१॥

■

शारीरकमीमांसान्यायसङ्ग्रहस्योपसंहारः

श्रीबेच्चनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[१]शारीरकशब्दादिर्मीमांसान्यायसङ्ग्रहः शब्दः।
यं ब्रूतेऽङ्कनविधिना स समाप्तिमितो मितो ग्रन्थः॥१॥

परमेश्वरकृपयायं विदुषां मोदायनं भूयात्।
येन समापि नितान्तं सफलः स्यान्मुद्रणायासः॥२॥

लोके प्रसिद्ध्यभावादध्ययनाध्यापनाद्यभावाच्च।
जीर्णतमादर्शवशात् क्वचित् क्वचिल्लुप्तवर्णत्वात्॥३॥

शोधकमुद्रकदोषान् ममापि च भ्रान्तितः क्वापि।
या लभ्येताशुद्धिः सा विद्वद्भिर्विशोद्धव्या॥४॥ युग्मम्।

गुणग्रहणचेतसः सुविदुषः पुनः प्रार्थये
दयामयधिया स्वया जहति पक्षपातं च ये।
विचारयत पश्यत प्रतिदिनं मुदं प्राप्स्यथ
प्रसिद्धिमयतामयं सफलतां च येनाधुना॥५॥

मनीषितं यो विदधाति पूर्णं विश्वम्भरं तं प्रणतः प्रयाचे।
सन्दर्भ एष प्रथितोऽस्तु लोके भवत्प्रसादात् खलु सर्वसिद्धिः॥६॥

काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयीयसंख्यावान्।
सांख्याध्यापनकारी बेचनरामोऽस्मि कान्यकुब्जोऽहम्॥७॥

■

१. पं. ३ न्यू. सि., (दिसम्बर २, १८७८) ४२८-४२९

चित्सुखीभूमिका

श्रीबेचनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[1]धृत्वानेकावतारानवति निजजनान् योऽनुकम्पासरस्वान्
यत्पादाम्भोजजन्मा जगदघनिचयं स्वर्धुनीयं धुनीते।
यं स्मृत्वा सर्वजन्मी स्वमनसि निहितं सर्वमाप्नोति कामं
संसाराब्धौ निमज्जज्जनतरणिरसौ पूरयत्वस्मदिष्टम्॥१॥

वेदान्तशास्त्रवेद्यं प्रागासीदुपनिषत्सु संप्रोक्तम्।
मन्त्रब्राह्मणरूपा उपनिषदः सन्ति विख्याताः॥२॥
ईशावास्योपनिषत् तासु मता मन्त्ररूपैका।
इतरा उपनिषदश्च ब्राह्मणरूपाः सदाम्नाताः॥३॥
वेदशिरांसीति च ताः सर्वैर्विद्वद्भिरुच्यन्ते।
तत एव च पूर्वेषामार्षप्रज्ञावतामभूद् बोधः॥४॥
अथ युगक्रमतः क्रमतो ह्रसन्मतिषु पुंसु भवत्सु दयानिधिः।
सकललोकहिताय रतः सदा मुनिपराशरसत्यवतीसुतः॥५॥
अद्वैतप्रतिपादकोपनिषदां दौर्गम्यमालोचयन्
मन्दात्मानुजिघृक्षयैव चतुरध्याय्यात्मसूत्रात्मना।
सन्दर्भं कृतवांस्तदर्थविवृतिं बोधायनर्षिः पुरा
शिष्यः सत्यवतीसुतस्य विदधौ या लभ्यते नाधुना॥६॥
यत्त्वित्यादिग्रन्थैर्यन्मतमधुनापि शाङ्करे भाष्ये।
रामानुजस्य भाष्ये[2] सिद्धान्ततया लभामहेऽद्यापि॥७॥
तदनु शङ्करयादवभास्करप्रभृतिभिर्मतमद्वयमास्थितैः।
अपि परस्परदूषणतत्परैरखिलसूत्रमिदं व्युपबृंहितम्॥८॥

---

१. पं., न्यू. सि. ४, १८८२, ४५९-६२.

२. तथा च रामानुजभाष्यप्रारम्भवाक्यम्, भगवद्बोधायनकृतां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुस्तदनुसृत्य मयेह सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते, इति।

द्वैतं प्रतिजानानैरनुसृतवद्भिर्निजां निजां सरणिम्।
रामानुजवल्लभमुखविदिताचार्यैरनेकधा विवृतम् ॥९॥
व्याख्यास्तथापि चास्मिन् समये शङ्करमतानुरोधिन्यः।
बहुभिर्बहुधा विहितास्तन्मध्ये मुद्रिता मया काश्चित् ॥१०॥
अथाहं कञ्चनापूर्वं ग्रन्थं वेदान्तशास्त्रगम्।
मुमुद्रयिषुरुद्योगमकार्षं तद्गवेषणे ॥११॥
प्रापं च चित्सुखीनाम्ना प्रसिद्धं बहुकालतः।
चित्सुखाचार्यसंन्यासिनिर्मितं सूत्रसम्मतम् ॥१२॥
वेदान्ततत्त्वपूर्वः प्रदीपशब्दोऽपि वाचकोऽस्त्यस्य।
मूले त्वस्योल्लेखः प्रत्यक्तत्त्वप्रदीपिकानाम्ना ॥१३॥
ग्रन्थः कियानयमिति प्रश्ने ज्ञेया विपश्चितां प्रवरैः।
पञ्चसहस्री संख्या चत्वारोऽस्मिन् परिच्छेदाः ॥१४॥
वेदान्ततत्त्वदीपो न केवलं किन्तु सर्वशास्त्राणाम्।
तत्त्वानामयमद्धा प्रदीप इत्थं वदन्ति विद्वांसः ॥१५॥
प्रथमपरिच्छेदेऽस्य प्रागस्ति स्वप्रकाशतावादः।
तदनु तमोवादोऽच्छो मिथ्यात्वाज्ञानवादौ च ॥१६॥
भ्रमाधिष्ठानवादोऽस्मिन्नज्ञानावचनीयता।
सिद्धार्थबोधकत्वं च वेदान्तानामुदीरितम् ॥१७॥
अखण्डार्थत्ववादोऽथ स्वतस्त्वपरतस्त्वयोः।
प्रामाण्यस्य मतो वादः शक्तिवादस्ततः परम् ॥१८॥
जीवब्रह्माभिदाबोधः कृतो लक्षणया ततः।
अपौरुषेयतावादो वेदानामवधारितः ॥१९॥
द्वितीयेऽस्य परिच्छेदे न्यायशास्त्रादिसम्मताः।
द्रव्यादयः पदार्था ये क्रमात् तेषां प्रखण्डनम् ॥२०॥
परिच्छेदा तृतीये तदात्मतत्त्वस्य केवलम्।
बोधस्य मोक्षहेतुत्वं निर्णीतं परखण्डनैः ॥२१॥
तुर्येऽथ परिच्छेदे जीवन्मुक्तिर्विदेहमुक्तिश्च।
श्रुत्या स्मृत्या युक्त्या प्रयोजनं साधितं विदुषः ॥२२॥

इत्थं मयाऽऽपातत एव वीक्ष्य संक्षेपतो ग्रन्थगतं व्यलेखि।
तत्त्वं विशेषेण समस्तमेतद्विपश्चितो द्रक्ष्यथ मुद्रितेऽस्मिन् ॥२३॥
अद्वैतसिद्धिप्रमुखैरुदीच्यैरयं गतार्थत्वमुपैति नो यत्।
अतो विनोदाय महामतीनां जाता प्रवृत्तिर्मम मुद्रणाय ॥२४॥
मूलग्रन्थोऽयं महानेव तस्मान्नैतद्व्याख्यामुद्रणेऽकारि यत्नः।
जिज्ञासा चेत् स्याद्बुधानां तदाऽरं मूले जाते मुद्रिते मुद्रयिष्ये ॥२५॥
एकं पुस्तकमापं हरिकृष्णाख्याद् बुधर्षभाद्भद्रम्।
मूलं तत्र मनीषी हरिनाथो नामतः प्रथितः ॥२६॥
अपरं च राममिश्राद्विद्वद्वर्यादलप्स्यहं पुस्तम्।
येन प्राकाशितरां ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा काश्याम् ॥२७॥
इत्थं पुस्तकलाभतोऽङ्कनविधौ संजातसौकर्यतः
सज्जः सम्प्रति मुद्रणाय जनितोत्साहश्च विद्वद्वरैः।
नामं नाममहं परेश्वरपदं तं कामदं प्रार्थये
ग्रन्थः स्यादयमङ्कनस्य विधिना स्वामिन् प्रपूर्णोऽधुना ॥२८॥
श्रीमत् थीबोपदं भृङ्गैः प्रभुभिर्यैः प्रभूष्यते।
तत्संमतिर्ममोत्साहे प्रवृत्तौ चास्ति कारणम् ॥२९॥
सम्भावयामि च बुधा भवतां प्रसादः
स्यादस्य सम्यगवलोकनतोऽतिमात्रम्।
आशा प्रवृत्तिजनिका सकलस्य पुंस-
स्तामीश्वरोऽतिदयया स तनोति सिद्धाम् ॥३०॥
काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयीयसंख्यावान्।
सांख्याध्यापनकारी बेचनरामोऽस्मि कान्यकुब्जोऽहम् ॥३१॥

■

चित्सुखीनामकग्रन्थस्योपसंहारः

श्रीबेचनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[1]यत्पादाब्जरजः शिरःसु दधतो ब्रह्मादयो निर्जराः
स्वे स्वे कर्मणि पूर्णशक्तिसहिताः सृष्ट्यादिकं कुर्वते।
या चक्रे महिषासुरस्य कदनं धृत्वा सहस्रं भुजान्
तां भक्ताभिमतप्रदाननिरतां स्वाभीष्टसिद्ध्यै नुमः ॥१॥

अथायं चित्सुखीनामा सन्दर्भो वेदान्तिषु परां सुप्रसिद्धिं समुपागतो महासन्दर्भेषु परिगणनार्होऽत्यन्तसुपरिष्कृतश्चिरकालान्मया मुद्रयितुमभिलषितो विद्वद्वरसुविचारचुञ्चुपाठशालाप्रधानाध्यक्षप्रभुवरथीबोसाहेबसम्मत्या मुद्रयितुमारब्ध इदानीं निर्विघ्नं मुद्रणविधया मया समाप्तिं नीतो विदुषां दृष्टिपथमुपगम्य परमां मुदं तेषामुपनयेदित्याशंसे।

यद्यपि कठिनोऽयं न सर्वेषामर्थज्ञानपुरःसरमवलोकनार्हो व्याख्यामन्तरेण, तथापि सावधानीकृतचेतोभिर्वेदान्तनिष्णातैर्विद्वद्भिः पुनः पुनरवलोकनेनावश्यमवगमनीय एवेति संभाव्य मया मुद्रणायास्य प्रवृत्तिर्विहिता।

व्याख्या त्वस्य प्रयत्नेनोपलभ्यमानापि मुद्रणावसरे शुद्धा नोपलब्धा, किन्तु मूलपुस्तकान्येवोपलब्धानि शुद्धानीति तन्मुद्रण एव मया प्रयासो व्यधायि न व्याख्यायाः।

लब्धेऽवसरे व्याख्यायां शुद्धायां चोपलब्धायां व्याख्याप्यस्य सन्दर्भस्य मुद्रयिष्यते प्राप्य प्रोक्तचरप्रभुवरसम्मतिमिति विदाङ्कुर्वन्तु सुधिय इति।

अत्र च यानि प्रमादात् पुस्तकानुरोधान्मुद्रकादिदोषाद्वा क्वचित् क्वचिदसंगतानि पदानि वाक्यानि वोपलभ्येरंस्तान्यनुकम्पानिधयः सुधियः क्षाम्यन्तु विरलप्रचारसन्दर्भाणां सुप्रचारमात्राय प्रवृत्तधियां नः।

सोऽयं सन्दर्भोऽधुना बहूनां विदुषां लोचनपथमुपगत्यास्माकं प्रयत्नसाफल्यमुपनयतु तेषां परमप्रेमोत्पादनेनेति सकलनिजजनमनोरथसाधयित्रीं जगदम्बां सविनयं प्रार्थय इति शिवम्।

काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयीयसंख्यावान्।
सांख्याध्यापनकारी बेचनरामोऽस्म्यहं कान्यकुब्जः ॥१॥

---

१. पं. ६ न्यू. सि. (१८८४) ५०४.

लौकिकन्यायसङ्ग्रहस्य भूमिका

महामहोपाध्यायो गङ्गाधरशास्त्री

[१]अथैष प्रकाश्यते लौकिकन्यायसंग्रहनामा निबन्धो मुद्रयित्वा। अस्य निर्माता किलोदासीनसंप्रदायस्थो **रघुनाथवर्मा** नाम कश्चिदभिनवो विपश्चित्। सोऽयमद्वैतमतश्रद्धालुः सङ्गृह्य भूयसो लौकिकान् शास्त्रीयांश्च न्यायान् परस्परासम्बद्धानपि तान् वेदान्तनिबन्धं प्रस्तुत्य पूर्वपक्षोत्तरपक्षोपपादकतया कृतसङ्गीतीन् सञ्जग्रन्थेति प्रशंसनीयमस्य तत्सङ्गतिसम्पादनकौशलम्। अयं चान्तरा प्रसङ्गमापाद्य तत्तद्देवतोत्कर्षमभ्युपयतां तदभ्युपगमप्रमाणवचनकदम्बं तन्निरासौपयिकसप्रमाणयुक्तीः काशीमुक्तिविचारं जैमिनीयनयोपयोगिश्रुत्यादिबलाबलचिन्तां तदपेक्षितविषयांश्च प्रकृतानुपयोगिनोऽपि विषयान् तथा निबबन्ध यथैतेऽसम्बद्धा इति न प्रतिभासेरन् प्रमोदयेयुश्च विस्तरवीक्षणाक्षमव्युत्पित्सुजनचेतांसीति मामकीनो विश्वासः।

पुरा किल काशीविद्यासुधानिधिनामके काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालास्थपण्डितोपक्रमे मासिकपुस्तके मुद्रयितुमुपक्रान्ते मदीयगुरुचरण**श्री६राजारामशास्त्रिश्री६बालशास्त्रि**भ्यामनुपलब्धलौकिकन्यायविवरणक्षमप्राचीननिबन्धाभ्यामारभ्यत स्वयमेव तादृशो निबन्धो जिज्ञासुजनोपकृतये न त्वसावन्तरायबाहुल्येन समपूर्यत। तदनु तथाविधनिबन्धप्रकाशनावश्यकतां तेन विना शास्त्रेषु प्रसङ्गादापतितानां तथाविधन्यायानां विषयस्वरूपनिर्धारणस्य दुःसम्पादतां च निश्चिन्वद्भिः साम्प्रतिककाशिकराजकीयपाठशालाप्रधानाध्यक्षै**रार्थरश्रीवेनिससाहिब**महोदयैः समादिष्टोऽहं मार्गयमाणस्तादृशं निबन्धं समासादयमस्मदाप्ततम**श्री५नेपालराजगुरुश्रीहेमराजशर्म**पण्डितवरेभ्यः शुद्धप्रायमेकमेव पुस्तकम्। आलोचयन्निदं तत्र बहूनां न्यायानामसंग्रहमाकलयन्नपि मीमांसातन्त्रवार्तिकसंशोधनपाठालयपरीक्षौपयिकभागपाठनादिकार्यव्यापृततया लब्धतत्पूरणावकाशः साम्प्रतमियतैव निर्वाहयन्तु कार्यमुत्साहिनः सत्यवसरेऽत्रानिबद्धान् न्यायान् क्रमेण संगृह्य विवृत्य च यथामति तत्स्वरूपविषयोपयोगान् प्रकाशयेयं समयान्तर इति मन्यमानः प्रारभे सत्वरमिदं कार्यं समापयं च। समापिते मुद्रणे द्वितीयपुस्तकदर्शनावसरोपलब्धमधिकं पाठं तत्स्थले शुद्धिपत्रे च समयौजयम्। तमिमं निबन्धमालोच्यावगच्छन्तु तत्प्रस्तुतन्यायरूपं जिज्ञासवः संगृह्य चात्रानुद्दिष्टान् न्यायान् प्रबोधयन्तु मां क्षाम्यन्तु चैकमात्रपुस्तकावलम्बेनाशक्यप्रतीकाराणि स्खलितानि गुणैकपक्षपातिन इति शुभम्।

■

---

१. पं., न्यू. सि., २३ (१९०१) १७१-७२.

सटीकसंक्षेपशारीरकभूमिका

श्रीद्विवेदहरिनाथशर्मा
काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयाध्यापकः

[१]निखिललोकविख्याताऽवदातकीर्त्तिभिः शङ्करमूर्त्तिभिः श्रीशङ्कराऽऽचार्यैः स्वकृतशारीरकाऽऽख्यभाष्यरूपेण प्रकटीकृतमपि सकलपुरुषपरमपुरुषाऽर्थाऽनुत्तमतमसुखैकसाधनश्रीनारायणाऽवतारश्रीव्यासदेवप्रणीतवेदान्तसूत्राणामर्थमतिविस्तृतगूढाऽऽशयगद्योपनिबद्धमसाधारणपुरुषबुद्धिसाधनीयमननाऽऽदिकं मन्यमानाः सुरेश्वराऽऽचार्यशिष्याः श्रीशङ्कराऽऽचार्यप्रशिष्याः सर्वज्ञनामानो मुनयः साधारणपुरुषाणां वेदान्तसमस्तप्रमाणप्रमेयाद्यवबोधक्षमं कतिपयशारीरकभाष्योक्तप्रमेयस्थिरत्वसंपादकाऽऽवश्यवक्तव्यपूर्वमीमांसाप्रसिद्धयुक्तिभिरुपोद्वलितं सङ्क्षिप्तमप्यसङ्क्षिप्तपदार्थसार्थविलसितमतिमञ्जुलच्छन्दोऽलङ्कृतिहृतचेतसं पद्यमयं संक्षेपशारीरकाऽभिधं ग्रन्थं निरमिन्वन् । स चाऽयं ग्रन्थोऽतिरमणीयतया वेदान्तप्रमेयाद्यवबुभुत्सुजनाऽत्युपयोगितया च समस्तवेदान्तमान्यग्रन्थविषयपरिशोधनबद्धपरिकरैः श्रीमद्भिर्मधुसूदनसरस्वतीति विख्यातस्वामिभिर्बहुविधसद्युक्तिप्रदर्शनपूर्वकश्रुतिस्मृतिव्यवस्थापनपुरःसरं स्वकृताऽन्वर्थसारसंग्रहाऽभिधटीकया समलङ्कृतोऽधुना च वेदान्तपठनपाठनदत्तचित्तैरुपलिप्स्यमानोऽत्यरुन्तुदपदार्थनिर्वचनचतुरैः संपिपादयिषितोऽप्यद्य यावदमुद्रिततया लिखितपुस्तकसम्पादनसंशोधनादेश्चाऽनल्पतराऽऽयाससाधनीयतया विरलः क्वचित्क्वचिदेव प्रचरतीत्यस्य ग्रन्थस्य प्रचारो वेदान्तनिखिलविषयानल्पेनैवाऽऽयासेनाऽवजिगमिषूणामभ्यसिसिषूणां व्यवतिष्ठापयिषूणां चाऽनुत्तमाह्लादप्रद इति प्रथममेष एव संशोध्य प्रकाश्यते ।

आशास्यते च भगवानिह यो न्यरूपि
प्रेषीष्ट मे स सकलाऽन्तरगस्वरूपः ॥
दृष्ट्वाऽमुमिष्टमनुभूय विशोध्य शिष्टं
शिष्टाः श्रमेण परितुष्यत चेतसेति ॥१ ॥

■

१. सं. ८. न्यू. सि. (१८८०) २४३

कैवल्यरत्नस्य भूमिका

धर्माधिकारी श्रीढुण्ढिराजशास्त्री
काशिकराजकीयसंस्कृतप्रधानपाठशालायां
सरस्वतीभवनाधिकारी

[1]इह खलु निखिलभारतीयास्तिकजनानां मूर्द्धाभिषिक्तं धर्मे स्वतःप्रमाणं श्रुतिः। तन्मूलतयैव स्मृतिपुराणोपपुराणादीनां पठनपाठनादिप्रचारागोचरतयाऽनुपलभ्यमानश्रुतीः स्वोत्कटतपःप्रभावजन्यातीन्द्रियदर्शनसामर्थ्येन संस्मृत्य तदर्थानुवादरूपेण महर्षिभिर्मनुव्याससाम्बादिभिः प्रणीतानां प्रामाण्यं निष्कम्पं स्वीकृत्य चिरमवयवश उपलभ्यमानायामपि श्रुतौ निर्विवादं वर्णाश्रमधर्ममनुतिष्ठन्ति स्म वृद्धाः सुकृतिनः।

परन्तु यदा प्रभृति कलेरुत्तरोत्तरमुपचयवशेन नास्तिकयवनादीनां श्रुतिप्रामाण्यानङ्गीकर्तृपुरुषाणां भारतीभूमावुपचयोऽभूत्, ततःप्रभृति सांप्रतिकास्तिकजनानां दुर्दैववशात् स्मृतिपुराणादीनां पठनपाठनादिप्रचारस्य लुप्ततया दुर्वृत्तैरात्मंभरिभिः पुराणादिपुस्तकानां भ्रंशिततया च पुराणोपपुराणां यथार्थपाठानामुच्छेदप्रवणतया शास्त्रपथानुवर्तिनो विद्वांसोऽपि [2]व्यामुमुक्षवोऽभूवन्, किं पुनरिन्द्रियतर्पणपरायणा धर्मकञ्चुकिनः। एवमादिप्रकारैरास्तिकधर्मं लोपप्रवणं विभाव्य तत्रभवान् परमकारुणिकः **श्रीमद्वासुदेवज्ञानमुनिः** श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासादिभ्यः सारमुद्धृत्योपपुराणानां प्रक्षिप्तैर्ग्रन्थांशैरप्रामाण्यशङ्कां केषाञ्चिदंशानां पोषेण न्यूनतां च परिहर्तुं सकलाद्यत्वीयमन्दबुद्धिजनोपकाराय कैवल्यरत्ननामकं ग्रन्थरत्नं रचयामास। अत्र ग्रन्थे तेषां तेषामुपपुराणानां श्रुत्यादिप्रमाणोपबृंहितं परिमाणं स्थलविशेषाः क्वचित्क्वचिदध्यायश्लोकादिपरिमाणं च प्रदर्श्यते। यद्यप्येतस्य पुस्तकं महता परिश्रमेण मथुरापुर्यां निवसतः **श्रीयुतमाखनमिश्रस्य** पुस्तकालयादेकमेव लब्धम्, अथापि तस्य प्राचीनतरत्वेन शुद्धतरत्वेन च तत्रैव विश्वस्य मत्समवर्तिनामुत्तरेषां चास्तिकजनानां श्रेयःसम्पत्तये सुविख्याते काशीविद्यासुधानिधिनामके मासिकपत्रे श्रीमतः काशिकराजकीयसंस्कृतप्रधानपाठशालाध्यक्षस्य **डाक्तर जि० थिबोसाहिबाभिधप्रभुवरस्यानुज्ञया** एनं ग्रन्थरत्नं मुद्रयितुमुपक्रमे। गायामि च धन्यवादान् वाराणसेयप्रधानसंस्कृतपाठशालायां साहित्यप्रधानाध्यापकस्य **पण्डितवरगङ्गाधरशास्त्रिणो** यस्यानेकस्थलेषु पुस्तकस्यातिप्राचीनतया विलुप्तप्रायाक्षरत्वेन तदंशस्य सुनिपुणविचारपुरःसरमूहने पूरणे चोदारं साहाय्यमवलम्बे।

अभ्यर्थये च परेशं धीमतः क्षोदक्षेपविचारदक्षान् महोत्साहिनः सुकृतिनो निरामयायुष्मतः कुर्याद् येभ्यो विलुप्तकल्पानां परमोपकारकशास्त्ररत्नानामुद्धारात्मा महान् लाभो मुहुरतितरामाशास्यत इति शम्।

सं. १९३९
मार्ग. शु. १०.

१. पं. ५, न्यू. सि. (१८८३) १-२.

२. व्यामोहशङ्किताः।

सिद्धान्ततत्त्वभूमिका

मानवल्ल्युपाह्वस्तैलङ्गरामशास्त्री
वाराणसेयराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालायाम्

[१]अथेदानीं प्रस्तूयते सिद्धान्ततत्त्वं नाम वेदान्तप्रकरणं संमुद्र्य प्रकाशयितुम्। अस्य किल प्रणेता स्मृतिकौस्तुभसंस्कारकौस्तुभाद्यनेकग्रन्थकरणप्रख्यातनामा अनन्तदेवो नाम। अयं च पूर्वमीमांसातत्त्वप्रकाशकस्याऽद्यत्वे पठनपाठनादिषु सुतरां प्रचलितस्य आपदेवी (न्यायप्रकाशः) इति प्रसिद्धाभिधानस्य ग्रन्थरत्नस्य प्रणेतुर्विचक्षणचूडामणेः श्रीमदापदेवस्य सूनुरिति एतद्- ग्रन्थान्ते "इति श्रीसकलदिङ्मण्डलविश्रान्तयशोमण्डलनिखिलश्रुतिशिरस्तत्त्वपरिशीलनमर्यादाधुरन्धरश्रीमदापदेवसूनुना अनन्तदेवेन कृतं सिद्धान्ततत्त्वं नाम प्रकरणं संपूर्णम्" इति लेखदर्शनान्निश्चीयते। ग्रन्थादौ—

> "यच्छ्रीमद्रामतीर्थेभ्यः सम्प्रदायसमागतम्।
> श्रुतं सत्तर्कसचिवं विविच्य तदिहोच्यते" ॥इति।

अन्ते च—

> "इत्थं परिव्राजकपूज्यपादश्रीरामतीर्थानुसृतिप्रसादात्।
> सिद्धान्ततत्त्वं गतवाग्विवादमनन्तदेवेन मुदा न्यरूपि" ॥

इति लेखदर्शनादयं श्रीरामतीर्थयतेरन्तेवासीति व्यक्तमेव। अन्तिमोऽयं श्लोकः, अनन्तदेव एवास्य प्रणेतेत्यत्रापि दृढं प्रमाणीभवति। अनेनैवाऽनन्तदेवेन एतद्ग्रन्थस्य टीका स्वयं विरचिता। यत्रादौ—

> "सर्वशास्त्रार्थमर्यादापरीक्षणविचक्षणान्।
> वन्दे श्रीतातचरणान् श्रीकान्तचरणाश्रयान्॥
> श्रीरामतीर्थचरणस्मरण (स्य) प्रसादतः।
> प्रस्थानत्रयसिद्धान्तसम्प्रदायः प्रदर्श्यते॥
> सिद्धान्ततत्त्वव्याख्यानव्याजेन विशदीकृतम्।
> वेदान्तसम्प्रदायार्थं गृहणन्तु ज्ञानकामिनः॥

---

१. पं. २२, ८ (अगस्त, १९००) ४६५-४७१.

सम्यङ्निरूपितमिदं यदि नाद्रियन्ते
दुष्टा निकृष्टमतयो हृदि मत्सरेण।
किं तावता ज्वरवतामरुचेर्न जातु
दुग्धस्य शुद्धमधुरस्य विदूषणं स्यात् ॥

चिकीर्षितं प्रतिजानीते "सर्ववेदान्ते'ति" एवं लेखः समुपलभ्यते। तेनास्या व्याख्याया अनन्तदेवेन प्रणीतत्वं स्पष्टमेव। अस्या व्याख्यायाः किं नाम?

अत्र डाक्तर् पि. पिटर्सन् महाशयः[१]—

"सम्प्रदायनिरूपणम् अनन्तदेवेन कृतम्। आपदेवसूनुः अनन्तदेवः।

आरम्भः—

श्रीगणेशाय नमः। श्रमद्गोपालाय नमः।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तसंप्रदायानुसारतः।
नमस्कृत्य गुरून् वक्ष्ये प्रक्रियां . . . ॥१॥
यच्छ्रीमद्रामतीर्थेभ्यः सम्प्रदायसमागतम्।
श्रुतं सत्तर्कसचिवं विविच्य तदिहोच्यते ॥२॥

अखण्डमानन्दैकरसं स्वप्रकाशं चैतन्यमेव जगतस्तत्त्वम्" इति।

अन्तः—

"धर्मावधीनां करुणानिधीनां श्रीमद्गुरूणां चरणावलम्बात्।
यत्सम्प्रदायश्रुतिमप्रहाय निरूपितं तुष्यतु तेन विष्णुः ॥१॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमद्गोपालपादयोः।
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां परमेश्वरः ॥२॥

इति श्रीमदापदेवसूनुना अनन्तदेवेन कृतं सम्प्रदायनिरूपणं समाप्तम्। शुभमस्तु" इति निर्दिश्य सम्प्रदायनिरूपणं नाम मूलग्रन्थं मन्यते। अग्रे च ३०९ पुस्तकवर्णनावसरे[२]—

"सिद्धान्ततत्त्वम् अनन्तदेवेन कृतम् आपदेवसूनुः अनन्तदेवः।

आरम्भः—

१. Sixth Report, by P. Peterson, Bombay, 1899, P.23, No. 308.
२. Sixth Report, Peterson, 1899, P.22, No. 309.

सर्वशास्त्रार्थमर्यादापरीक्षणधुरन्धरान् ।
वन्दे श्रीतातचरणान् श्रीकान्तचरणाश्रयान् ॥१ ॥
श्रीरामतीर्थचरणस्मरण (स्य) प्रसादतः ।
प्रस्थानत्रयसिद्धान्तसम्प्रदायः प्रदर्श्यते ॥२ ॥

सम्यङ् निरूपितमिदं यदि नाद्रियन्ते
दुष्टा निकृष्टमतयो हृदि मत्सरेण ।
किं तावता ज्वरवतामरुचेर्न जातु
दुग्धस्य शुद्धमधुरस्य विदूषणं स्यात् ॥३ ॥

चिकीर्षितं प्रतिजानीते— सर्ववेदान्तेति"।

अन्तः —

इत्थं प . . . पाद श्रीरामतीर्थानुसृतिप्रसादात् ।
सिद्धान्ततत्त्वं गतवाग्विवादमनन्तदेवेन . . . ।
इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमद्गोपालपादयोः ।
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां परमेश्वरः ॥

इति श्रीसकल . . . विश्रान्तयशोमण्डलनिखिलश्रुतिशिरस्तत्त्वपरिशीलनमर्यादाधुरन्धरश्रीमदापदेवसूनुना अनन्तदेवेन कृतं . . . म प्रकरणं समाप्तम्" इति निर्दिश्य सिद्धान्ततत्त्वं नाम सम्प्रदायनिरूपणाख्यग्रन्थस्य टीकां मन्यते ।

आदौ ग्रन्थकृत्सूचीपत्रे चैतदनुरोधात् "सम्प्रदायनिरूपणं नाम स्वतन्त्रो ग्रन्थः, सिद्धान्ततत्त्वं तद्व्याख्यानं चैककर्तृक"मिति वदति । बर्नेल्महाशयश्च सम्प्रदायनिरूपणं नाम तत्त्वप्रक्रियानामकग्रन्थस्य व्याख्यां मन्यते[१]। पिटर्सन्महाशयश्चैतत् खण्डयति[२]। एवं च मूलटीकाग्रन्थयोर्नाम्नि वैमत्ये समुपस्थिते किं तावत्तत्त्वमिति विचारणीयम् । यत्तावद् बर्नेल्(Burnell) महाशयेन सम्प्रदायनिरूपणाख्यस्य ग्रन्थस्य टीकात्वमुपवर्णितम् तदेवाऽस्माकमप्यनुमतम् । तथा हि— अस्मदुपलब्धे प्राचीने शुद्धे पुस्तके एतद्ग्रन्थमुद्रणाय मातृकारूपेण धृतेऽन्ते **'इति श्री'** इत्यादिलेखे सिद्धान्ततत्त्वं सम्पूर्णमिति लेखस्य स्पष्टत्वात्, अस्य च ग्रन्थस्यादिश्लोके 'सिद्धान्तसम्प्रदायानुसारतस्तत्त्वसंश्रयां वक्ष्ये' इत्युक्ते सिद्धान्ततत्त्वं वक्ष्ये इत्यर्थस्य सुखं लाभादुपान्तिमश्लोके च **'सिद्धान्ततत्त्वं न्यरूपी'**ति दर्शनात्तदेकवाक्यतयाऽस्य

---

१. See Burnell, P. 94.

२. Index Sixth Report, Peterson, 1899.

ग्रन्थस्य सिद्धान्ततत्त्वमित्येव नामेति सिध्यति। पिटर्सन्महाशयोपलब्धे च सिद्धान्ततत्त्वपुस्तके "सिद्धान्ततत्त्वव्याख्यानव्याजेन विशदीकृतम्। वेदान्तसम्प्रदायार्थं गृह्णन्तु ज्ञानकामिनः" इत्युपलभ्यते। यदि च सिद्धान्ततत्त्वमिति टीकाया नाम स्यात्, तर्हि तत्र "सिद्धान्ततत्त्वव्याख्यानव्याजेने"त्युक्तिरसङ्गता स्यात्, न खलु सिद्धान्ततत्त्वनाम्न्यां टीकायां 'सिद्धान्ततत्त्वव्याख्यानव्याजेने'त्युक्तिरविरोधमावहति। किञ्च, तत्रैव "वेदान्तसम्प्रदायार्थं गृह्णन्तु" इत्युक्त्या च टीकायाः सम्प्रदायनिरूपणमित्येव नामेत्यतिस्फुटम्। न तावदस्मदुपलब्धे सिद्धान्ततत्त्वपुस्तके य उपान्त्यः श्लोकः समुपलभ्यते, स एव पिटर्सनमहाशयोपलब्धे सिद्धान्ततत्त्वपुस्तके (अस्माभिः सम्प्रदायनिरूपणत्वेन व्यवस्थाप्यमाने) अप्युपलभ्यते, तत्र च सिद्धान्ततत्त्वमिति नामदर्शनाट्टीकायाः सिद्धान्ततत्त्वमिति नामेति शङ्क्यम्। मूलटीकयोरन्ते लेखकप्रमादेन श्लोकद्वयव्यत्ययस्य सम्भवात्। कथमन्यथा पूर्वोक्तस्याऽसामञ्जस्यस्य परिहारः स्यात्। एवं च पिटर्सन्महाशयोपलब्धे सिद्धान्ततत्त्वपुस्तके य उपान्त्यः श्लोकः, स एव सम्प्रदायनिरूपणस्योपान्तिमः श्लोकः, यश्च तदुपलब्धे सम्प्रदायनिरूपणपुस्तके उपान्तिमः श्लोकः, स एव सिद्धान्ततत्त्वस्योपान्तिमः श्लोकः, लेखकप्रमादात्सटीकपुस्तकाल्लेखनसमये परमेतच्छ्लोकद्वयसन्निवेशविपर्यासो जात इति कल्प्यमाने पूर्वोक्तहेतुभिः बर्नेल्महाशयसंवादेन च सम्प्रदायनिरूपणनामकस्य ग्रन्थस्य टीकात्वं पारिशेष्यात् पूर्वोक्तहेतुभिश्च सिद्धान्ततत्त्वस्य मूलत्वं स्थिरीभवति। यत्तावद् बर्नेल्महाशयः सम्प्रदायनिरूपणं नाम तत्त्वप्रक्रियायाः टीकां मन्यते, तत्तु पिटर्सन्महाशयेन परिहृतम्।

पिटर्सन्महाशयोपलब्धे व्याख्यापुस्तके अन्ते इति श्रीत्यादिलेखे "प्रकरणं" समाप्तमिति लेखो दृश्यते, एतदपि विरुद्धमिव। न खलु व्याख्यां प्रकरणं वदन्ति विपश्चितोऽपि तु स्वतन्त्रमेव ग्रन्थम्। यथाहुः—

शास्त्रैकदेशसम्बद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम्।
आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः॥ इति।

एवं चावश्यमेवोपान्तिमश्लोकस्याऽन्तिमे 'इति श्री'त्यादिलेखस्य च व्यत्यासे कल्पनीये मूलग्रन्थस्य सिद्धान्ततत्त्वमिति नाम, व्याख्यानस्य च सम्प्रदायनिरूपणमिति नामेति निर्विवादं सिध्यति।

एतद्ग्रन्थस्य च कर्ता अनन्तदेवः स्वकृते ग्रन्थे स्मृतिकौस्तुभनाम्नि कूर्माचलदेशाधिपतेः बाजबहादुरचन्दस्य आश्रितमात्मानं लिखति। बाजबहादुरनृपश्च 1644-1664 ईशवीयसमये (1644—1664 A.D.) जात[१] इति स एवास्य अनन्तदेवस्य समय इति स्फुटम्। अलमनेन प्रासङ्गिकेन प्रकृतमनुसरामः।

---

१. See, Julius Jolly's "Recht und Sitte" in the "Grundriss," p. 40.

अस्य च ग्रन्थस्य सङ्क्षेपतो वेदान्तसिद्धान्तबोधकतया परमोपकारित्वं विचार्य तन्मुद्रणाय कृतमतिना वाराणसेयराजकीयसंस्कृतपाठालयाऽध्यक्षेण श्रीमदार्थरवेनिससाहेबमहाशयेनैतत्परिशोधनायादिष्टोऽहमस्य ग्रन्थस्य दुर्लभतया काशिकराजकीयसंस्कृतपुस्तकालये प्रयत्नसङ्गृहीतं शुद्धं प्राचीनमेकमेव पुस्तकमवलम्ब्य यथामति परिशोध्य विषयसूचीं ग्रन्थक्रमेणाऽकारादिक्रमेण च द्विविधां संयोज्य ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्तरधृतानां प्रमापकवाक्यानां यथासम्भवमुपलब्धाऽनुपलब्धस्थलप्रदर्शिकां चापरां सूचीं संयोज्य प्राकाशयमिदं ग्रन्थरत्नं काशीविद्यासुधानिधिनामके मासिके पण्डितपत्रे, तद्ग्रहणाऽक्षमाणां चोपकाराय पृथगपि।

अनुपलब्धपुस्तकान्तरस्यैकमेव पुस्तकमाश्रित्य कृतमुद्रणसाहसस्य मे तत्र सम्भावितानि स्खलितानि सौजन्येन समुपेक्ष्यात्र नयनाऽर्पणाऽऽयासपरिग्रहेणाऽनुग्रहीष्यन्ति मां निर्मत्सरा विपश्चिद्वरा इति निश्चिन्वन् प्रसादयाम्यनेन व्यापारेणाऽन्तरात्मानमिति निवेदयतीति। शम्।

संवत् १९५७.

तत्त्वबिन्दोर्भूमिका

महामहोपाध्यायो मानवल्ल्युपाख्यो गङ्गाधरशास्त्री
साहित्यशास्त्राध्यापकः,
काशिकराजकीयसंस्कृतप्रधानपाठशालायाम्

[१]अथैष प्रकाश्यते तत्त्वबिन्दुर्नाम प्रबन्धः शास्त्ररसिकानां प्रमोदमाधातुम्। अस्य निर्माता किल सर्वतन्त्रस्वतन्त्रप्रतिभः **श्रीवाचस्पतिमिश्रो** यः प्राग्भवे शाङ्करब्रह्मसूत्रव्याख्यानप्रवृत्तोऽन्तरायतिरस्कृते तत्र महत्यनितरसम्पादनीये निजावतारकार्ये भगवता श्रीशङ्कराचार्यपूज्यपादेन वाचस्पतिनाम्नाऽवतीर्य सम्पादयितास्यभीप्सितमाकल्पं च सा टीका भुवमलङ्कुर्यादिति वरेणान्वगृह्यतेति वर्णयन्ति स्म शङ्करदिग्विजये माधवाचार्याः।

अविसंवादितया तु भगवदादेशस्य षट्त्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशततमे १९३६ वैक्रमाब्दे काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालामलङ्करिष्णुभिर्निखिलदर्शननदीष्णैर्मदीयगुरुवर**श्रीदबालशास्त्रिचरणै**र्मुद्रयित्वा प्रचारिता भामतीनाम्नी शाङ्करब्रह्मसूत्रभाष्यटीका। अस्यामेव शेषे यन्न्यायकणिकातत्त्वसमीक्षातत्त्वबिन्दुभिरिति पद्यं ग्रथितवताऽन्तरा च तत्रावधारितेषु सिद्धान्तेषु विस्तरेण व्यवस्थापनमेतेष्वेव निबन्धेषु प्रतिज्ञातवता ग्रन्थकारेण चिरादेतदालोचनोत्कलिकाऽऽकुला अभाविषत परीक्षणविचक्षणाः। तेष्वयमेकस्यैव विषयस्य व्यवस्थापको निबन्धः।

स्फोटेऽथ वाक्यचरमाक्षरसर्ववर्णा-
वल्योः पदेषु च निरस्य पथा नवेन।
संस्मारितेष्विह हि वस्तुषु सुप्तिङन्तैः
शाब्दप्रमाजनकता निरधारि मिश्रैः॥

एतत्सिद्धान्तव्यवस्थापनं च मन्ये निगूढाभिसन्धिना तटस्थेनेव वस्तुस्वभावप्रतिपादनमुखेन वेदान्तपरमसिद्धान्तमुपपन्नं कर्तुकामेन ग्रन्थकर्त्रा कृतम्। तथा हि— **"तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्मास्मि"** इति महावाक्यार्थधियोर्गुरूपदेशशिष्यानुभवरूपयोश्चिरमुपदिष्टप्रकारेणावर्त्यमानयोरविद्यावरणनिरसनद्वारेण साक्षात्कारहेतुत्वमिति ह्यद्वैतवादिनां मुख्यतमः सिद्धान्तः। तस्य च चरमज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वं शाब्दत्वं च दशमस्त्वमसीत्यादाविवेति न तिरोहितं त्रय्यन्तचिन्तकानाम्। अत एव यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीति श्रुतिभ्यां ब्रह्मणः साक्षात्काररूपत्वमुपनिषन्मात्रगम्यत्वं च निरणायि। वस्तुतन्त्रत्व एव च ज्ञानस्य प्रमात्वमिति

---

१. पं. १४, न्यू. सि., ६ (जून, १८९२) १-४.

समन्वयसूत्रे भाष्यकारः। "योषा वाव गौतमाग्निः", "सिंहो माणवकः" इत्यादिवैदिकलौकिकवाक्यैः समानविभक्तिकपदद्वयसमभिव्याहारबलेन जायमानाऽपि तदर्थयोरभेदान्वयधीः कर्तुमकर्तुमन्यथा वा कर्तुं शक्यत्वेन वस्तुतोऽभेदाभावेन पुरुषतन्त्रतया क्रियारूपैव न तु ज्ञानम्। शुक्ले पटे तदभेदधीस्तु वस्तुमात्रनिबन्धना न व्यत्यासं सहत इति क्रियालक्षणविरहाज्ज्ञानम्। तथैव प्रकृते वस्तुमात्रप्रभवत्वे सत्येव जीवब्रह्माभेदधियो ज्ञानत्वमारोपात्मकत्वे तु क्रियैव सेति। तथा च साक्षात्कारत्वेनेष्टायाश्चरमवृत्तेर्वस्तुनिबन्धनत्वमवश्यमाश्रयणीयम्। अङ्गीकृतं च परैरपि प्रत्यक्षं प्रति विषयस्य कारणत्वम्। तेन प्रमामात्रं प्रति विषयस्य कयाचिदपि प्रणाड्योपस्थितस्य कारणत्वस्वीकारे बाधकाभावः।

न चैवमतीतानागतयोः प्रमाऽव्यवहितप्राक्कालिकस्थितिविधुरतया तद्विषयकानुमितिशाब्दधियोरप्रमात्वमापादनीयम्। प्रमां प्रति बौद्धपदार्थानामेव कारणत्वाङ्गीकारेण सत्कार्यवादाङ्गीकारेण वा वस्तुनः प्रमाप्राक्कालिकतायाः सूपपादत्वात्। प्रकृतसाक्षात्कारशाब्दकारणताया अपि बुद्धिपरिकल्पिते सविशेष एवाभ्युपगमेन तस्यालीकत्वप्रसक्तेरिष्टापत्तिग्रस्तत्वात्। अत एव निर्विशेषमुपक्रम्य श्रुतिः। न तस्य कार्यं करणं च विद्यत इति। लौकिकप्रमात्वं तु व्यवहारदशायामबाध्यविषयत्वरूपमुभयत्रापि तुल्यमित्यलमप्रस्तुतविचारप्रयासेन। एवं स्थिते उपनिषदेकगम्यत्वाद् निर्विशेषस्य प्रकृतमहावाक्यघटकपदवृत्त्योपस्थितिरावश्यकी, सा च समभिव्याहृतपदान्तरार्थेन सहान्वयानुपपत्तिप्रतिसंधानसापेक्षेति भवति जघन्यवृत्त्याश्रयणसाहाय्यसमर्पणमुखेन वाक्यस्य निर्विशेषप्रतिपादकत्वं चरमधियो विशेषपरित्यागेन प्रागनधिगतविषयकतया प्रमात्वं चेति चतुरस्रम्। निर्विशेषत्वादेव च परमपुरुषार्थस्य पदार्थान्तरेणान्वयानवकाशः। तत्प्रतिपादकत्वं च श्रुतिशिरसां संसर्गासङ्गिसम्यग्धीहेतुताया गिरामियम्। उक्ताऽखण्डार्थता यद्वा तत्प्रातिपदिकार्थतेत्यभिदधत्याचार्याः। सम्यक्त्वं चात्रोक्तदिशा प्रागनधिगतनिर्विशेषप्रमात्वरूपम्। यदि पुनरन्वित एव पदानां शक्तिः स्यान्न स्यात्तदा प्रकृते कयापि विधया वेदान्तानां निर्विशेषावगमसाधनत्वं प्रमाणान्तरगम्यत्वं तु निर्विशेषस्य सुदूरपराहतमिति महदनिष्टमापद्येत। अतः प्राधान्येनात्र वृत्तिकारमतानुयायी प्रतिपक्ष एव शिक्षणीयो यः क्रियाशेषत्वं ब्रह्मणो विब्रुवन्नाकुलीकरोति चेतांसि ब्रह्मनिष्ठानाम्।

जैमिनिसूत्रे भाष्यकारो वार्त्तिककारश्च नात्र प्रतिकूल इति तयोरेवात्र प्रबन्धे प्राधान्येन प्रमाणभावावलम्बनम्। अत एवौत्पत्तिकसूत्रे (जै. सू. अ. १ पा. १ सू. ५) भाष्यकारो वेदान्तवाक्यानि आत्मज्योतिः सम्राडिति होवाच स एष नेति नेत्यात्मेति होवाचेति निर्विशेषप्रतिपादकान्येवात्मस्वरूपनिरूपणावसर उदाजहार। वार्त्तिककारश्च इत्याह नास्तिक्यनिराकरिष्णुरात्मास्तितां भाष्यकृदत्र युक्त्या। दृढत्वमेतद्विषयश्च बोधः प्रयाति वेदान्तनिषेवणेनेत्युपसंजहार। स्फोटवादिनश्चरमवर्णे वाक्यघटकसकलवर्णसमुदाये च शाब्दधीहेतुत्ववादिनश्च निराकरणं तु ब्रह्मसूत्रे (अ. १ पा. ३ सू. २८) देवादीनां शब्दप्रभवत्वप्र-

तिपादनावसरे पूर्वपक्षे स्फोटं निवेशितवता वर्णा एव तु पदमिति भगवानुपवर्ष इति वर्णानां शाब्दहेतुत्वमन्यमतत्वेन वदताऽथापि नाम प्रत्युच्चारणमन्येऽन्ये च वर्णाः स्युस्तथापि या वर्णेष्वर्थप्रतिपादनप्रक्रिया, सा सामान्येषु सञ्चारयितव्येत्यनास्थामाविष्कुर्वता भाष्यकारेण सूचितामरुचिं व्युत्पादयितुमिति तत्रैव भामत्यां दिङ्मात्रमिह दर्शितं विस्तरस्तु तत्त्वबिन्दावगन्तव्य इत्यभिधानैदम्पर्यपर्यालोचनया पर्यवस्यतीति विचारकुशला विदाङ्कुर्वन्तु।

तदेवमतिनिगूढाशयस्य प्रौढेः परां काष्ठामारूढस्यास्य प्रबन्धरत्नस्य मुद्रणे काशीराजकीयसंस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यक्षैर्नानाविधदर्शननिष्णातधिषणैः **श्रीमदार्थरवेनिससाहिबमहोदयै**रादिष्टोऽहं पाठशालापुस्तकालयस्थं देवाक्षरलिखितं पुस्तकद्वयं वङ्गाक्षरलिखितं च शुद्धतममेकं पुस्तकमिति त्रीणि पुस्तकानि समालम्ब्य प्रवृत्तः पर्यालोच्य बहुत्र क्लिष्टतां विषमस्थलानि सङ्क्षिप्तया टिप्पण्या विशदयन् निवेशयँश्चाधः पाठभेदान् समापयं प्रस्तुतं कार्यम्। भृशमन्वगृह्ये च निखिलं सटिप्पणीकममुं मुद्रिताद्यपत्रं निर्ध्याय महान्तं श्रममङ्गीकृतवद्भिः पाठशालायां प्रधानपण्डितैः **श्रीकैलासचन्द्रशिरोमणिभट्टाचार्यमहाशयैः**। अथापीदृशे दुर्घटे कार्ये मादृशाल्पज्ञजनसुलभेन मतिदोषेण जनितानि स्खलितानि सुविमृश्य प्रबोधयन्तु विचक्षणवरा येन कृतज्ञताप्रकाशनपुरःसरं यतेय द्वितीयसंस्करणे निर्दोषतासम्पादनाय। क्षन्तारश्च गुणैकपक्षपातिनो दूषणवाचंयमाः सुधियः सीसकाक्षरयोजकदोषेण मदीयदृष्टिदोषेण चोपनता अशुद्धीरिति निश्चिन्वन् विरमामि निरर्थकाद्विस्तरादिति शुभम्।

खण्डनोद्धारस्य भूमिका

श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदी

वाचस्पतिमिश्रविरचितसांख्यतत्त्वकौमुद्याः श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्येण स्वकृतटीकासहितमुद्रिते पुस्तके विज्ञापने ४पृष्ठे प्रतिपादितं "वाचस्पतिमिश्रस्तु तां द्वासप्ततिश्लोकीं कौमुद्याख्यव्याख्ययालञ्चकार तेनाचार्यमिश्रेण षट्सु दर्शनेषु टीकाकारीति लोकप्रसिद्धिः।" "एवं खण्डनकृतः श्रीहर्षाच्च तस्यार्वाचीनता वाचस्पतिमिश्रेण हि खण्डनकृत्प्रदत्तन्यायदूषणानां समुद्धारार्थः खण्डनोद्धारनामा प्रबन्धो निरमायि इत्येवं चिन्तामणिकृतः श्रीहर्षाच्च पश्चात् तेनाविर्भूय धरणीमण्डलं मण्डनायितमित्यनुमीयते।" इत्यवलोक्य खण्डनोद्धारग्रन्थान्वेषणे कृते वैकुण्ठनिवासिनां वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यापकानां **पण्डितवरश्रीबालशास्त्रिणां** पुस्तकालये एकं वाचस्पतिमिश्रकृतखण्डनोद्धारस्य पुस्तकं[१] लब्धवान्, तदनन्तरं महामहोपाध्यायश्रीराममिश्रशास्त्रिणां पुस्तकसंग्रहे द्वितीयं[२] ततश्च कलिकातास्थगवर्नमेण्टसंस्कृतकालेजस्थं तृतीयं[३] पुस्तकमिति पुस्तकत्रयसंवादेनास्य मुद्रणं सम्यग् भविष्यतीति निश्चित्य वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यक्षाणां **श्रीमदार्थरवेनिस**महाशयानामाज्ञां समधिगम्य काशीविद्यासुधानिधिनामके पत्रे मुद्रणेऽहं प्रवृत्तोऽस्मि। समारब्धे मुद्रणे मुद्रणोपयुक्तरीत्या समालोचितेष्वादर्शपुस्तकेषूपलब्धं पुस्तकत्रयमेकस्मात् परमादर्शपुस्तकात् साक्षात् परम्परया वा लिखितं विज्ञातम्। यतः परमादर्शपुस्तके यत्र यत्र जीर्णत्वकृमिभक्षितत्वादिनाक्षरणि विलुप्तानि तत्र तत्रैवैषु पुस्तकेष्वपि चिह्नादिना सूचितानि; किन्तु लेखकशोधकप्रमादेन शुद्ध्यशुद्धिभेदाः क्वचित्पाठभेदाश्च दृश्यन्ते। तत्र पण्डितवरश्रीबालशास्त्रिसङ्गृहीतं पुस्तकं सर्वापेक्षया समीचीनमिति तत्पाठोऽत्र मूले स्थापितोऽन्ये पाठभेदाष्टिप्पण्याम्। अत्र पाठापपाठविवेचने विलुप्ताक्षरोद्धारे स्वर्गनिवासिमहामहोपाध्याय**श्रीमद्गुरुवरश्रीकैलासचन्द्रभट्टाचार्यशिरोमणिभिः** सम्यगनुगृहीतोऽस्मि। श्रीहर्षकृतः खण्डनखण्डखाद्यग्रन्थो यथा दुरधिगमस्तदुद्धारस्ततोऽपि दुरधिगम इति नैव तिरोहितमस्ति विदुषामित्येतादृशस्य कार्यस्य सम्पादने प्रवृत्तस्य मम प्रमादेन दृष्टिदोषेण वा मुद्रासम्पादकानवधानेन सीसकाक्षरयोजकप्रमादेन च जाता अशुद्धीर्विद्वांसो गुणैकपक्षपातिनः संशोध्येदं दृष्टिपूतं कृत्वा मामकीनं परिश्रमं सफलयन्त्विति सर्वशक्तिमन्तं परमेश्वरं भूयोभूयः प्रार्थय इति।

---

१. पं. २५ न्यू. सि. (१९०३) पुस्तकमिदं केनचित् पण्डितेन लिखितं नातिप्राचीनं प्रायः शुद्धं सम्पूर्णम्।

२. पुस्तकमिदं नवीनं खण्डितम्।

३. पुस्तकमिदं प्राचीनं परिशोधितम्। लेखकेनात्र लिपिकाल एवं लिखितः— " ॥४५ समये कार्त्तिकसुदि अष्टम्यां गुरौ लिखित एवेति॥"

तत्र तावद्ग्रन्थकाराणां चरितानि यथा दुरधिगमानि तथा प्रतिपादितं मया किरणावली-भूमिकायां न्यायकन्दलीभूमिकायां तार्किकरक्षाभूमिकायां प्रतिपादयिष्यते च न्यायवार्त्तिक-भूमिकायाम्। अत्र यथोपलब्धं निरूप्यते।

श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्येण सांख्यतत्त्वकौमुदीविज्ञापने सांख्यतत्त्वकौमुदी-खण्डनोद्धारकर्त्रोरैक्यं प्रतिपादितं तदवलम्ब्यैव मयापि वाचस्पतिमिश्रोदयनाचार्यश्रीहर्षाणा-मेककालावस्थायित्वं किरणावलीभूमिकायां निरूपितम्; किन्तु स चायमेव खण्डनोद्धारग्रन्थश्चेत् तदा तथा न सम्भवति। यतो वाचस्पतिमिश्रोऽस्मिन् खण्डनोद्धारे २५ पृष्ठे "विस्तरस्तु तत्त्वालोके मयैवोक्त इतीहोपरम्यते" इत्युक्तवान्। न्यायतत्त्वालोकाख्ये[१] न्यायसूत्रवृत्तिग्रन्थे च १ अध्याये १ आह्निके बाधनालक्षणं दुःखमिति सूत्रव्याख्याने "तथा चात्मापराङ्गान्यत्वे सति दुःखविषयबुद्धिविषयप्रमेयत्वमेव दुःखलक्षणमिति वाचस्पतिमिश्राः" इति। एवं समानानेकधर्मोपपत्तेरित्यादिसंशयसूत्रव्याख्याने "प्रामाण्यसंशयजन्योऽप्ययं कोटि-स्मारकसमानधर्माध्यवसायजन्मापीति टीकाकृतः" इति च षड्दर्शनटीकाकारमाचार्यवाचस्पति-मिश्रं प्रमाणयति स्म। अतः सम्भवति च प्रथमं ८८९ विक्रमवर्षे प्रस्थानत्रयभाष्यकर्ता श्रीशङ्कराचार्यस्तदनन्तरं ८९८ शाकाब्दे शाङ्करभाष्यव्याख्याभामती- सांख्यतत्त्वकौमुद्यादिकर्ता वाचस्पतिमिश्रो यस्य वचनानि तत्त्वचिन्तामणिकर्तृगङ्गेशोपाध्यायैः पक्षताग्रन्थे "वाचस्पतिव-चनयोरविरोध" इत्यादिना समुद्धृतानि, ततश्च १५२९ विक्रमसंवत्सरासन्ने समये तत्त्वचिन्ता-मणिप्रकाशखण्डनोद्धारकर्ता[२] वाचस्पतिमिश्रः। अयमेव षड्दर्शनटीकाकारमाचार्यवाचस्पति-मिश्रं स्वकृततत्त्वालोके प्रमाणयति स्म। अयं च वाचस्पतिमिश्रः शङ्करमिश्रसमानकालिकः। यथाहुः सम्प्रदायविदः —

"शङ्करवाचस्पत्योः समानौ शङ्करवाचस्पती भवतः।
पक्षधरप्रतिपक्षी लक्षीभूतो न च क्वापि॥" इति॥

शङ्करमिश्रस्तत्त्वचिन्तामणिमयूखादिकर्ता वैक्रमात् १५२९ संवत्सरात् पूर्वकालभावी, यतोऽस्मिन् संवत्सरे लिखितं तत्कृतखण्डनखण्डखाद्यटीकापुस्तकं वाराणसीस्थराजकीय-संस्कृतपाठशालीयपुस्तकालये वर्तते।

पक्षधरापरपर्यायजयदेवमिश्रस्तु महेशठक्कुरस्य भ्रातुः मेघठक्कुरापरपर्यायस्य भगीरथ-ठक्कुरस्य गुरुः। यथाह किरणावलीप्रकाशप्रकाशिकायाम्—

---

१. अस्य ग्रन्थस्यैकं खण्डितपुस्तकमस्मन्निकटे वर्तते, अत्रापि प्रथमसूत्रावतरणिकायाम् "अत्र चिन्ता-मणिकृतः आरब्धसमाप्ती मङ्गलं नाङ्गं न वा प्रधानमहेतुत्वात्" इत्युक्तम्।

२. अस्य तत्त्वचिन्तामणिप्रकाशस्य मैथिलाक्षरैस्तालपत्रेषु लिखितं जीर्णं प्रत्यक्षखण्डपुस्तकमस्मन्निकटे वर्तते।

"विंशाब्दे जयदेवपण्डितकवेस्तर्काब्धिपारं गतः
श्रीमानेष भगीरथः समजनि श्रीचन्द्रपत्यात्मजः।
श्रीधीरातनयेन तेन रचिता श्रीमन्महेशाग्रज-
श्रीदामोदरपूर्वजेन जयतादाचन्द्रमेषा कृतिः ॥"

अयं महेशठक्कुरो दरभङ्गामहाराजस्य मूलपुरुषः। अत्र मिथिलादेशे जनकपुरस्थानात् पञ्चक्रोशान्तरे ईशानदिग्भागे धनुःक्षेत्रे 'धनुखा' इति प्रसिद्धे कूपे प्रस्तरपट्टे वक्ष्यमाणं पद्यं लिखितमस्ति—

"आसीत् पण्डितमण्डलाग्रगणितो भूमण्डलाखण्डलो
जातः खण्डबलाकुले गिरिसुताभक्तो महेशः कृती।
शाके रन्ध्रतुरङ्गमश्रुतिमही १४७८ संलक्षिते हायने
वाग्देवीकृपयाशु येन मिथिलादेशः समस्तोऽर्जितः ॥" इत्यादि।

१४७८ शाकवर्षे १६१३ विक्रमवर्षे वृद्धावस्थायां राज्यं सम्पादितवान्, अपि च विंशद्वर्षवयस्को जयदेवमिश्रात् तर्कशास्त्रमधीतवानिति १५२९ विक्रमवर्षासन्ने स्थितस्य शङ्करमिश्रस्य जयदेवमिश्रेण समानकालिकत्वं कथञ्चित्सङ्गच्छते। तदानीमेव खण्डनोद्धारकर्ता वाचस्पतिमिश्रोऽप्यासीदिति पूर्वोक्तशङ्करवाचस्पत्योरिति वाक्येनावगम्यते।

अन्योऽपि वाचस्पतिमिश्रो विवादचिन्तामण्यादिधर्मशास्त्रनिबन्धकर्त्ता अपरोऽपि वाचस्पतिमिश्रो भास्कराचार्यकृतसिद्धान्तशिरोमणिव्याख्याकारस्य लक्ष्मीधरमिश्रस्य पितेत्याद्यनेके वाचस्पतयो न्यायवार्त्तिकभूमिकायां निरूपयिष्यन्त इत्युपरम्यत इति शिवम्।

■

तत्त्वमुक्ताकलापस्य भूमिका

श्रीराममिश्रशास्त्री
काश्यामगस्त्यमुन्याश्रमाश्रमः

[१]अस्तीदमुपेयतमार्थनिरूपणपरं मध्यसिद्धान्तसिद्धार्थनिरूपणपरेभ्य उपेयार्थनिरूपणप्रचुरेभ्योऽपि सांख्ययोगादितन्त्रेभ्यः सारतमार्थप्रतिपादकमनन्यथासिद्धार्थविवेचनपरं [२]वेदान्तमीमांसाशास्त्रम्। यथाऽऽह पुराणाचार्यो भगवान् व्यासः—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भुजमुत्थाप्य चोच्यते।
न वेदान्तात्परं शास्त्रं न देवः केशवात्परः।।इति।

उचितं चैतद् धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थचतुष्टयेऽभ्यर्हिततमस्य मोक्षस्येहैव फलोपायपर्यन्तस्य[३] विंशत्यध्याय्या मीमांसितत्वात्।

सन्ति चानेकव्याख्यानानि ब्रह्मसूत्राणां तावताऽपि न तानि सूत्राक्षरार्थानुरोधीनि। न चर्षेर्भगवतो बोधायनस्य ब्रह्मसूत्रवृत्तिकारस्य मतमनुरुन्धन्ति। प्रत्युत केचन ब्रह्मसूत्रभाष्यकाराः सूत्राक्षरविप्रतीपं स्वतात्पर्यविषयीभूतमेवार्थं स्वसन्दर्भेषु बलान्निबबन्धुः। तिरश्चक्रुश्च हेत्वाभासोदाहरणभूताभिरतिदुर्बलदुर्युक्तिभिरुपाधिशताकुलाभिः परस्परव्याहताभिर्जगद्व्यामोहनपर्यवसानाभिर्भगवतो बोधायनस्य वृत्तिग्रन्थम्। अत एव तु ब्रह्माज्ञानवादं द्विषन्तोऽद्वयवादिनो भास्कराचार्यास्तत्सयूथ्याः सन्तोऽपि स्वभाष्ये आदावेव बुद्धेस्तत्त्वपक्षपातितया—

सूत्राभिप्रायसंवृत्त्या स्वाभिप्रायप्रकाशनात्।
व्याख्यातं [४]यैरिदं शास्त्रं व्याख्येयं तन्निवृत्तये।।

इति स्फुटं वस्तुवृत्तमनुसरन्तः शाङ्करव्याख्यायाः सूत्राभिप्रायसंवरणहेतुतामुदक्षरतां निजनयनिरूपणपरतां च समगरिषत। [५]स्वयमपि चानन्दमयाधिकरणे शेषे स्वनिरूपितार्थे असन्तुष्यन्तः "सूत्राणि त्वेवं व्याख्येयानि" इत्यारभ्य अतिश्लथमर्थं निबद्धश्रद्धशिष्यबुद्धिसंग्रहाय कथञ्चिदु-

१. पं. १८, न्यू. सि., (१८९६) ३२९-३३३.

२. अन्तःस्वरूपे निकटे नाशनिश्चययोरपीत्याभिधानिकानुस्मरणादन्तशब्दस्य निश्चयार्थकत्वेन वेदानां संहिता-ब्राह्मणोपनिषदारण्यकादिस्वरूपाणामन्तोऽर्थनिश्चयो येनासौ वेदान्त इति व्युत्पत्त्या पूर्वोत्तरभावापन्नं षोडशाध्यायी-चतुरध्यायीस्वरूपं जैमिनीय-कृष्णद्वैपायनीयं संहत्य मीमांसाशास्त्रम्। अत एव त्वैकशास्त्र्यवासनया पृथग्जनोऽपि पूर्वमीमांसोत्तरमीमांसे इति व्यवहरति। न्यरूपयाम चामुमर्थं शास्त्रदीपिकाभूमिकायामिति तत एव परीक्षन्तां विचक्षणाः।

३. जैमिनीयषोडशाध्यायीसंकलितोत्तरमीमांसाचतुरध्यायी विंशत्यध्यायीति तद्विदः।

४. यैः= शङ्कराचार्यैः।

५. श्रीद शङ्कराचार्यैः।

पदर्शयाञ्चक्रुः। अत एव रत्नप्रभादिशाङ्करभाष्यटीकासु "वेदसूत्रयोर्विरोधे गुणे त्वन्याय्यकल्पनेति सूत्राण्यन्यथा[१] नेतव्यानीत्याह। 'सूत्राणीति' " एवं तच्छिष्याः स्फुटमुपवबृंहिरे। किमेते मूलटीकाकृतो ब्रह्मसूत्राक्षराणां वेदविरोधमुद्भावयन्तो ब्रह्मसूत्राणां स्वप्रतिपाद्यार्थजाते प्रातिकूल्यं विश्वसन्ति? यदि तथा, तर्हि त्रैलोक्यविजयिन एते बौधायनीयवृत्तेरिव ब्रह्मसूत्राणामपि खण्डने यन्न प्रववृतिरे, तच्चित्रम्। दिष्ट्या सौभाग्यमेव वा पाराशर्यस्य कृष्णद्वैपायनस्य। किं वा पाराशर्यस्य सप्तचिरंजीव्यन्तःपातितामुपश्रुत्यैव न ते तद्घाताय समुदयुक्षतेति मन्यामहे। अथवा ब्रह्मसूत्राणामतिसंक्षिप्ताक्षरतया यथा कथञ्चिदर्थनिरूपणेनादृढव्युत्पत्तेर्लोकस्य प्रतारयितुं शक्यतया न तन्निराकरणावश्यकतां मेनिरे, सूत्रवृत्तेस्त्वतिस्फुटार्थतयाऽन्यथयितुमशक्यत्वेन उद्युयुजिरे तन्निराकरणायैवेति ज्ञायते। भगवद्गीतां त्वन्यथाविधां निजघ्नुरेव ब्रह्मास्त्रैरित्यतिस्फुटम्। अस्तु किमप्येतत्तथाऽपि ते किमज्ञासिषुर्जनाश्च तान् कथमन्ववीवृतन्, व्यश्वसिषुर्वेति[२] परवृत्तिनिरूपणे सर्वथा पराग्वृत्तयो वयमिति किं, कथं वा, निरूपयितुमीशीमहि। तथाऽप्यात्मतत्त्वं जिज्ञासमानैः प्रमाणपरायत्तचेतोवृत्तिभिरवश्यमार्षः प्रमाणसिद्ध एवार्थो ब्रह्मसूत्राणामनुसर्तव्य इत्यार्षवृत्ति-ब्रह्मसूत्राक्षरार्थानुसारिणोः श्रीभाष्य-वेदार्थसंग्रहयोर्मुद्रणे प्राक् प्रावर्तिष्महि। परं तु महाकरग्रन्थेषु सहसा जनानां नावगमसिद्धिरिति जातेऽपि श्रीभाष्यादिमुद्रणे जनस्यालब्धव्युत्पत्तेर्न तत्राधिकार इत्यधिकारसिद्धये तत्त्वमुक्ताकलापः सर्वार्थासिद्धिसहितोऽञ्जसा बोधसिद्धये पर्याप्नुयादिति प्रकाश्यते।

अस्य च ग्रन्थरत्नस्य शोधनं तैलङ्गाक्षरपुस्तकमेकमपरं च देवाक्षरपुस्तकं श्रीमतामतिविसृत्वरस्वकीर्तिधवलीकृतसर्वदिङ्मण्डलानामस्मन्मन्त्ररत्नाचार्याणां पूज्यपादानामतिप्रकृष्टवाग्वैभवानामशेषशास्त्राचार्याणां वृन्दावनधामस्थजगद्गुरुश्रीद्दगोवर्द्धनरङ्गाचार्याणां सुप्रसिद्धपुस्तकागाराच्छ्रीमतो लक्ष्मणाचार्यस्य साहाय्येनासाद्य निरवहम्। एतस्य ग्रन्थस्य निर्माता चावधी-

---

१. सूत्राक्षरस्वरसलब्धादर्थात्प्रच्याव्य कुश-काशावलम्बनेन शिष्यव्यामोहनाय केवलं योज्यानीत्यर्थः।

२. एवमेव तु ब्रह्मणो नैर्गुण्यवादो वैषम्यनैर्घृण्यादिलक्षणहेयगुणावधूननपरो ब्रह्मणः सर्वशुभगुणास्पदत्वेन गुणानामियत्तावधिराहित्यपरश्च परैरुत्सूत्रार्थनिरूपणे कृतपरिकरैरत्यन्तनैर्गुण्ये निर्विशेषसत्स्वरूपत्वपर्यवसायिनि बलादेव नियोजितः, तथा हि ब्रह्मसूत्रं प्रकृतैतावत्त्वं प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः। अध्या. ३। पा. २। सू. २२। इति विस्पष्टं ब्रह्मगुणानां भूयोऽभिधानयुक्त्या बुबोधयिषितानां तेषामानन्त्यादियत्ताराहित्यं व्यवस्थापयति। आह च तन्मात्रमिति अध्या. ३। पा. २। सू. १६। सूत्रं तु प्रकाशवच्चावैयर्थ्यमिति अध्या. ३। पा. २। सू. १५। पूर्वसूत्राक्षरस्वारस्यानुरोधेन सन्मात्रतामेव ब्रह्मणः श्रुतिर्ब्रूते इत्येतदर्थकं न भवति; किन्तु सन्मात्रतामेव निर्दिशति, न तु तद्व्यतिरिक्तं सर्वथाऽनन्यसिद्धं श्रुत्येकसमधिगम्यं गुणजातं प्रतिषिषेधिषति ब्रह्म-तद्गुणानामप्राप्तत्वाविशेषेण बुबोधयिषितत्वात्। प्रकाशवच्चावैयर्थ्यमिति हि सूत्रं प्रकाशस्येवाप्राप्तस्य परस्यापि गुणजातस्य ब्रह्मणि सत्त्वमवगमयति इतरथा पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेत्यादिब्रह्मगुणबोधकशास्त्रस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येत, न च गुणबोधकस्य शास्त्रस्य व्यावहारिकप्रामाण्याभिधानायापि स्वस्त्यस्ति प्रकाशवदिति दृष्टान्तावष्टम्भेन प्रकाशस्येव परेषामपि गुणानां याथार्थ्यबोधकताया आवश्यकत्वात्। चतुर्थाध्यायस्तु सर्वोऽपि परेषामुत्सूत्र इत्यादिकं सर्वमस्मदीयषड्वृत्तिग्रन्थे द्रष्टव्यमित्यभिप्रायेण जातपदम्।

रितधिषणधिषणो वेदान्ताचार्यापराभिधः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रो वेङ्कटनाथदेशिको द्राविडब्राह्मणो वादिहंसाम्बुदाचार्यशिष्यः **श्रीद्मदनन्ताचार्यपुत्रो** विश्वामित्रगोत्रः **श्रीद्पुण्डरीकाक्षाचार्यस्य** विततमखविधेः पौत्रः श्रीद्तोतारम्मागर्भमहोदधिमहारत्नम् ।

अस्य स्थितिसमयस्तु शाङ्करमतानुवर्तिनां श्रीमाधवाचार्याणां मध्वसम्प्रदायानुवर्तिनामक्षोभ्यमुनीनां च समान एव । अस्ति चात्र प्रसिद्धिः कदाचिदक्षोभ्यमुनिना माधवाचार्याणां शास्त्रविचारे प्रवृत्तेऽङ्गीकृतमाध्यस्थ्याः श्रीवेदान्ताचार्याः ।

असिना तत्त्वमसिना परजीवप्रभेदिना ।
विद्यारण्यमरण्यानीमक्षोभ्यमुनिरच्छिनत् ॥

शास्त्रार्थावसाने इति श्लोकं पेठुः । माधवाचार्या एव चतुर्थाश्रमावलम्बने विद्यारण्यपदेन प्रसिषिधुरिति तु सुप्रसिद्धमेव, ततश्च स्फुटमिदं यदेते अक्षोभ्यमुनिविद्यारण्यापरनाममाधवाचार्यवेदान्ताचार्याः समसमयावस्थाना इति ।

आशासे चामुना मुद्रणादियत्नेन एतस्मिन् देशे सत्यवेदार्थप्रचारमनेकपुरुषायुषदुरवापमप्यात्मतत्त्वज्ञानं भक्तिमार्गसमुद्रेकं च ।

अभ्यर्थ्यते चात्र साहाय्यमनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकस्य जगदुद्धरणे समुद्यतस्य तत एव परिगृहीतानेकैच्छिकदिव्यविग्रहस्य विचित्रानन्तशक्तिमतः शीलौदार्यगुणौघमहोदधेर्भगवतो देवतासार्वभौमस्यास्मत्कुलसमाराध्यपरमदैवतस्य विष्णोरिति ।

आगमप्रामाण्यस्य भूमिका

पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्री
काश्यामगस्त्यमुन्याश्रमाश्रमः

प्रायः सर्वेष्वपि दर्शनेषु पूर्वं सूत्राणां तात्पर्यार्थनिरूपणपरा वृत्तय एव ऋषिभिरारचितास्तदर्थावधारणकामनावद्भिरवललम्बिरे। यथा जैमिनीये उपवर्षवृत्तिर्वादरायणीये च बोधायनवृत्तिः; परन्तु निजनयनिरूपणकामैः कैश्चिदेतैरर्वाचीनैर्भट्टप्रभाकरप्रभृतिभिः पूर्वमीमांसासु, भर्तृगौडपादप्रभृतिभिरुत्तरमीमांसासु च महताऽऽयासेन आर्षवृत्तीः समुत्साद्य स्वाभिमतार्थनिरूपणपराणि स्वव्याख्यानानि सूत्रेषु पुरश्चक्रिरे। तदनु च तदनुयायिभिः प्राभाकरादिभिः पूर्वतन्त्रे, शङ्कराचार्यादिभिश्चोत्तरतन्त्रेऽतिस्वतन्त्राण्येवारब्धानि व्याख्यानान्याख्यातुमिति न परोक्षमाधुनिकान् प्राचीनाँश्च दार्शनिकग्रन्थानवलोकयतां विपश्चितामिति किमिह बहूक्तेन; परन्तु विशिष्टाद्वैतमास्थायुकैराचार्यैरद्यापि बौधायनीयमार्षमतमेव संरक्ष्यते। यन्मतं वृत्तिषु प्रणाशमुपेयुषीष्वपि द्रमिड़-गुहदेव-टङ्कभारुचिप्रभृतिभिराचार्यैर्भाष्य-वार्त्तिकादिग्रन्थप्रणयनमुखेनाऽऽप्यायितम्। तदेदं बौधायनीयं मतं वृत्तिकारमतं समुच्चयवादिमतमित्येवं वा व्यवाहारि, तदनु च कालविपरिणामेन तदेव मतं भागवतमतमिति व्यवह्रियते स्म शङ्कराचार्यादिसमये, यथा तैर्वादरायणीयेषु सूत्रेषु भाष्यमाभाषमाणैः उत्पत्त्यसम्भवसूत्रचतुष्टयीव्याख्यानावसरे (भागवता एवं मन्यन्ते) इत्यादिनोपन्यस्य निराकर्त्तुमारब्धम्।

तदानीं पर्यन्तं श्रीभाष्यकाराः श्री६रामानुजाचार्या नावतेरुरिति नैतद्व्यपदिष्टमभवद् रामानुजमतमिति यथेदानीन्तनाः परमतानुवर्तिनो विशिष्टाद्वैतवादिनः समुद्दिश्य रामानुजीया इति व्यपदिशन्ति। तदेवं शाङ्करसम्प्रदायात्प्राचीने सनातनेऽस्मिन् श्रीसम्प्रदाये वादिनां विविधा अभूवन् व्यपदेशा इति स्पष्टमस्ति। यस्मिन् समये भागवतमतपदेनेदं व्यपदिष्टमभवद् विशिष्टाद्वैतमतं तदा श्रीभाष्यकाराणां परमगुरवो भगवन्तः श्री६यामुनमुनयः प्राणैषुरमुमागमप्रामाण्यग्रन्थम्।

तदानीं हि द्वेषोद्रेकवशात्प्रथमतो ये भागवतमतमिदमिति व्यपदेष्टुमारेभिरे, त एव व्यतीते बहुतिथे काले एते भागवता न ब्राह्मणा इति वक्तुं प्रायतिषत। तममुं गगनतले पङ्कलेपप्रयत्नप्रायमसदुद्योगं भगवन्नारायणमुखोद्गीतस्य सर्ववेदरहस्यार्थरूपस्य श्रीपञ्चरात्रतन्त्रस्य बाललीलायितं निराकरणसमुद्यमं चावलोक्य निबबन्धुराचार्याः प्रकृतं निबन्धम्। उत्पत्त्यसम्भवचतुःसूत्रीव्याख्याने यथा परैः पाण्डित्यं स्वीया सद्वर्त्मानुयायिता च प्रदर्शिता, तथा आगमप्रामाण्याचार्यैः स्वयमेव महत्याऽरभट्या निरवशेषेण प्रपञ्चितमिति गजभुक्ते कपित्थे जगति स्वीयबलावेदनाय तद्विस्रंसने रोषमिषेण कृतं पादतलाहत्या; किन्तु परमाऽऽचार्यपरिचर्या-

१. पं. २२, न्यू. सि. (१९००) ७६३-७६७.

मर्यादया मादृशस्येतरजनस्यापि नानधिकारो वक्तुमिति किञ्चिद्विशदीकरणमुद्रयोच्यते। तथा हि विज्ञानादिसूत्रव्याख्यानावसरे—

"न च पञ्चरात्रसिद्धान्तिभिर्वासुदेवादिषु एकैकस्मिन् सर्वेषु वा ज्ञानैश्वर्यादितारतम्यकृतः कश्चिद्भेदोऽभ्युपगम्यते, वासुदेवा एव हि सर्वे व्यूहा निर्विशेषा इष्यन्ते। न चैते भगवद्-व्यूहाश्चतुःसङ्ख्यायामेवावतिष्ठेरन्, ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य समस्तस्यैव जगतो भगवद्व्यूह-त्वावगमादिति" श्रीशङ्कराचार्यास्तदिदं विष्णुसहस्रनामव्याख्यासु स्वोक्तेरेव विरुध्यते, तत्र "हि चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः" इति भगवन्नामगणान्तःपातिनि चतुर्व्यूहशब्दे।

[1]व्यूह्यात्मानं चतुर्धा वै वासुदेवादिमूर्तिभिः।
सृष्ट्यादीन् प्रकरोत्येष विश्रुतात्मा जनार्दनः॥

इति व्यासवचनात्। चतुर्व्यूह इति स्वयमेव तैः भगवतः कार्यविशेषसाधनसमुद्देशेन चतुर्धा भवनमङ्गीचक्रे, ततश्च ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य जगतो यादृशो ब्रह्मभावो न तादृशश्चतुर्व्यूहस्य, न हि लोष्टाश्मसाधारणो ब्रह्मभावो भवता भगवतश्चतुर्व्यूहेऽभ्युपगन्तुं शक्योऽन्यथा तु व्यूह्या-त्मानं चतुर्धा वै इति त्वदुपन्यस्तव्यासवचनं सर्वथा कदर्थितमेव स्यात्। न च वासुदेव-संक-र्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धमूर्त्तीरपहायापराश्चतस्रो वासुदेवादिमूर्तयो भवताऽपि निर्देष्टुं शक्यन्ते, न चापरैरपि कैश्चिद्वादिभिरभ्युपेयन्ते।

यदपि शरीरपुरुषश्छन्दःपुरुषो वेदपुरुषो महापुरुष इति वाह्वृचोपनिषदुक्ताश्चत्वारः पुरुषा व्यूहा अस्येति चतुर्व्यूह इति व्याख्यानम्, तदपि "चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः" इति श्लोकेऽभिहितस्य चतुर्व्यूहशब्दस्यार्थो न तु प्रकृतस्य, न ह्यर्थभेदं विना पदैक्ये भगवन्नाम्नां सहस्रसंख्याप्रपूरणप्रत्याशा, तदवश्यं पदभेदेनार्थभेदेन वा भवितव्यमिति अष्टादशश्लोकस्थ-चतुर्व्यूहशब्दार्थोऽगत्या स्वानुमतव्यासाभिमतरीत्यैवेति स्पष्टं स्वीयमेव सहस्रनामव्याख्यानं स्वीयेनैव शारीरकस्थव्याख्यानेन विरुध्यत इति कृतं स्वोक्तिविस्मरणशीलानां निग्रहप्रयत्ने-नेत्युपरम्यते।

एते ग्रन्थाचार्याः श्रीभाष्यकाराणां परमगुरवः[2] श्रीद्नाथमुनीनां पौत्राः[3] श्रीसंप्रदायेऽत्य-न्तमान्या बौद्धैः पादोनबौद्धैरीषदूनबौद्धैर्वा संसारे प्रतारिते सन्मार्गसंदर्शकाः, अनेकप्रौढप्रबन्ध-

---

१. अत्र व्यूह्येत्यनेनावतारावतारिभावस्य विश्रुतात्मेत्यनेनावतारावतारिभावापन्नास्याप्यविकलेश्वरभावस्य, जनार्दनपदेन उपलक्षणमुद्रया जगदुत्पत्तिस्थिति-प्रणाशादिकारणतायाश्च बोधनेनाविकृतस्यैवैकस्य भक्तानुग्रहाय चतुर्मूर्तित्वमिति सिद्ध्यति।

२. श्रीद्रामानुजाचार्याणां मातुलाः श्रीरामायणार्थोपदेष्टारश्च गुरवोऽभूवन् श्रीद्शैलपूर्णाचार्याः, श्रीद्महा-पूर्णाचार्याः समाश्रयणगुरवः। श्रीद्गोष्ठीपूर्णाचार्या रहस्यार्थोपदेशाचार्याः। अमीषां गुरवो भगवन्तो यामुनाचार्यपादाः, अतस्ते श्रीभाष्याचार्याणां परमगुरवः।

३. यथोक्तमालुवन्दारस्तवे स्वयमेव तैः पितामहं नाथमुनिं विलोक्य प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा।

निबन्द्धारश्च। तद्यथा सिद्धित्रयम्, पुरुषनिर्णयः, आगमप्रामाण्यं, काश्मीरागमप्रामाण्यं, भगवद्गीतानिगूढार्थव्याख्यानमिति। यथोक्तं श्री६ वेदान्ताचार्यैस्तत्त्वमुक्ताकलापे—

"नाथोपज्ञं प्रवृत्तं बहुभिरुपचितं यामुनेयप्रबन्धैः" ।।इति।

अस्मद्गुरुरत्नमहामालायां श्री६ यामुनमुनयो मध्यमहामणिस्वरूपा अतः स्वप्रणीतवेदार्थसङ्ग्रहस्यादौ—

परं ब्रह्मैवाज्ञं भ्रमपरिगतं संसरति तत्
परोपाध्यालीढं विवशमशुभस्यास्पदमिति।
श्रुतिन्यायापेतं जगति विततं मोहनमिदं
तमो येनापास्तं स हि विजयते यामुनमुनिः ।।

एवमाचेरुराचार्याः श्री६ रामानुजभगवत्पादाः श्री६ यामुनाचार्यवन्दनलक्षणं विशिष्टमङ्गलम्।

श्रीभाष्ये एतेषामेव सिद्धित्रयस्थानि वचनानि पुरस्कृत्य युक्तीश्चावलम्ब्याचार्याः प्रत्यूचुर्निर्विशेषाद्वैतम्।

उत्पत्त्यसम्भवचतुःसूत्र्यर्थं याथातथ्येन जिज्ञासमानैरेष सन्दर्भोऽवश्यमवदधानैरध्येय इति चावधापयति विविधनिबन्धदर्शनसमुत्सुकान् दर्शनदर्शनव्यसनिनो जनान्।

अङ्गीकरोति च हृदयेन साहाय्यं मथुरास्थश्रीरामानुजपाठशालाऽध्यापकस्य श्रीलक्ष्मणाचार्यस्य, येन स्वहस्तलिखितं देवाक्षरपुस्तकं तैलङ्गाक्षरपुस्तकं च सम्प्रेष्यास्य ग्रन्थरत्नस्य मुद्रणे उपकारः साधु निरभिसन्धितया समपादि।

अयमागमप्रामाण्यग्रन्थः सम्यगवलोकितो दार्शनिकैतिहासनिरूपणव्यवसायानामत्यन्तमुपयोक्ष्यते। अस्ति चैष श्रीसम्प्रदायानुयायिनामिव विपक्षसम्प्रदायानुयायिनामप्युपादेयो बहूनामज्ञातरहस्यार्थानां ज्ञानहेतुत्वात्।

आशासे चामुना ग्रन्थमुद्रणप्रचारणादिव्यापारेण पूर्वाचार्यकृपाभाजनतां तया चात्मनः कृतसर्वकृत्यतामामुष्मिकीं शाश्वतिकीं निःश्रेयसयोग्यतां चेति।

श्रावणशुक्लसप्तम्यां शुक्रे

सं. १९५७.

सटीकतार्किकरक्षाया भूमिका

श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदी
वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयपुस्तकालये

[१]माधवाचार्याणां सर्वदर्शनसङ्ग्रहे[२] पूर्णप्रज्ञदर्शननिरूपणे[३]तार्किकरक्षायां[४] च—

धर्मस्य तदतद्रूपविकल्पानुपपत्तितः।
धर्मिणस्तद्विशिष्टत्वभङ्गे नित्यसमो भवेत्॥

इति लेखदर्शनात् कोऽसौ तार्किकरक्षाग्रन्थः, केन चाचार्येण रचितो यो हि वेदभाष्यादेः प्रणेतृभिर्माधवाचार्यैरुद्धृत[५] इति पर्यालोचयता मया चिरं तदन्वेषणे कृते भूतपूर्वैर्वाराणसीस्थैर्वि-

---

१. पं. २५, न्यू. सि. (१ जनवरी, १९०३ ई.) ३७-१०९.

२. एशिआटिकसोसाइटीसमादेशेन कलिकातानगरे मुद्रिते सर्वदर्शनसङ्ग्रहपुस्तके तन्मूलतया मुद्रिते पुस्तकान्तरेऽपि समाप्तावेवं लिखितमस्ति— "इतः परं सर्वदर्शनशिरोमणिभूतं शाङ्करदर्शनमन्यत्र लिखितमित्यत्रोपेक्षितमिति"। इदमेवावलम्ब्येदानीं विद्वांसः कल्पयन्ति यत् शाङ्करदर्शनं पञ्चदशीग्रन्थे तथा विवरणप्रमेयसङ्ग्रहग्रन्थे च माधवाचार्येण संन्यासाश्रमे नाम्ना विद्यारण्यस्वामिना लिखितं तस्मात् सर्वदर्शनसंग्रहस्य पञ्चदशीग्रन्थेन विवरणप्रमेयसङ्ग्रहेण च सम्बन्ध इति; किन्तु वाराणसीनिवासिश्रीयुक्तबाबूगोविन्ददासमहोदयानां निकटे वर्तमाने सर्वदर्शनसङ्ग्रहान्तिमभागे पातञ्जलदर्शननिरूपणानन्तरं शाङ्करदर्शननिरूपणस्य विद्यमानत्वादनुमीयते मुद्रितपुस्तकमूलभूतलिखितादर्शपुस्तकस्य परमादर्शपुस्तकस्य वा खण्डितत्वात् "इतः परं सर्वदर्शनशिरोमणिभूत"मित्यादिलेखो लेखकशोधककल्पितः, सर्वदर्शनसंग्रहलेखशैलीभिन्नशैलीकत्वात् पञ्चदशीविवरणप्रमेयसंग्रहसम्बन्धोऽप्यसङ्गत एवेति।

केचित्तु तार्किकशिरोमणिरघुनाथकृतं सर्वदर्शनशिरोमणिग्रन्थं माधवाचार्यकृतसर्वदर्शनसङ्ग्रहस्य व्याख्यानमिति वर्णयन्ति। तदप्यदर्शनमूलकम्, यत एल्. एल्. डी., सी. आई. ई. उपाधिधारिणा राजेन्द्रलालमित्रेण नोटिसेसस् ऑफ संस्कृतमेनुस्कृप्ट्सपुस्तके १८४७ संख्यायां तद्ग्रन्थस्य वर्णनं लिखितमिति। सोऽपि ग्रन्थो माधवाचार्यकृतसर्वदर्शनसंग्रहवदेव बोध्यः।

३. एशिआटिकसोसाइटीमुद्रितपुस्तके ७० पृष्ठे।

४. अत्र मुद्रितपुस्तके, पृष्ठे ३००।

५. सर्वदर्शनसङ्ग्रहारम्भे—

"श्रीमत्सायणदुग्धाब्धिकौस्तुभेन महौजसा।
क्रियते माधवार्येण सर्वदर्शनसङ्ग्रहः॥
पूर्वेषामतिदुस्तराणि सुतरामालोड्य शास्त्राण्यसौ।
श्रीमत्सायणमाधवः प्रभुरुपन्यास्यत् सतां प्रीतये"॥ इत्यादि।

सायणमाधवाचार्येणैव वेदभाष्यपराशरमाधवव्यवहारमाधवकालमाधवजैमिनीयन्यायमालाविस्तरादि ग्रन्थाः प्रणीता इति नैव तिरोहितमस्ति विदुषाम्।

द्रद्रैः श्रीहरिकृष्णव्यासैः सम्पादितं तज्ज्येष्ठसूनुश्रीविद्याधरव्यासेन दत्तं वरदराजाचार्यकृततार्किकरक्षापुस्तकं[१] तत्कृततद्व्याख्यानसारसङ्ग्रहपुस्तकं[२] ज्ञानपूर्णविरचितलघुदीपिकाख्य--तट्टिप्पणपुस्तकं[३] च लब्धम्।

तल्लब्ध्या जातोत्साहेन मया व्याख्यानान्तरान्वेषणे कृते एकस्य वृद्धस्यास्मत्सम्बन्धिनो गृहे ब्राह्मणसम्पादनीयत्वेन[४] स्थापितेषु वस्तुषु संख्यापूरकत्वेन निक्षिप्तेषु दुर्दशापन्नेषूत्तमेषु हस्तलिखितपुस्तकेषु हठादाकर्षितेषु भूयो-भूयो निवार्यमाणेन मया कोलाचलमल्लिनाथसूरिकृतस्य निष्कण्टकाभिधस्य सारसङ्ग्रहानुगततार्किकरक्षाव्याख्यानस्य पुस्तकं प्रथमपरिच्छेदमात्रं[५] लब्धम्। तदनन्तरमस्यैव ग्रन्थस्य पुस्तकान्तरमपि वाराणस्यामेवैकस्य संन्यासिनो निकटे वर्तमानं कृमिभक्षितसर्वदेशं विशीर्णमन्ते खण्डितं च[६] लब्धम्। अनन्तरं वाराणसीस्थराजकीयाङ्गलपाठशालाध्यापकेन **पण्डितगणेशदत्तत्रिपाठिना** प्रदत्तं सारसङ्ग्रहसहितं तार्किकरक्षापुस्तकं प्रथमपरिच्छेदमात्रमन्यच्च[७] **पण्डितवरगौरीनाथशास्त्रिणा** समर्पितं तदपि प्रथमपरिच्छेदमात्रं प्राप्तम्[८]।

एतेषां पुस्तकानां प्राप्त्यातीवमुदितचित्तोऽहममुं निबन्धोत्तमं सटीकं मुद्रणद्वारा प्रकाशयितुं समुत्सुको वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यक्षाणां प्रभुवराणां श्री५मताम् **आर्थरवेनिससाहबमहाशयानां** निदेशं समधिगम्य पूर्वं विजयनगरसंस्कृतसीरीजनामकपुस्त-

१. पुस्तकमिदं कागजाख्याधारे प्राचीनदेवनागराक्षरैः कुटिलेतिप्रसिद्धैर्लिखितं विशुद्धं मूलमात्रं सम्पूर्णम्।

२. इदमपि पूर्ववत्। अत्र लेखकेन लिपिकाल एवं लिखितः— "संवत् ५७ श्रावणसुदि २"; परन्तु संवत् १४५७ इति बोध्यः, निरूप्यमाणलघुदीपिकापुस्तकान्ते लेखकेन लिपिकालस्य "संवत् १४५९ वर्षे वैशाखशु. २" एवं लिखितत्वात् तयोः कागजाख्याधारस्य लिपेश्चैकाकारत्वादेकलेखकलिखितत्वाच्च।

३. इदमपि सम्पूर्णं किन्त्वनेकस्थलेष्वलग्नपाठमशुद्धं च।

४. अध्ययनाध्यापनादिर्ब्राह्मणधर्मः, स च पुस्तकेन विना न भवतीति पुस्तकं शालग्रामशिलासमीपे स्थाप्यं वा गङ्गायां प्रक्षेपणीयमिति तस्य वृद्धस्य सिद्धान्तः।

५. इदं पुस्तकं कागजाख्याधारे देवनागराक्षरैर्लिखितं जीर्णं त्रुटितपार्श्वभागं स्पर्शानर्हमशुद्धम्। अत्र यद्यपि लेखकेन लिपिकालो न लिखितस्तथापि जीर्णत्वाद्याकारेणानुमीयते यद् वर्षसार्द्धशतद्वयात् पूर्वं लिखितमिति।

६. अत्रारम्भपत्रस्य पूर्वपृष्ठे एवं लिखितमस्ति— "श्रीसर्वविद्यानिधानकवीन्द्राचार्यसरस्वतीनां वरदराजीयटीकानिष्कण्टिकापुस्तकम्॥" एवं हस्ताक्षरमुद्राचिह्नितान्यनेकानि पुस्तकानि वाराणस्यां क्वचिद्देशान्तरेष्वपि महापुस्तकालयेषु वर्तमानानि दृश्यन्ते। तस्मादनुमीयते यद् वाराणस्यां कोऽपि महान् पुस्तकालय उक्तमहात्मन आसीदिति।

७. अत्र लेखकेन लिपिकाल एवं लिखितः— संवत् १६६१ वर्षे। आश्विनवदि १४ चतुर्दश्यां लिखितमदः पुस्तकं कृष्णभट्टात्मजेन माधवभट्टेन वशिष्ठगोत्रिणा स्वपाठार्थं परपाठार्थं च।

८. अत्र यद्यपि लेखकेन लिपिकालो न लिखितस्तथापि जीर्णत्वाद्याकारेणानुमीयते वर्षशतद्वयात् पूर्वं लिखितमिदं प्रायः शुद्धम्।

कावल्यां मुद्रयितुं प्रवृत्तः; किन्तु तस्या विश्रान्तत्वात् काशीविद्यासुधानिधिनामके मासिकपत्र इदानीं मुद्रितवान् । मुद्रणारम्भश्च येन प्रकारेण जातः, स चोक्तमहाशयैरेव पुस्तकारम्भेऽऽङ्ग-लभाषया सङ्क्षेपतः प्रकाशितः ।

पूर्वोक्तेषु पुस्तकेष्वस्मन्निकटे वर्तमानेष्वपि संशोधनस्य सम्यक्त्वसम्पादनेच्छया मया श्रीयुक्तरामकृष्णगोपालभाण्डारकर एम्. ए. पी- एच्. डी., महाशयसम्पादितं निष्कण्टका-पुस्तकं पुण्यग्राम(पूना)स्थडेकनकालेजपुस्तकालयस्थमुक्तमहाशयैः कृपया प्रदत्तं समानायि-तम् । तेन खण्डितेनाशुद्धेनापि परमादर्शस्थैः कतिपयगुणैर्युक्तत्वादुपयोगः सम्पादितः ।

अत्र वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयन्यायाध्यापकेन तर्कतीर्थोपाधिधारिणा श्रीसुरेन्द्रलालगोस्वामिना प्रूफपत्रसमालोचनया उपकृतोऽस्मि ।

एतावतापीदं मुद्रितं पुस्तकं विशुद्धं जातमिति वक्तुमशक्यम् किन्त्वस्मिन् कार्येऽन-नुभूतपूर्वजातीयो महानायासः कृतो मयेति ।

प्रथमपरिच्छेदस्य ज्ञानपूर्णकृता लघुदीपिकाटीका त्वन्ते मुद्रिता भविष्यतीत्यादर्शपुस्त-कस्यापाततो दर्शनेन पूर्वं प्रतिज्ञातम्; किन्तु पश्चात् सम्यक्समालोचनेनादर्शपुस्तकस्यात्यन्ता-शुद्धत्वं द्वित्रस्थलेषु ग्रन्थत्रुटिं चावगम्येदानीं तन्मुद्रणं साहसं मन्यमानेन मयोपेक्षितमित्यादर्शान्तरदानेनानुग्राह्योऽहमुत्साहवर्धकैर्देशोपकारपरैः पुस्तकान्वेषकैः पुस्तको-द्धारकैर्विद्वद्वरैर्यतो द्वितीयसंस्करणे तत्सम्पन्नं भवेदिति ।

दुर्लभेन पुरातनेन न्यायदर्शनानुरागिजनानन्दवर्धकेनामुना निबन्धेन मनस्तावद् विनोद-यन्तो विद्वद्वरा मामकीनं परिश्रममिदानीं सफलयन्त्विति जगदीश्वरं प्रार्थय इति ।

सटीकतार्किकरक्षायाः प्रणेता **आचार्यवरदराजश्च**[१] कस्मिन् देशे कस्मिन् काले आसी-दितीदानींपर्यन्तं सम्यङ्निश्चयो न भवति किन्तु ग्रन्थान्ते—

---

१. अपरोऽपि वरदराजो वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीप्रणेतृणां भट्टोजिदीक्षितानां शिष्य आसीत् । अनेन सार-सिद्धान्तकौमुदी-लघुसिद्धान्तकौमुदी-मध्यसिद्धान्तकौमुदी च रचिता। यथाह मध्यसिद्धान्तकौमु-द्याम्—

"नत्वा वरदराजः श्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान् ।
करोति पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीम्" ॥

सारसिद्धान्तकौमुदीपुष्पिकायाम्— "श्रीचटविटिकण्टिवरदराजभट्टविरचिता सारसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता" अत्र चटविटिकण्टीत्युक्त्या तैलङ्गोऽयमित्यनुमीयते । अयं च भट्टोजिदीक्षितानां समय एवा-सीत् । भट्टोजिदीक्षितसमयश्च १६७६-१७१६ संवत्सरात्मकः, यतस्तस्मिन्नेव काले वाराणस्यामेव निवसता जगन्नाथपण्डितराजेन सम्राड्जगन्नाथापरनामधेयेन भट्टोजिदीक्षितकृतप्रौढमनोरमाग्रन्थस्य कुचमर्दननामकः खण्डनग्रन्थः कृतः, तत्पुस्तकं च काव्यप्रकाशटीकाकारस्य भट्टवामनाचार्यस्य निकटे वर्तत इति मुम्बईनगरे द्वितीयावृत्तिमुद्रिते काव्यप्रकाशपुस्तके भूमिकायां २४ पृष्ठे लिखितम् । अत एव भट्टोजिदीक्षितेन स्वपाण्डित्यप्रख्यापनाय मनोरमाग्रन्थो जगन्नाथपण्डितराजस्य समीपे प्रेषित इति किंवदन्ती सङ्गच्छत इति ।

"आलोड्य दुस्तरगभीरतरान् निबन्धान्
वाचस्पतेरुदयनस्य तथापरेषाम्।
सारो मयात्र समगृह्यत वावदूकै-
र्नित्यं कथासु विजिगीषुभिरेष धार्यः"[१] ॥"

इत्युक्तत्वादुदयनाचार्यकृतात्मतत्त्वविवेकन्यायकुसुमाञ्जलिप्रबोधसिद्धिग्रन्थानामनेकत्रोद्धृतत्वाद्[२] उदयनाचार्येण लक्षणावलीग्रन्थस्य ९०६ शाकवर्षे (१०४१ संवत्सरे) प्रणयनात्[३] ज्ञानपूर्णकृततार्किकरक्षाटिप्पणलघुदीपिकापुस्तकस्य १४५९ संवत्सरलिखितस्यास्मन्निकटे वर्तमानत्वात् १४५९ संवत्सरात् पूर्वं १०४१ संवत्सरतश्च पश्चात् तार्किकरक्षाकर्तृवरदराजस्य स्थितिरासीदित्यत्र नास्ति वादावकाशः।

अपि च नागेशभट्टेन महाभाष्यप्रदीपोद्द्योतारम्भे "हरिदीक्षितपादाब्जसेवनाल्लब्धसन्मति"रिति वैयाकरणमञ्जूषायामपि "अधीत्य फणिभाष्याब्धिं सुधीन्द्रहरिदीक्षितादि"त्युक्तं तस्माद् नागेशभट्टो हरिदीक्षितशिष्यः। लघुशब्दरत्ने "भट्टोजिदीक्षितपौत्रहरिदीक्षितविरचिते लघुशब्दरत्ने" इति लेखदर्शनाद् हरिदीक्षितो भट्टोजिदीक्षितानां पौत्रतत्समानकालिको नागेशभट्टस्तेन च वैयाकरणबृहन्मञ्जूषाग्रन्थो रचितस्तत्पुस्तकं च १७६३ संवत्सरलिखितमस्मन्निकटे वर्तते। तस्मिन् अनेकानि क्रोडपत्राणि वर्तन्ते, अनेकस्थलेषु एकः पाठः पूर्वं लिखितोऽनन्तरं कुण्डलनां कृत्वा तदर्थबोधकैः शब्दान्तरैरेव लाघवेन स एव पाठो लिखित एवं पत्राङ्का अपि भिन्नक्रमा वर्तन्ते तस्मात् तत्पुस्तकं नागेशभट्टपरिशोधितमुपबृंहितं चेत्यनुमीयते। एतेनापि १६७६-१७१६ संवत्सरकाले भट्टोजिदीक्षितानां स्थितिरासीदिति सुवचम्।

अपरं च वाराणसीस्थराजकीयाङ्ग्लपाठालयाध्यापकपण्डितगणेशदत्तत्रिपाठिनो निकटे वर्तमाने सिद्धान्तकौमुदीपुस्तके लेखकलिखितेन लिपिकालेन संवत् १७३८ एतदात्मकेन पूर्वोक्ता स्थितिरविरुद्धैव।

सामवेदीयकल्पसूत्रव्याख्याकारो वरदराजो भिन्नः। यथाह— "इति वामनाचार्यसूनुः कौशिकान्वयसम्भवो वरदराजः कल्पसंवत्सरकल्पव्याख्यां चक्रे"। पाठोऽयं वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयपुस्तके ८३ पत्रे वर्तते।

अन्योऽपि वरदराजो येन मीमांसाशास्त्रे नयविवेकटीकाख्यो महानिबन्धो रचितो यथाह— "आत्रेयस्य श्रीसुदर्शनाचार्यस्य शिष्यस्य श्रीरङ्गनाथसूनोर्वरदराजस्य कृतौ नयविवेकटीकाया"मित्यादि। इदं पुस्तकं वर्षचतुःशत्याः पूर्वं लिखितमिवाभाति वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयपुस्तकालये खण्डितं भग्नं तृतीयाध्यायमात्रं वर्तते।

१. अस्मिन् मुद्रितपुस्तके, ३६४ पृष्ठे।

२. आत्मतत्त्वविवेकः १७९, १८९, १९४, २०३ पृष्ठेषु। न्यायकुसुमाञ्जलिः १०७ पृष्ठे। प्रबोधसिद्धिः १८९, ३०८, ३५७ पृष्ठेषु।

३. बनारससंस्कृतसीरीजमुद्रितऽस्मच्छोधिते प्रशस्तपादभाष्यपुस्तके द्वितीयखण्डेऽन्ते—

तर्काम्बराङ्कप्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्॥

विशेषजिज्ञासायां तु ज्ञानपूर्णेन लघुदीपिकासमाप्तौ "विष्णुस्वामिगुरुं नुमः" इत्युक्तत्वाद् विष्णुस्वामिनः शिष्य इति कथितं भवति। यज्ञेश्वरभट्टेन आर्यविद्यासुधाकरे २३१ पृष्ठे "ततः शङ्करमतानुयायिना यादवनाम्ना[१] मातुलेनाध्यापितोऽयं रामानुजोऽभिनववैष्णवसम्प्रदायप्रवर्तको बभूव। अयमाचार्यो विष्णुस्वामिशिष्यसन्ताने गृहीतजन्मनो बिल्वमङ्गलस्य[२] पश्चात्" इत्यादि लिखितम्। प्रपन्नामृतनामधेये रामानुजचरिते तु १०१२ शाकवर्षे (११४७ संवत्सरे) यादवाद्रिपर्वते नारायणप्रतिमा स्थापिता रामानुजाचार्येणेति प्रतिपादितम्[३]। अपि च आर्यविद्यासुधाकरे २२८ पृष्ठे विष्णुस्वामिन इतिहासनिरूपणप्रसङ्गे इदमपि लिखितम्— "अयं च शङ्कराचार्यादर्वाचीनः"। "यतोऽनेनाद्वितीयनिराकारब्रह्मप्रतिपादकं शङ्करसम्मतवेदान्तसिद्धान्तं प्रतिक्षिप्य साकारब्रह्मप्रतिपादकं स्वमतं प्रवर्तितमिति माधवीयसर्वदर्शनसंग्रहाभिधग्रन्थाल्लभ्यते"। नीलकण्ठभट्टकृतशङ्करमन्दारसौरभे तु—

"प्रासूत तिष्यशरदामतियातवत्या-
मेकादशाधिकशतोनचतुः सहस्र्याम्"।

इत्युक्त्या ३८८९ कलिवर्षे ८४५ वैक्रमसंवत्सरे शङ्कराचार्याविर्भावः सिद्ध्यति[४]। एतेन ८४५ संवत्सरस्य च पश्चात् ११४७ संवत्सरात् पूर्वं विष्णुस्वामिनः स्थितिरिति[५] सिद्धम्। अपरं च लक्षणावलीग्रन्थात् १०४१ संवत्सरे उदयनाचार्याणां स्थितिरासीदित्यप्युक्तम्। तस्मात् "वाचस्पतेरुदयनस्य तथापरेषाम्" इति वदतस्तार्किकरक्षाकर्तुरुदयनाचार्यसमयपश्चाद्भाविनो

१. यो हि यादवप्रकाश इति पूर्णनाम्ना प्रसिद्धः।

२. बिल्वमङ्गलस्य लीलाशुक इति नामान्तरम्। अनेन श्रीकृष्णकर्णामृतं काव्यं रचितम्।

३. प्रपन्नामृते ४४-४८ अध्यायेषु। अथ भक्तनगरे सार्द्धं शिष्यसङ्घेन निवसतस्तस्य स्वप्रदर्शनानन्तरं भगवन्मूर्त्युद्धरणार्थं यादवाद्रिगमनकथनम्, १०१२ शकाब्दे चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां रामानुजाचार्यस्तत्र नारायणप्रतिमां प्रतिष्ठापितवानित्यादि सर्वं निरूपितम्।

४. प्रस्थानत्रयभाष्यकर्तुः शिवावतारस्य श्रीशङ्कराचार्यस्याविर्भावजीवनचरितादिविषये बहवो विकल्पा इदानीं दृश्यन्ते, ते च परीक्षापूर्वकं न्यायवार्त्तिकभूमिकायां निरूपयिष्यन्तेऽस्माभिरास्तां तावत्।

५. यज्ञेश्वरभट्टेन आर्यविद्यासुधाकरे पृष्ठे २३४ "विक्रमसंवत्सरकालस्य त्रयोदशे शतके मध्वाचार्यः समभवत्। गुर्जराधिपतेः कुमारपालाभिधस्य राज्ञो राज्यसमये सम्प्रदायप्रदीपकृता मध्वाचार्यस्य समुद्भववर्णनात्, विक्रमार्कसमयात् प्रगतेषु ११९९ नवनवत्यधिकैकादशशतीमितेषु संवत्सरेषु कार्त्तिकशुक्लदशम्यां कुमारपालस्य राज्याभिषेको बभूवेति प्रबन्धचिन्तामणिग्रन्थे मेरुतुङ्गाचार्येण लिखितत्वाच्च" इति लिखितम्।

भविष्यपुराणपरिशिष्टे भगवद्भक्तमाहात्म्ये २१ अध्याये तु—

"विष्णुस्वामी प्रथमतो निम्बादित्यो द्वितीयकः।
मध्वाचार्यस्तृतीयस्तु तुर्यो रामानुजः स्मृतः"॥

इति लिखितत्वाद् रङ्गरामानुजात् पूर्वं विक्रमवर्षाणां त्रयोदशशतके मध्वाचार्यस्तस्मादपि पूर्वं निम्बादित्यस्तस्मात् पूर्वं विष्णुस्वामीति क्रमोऽपि १०४१ संवत्सरात्परं ११४० संवत्सरात् पूर्वं विष्णुस्वामिनः स्थितिं न विरोधयति। तुर्यो रामानुजः स्मृत इति भविष्यपुराणपरिशिष्टं तु

वरदराजाचार्यस्य तथा अस्मात् किञ्चित्पश्चाद्भाविन एतत्समानकालिकस्य वा तार्किकरक्षा-टीकालघुदीपिकाकर्तुर्विष्णुस्वामिशिष्यस्य ज्ञानपूर्णस्य च १०४१ संवत्सरादनन्तरं ११४७ संवत्सरात् पूर्वं स्थितिरासीदित्यनुमीयते।

वरदराजाचार्येण "आलोड्य दुस्तरगभीरतरान् निबन्धान्" इत्याद्युक्तत्वात् तार्किकरक्षा-ग्रन्थसमालोचनाद् मल्लिनाथेन चोपोद्घाते "इह खलु तत्रभवान् बालानुकम्पी वरदराजः सकलन्यायशास्त्ररहस्योपदिदिक्षया स्वविरचिततार्किकरक्षाश्लोकव्याख्यानाय सारसङ्ग्रहं नाम प्रकरणमारभमाण" इत्याद्युक्तत्वात् सिद्धं भवति यत् सूत्राणामतिसंक्षिप्तत्वाद् भाष्यवार्त्तिकादि-ग्रन्थानां विस्तृतत्वाद्दुरूहत्वाच्च न्यायसिद्धान्तसिद्धान् प्रमाणादिपदार्थान् प्रथमतः श्लोकात्मकेन ग्रन्थेन निबबन्ध, पश्चात् तस्याप्यस्फुटार्थत्वं विचार्य सारसंग्रहटीकाग्रन्थेन व्याख्यातवान्।

केचित्तु तार्किकरक्षाग्रन्थं तर्ककारिकानाम्ना व्यवहृतवन्तोऽदः पुरातनं न्यायप्रकरणं वरद्-राजाचार्येण स्वकृतया सारसङ्ग्रहाभिधटीकया विशदीकृतमिति वदन्ति। तन्मन्दम्, ज्ञानपूर्णेन लघुदीपिकायाम्—

"पुरा वरदराजेन न्यायशास्त्रार्थसंग्रहः।
कृतः परत्वतो बुद्ध्वा पद्यानां दुर्ग्रहार्थताम्॥

तेनैव रचिता व्याख्या सा च शास्त्रपदं गता।
ततस्तदर्थसिद्ध्यर्थं करोमि लघुदीपिकाम्"॥ इत्याद्युक्तत्वात्।

ग्रन्थोऽयमतीवोपयुक्तो यतो विस्तृतदुरूहशङ्कासमाधिवाग्जालाकाण्डताण्डवादिराहित्येन सरलरीत्या न्यायसूत्रभाष्यादिप्रतिपादिताः प्रसङ्गात् कणादसूत्रप्रशस्तपादभाष्यप्रतिपादिता अपि सर्वे प्रमाणादयः पदार्था द्रव्यादयश्च पदार्था अत्र परिच्छेदत्रये निरूपिताः। तत्र प्रथमपरिच्छेदे प्रमा-णादयश्छलान्ताः पदार्था निरूपिताः। द्वितीयपरिच्छेदे जातिपदार्थो निरूपितः। तृतीये निग्रहस्था-नपदार्थ इति। अत्रत्या विशेषविषयास्तु मुद्रितात् पदार्थनिरूपणक्रमसूचीपत्रादवगन्तव्या इति।

वरदराजाचार्येण न्यायकुसुमाञ्जलिटीकापि रचिता मल्लिनाथेन तार्किकरक्षाटीकायां ४६ पृष्ठे उक्तत्वादिति।

सटीकतार्किकरक्षाटिप्पणलघुदीपिकाकारस्य ज्ञानपूर्णस्य समयस्तु यथोपलब्धं निरूपित-प्राय एव प्राक्। इदानीं निष्कण्टकाकर्तुः कोलाचलमल्लिनाथसूरेर्जीवनचरितविषयो यथोपलब्धि निरूप्यते।

उपनिषद्भाष्यकाररङ्गरामानुजपरं बोध्यमन्यथा तस्मिन्नेव पुराणे सम्प्रदायप्रवर्तकरामानुजस्याग्रे वर्णनी-यत्वादुन्मत्तप्रलापापत्तेरिति।

मध्वाचार्याणामितिहासस्तु विस्तरतो महाभारतीयभविष्यत्पर्वणि निरूपितः। यद्यपि शङ्कराचार्या-णामितिहासो माधवीयशङ्करविजयादौ प्रसङ्गादन्येषामाचार्याणामपि तत्रैव, रामानुजाचार्याणां प्रपन्नामृते वल्लभाचार्याणां वल्लभदिग्विजये निरूपित एव, तथापि न पर्याप्तः; किन्तु महाभारतस्य पूरको हरिवंशो वर्तत एव तदनन्तरमपि भविष्यत्पर्व वर्तते। एवं भविष्यपुराणपूरकं भविष्योत्तरपुराणं तस्यापि पूरकं भविष्यपुराणपरिशिष्टं वर्तत इति चित्रम्।

तत्र तावदनेके मल्लिनाथनामानो विद्वांसो बभूवुः। तथा हि भोजप्रबन्धे[१] —

"अन्यदा राजा क्रीडोद्याने रममाणः श्रान्तः चिरेण सहकारतरोरधस्तात् तस्थौ। ततस्तत्र सहकारतरुमूले रत्नकम्बलमध्यासीनं भूपालं वीक्ष्य कोऽपि मल्लिनाथकविरागत्य स्वस्तीत्युक्त्वा प्राह—

शाखाशतचितवियतः सन्ति कियन्तो न कानने तरवः।

परिमलभरमिलदलिकुलदलितदलाः शाखिनो विरलाः ॥१०॥

ततो राजा श्रुत्वा तुष्टः पाणिवलयं ददौ। ततः कोशाधिकारी कवये पाणिवलयं दत्तं ज्ञात्वा धर्मपत्रे लिखति स्म—

सहकारतरोर्मूले वर्णिते शाखिनां कुले।

मल्लिनाथाय धारेन्द्रः स्वपाणिवलयं ददौ"॥ इति।

भोजप्रबन्धग्रन्थश्च मिथिलादिदेशाधिपतिमहाराजलक्ष्मणसेनपुत्रेण [२]बल्लालसेनेन भोजराजीयधर्मपत्र[३]सङ्ग्रहमवलम्ब्य रचितः। बल्लालसेनसमयश्च तत्कृताद्भुतसागरग्रन्थस्थ-"भुजवसुदशमितशाके १०८२ श्रीमद्बल्लालसेनराज्यादौ" इत्यादिलेखदर्शनात् १२१७ संवत्सरः, अस्मात् पूर्वं १०७९ संवत्सरासन्ने धाराधिपभोजराजसमये[४] मल्लिनाथकविरासीदित्येको मल्लिनाथकविः। केचित्तु—

"मल्लिनाथकविः सोऽयं मन्दात्मानुजिघृक्षया।

व्याचष्टे कालिदासीयं काव्यत्रयमनाकुलम्"॥

---

१. वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयलिखितपुस्तके १७२ संख्यके १२५ पत्रे लेखोऽयं वर्तते। अस्मिन् पुस्तके लेखकेन लिपिकाल एवं लिखितः— "श्रीसंवत् १८५४ आषाढसुदि पूर्णमासी वार शनि लिखितं भोजप्रबन्ध धनीराम ब्राह्मण।"

पण्डितजीवानन्दविद्यासागरेण कलिकातानगरे प्रकाशिते पुस्तकेऽपि ६७ पृष्ठे पाठोऽयं वर्तत इति।

२. इतिहाससंशोधकास्तु बल्लालसेनस्य पुत्रो लक्ष्मणसेन इति निरूपयन्ति। तत्र सङ्गच्छते, अद्भुतसागरे "लक्ष्मणसेनात्मजबल्लालसेनविरचितेऽद्भुतसागरे" इति लेखस्य वर्तमानत्वात्। अपि च मिथिलादेशप्रचलितेन ल.सं. इत्याकारकेण लक्ष्मणसेनसंवत्सरेण १०३० शकाब्दे लक्ष्मणसेनराज्यकालस्य सर्वजनसुप्रसिद्धत्वात्। विस्तरस्तु न्यायवार्त्तिकभूमिकायामनुसन्धेयः।

३. विक्रमादित्यस्यापि धर्मपत्रसंग्रह आसीदिति तत्रैव सूचितम्।

४. भोजराजसमयस्तु ९६४ शककाल इति महामहोपाध्यायसुधाकरद्विवेदिना गणकतरङ्गिण्यां ३१ पृष्ठे लिखितम्। भट्टवामनाचार्यकृतटीकासहिते मुम्बईनगरे द्वितीयावृत्तिमुद्रिते काव्यप्रकाशपुस्तके भूमिकायां ५ पृष्ठे "भोजराजस्य स्थितिकालस्तु ख्रिस्त ९९६ वत्सरादारभ्य १०५१ वत्सरपर्यन्तः" "१०२२ मिते ख्रिस्तवत्सरे भट्टगोविन्दसुताय धनपतिभट्टाय ब्राह्मणाय दत्तं दानपत्रमपि भोजराजस्य पूर्वोक्तमेव स्थितिकाल स्पष्टं कथयति। तच्च दानपत्रं महामहोपाध्यायदुर्गाप्रसादेन प्राचीनलेखमालायामङ्कयित्वा प्रसिद्धिं प्रापितमिति।" तच्च दानपत्रं धाराधिपभोजराजस्यैवेति तद्दर्शनादेव व्यक्तं भवतीति।

इति रघुवंशटीकास्थश्लोकदर्शनात् कविशब्दसाम्याद् भोजराजकालिक एव रघुवंशादिकाव्य-टीकाकारो मल्लिनाथ इत्याहुः। तन्मन्दम्, रघुवंशादिटीकासूद्धृतानां ग्रन्थानां नवीनत्वात्। तच्चाग्रे निरूपयिष्यामः।

अथापरोऽपि मल्लिनाथ आसीत्, तथा हि सरस्वतीतीर्थकृतायां काव्यप्रकाशटीकायाम्[१]—

"विधातुकामः सुकृतं गरीयः क्षमातलं स्वर्ग इवावतीर्णः।
आलम्बनं सर्वविशेषणानां जयत्यखण्डस्थितिरान्ध्रदेशः[२] ॥५॥

फलमिव सुकृतानां लोकधात्र्याः समग्रं विगलितमिव भूमौ नाकलोकस्य खण्डम्।
नगरमतिगरीयः सर्वसंसारसारः त्रिभुवनगिरिनाम्ना तत्र विख्यातमास्ते ॥६॥

तत्राभवत् सकलशास्त्रविचारपात्रं श्रीवत्सगोत्रसुरकाननपारिजातः।
अन्यद्विधातु ?रवलम्बनमाप्तवाचां रामेश्वरः कलिकलङ्ककथान्तरायः ॥७॥

आसीत् प्रमाणपदवाक्यविचारशीलः साहित्यसूक्तिबिसिनीकलराजहंसः।
ब्रह्मामृतग्रहणनाटितलोभवृत्तिः तस्यात्मजो निपुणधीर्नरसिंहभट्टः ॥८॥

तस्मादचिन्त्यमहिमा महनीयकीर्तिः श्रीमल्लिनाथ इति मान्यगुणो बभूव।
यः सोमयागविधिना कलिखण्डनाभिरद्वैतसिद्धमिव सत्ययुगं चकार ॥९॥

लक्ष्मीरिव मुरारातेः पुरारातेरिवाम्बिका।
तस्य धर्मवधूरासीन्नागम्मेति गुणोज्ज्वला ॥१०॥

ज्येष्ठस्तदीयतनयो विनयोदितश्रीर्नारायणोऽभवदशेषनरेन्द्रमान्यः।
वाग्देवताकमलयोरपि यस्य गात्रे सीमाविवादकलहो न कदापि शान्तः ॥११॥

विरिञ्चेः पर्यायो भुवि सदवतारः फणिपते-
स्त्रिदोषो दोषाणां सकलगुणमाणिक्यजलधिः।
अवाचां प्राचां वा सकलविदुषां मौलिकुसुमं
कनीयांस्तत्सूनुर्जयति नयशाली नरहरिः ॥१२॥

---

१. भट्टवामनाचार्यकृतटीकासहिते मुम्बईनगरे द्वितीयावृत्तिमुद्रिते काव्यप्रकाशपुस्तके भूमिकायां २८ पृष्ठे लेखोऽयं वर्तते। नायं मल्लिनाथो रघुवंशादिकाव्यटीकाकार इत्यपि निरूपितं तत्रैव भट्टवामनाचार्यैः।

२. आन्ध्रदेशः तैलङ्गदेशः।

सवसुग्रहहस्तेन ब्रह्मणा १२९८ समलङ्कृते।
काले[1] नरहरेर्जन्म कस्य नासीन्मनोरमम्" ॥१३॥

एतेन आन्ध्रदेशे त्रिभुवनगिरिनाम्नि नगरे वत्सगोत्रे १२९८ विक्रमसंवत्सरे नरहरिनामा विद्वद्वरः समजनि, तस्य पिता मल्लिनाथ आसीदिति निष्पन्नम्।

केचित्तु अयमेव मल्लिनाथो नैषधचरितं विहाय रघुवंशादिपञ्चकाव्यटीकां चकार मल्लिनाथपुत्राभ्यां नारायणनरहरिभ्यां नैषधचरितटीके चक्राते इति वदन्ति। तन्न, यतः १२९८ संवत्सरादपि पूर्वकालवर्ती मल्लिनाथो रघुवंशादिकाव्यटीकासु अर्वाचीनान् निबन्धान् कथमुद्धरेदिति। इदं सर्वं वृत्तं मल्लिनाथेन नैषधचरितमपि व्याख्यातमिति चाग्रे प्रपञ्चयिष्यामः।

येन नारायणेन नैषधचरितं व्याख्यातं सोऽन्यो नारायणो वेदकरोपनामको महालसानरसिंहपुत्रो न तु नागम्मामल्लिनाथपुत्रो यथाह नैषधचरितटीकारम्भे—

"नत्वा श्रीनरसिंहपण्डितपितुः पादारविन्दद्वयं
मातुश्चापि महालसेत्यभिधया विख्यातकीर्तेः क्षितौ।
श्रीरामेश्वरसीतयोः सुमनसोर्गुर्वोरगर्वो यथा-
बुद्धि श्रीनिषधेन्द्रकाव्यविवृतिं निर्माति नारायण": ॥ इति ॥

नरहरिणापि नैषधचरितं व्याख्यातं सोऽन्यो नरहरिः, यथाह नैषधचरितटीकाप्रथमसर्गान्ते—

"यं प्रासूत त्रिलिङ्गक्षितिपतिसततताराधिताङ्घ्रिः स्वयम्भूः
पातिव्रत्यैकसीमा सुकविनरहरिं नालमा यं च माता।
यं विद्यारण्ययोगी कलयति कृपया तत्कृतौ दीपिकाया-
माद्यः सर्गोऽतिमाद्यत्कविकुलविजयी चारु नीराजितोऽभूत्" ॥ इति ॥

ततश्चान्योऽपि मल्लिनाथ आसीत्। वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयसामवेदीयराणायनिशाखीयारण्यगानपुस्तके (७ संख्यके) लेखकेनोद्धृतो यथा "संवत् १५६७ वर्षे चैत्रसुदि ४ बुधवासरे मझिआरी[2]........ ष्ट पुत्रमल्लिनाथपाठार्थे विश्वनाथसुत-आदित्येनालेखि"। पुस्तकमिदं कागजाख्याधारे आर्यावर्तप्रचलिताकारविशिष्टदेवनागराक्षरैर्लिखितम्।

तद्भिन्नोऽपि मल्लिनाथ आसीत्, यस्य पुत्रेण लिखितं कुमारसम्भवकाव्यपुस्तकमष्टमसर्गान्तमत्यन्तपरिशुद्धं सटिप्पणमस्मन्निकटे वर्तते। तत्र लिपिकाल एवं लिखितः—

---

१. ब्रह्मेति एकसंख्याबोधकम्, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति श्रुतेः। काले विक्रमसंवत्सर इति यावत्, यतः सरस्वतीतीर्थेन वाराणस्यामेव निवसता टीका कृता, वाराणस्यां तु विक्रमसंवत्सरलेखस्यैव प्रचारात्, अग्रिमश्लोकेन नरहरिजन्मकालिकग्रहस्थितिवर्णनाच्च। अयमेवार्थो भट्टवामनाचार्याणामपि सम्मतः। सरस्वतीतीर्थस्य वाराणसेयत्वमग्रिमश्लोकेन स्फुटमत्र विस्तरभीत्या न लिखितमिति।

२. अस्मिन्नेव पुस्तके ५४ पत्रे "आरण्यकं समाप्तमिति", "मझिआरीग्रामे" इति च लिखितमस्ति।

"संवत् १६०३ वर्षे आनन्दनामसंवत्सरे ज्येष्ठवदि १ शनौ दिने काश्यामन्तर्गृहे श्रीविश्वेश्वरप्रसादेन मल्लिनाथात्मजेन गणेशपण्डितेन गौडेन स्वपरोपकारार्थं लिखितमिदं पुस्तकम्" ॥

तद्भिन्नोऽपि मल्लिनाथो येन च चिकित्साशास्त्रेऽनेके निबन्धाः कृता यथाह स एव स्वकृतपथ्यापथ्यनिरूपणे—

"शाके वेदाब्धिशास्त्रेन्दौ १६४४ मल्लिनाथो भिषग्वरः।
चक्रे बालावबोधाय पथ्यापथ्यनिरूपणम् ॥"

१६४४ शाकवर्षे १७७९ विक्रमसंवत्सरेऽयं मल्लिनाथ आसीदिति।

जैनास्तु पार्श्वनाथचरितं प्रमाणयन्तश्चतुर्विंशतितीर्थङ्करेषूनविंशो मल्लिनाथ इति वदन्तस्तन्नाम्नैव लब्धनामा पञ्चकाव्यटीकाकारो मल्लिनाथः[१] पूर्वं जैनः पश्चाद्ब्राह्मणः संवृत्तः। अनेके पूर्वं जैनाः पश्चात् संस्कारं विधाय ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चाभूवन्निति धर्मस्थितिस्थापकभूतानां शङ्कराचार्यादीनामितिहासग्रन्थादवगतेरिति वदन्ति, तत्तूपहासास्पदम्, निरूपितानां, मल्लिनाथानां कस्मिंश्चिदपि ग्रन्थे आरम्भसमाप्तिवाक्येषु जैनत्वानुपलब्धेः, नाममात्रसाम्यादेव जैनत्वे गौतममहावीरस्वामिसंवादात्मकानां जैनागमानां दर्शनात्, महावीरस्वामिशिष्यस्य गणधरस्य जैनमुख्यस्य गौतमस्यापि ब्राह्मणत्वापत्तेरहल्यापतिगौतमस्यापि जैनत्वापत्तेश्च।

A.C. Burnell. ए. सी. बर्नेल्-महाशयप्रकाशिते वंशब्राह्मणे तु प्रतिपादितम्— काकटेयराज्ये १३१० ईसवीयवर्षे राजा प्रतापरुद्रदेवाभिध आसीत्। तत्समये सरस्वतीविलासनामको ग्रन्थो रचित इति कोलाचलमल्लिनाथपुत्रः कुमारस्वामी निरूपयति।

रामकृष्णगोपालभाण्डारकर, एम्. ए., पी-एच्. डी., महाशयसङ्कलिते १८९७ ईसवीयवर्षसम्बन्धिरिपोर्टपुस्तके प्रतिपादितम्— उत्कलदेशे १२८२-१३०० ईसवीयवर्षे नरसिंहराज आसीत्, तत्समये विद्याधरेण एकावलीग्रन्थो रचितः, स च मल्लिनाथेन व्याख्यात इति।

Theodor Aufrecht's Catalogus Catalogorum. औफ्रेख्टमहाशयसङ्कलिते सूचीपत्राणां सूचीपत्रपुस्तके २३९ पृष्ठे लिखितमस्ति— आदित्यवर्मणः पुत्रो मल्लिनाथः, तत्पुत्रस्त्रिविक्रमदेवोऽनेन प्राकृतव्याकरणवृत्तिर्निर्मितेति।

अस्माभिस्त्वेवमनुमीयते— वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीये (१०० संख्यके) कोलाचलमल्लिनाथसूरिकृतकिरातार्जुनीयटीकाघण्टापथपुस्तके लेखकेन लिपिकालः १५८० शाकवर्षो लिखितः[२]।

---

१. मल्लिनाथशब्दस्यार्थस्तु "मल्लो महाबलो मल्लिर्मल्लिकाकुसुमप्रिय" इति शिवनामाष्टोत्तरशतकाद् मल्लिः शिवः। मल्लते धारयति विज्ञानमिति मल्ल + सर्वधातुभ्य इन् उणादौ ४।११७। ईशानः सर्वविद्यानामिति श्रुतेश्च। मल्लिर्नाथो यस्य स मल्लिनाथो रामनाथवदिति।

मल्लिश्चतुर्विंशतेरर्हतां मध्ये ऊनविंश इति हेमचन्द्रः— १।२८।

२. "शके १५८० जयवत्सरे दक्षिणायने शरदर्तौ कार्त्तिके मासे वरिष्ठपक्षे द्वादशीपूर्वकत्रयोदश्यां तिथौ सायं सुरारिगुरुवासरे हरिहरेश्वरपुण्यतीर्थवासिभट्टभट्टात्मजकाव्यवक्तृसुधीनारायणाभिधानेन गौत-

तेनैव मल्लिनाथेन च किरातार्जुनीयटीकायां[१] ४ सर्गे उपारता इति १० श्लोकव्याख्यायां "पीयूषवर्षस्त्वेकदेशिसमासमेवाश्रित्य[२] समासान्तमाहे"त्युक्तम्। पीयूषवर्षस्तु तत्त्वचिन्तामण्यालोक-चन्द्रालोक-प्रसन्नराघवनाटकादिग्रन्थकर्ता पक्षधरान्वर्थनामा जयदेवमिश्र[३] एव। स च १४७८ शाकवर्षे वर्तमानस्य मिथिलादेशाधिपतेः श्रीमहेशठक्कुरस्य मध्यमभ्रातुर्भगीरथठक्कुरस्य गुरुरासीदिति १५८० शाकवर्षात् पूर्वं १४७८ शाकवर्षात् पश्चात् तदासन्नसमये[४] वा रघुवंशादिटीकाकारस्य कोलाचलमल्लिनाथसूरेः स्थितिरासीदिति। तथा हि चन्द्रालोकारम्भे—

मीतटस्थजनस्थाने किरातोपायवण्टापथाख्यपुस्तकं लिखितमात्मकार्यार्थं परोपकारार्थम्" इति तत्पुस्तकस्यान्तिमपत्रे लिखितमस्ति।

१ रघुवंशादिनैषधान्तकाव्यटीकायाः सटीकतार्किकरक्षाटीकायाश्चैकमल्लिनाथकर्तृकत्वं तेनैव मल्लिनाथेन के के ग्रन्था रचिता इति चाग्रे सविस्तरं निरूपयिष्यते।

२. पीयूषवर्षकृता किरातार्जुनीयटीका तु वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयभूतपूर्वाध्यापकानां त्रिपाठिवेचनरामशर्मणां निकटे आसीत्। मुद्रिते मल्लिनाथकृतटीकापुस्तके तु पीयूषवर्ष इत्यस्य स्थाने "प्रकाशवर्ष" इति केनचिच्छोधितम्। औफ्रेख्ट्महाशयसङ्कलितसूचीपत्रदर्शनादवगम्यते प्रकाशवर्षकृतापि काचित् किरातार्जुनीयटीका वर्तते तस्यामयं पाठो वर्तते, न वेति विद्वद्भिः समालोचनीयम्।

एवं मुद्रिते मल्लिनाथकृतटीकासहितशिशुपालवधपुस्तके प्रथमसर्गे गतं तिरश्चीनमिति द्वितीयश्लोकव्याख्याने "दिवाकरस्तु वृत्तरत्नाकरटीकायां प्रथमपठितेन 'द्विधाकृतात्मा किमयं दिवाकरो विधूमरोचिः किमयं हुताशनः।' इति चरणद्वयेन सहेममेव श्लोकं षट्पदच्छन्दस उदाहरणमाहे"ति पाठो दृश्यते। अयं च केनचित् कस्मिंश्चिल्लिखितपुस्तके टिप्पण्यादिरूपेण लिखितः केनचिन्मूल एव प्रक्षिप्तः, यतो मल्लिनाथकृतटीकापुस्तकस्य १७१५ संवत्सरलिखितस्योपलब्धेः दिवाकरेण च १७४० संवत्सरे वृत्तरत्नाकरस्य टीकाया रचितत्वात्, वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीये प्राचीने माघटीकापुस्तकेऽस्मन्निकटे वर्तमाने प्राचीने पुस्तकेऽप्यस्य पाठस्याभावाच्च। खेदस्थानं यदिदानीमपि शोधकमहाशया मल्लिनाथकृतकाव्यटीकासु निवेशप्रवेशादिना टीकाग्रन्थमन्तर्गतं कृत्वाल्पज्ञजनभ्रान्तिजनकं कुर्वन्ति, न तु प्राचीनपरिशुद्धादर्शसंवादपूर्वकं परिष्कुर्वन्तीति।

३. जगदीशभट्टाचार्येणानुमानदीधितिटीकायां सिद्धान्तलक्षणप्रकरणे— "पक्षधरमिश्रादिसम्मतत्वात्", "शब्दमण्यालोके तैः सार्थकत्वं समर्थितम्" इत्युक्तत्वाद् आलोकग्रन्थस्य जयदेवकृतत्वात् जयदेव एव पक्षधरः। पक्षस्य मासार्द्धस्य तिथिवारनक्षत्रयोगकरणानि एकदैव पञ्चाङ्गे दृष्ट्वा मनसि धारयतीति पक्षधर इति किंवदन्ती।

४. महेशठक्कुरशिष्येण केनचित् पण्डितेन दिल्लीनगराधिष्ठिताद् भारतेश्वराद् मिथिलादेशाधिपत्यं प्राप्य गुरवे गुरुदक्षिणात्वेन तत् समर्पितमिति किंवदन्त्या महेशठक्कुरेण वृद्धावस्थायां यौवनान्ते वा राज्यं प्राप्तम्। महेशठक्कुरानुजस्य भगीरथस्य च "विंशाब्दे जयदेवपण्डितकवेस्तर्काब्धिपारं गत" इति द्रव्यकिरणावलीप्रकाशटीकान्ते उक्त्या जयदेवस्य पण्डितत्वं कवित्वं निबन्धकर्तृत्वं च भगीरथस्य विंशाब्दे सम्पन्नमासीदिति तस्यापि वृद्धत्वसम्भवे किरातार्जुनीयटीकाया यौवने प्रणीतत्वे तदानीं किरातार्जुनीयटीकायाः ७५ वर्षप्राचीनत्वकल्पनमपि सम्भवतीति।

गीतगोविन्दकर्ता जयदेवस्त्वस्माद्भिन्न एवेति प्रसन्नराघवभूमिकायां प्रतिपादितं पण्डितगोविन्ददेवशास्त्रिणा काशीविद्यासुधानिधौ।

"चन्द्रालोकमयं स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कृती"।

प्रथममयूखसमाप्तावपि—

"महादेवः सत्रप्रमुखमखविध्येकचतुरः
सुमित्रा तद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ।
अनेनासावाद्यः सुकविजयदेवेन रचिते
चिरं चन्द्रालोके सुखयतु मयूखः सुमनसः॥

॥ इति पीयूषवर्षपण्डितजयदेवविरचिते चन्द्रालोके प्रथमो मयूखः"।

अन्ते—

"पीयूषवर्षप्रभवं चन्द्रालोकं मनोहरम्।
सुधानिधानमासाद्य श्रयध्वं विबुधा मुदम्॥
जयन्ति याज्ञिकश्रीमन्महादेवाङ्गजन्मनः।
सूक्तपीयूषवर्षस्य जयदेवकवेर्गिरः"॥

प्रसन्नराघवनाटकेऽपि प्रस्तावनायाम्—

"विलासो यद्वाचामसमरसनिष्यन्दमधुरः
कुरङ्गाक्षीबिम्बाधरमधुरभावं गमयति।
कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो-
रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः॥

अपि च—

लक्ष्मणस्येव यस्यास्य सुमित्रागर्भजन्मनः।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृङ्गायते मनः॥

नटः— एवमेतत्। नन्वयं प्रमाणप्रवीणोऽपि श्रूयते। तदिह चन्द्रिकाचण्डातपयोरिव कवितातार्किकत्वयोरेकाधिकरणतामालोक्य विस्मितोऽस्मि।

सूत्रधारः— क इह विस्मयः?

येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता-
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः"॥ इति।

चिन्तामण्यालोकारम्भे च—

"अधीत्य जयदेवेन हरिमिश्रात् पितृव्यतः।
तत्त्वचिन्तामणेरित्थमालोकोऽयं प्रकाश्यते"॥

एतेन जयदेवमिश्र एव[१] पीयूषवर्षपण्डितस्तार्किकः कविश्च। अस्य माता सुमित्रा पिता महादेवो गुरुः पितृव्यश्च हरिमिश्र इति निष्पन्नम्।

भगीरथठक्कुरेण च द्रव्यप्रकाशिकायां द्रव्यकिरणावलीप्रकाशटीकायामन्ते—

"विंशाब्दे जयदेवपण्डितकवेस्तर्काब्धिपारं गतः
श्रीमानेष भगीरथः समजनि श्रीचन्द्रपत्यात्मजः।
श्रीधीरातनयेन तेन रचिता श्रीमन्महेशाग्रज-
श्रीदामोदरपूर्वजेन जयतादाचन्द्रमेषा कृतिः"॥इति।

मिथिलादेशे जनकपुरस्थानात् पञ्चक्रोशान्तरे ईशानदिग्भागे धनुःक्षेत्रे 'धनुखा' इति प्रसिद्धे कूपे प्रस्तरपट्टे वक्ष्यमाणं पद्यं लिखितमस्ति—

"आसीत् पण्डितमण्डलाग्रगणितो भूमण्डलाखण्डलो
जातः खण्डवलाकुले(?) गिरिसुताभक्तो महेशः कृती।
शाके रन्ध्रतुरङ्गमश्रुतिमही १४७८ संलक्षिते हायने
वाग्देवीकृपयाशु येन मिथिलादेशः समस्तोऽर्जितः"॥

इत्यादीन्यनेकानि पद्यानि तत्र वर्तन्ते।

श्रीमहेशठक्कुरेण थेघठक्कुरापरनामधेयेन भगीरथठक्कुरेण च मेघठक्कुरापरनाम-धेयेन[२] चानेके ग्रन्था रचिताः, विस्तरस्तु तेष्वनुसन्धेयः।

अपि च मार्कण्डेयपुराणान्तर्गतस्य चण्ड्याः सप्तशतीस्तोत्रस्य व्याख्यानं चित्रकूट-समीपे १६३३ वैक्रमवर्षे मल्लिनाथात्मजेन भीमसेनानुजेन वीरभद्रेण रचितमित्ययं[३] १६३३ संवत्सरोऽपि पूर्वोक्तां मल्लिनाथस्य स्थितिं द्रढयति। तथा हि तद्व्याख्याने प्रथमाध्यायान्ते—

---

१. पितृव्यः पितुर्भ्राता स च मिश्रोपनामक इति जयदेवोऽपि मिश्रोऽत्र नास्ति वादावकाशः।

२. "यः कैशोरे विश्वविख्यातकर्मा धर्माचार्यः श्रीमहादेवशर्मा।
तत्सोदर्यो वर्द्धमानस्य सूक्तौ भावं मेघः सम्यगाविष्करोति"॥

इति भगीरथठक्कुरकृतद्रव्यप्रकाशिकारम्भे दर्शनात् तस्य मेघापरनामधेयत्वं श्रीमहेशठक्कुरस्य महादेवापरनामधेयत्वं च स्फुटमवगम्यत इति।

३. ग्रन्थेऽस्मिन् स्थूलमानेन श्लोकानां पञ्च सहस्राणि वर्तन्ते। आरम्भे— "श्रीकृष्णद्वैपायनाभिधानमहर्षि-वेदव्यासप्रोक्तमार्कण्डेयपुराणान्तर्गतजयाख्यदेवीमाहात्म्यप्रकाशकसप्तशतिकाभिधानं . सावर्णिः सूर्यतनय इत्यादिसावर्णिर्भविता मनुरित्यन्तग्रन्थसन्दर्भं क्रोष्टुकिनामा द्विजन्मा प्रियशिष्यो मार्कण्डेयं शिरसा प्रणम्यापृच्छत्" इत्यादि।

"यो नित्यं गुरुपादपूजनरतः श्रीमल्लिनाथात्मजः
क्षेमश्रीवदनाम्बुजाहिमकरः श्रीवीरभद्रो द्विजः।
देवीचारुपदाब्जदत्तहृदयो लोकप्रियस्तत्कृतौ
टीकायां किल चण्डिकानुचरितेऽध्यायोऽयमाद्यो गतः"॥ इति।

एवमेव द्वितीयतृतीयचतुर्थानामध्यायानामन्ते।पञ्चमाध्यायान्ते तु—

"यस्मै वाग्वादिनीयं वरममलपदाच्छ्रीभवानी पुनर्यं
कारुण्यादात्मभृत्यं कलयति सुषुवे मल्लिनाथः सुतं यम्।
क्षेमश्रीर्वर्धयन्ती सुखमतुलमलं प्राप चाङ्के गतं यं
तस्यागात् पञ्चमोऽसौ स्तुतिललितगुणोऽध्याय एवात्र देव्याः"॥ इति।

अष्टमाध्यायान्ते तु—

"येन द्विजातिनिवहः समादृतो वीरभद्रेण।
तेन व्यधायि देव्याष्टीकायामष्टमोऽध्यायः"॥ इति।

पुस्तकान्ते लेखकेन लिपिकाल एवं लिखितः—
"खगुणर्षियुतैश्चन्द्रैर्योजितेऽब्दे १७३० तु वैक्रमे।
नभसोऽग्नितिथौ शुभ्रे छायाह. .न्दने॥
लिखितं नीलकण्ठेन दुर्गापुस्तं सटीककम्।
लिखितं खलु यत्नेन यश्चोरयति पुस्तकम्॥
शूकरी तस्य माता स्यात् पिता तस्य च गर्दभः"॥ इति।

मल्लिनाथवद्वीरभद्रोऽपि महावैयाकरणोऽस्यां टीकायां प्रतिश्लोकं बहूनां पदानां पाणिनिव्याकरणेन साधुत्वं दर्शयति। क्वचित् क्वचिदेकस्यैव वाक्यस्य प्रकारान्तरैर्नानाविधानर्थान् निरूपयति प्रमाणयति च तैत्तिरीयोपनिषदं भगवद्गीतां व्यासं पाणिनिं याज्ञवल्क्यं मातृगुप्ताचार्यं मुरारिमिश्रममरकोशं विश्वकोशं यादवकोशं मेदिनीकरकोशं च। अस्यां टीकायां कस्यापि टीकाकारस्य नाम न लिखति; किन्तु प्रतिश्लोकं "कस्यचिन्मते", "अपर आह" एवंरूपेण मतान्तरमुपन्यस्यति। स च कश्चिदनतिप्राचीनष्टीकाकारो यतस्तेन पाणिन्यमरहेमचन्द्रयादवक्षीरतरङ्गिण्यादयो ग्रन्थाः प्रमाणत्वेनोपन्यस्ताः।

अपरोऽपि वीरभद्र आसीद् येन वात्स्यायनकामसूत्रव्याख्यानभूत आर्याच्छन्दसा निबद्धः कन्दर्पचूडामणिग्रन्थो रचितः। कन्दर्पचूडामणिग्रन्थे च भोजराजनाम्न उल्लेखात् स्वस्य च वीरशब्देनोल्लेखनात् स कश्चिदनतिप्राचीनो राजाधिराज इत्याभाति। यथाह कन्दर्पचूडामणौ—

"अधिकरणे पञ्चमके कुरुते व्याख्या तृतीयकेऽध्याये।
भूचक्रवर्त्ती वीरः श्रीवीरभद्रोऽसौ"॥

अस्मन्निकटे वर्तमानं पुस्तकं चाद्यन्तहीनम् आकारेण वर्षाणां त्रिशत्याः पूर्वं लिखितमिवाभाति।

अपरोऽपि दीक्षितभीमसेन आसीद् येन सुधासागरनामकं काव्यप्रकाशव्याख्यानं १७७९ वैक्रमसंवत्सरे कृतं चण्डीसप्तशतीव्याख्यानमपि। अयं च कान्यकुब्ज इति तट्टीकादर्शनाद् व्यक्तमवगम्यते।

दशमाध्यायान्ते तु—

"शास्त्रयुक्त्या जिता येन वीरभद्रेण वादिनः।
तत्सृष्टदुर्गाटीकायामध्यायो दशमो गतः"॥ इति।

एकादशाध्यायान्ते तु—

"शब्दशास्त्रार्थसाहित्यच्छन्दोव्याख्यानकोविदः।
यस्तेन वीरभद्रेण चण्डिकाविवृतिः कृता"॥ इति।

समाप्तौ तु—

"शास्त्रयुक्त्या जिता येन वीरभद्रेण वादिनः।
तत्सृष्टदुर्गाटीकायां गतोऽध्यायस्त्रयोदशः॥

यो वै भूपालचूडामणिनिकरकरैरर्चिताङ्‌घ्रिर्द्विजेन्द्रः
काणादे चाक्षपादे कपिलफणिपतिप्रोक्ततन्त्रे च तन्त्रे[१]
वैयासे पाणिनीयेऽप्रतिहतधिषणोऽलङ्कृतौ काव्यमूले
टीकां कृत्वाग्रगण्योऽभवदिह विदुषां मल्लिनाथः कवीन्द्रः॥
तत्सूनुर्वीरभद्रः कुलपतिपदभाग्भीमसेनानुजोऽसौ
चण्ड्याः स्तोत्रस्य टीकां विबुधजनमनोमोदसम्पादयित्रीम्।
वर्षे रामाङ्गचन्द्रे शिवनयनयुते १६३३ चित्रकूटोपकण्ठे
चक्रे चण्डीप्रसादात् प्रतिपदममलं भावयंस्तत्पदाब्जम्"॥ इति।

मल्लिनाथेन काव्यटीकासु तार्किकरक्षाटीकायामपि "कोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचिताया", मित्यादेर्लिखितत्वात् कोलाचलनिवासीत्युक्तं भवति। कोलप्रधानोऽचल इति कोलश्चासावचलश्चेति वा व्युत्पत्त्या कोलनामकः कश्चित् पर्वतः[२], स च चित्रकूटसमीपस्थ इति महाभारतात्, मार्कण्डेयपुराणाच्च प्रतिभाति। तथा हि—

---

१. कपिलप्रोक्ततन्त्रे सांख्ये फणिपतिप्रोक्ततन्त्रे योगशास्त्रे तन्त्रे जैमिनिप्रोक्ते पूर्वमीमांसाशास्त्रे।

२. पर्वताः। अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलेत्यमरः।

केचित्तु— वराहः शूकरो घृष्टिः कोलः पोत्री किरिः किटिरित्यमरकोशात् कोलाचलं कूर्माचलवत् वाराहक्षेत्रं वर्णयन्तः कान्यकुब्जदेशे गङ्गातटे वर्तमानमनेकपुरातनविभ्रष्टराजहर्म्यादियुतमुच्चावचप्रदेशमिदानीं "सोरों वदरिआ" इति प्रसिद्धमेवेति वदन्ति।

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गतचण्डीसप्तशत्यां "कोलाविध्वंसिनस्तथे"ति यदुक्तम् तत्र कोलानाम नगरी सुरथराजस्य राजधानीति टीकाकारैर्व्याख्यातत्वात् सा कोलाचलशब्देन कथमपि न व्यपदेशमर्हतीति विद्वद्भिर्विवेचनीयम्।

महाभारते सभापर्वणि अध्याये[१]—

"वशे चक्रे महातेजा दण्डकाँश्च महाबलः।
सागरद्वीपवासाँश्च नृपतीन् म्लेच्छयोनिजान्॥
निषादान् पुरुषादाँश्च कर्णप्रावरणानपि।
ये च कालमुखा नाम नरराक्षसयोनयः॥
कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपट्टणं तथा।
द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा"॥इति।

अत्र रामकं पर्वतमित्युक्त्या चित्रकूट एव बोध्यः, मल्लिनाथेनैव कश्चित् कान्ताविरहगुरुणेति मेघदूतारम्भश्लोकव्याख्याने "रामगिरेश्चित्रकूटस्ये"ति व्याख्यातत्वात्। सुरभीपट्टणस्येदानीं किमपि नामान्तरं जातमित्यतस्तन्न विज्ञायते।

मार्कण्डेयपुराणे कूर्मनिवेशाध्याये—

"आवन्तयो दासुपुरास्तथैवाकरिणो जनाः।
महाकर्णाः सकर्णाश्च गोनन्दाश्चित्रकूटकाः॥
चोल्लाः कोलगिरश्चैव क्रौञ्चद्वीपाः जटाधराः।
कावेरा ऋष्यमूकस्था नासिक्यश्चैव ये जनाः॥
शङ्खमुक्तश्च वैदूर्यशैलप्रान्तरिताश्च ये[२]"॥ इत्यादि।

इत्यनेन मल्लिनाथस्य चित्रकूटसमीपस्थत्वात्, वीरभद्रेण च चित्रकूटोपकण्ठे सप्तशतीटीकाप्रणयनाद् द्वयोरप्येकदेशनिवासित्वं सिद्धम्। वाणीं काणभुजीमिति श्लोकस्य काणादे चाक्षपादे इत्यनेन श्लोकेनानूदितत्वाद् रघुवंशादिकाव्यटीकाकर्तुर्मल्लिनाथस्य पुत्रो वीरभद्र इत्यपि सुवचनम्। मल्लिनाथः शिशुपालवधादिटीकासु मेदिनीकरकृतनानार्थकोशं प्रमाणयति[३]। वीरभद्रोऽपि सप्तशतीटीकायां प्रथमाध्याये द्वितीयश्लोकव्याख्याने "माया स्याच्छाम्बरीबुद्धयोरिति मेदिनीकरः"। द्वितीयाध्याये ३० श्लोकव्याख्यानेऽपि "अट्टं भक्ते च शुक्ले च क्षौमेऽत्यर्थे गृहान्तरे इति मेदिनीकरः" इति। मेदिनीकरश्च ख्रिस्ताब्दस्य चतुर्दशशतके समभवदिति रामकृष्णगोपालभाण्डारकर महाशयेन मालतीमाधवभूमिकायां निरूपितम्, तदप्यस्मन्निरूपितमल्लिनाथतत्पुत्रस्थितौ साधकमेवेति।

---

१. वङ्गदेशस्य एशिआटिकसोसाइटी-द्वारा मुद्रिते महाभारतपुस्तके ३५० पृष्ठे द्रष्टव्यम्।

२. पाठोऽयं वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयपुस्तके १४३ पत्रे वर्तते।

३. शिशुपालवधटीकायां द्वितीयसर्गे "यजतां पाण्डव" इति ६५ श्लोकव्याख्याने, १४ सर्गे "निर्जिताखिले"ति २९ श्लोकव्याख्याने द्रष्टव्यम्।

कोलाचलमल्लिनाथेन रघुवंशटीकायां "व्याचष्टे कालिदासीयं काव्यत्रयमनाकुलम्" इत्युक्तत्वाद् रघुवंश-कुमारसम्भव-मेघदूतटीकानां सञ्जीविनीत्येकनामत्वात् तासु वाणीं काणभुजीमिति मुद्राश्लोकदर्शनात् तासामेककर्तृकत्वं सर्वजनसुप्रसिद्धम्। शिशुपालवधटीकायां प्रथमसर्गे अभूदभूमिरिति ४२ श्लोकव्याख्यायाम् "इत्युक्तमस्माभिर्देवपूर्वं गिरिं ते इति, धनुरुपपदमस्मै वेदमभ्यादिदेश इत्येतद्व्याख्यानावसरे सञ्जीविन्यां घण्टापथे च"। शिशुपालवधटीकायां त्रयोदशसर्गे मुदितैरिति २४श्लोकव्याख्याने "तदेतत्सर्वमस्माभिः कालिदासत्रयसञ्जीविन्यां विवेचितम्"। अपि च शिशुपालवधटीकायां द्वादशसर्गे उत्क्षिप्तगोत्र इति ५श्लोकव्याख्याने "तदेतत् सम्यग्विवेचितमस्माभिः किरातार्जुनीयटीकायां घण्टापथे"। इत्यनेन कालिदासत्रयसञ्जीविन्याः शिशुपालवधसर्वङ्कषाटीका-किरातार्जुनीयघण्टापथटीकयोरप्येकमल्लिनाथकर्तृकत्वं सुव्यक्तम्[1]। मल्लिनाथेन तार्किकरक्षाटीकायामस्मिन्नेव पुस्तके ३९ पृष्ठे "स्फुटीकृतं चैतदस्माभिः पञ्चकाव्यादिटीकासु अलं महीपाल तव श्रमेणेत्यादावित्युक्तत्वाद् आदौ वाणीं काणभुजीमिति श्लोकस्य वर्तमानत्वात् तदेकमल्लिनाथकर्तृकत्वमस्यापि सिद्धम्।

केचित्तु "स्पष्टीकृतं चैतदस्माभिः पञ्चकाव्यादिटीकासु" इति मल्लिनाथेनोक्तत्वाद् नैषधचरितस्य तदानीमसत्त्वाद् नैषधचरितं तेन न व्याख्यातम्। मुद्रिता जीवातुसमाख्या नैषधचरितटीका त्वाधुनिकेन केनचित् पण्डितेन पुस्तकविक्रयप्राचुर्यार्थं कृतेति वदन्ति। तत्र मल्लिनाथेन रघुवंशटीकायां चतुर्थसर्गे स सैन्यपरिभोगेणेति ४५ श्लोकव्याख्याने "नैषधे च। अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा"[2] इति। शिशुपालवधटीकायामपि तृतीयसर्गे कपाटविस्तीर्णेति १३ श्लोकव्याख्याने "प्रायेणैकार्थमप्यनेकश्लोकमुक्तिविशेषलाभाल्लिखन्ति कवयः, यथा हि नैषधे आदावेव निपीयेत्यादिश्लोकद्वयं तथा स्वकेलिलेशेत्यादि- श्लोकद्वयं च" इत्युक्तत्वात् तदानीमेव मल्लिनाथेन नैषधचरितस्य समालोचितत्वात्, भगीरथेन च नैषधचरितगूढार्थदीपिकायां टीकायां[3] मल्लिनाथकृतजीवातुटीकाया अनेकेषु स्थलेषूद्धृतत्वाच्च। तथा हि नैषधगूढार्थदीपिकायां प्रथमसर्गे कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात् तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिन इति १३८ श्लोकव्याख्याने "कथमिति। हे विधातः! भो विधे! मयि विषये तव ब्रह्मणः पाणिर्हस्तः" "लिपिरक्षरपङ्क्तिः तवेत्यस्य विशेषणमिति नृहरिः"। "जीवातुस्तु पाणेर्विशेषणमिति" इति भगीरथः।

---

१. मयाध्ययनसमये मल्लिनाथकृतकाव्यटीकाग्रन्थानामपि विवरणस्य मनोरमं पुस्तकं दृष्टम्। खेदितोऽस्मि तत् कौतुककरं पुस्तकमिदानीं हस्तगतं न भवतीति।

२. नैषधे तृतीयसर्गे ९३ श्लोकः।

३. अस्याष्टीकायाः पुस्तकं १६२९ शाकवर्षलिखितं वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालीयपुस्तकालये वर्तते। अत्रानेकेषु स्थलेषु पूर्वलिखितेषु वाक्येषु कुण्डलनां विधाय तदर्थबोधकैरेव पदान्तरैरपूर्वाणि वाक्यानि लिखितानि, अनेकेषां टीकाकाराणां मतानि पत्रपार्श्वभागे टिप्पणरूपेण लिखितानीतीदं पुस्तकं टीकाकारेणैव शोधितं समालोचितं वेत्यनुमीयते। अत्र नृहरि-लक्ष्मण-नारायण-विश्वेश्वर-जगद्धर-ताण्डव-मुकुट-जीवातुप्रभृतिभिः शब्दैष्टीकान्तराणि प्रमाणयति। क्वचित् प्रकारान्तरैरनेकानर्थान् दर्शयति टीकाकारः। अस्मदवलोकितासु भवदत्त-गदाधर-नरहरि-नारायण-मल्लिनाथ-महेश्वर-

पण्डितजीवानन्दविद्यासागरमुद्रिते जीवातुसहिते नैषधचरितपुस्तके ५५ पृष्ठे "कथमिति। हे विधातः! प्रियायाः वरटायाः शैत्यमृदुत्वशिल्पिनस्तादृक्तरङ्गशैत्यमार्दवनिर्माणकात् तव पाणिपङ्कजात्" इति।

नैषधगूढार्थदीपिकायां प्रथमसर्गेऽपि स्वयूथ्यैरिति १३९ श्लोकव्याख्याने "पुनः प्रियां प्रत्याह। अयीति। अयि प्रिये संबुद्धिरिति नृहरिः। अपीति पाठ इति जीवातुः। अपि चेत्यपेरर्थः"।

पण्डितजीवानन्दविद्यासागरमुद्रिते जीवातुसहिते नैषधचरितपुस्तके ५५ पृष्ठे। "अपीति। अपि चेत्यपेरर्थः"।

नैषधगूढार्थदीपिकायां प्रथमसर्गे तवापि हाहा विरहात् क्षुधाकुला इति १४१ श्लोकव्याख्याने "तेषु प्रसिद्धेषु", "स्वसम्पादितेषु तेषु इति जीवातुः"।

पण्डितजीवानन्दविद्यासागरमुद्रिते जीवातुसहिते नैषधचरिते ५६ पृष्ठे "क्षुधाकुलाः क्षुत्पीडिताः तेषु स्वसम्पादितेष्वित्यर्थः"।

नैषधगूढार्थदीपिकायां द्वितीयसर्गे स गरुद्वनदुर्गदुर्ग्रहान् इति ४ श्लोकव्याख्याने "ह्रस्वान्तं पृथक्पदमिति जीवातुः। यत्तु गोस्त्रियोर्ह्रस्व इति तेनोक्तं तन्न, स्त्रीप्रत्ययान्तत्वाभावात्, अतो ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्व इत्याहुः"।

पण्डितजीवानन्दविद्यासागरमुद्रिते जीवातुपुस्तके ६० पृष्ठे "तनुकण्डु यथा तथा गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येति ह्रस्वः। नुनदे निवारितवान् स्वरितञित इत्यात्मनेपदम्"।

एवमग्रेऽपि अनेकस्थलेषु वर्तन्ते।

यद्यपि माघे मेघे गतं वय इति मल्लिनाथविषयककिंवदन्त्याऽनुमीयते वृद्धावस्थायां तेन नैषधचरितं व्याख्यातम्, तथापि रघुवंशादिटीकास्विवानेकानाचार्याननेकान् ग्रन्थांश्च प्रमाणयति। तद्यथा- मनुः, विष्णुपुराणम्, महाभारतम्, सामुद्रिकम्, वैजयन्तीकोशः, हलायुधकोशः, वर्द्धमानः, काव्यप्रकाशः, क्षीरस्वामी, पाणिनिः, अमरकोशः, वृत्तरत्नाकरः, विश्वकोशः, तार्किकः, उपाध्यायविश्वेश्वरभट्टारकः[1], एवमन्येऽपि।

भगीरथ--रामचन्द्र-प्रेमचन्द्र-भावार्थदीपिकाकारकृतासु टीकासु सर्वापेक्षया महती सर्वोत्तमा इयमेव टीका। अस्यां प्रतिसर्गमन्ते "इति श्रीकूर्माचलेन्द्रश्रीरुद्रचन्द्रगोत्रापत्यकल्पद्रुमसदृशराजर्षिवर्यश्रीमदुद्द्योतचन्द्रात्मजश्रीज्ञानचन्द्राश्रितपुरोहितसोमयाजिपण्डितबलभद्रगोत्रापत्यश्रीहर्षदेवात्मजावसथ्यिभगीरथविरचितायाम्" इति पुष्पिका वर्तते। अपि च—

"अध्यापकं विना यो नैषधगूढार्थदीपिकां टीकाम्।
पश्यति रसनाग्रे तु वाग्देवी तस्य स्फुरति भृशम् "॥इति।

बहुखेदितोऽस्मि यदिदं पुस्तकं खण्डितमिति।

१. विश्वेश्वरभट्टारको नैषधचरितटीकाकारः।

मल्लिनाथेन तार्किकरक्षाटीकायां ७६ पृष्ठे "प्रशस्तपादभाष्यनिकषटीकायामस्माभिर्व्याख्यातार्थो[१] द्रष्टव्यः", एवमेव १३९ पृष्ठेऽप्युक्तत्वात् प्रशस्तपादभाष्यमपि विस्तरतो व्याख्यातमिति निष्पन्नम्।

मल्लिनाथकृतामरकोशटीका-भट्टिकाव्यटीकैकावलीटीकादयो ग्रन्था न समालोचिता मयेति।

वात्स्यायनापरनामधेयो मल्लिनाथस्तु[२] नामत एव भिन्नो महर्षिरित्येतत् सर्वं न्यायवार्त्तिकभूमिकायां विस्तरेण निरूपयिष्यत इत्युपरम्यते।

२२ जनवरी, १९०३.

---

१. आदर्शपुस्तके "प्रशस्तपादभाष्यनिष्कण्टिकायामिति" पाठो दृश्यते, स च प्रामादिकः, १४२ पृष्ठे "निकषे द्रष्टव्यः" इत्यस्य वर्तमानत्वात्।

२. क्वचिद् मल्लनाग इति पाठः।

रामानुजदर्शनस्य भूमिका

श्रीराममिश्रशास्त्री
काश्यामगस्त्यमुन्याश्रमाश्रमः

[१]वेदव्यासस्य मुख्यशिष्यौ द्वावास्तां जैमिनिबोधायनौ, तत्राद्यो द्वादशलक्षणीं पूर्वमीमांसापदप्रसिद्धां प्रणिनाय, अपरस्तु उत्तरमीमांसापदप्रसिद्धचतुरध्यायीं व्यासदेवप्रणीतामशेषविशेषतोऽधिगत्यतामुपबबृंहे, तदिदमुपबृंहणं वेदान्तवृत्तिरिति बोधायनवृत्तिरिति च नाम्ना प्रसिषेध प्रचचार च, एषा च विशिष्टाद्वैतमतानुगा, अत एव श्रीमान् रामानुजार्यः स्वीयब्रह्मसूत्रभाष्ये भगवद् बोधायनकृतां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुस्तदनुसृत्य सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्त, इत्यभिदधौ प्रत्यपीपदच्च विशिष्टाद्वैतपरतया प्रस्थानपञ्चकम्। इदं हि दर्शनं बोधायनप्रभृतिभिर्महर्षिभिः सुप्राचीनतमैर्द्रमिडगुहदेवब्रह्मानन्दिप्रभृतिभिराचार्यैश्चोपजीवितवृत्तिवार्त्तिकादिनिर्माणेन साम्प्रतमपि निखिलदर्शननिपुणविद्वज्जनसंसेवितमुपबृंहितं च परःशतसन्दर्भरचनया, उपलभ्यन्ते च प्राचीनतमा आधुनिकाश्च बहवो ग्रन्था आर्षा नार्षसाधारण्येन लघुबृहन्मध्यभावं गताः; परन्तु परैस्तावत्सु प्रसिद्धचक्राङ्कनादिव्यवहार एव कथञ्चिदवलोक्यते स्वरूपसन् दर्शनस्य तु दर्शनमेव सुदूरहतम्। अथामुष्मिन् दर्शने सर्वश्रुतीनां मुख्योऽर्थयतो द्वैतमामनन्तीनां स्थूलचिदचिद्विशिष्टब्रह्मपरत्वम् अद्वैतमामनन्तीनां च सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट--ब्रह्मपरत्वम्, स्थूलत्वसूक्ष्मत्वे च व्याकृतनामरूपवत्त्वाव्याकृतनामरूपवत्त्वरूप एव, अथ ब्रह्मणः सगुणत्वप्रतिपादनपरा मुख्यार्थाः। **"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च"** इति श्रुतिगणेन ब्रह्मणोऽनन्तकल्याणगुणाम्नानाद् नैर्गुण्यवादोऽपि श्रुतिस्थो मुख्यार्थ एव ब्रह्मणो हेयगुणराहित्यबोधकत्वात्, अभिहितोऽयमर्थः प्राच्यैः। नित्यं हेयगुणावधूननपरा नैर्गुण्यवादाः श्रुतौ स्पष्टार्थाः सगुणोक्तयः शुभगुणप्रख्यापनाद् ब्रह्मणः अद्वैतश्रुतयो विशिष्टविषयानिष्कृष्टरूपाश्रयाभेदोक्तिस्तदिहाखिलश्रुतिहितं रामानुजीयं मतमित्यस्मिन् वेदसम्मते सनातनदर्शने रामानुजीयत्वव्यवहारस्तु रामानुजार्यस्य ब्रह्मसूत्रव्याख्यातृतया परेषामिव अयमाचार्यचरणः कृष्टोत्पत्तेः ८९० अनन्तरं मद्रासभागे कस्मिंश्चिद् झतपुरीनामग्रामे वैशाखमासे शुक्लपक्षे पञ्चम्यामार्द्रानक्षत्रे केशवाचार्यगृहेऽवततार। अयमार्यचरणो हारीतवंशसमुद्भवो यामुनाचार्यप्रशिष्यश्चेति सुनिश्चितम्।

प्रायोऽयमनुरुरोध शठकोपाचार्ययुक्तीः, यास्तालपत्रेषु प्रायो द्रविडलिप्या लिखिता द्रविडभाषाप्रबद्धाः प्रबन्धनाम्ना, अधुनापि उलभेमहि। अयं शठकोपनामार्यचरणः कृष्टोत्पत्तेः ३००० प्राग् भगवति कृष्णे स्वर्याते षोडशदिनानन्तरं समुत्पेदे ताम्रपर्णीक्षालितद्रविडभूमौ कारि शूद्रगृहे। अयं च तपःप्रभावोपनीतदिव्यकरणकलेवरोऽपि शास्त्रमर्यादां रिरक्षिषुर्नोच्च-

१. पं. ११, न्यू. सि. (जुलाई १, १८७६) ११३-११४.

चार वर्णमेकं श्रुतेरपि तु भाषास्वेवोपचिकीर्षुर्लोकान् निबन्ध प्रबन्धान्, अनशनोम्लिका-मूलसंश्रयो व्यास्यदथ शास्त्रं सहस्रगाथासु। अयं च ज्ञानगौरवाद् श्रीसम्प्रदायानुयायिनां ब्रह्मविद्यावंशं समभान्त्सीत्, समादृतश्चाभवत्। तदिदं बहुलनिबन्धमुत्कृष्टदर्शनं मुद्रणादि-विरहात् सर्वजनलोचनगोचरतां न प्रयातीति प्रतियता दर्शनदशनाहितौत्सुक्येन संस्कृतपाठ-शालायाम् अध्यक्षप्रातिनिध्यं गतेन **श्रीगाफसाहेब**महाशयेन प्रेरितो दर्शनस्यामुष्य सहजकाठिन्यमप्रचारजकाठिन्यञ्चावलोक्य सर्वसाधारणबोधसम्पादनाय प्रथमतस्तत्त्वत्रयचुलु-कायितां दीपिकांमिमां प्रस्तौति रामानुजदर्शनमहार्णवपारदृश्वनः स्मृतिसरिन्निबद्धसेतोः श्रीशा-लिग्रामाचार्यस्य तनयः काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालायां साङ्ख्यद्वितीयाध्यापकः।

न्यायसिद्धाञ्जनस्य भूमिका

श्रीरामिश्रशास्त्री
काश्यामगस्त्यमुन्याश्रमाश्रमः

अद्यत्वेऽपि सन्ति निखिललोकविश्रुतयशसः सर्वविद्यापारदृश्वानस्त्रयीत्राणकृतपरिकराः कवितार्किककेसरिणः श्रीभाष्यकारसत्सम्प्रदायमहाध्वजे पट्टपटायितातिप्रौढप्रकटपाण्डित्या दण्डायमानदीर्घकीर्त्तयश्च प्रणीताऽष्टोत्तरशतमहानिबन्धा गद्यपद्यप्रणयनाद्याचार्याः, यदुपज्ञं यदुपक्रमं वा दार्शनिकदीक्षाशिक्षाः प्रथन्ते भारतावान्तरदेशेषु, तेऽमी प्रातःस्मरणीयसुनामानः **श्रीद्मन्तो वेङ्कटनाथदेशिकाः,** याञ्जगति गुरुनामाग्रहणस्मृतिस्मृत्या जनास्तद्विदोऽन्वर्थतया गुणग्राहितया च श्रीद्वेदान्ताचार्या इत्यभिदधाना गौरवेण नामाग्रहणेऽपि स्वीयां वाचं प्रायः पुनन्ति। तेषामेवैष बुद्धिवैभवविलसितस्पन्दायितो न्यायसिद्धाञ्जननामा सन्दर्भः। यं ते महर्षेर्बोधायनस्य सारस्वतमहोदधौ तत्रभवतां श्रीद्रामानुजभगवत्पादानां शिष्यसम्प्रदायवाङ्मयमहोर्मिषु वा अञ्जसा प्रवेष्टुकामान् यथासुखं तत्र नेतुमररचन्।

भवन्ति चात्र ग्रन्थे षट् प्रकरणानि— जडद्रव्यपरिच्छेदः, जीवपरिच्छेदः, ईश्वरपरिच्छेदः, नित्यविभूतिपरिच्छेदः, बुद्धिपरिच्छेदः, षष्ठश्चाद्रव्यपरिच्छेदः। अत्र परिच्छेदे सामान्यचिन्तनान्तो ग्रन्थो वर्तते, अत्रैव च ग्रन्थाज्ञानं जातं तदनन्तरं कोशो न मिलति दक्षिणप्रदेशेष्वपि न मिलति यत्रैतद्ग्रन्थस्य प्राचुर्येण प्राप्तिः सम्भाविता। अत एव तद्देशीयपुस्तकेषु—

न क्वाप्यतः परमदृश्यत कोषशेषस्तच्छेषपूरणकृतिः परिहासहेतुः।
ज्ञातव्यमन्यदपि तैर्निरणायि सम्यग्ग्रन्थान्तरेष्विति न किञ्चिदिहास्ति चिन्त्यम्।

इत्यन्ते लिखितमस्ति। अस्ति चैष ग्रन्थितुः प्रमेय निरूपणप्रचुरो ग्रन्थो यथा तेषामेव प्रमाणनिरूपणप्रचुरो न्यायपरिशुद्धिसन्दर्भः परपराकरणप्रचुरश्च तत्त्वमुक्ताकलापसत्सन्दर्भः। यथोक्तं तैरिहैव ग्रन्थे आदौ—

यन्न्यायपरिशुद्ध्यन्ते संग्रहेण प्रदर्शितम्।
पुनस्तद्विस्तरेणात्र प्रमेयमभिदध्महे ।।इति।

ततश्च प्रमेयनिरूपणप्रचुरेऽस्मिन् ग्रन्थे सामान्यचिन्तनग्रन्थोऽपि चेद्विकलस्तर्हि षष्ठपरिच्छेदे अर्द्धाधिको ग्रन्थोऽग्रेतनो न मिलतीत्यनुमिमीमहे।

अस्तु, किमप्येतत्तथाऽपि प्रेक्षावतां प्राचीनाचार्यसन्दर्भेषु निगूढतत्त्वमनुसन्धित्सतां सतां सर्वथाऽयं ग्रन्थो भवत्युपादेयः, न हि भोगभाजः खण्डेऽप्यवर्तुलेऽपि च खण्डलड्डुके उपेक्षावन्तः। अस्माभिः पूर्वमुद्रितेषु लेखप्रसादेन कठिनेष्वपि महाकरग्रन्थेषु अतिगभीरयुक्ति-

गर्भतया गोमुखव्याघ्रभूतेषु जनानां निरपायसंश्रयदानार्थमयमुपक्रमोऽस्मदीयः। पूर्वं हि भारते वर्षे हेत्वाभासमहोदधिमन्थनमन्थरायमाणमतयो विविधोपाधिलक्षणातिविशदगहनह्रदावगाहनातिप्रथितवक्रनक्रा वाग्मिशक्रा निग्रहसमृद्धसमुद्भावनाकुण्ठकण्ठीरवरवाः प्रतिवादिभैरवा व्युत्पत्तिमहासंपद्वशीकृतसर्वार्थरहस्या युक्ता इव योगिनोऽचिन्तितोपस्थितसर्वार्था अभूवन्नभङ्गुरगुणगणा गणेयतमा वेङ्कटनाथसदृशा द्वित्रा अपि अबाधितव्युत्पत्तिभाजो विद्वांस इति तेषां श्रीभाष्यादिप्रमेयप्रचुरग्रन्थेष्वभग्नाऽभवद् व्युत्पत्तिः। अधुनातनास्तु प्रायः पूर्वोक्तसाधनोदासीना इत्यक्षरार्थज्ञानमात्रतृप्ता वाक्यार्थज्ञाने मनोऽनुनयनमप्यनर्पयन्तो यथाकथञ्चिदेव तृप्यन्तीति मा स्म ते विस्मरन्नाकरग्रन्थकाठिन्यं तत एव चोपाददीरन्नन्ततः प्रकरणग्रन्थसाहाय्यं यतो न भवेदर्थावबोधवैधुर्यं न चान्यथाऽर्थाख्यातिरिति दूरदेशेभ्यः साम्प्रदायिकप्रकरणानि यथासमयं संग्राहं संग्राहं विस्तृणीमहे, आशास्महे चैतद्देशीयानां न्यायसिद्धाञ्जनादिप्रकरणसाहाय्येन श्रीभाष्यादिसुगहनगभीरार्थगर्भग्रन्थेष्वचलां सुदृढां च व्युत्पत्तिम्।

कमिव चोपमिनुयामिममकारणसहजसुहृदं विद्याविवर्द्धनं साम्प्रदायिकरत्नं मथुरास्थश्रीरामानुजपाठशालालङ्करणभूतं लक्ष्मणाचार्यम्, योऽप्रार्थितानिङ्गितावबुद्धानयस्मदर्थान् भृशं पूरयितुमनाः स्वहस्तेनावदधानस्तैलङ्गाक्षरकोशान्न्यायसिद्धाञ्जनपुस्तकं देवाक्षरेष्ववतार्य्य विशोध्य यत्नसिद्धसुयशोमात्रभाजनं मां व्यधत्त। तदेष एवैतस्य शुभकार्यस्याविकलं यशो लप्सीष्ट, वरिषीष्ट चैनमेवैवंविधशुभकर्मानुष्ठानजाऽदृष्टश्रीर्दासीष्ट चैकतममपि स एव स्वाभिमतं पुण्यस्यांशं स्वीयशयेन मह्यमपीति सस्पृहमीहे।

अस्मि च विशेषतः कृतज्ञोऽधुना देवैः सहासीनस्य नैसर्गिकपण्डितप्रियस्य दीनेषु पुरस्कृतदयस्य विविधविद्यावदातस्य वाराणस्या वररत्नस्य, **सुख्यातेर्डाक्टरलाजरसमहाशयस्य** येन स्वीयं लाभमप्यनभ्यर्थ्य आर्थिकीं क्षतिमप्यक्षुण्णमनसाऽविगणय्य आपवर्गिकातिचिरप्रख्यातार्चिरादिमार्गस्य अवातभीता अतैलस्नेहपूराः सततमुज्ज्वलन्तो विद्यासामर्थ्यानुनीतदिव्यपुरुषानुमोदिता ब्रह्मविद्यावर्त्तिकाः सत्पात्रलब्धपदा धन्याध्वनीनानां बाह्याभ्यन्तरध्वान्तध्वंसना एतावन्तः श्रीसाम्प्रदायिका ग्रन्थाः प्रकाशमुपयापिताः।

आशासे च स संयुक्षीष्ट सुमनोभिः सुजनैः स्पर्द्धिषीष्ट चासनार्द्धलब्धये सुत्राम्णाऽपि, वर्द्धिषीष्टालौकिकैर्भोगैः, विपत्सीष्ट क्लेशकलिलैर्निवर्तिषीष्ट सांसारिकाधिजालैः। किं बहुना, नावर्तिषीष्ट सोऽस्माल्लोकादमुं लोकं क्लेशकषायबहुलमित्यभ्यर्थये भगवन्तं सर्वकामफलप्रदं सुरासुरगुरुं सर्वसमाराध्यं देवतासार्वभौममनादिनिधनं नारायणं देवम्।

श्रावणशुक्लप्रतिपदि

गुरौ, सं. १९५८.

संकर्षकाण्डभूमिका

श्रीरामिश्रशास्त्री
काश्यामगस्त्यमुन्याश्रमाश्रमः

[1]अनादिनिधनाविच्छिन्नविविधरचनाप्रपञ्चे सुमेधसामपि परमाश्चर्यकरे अनर्वाग्दृशामप्यवाङ्मनसगोचरे घटीयन्त्रवदनिशमावर्तमाने जगदुदयविभवलयलीले संसारचक्रे बम्भ्रमति कर्मपरवशान् भ्राम्यतो जन्तूनालोच्य करुणावरुणालयो जगदीश्वरस्तान् बन्धादुन्मोचयितुकामो देहेन्द्रियमनःप्राणैरतिपटीयसा ज्ञानेन्द्रियग्रामेण चायूयुजत्। उपदिदेश च कालान्तरीणदेशान्तरीणविप्रकृष्टासन्निकृष्टातीन्द्रियसृष्टिप्रलयादिलक्षणपरमदुरूहार्थसार्थविज्ञानजननक्षमं शास्त्रमृग्वेदादिलक्षणम्, तद्धि परस्य ब्रह्मणो जननीये जगज्जाते द्यावापृथिव्याविव सूर्याचन्द्रमसाविव देवासुरसङ्घाविव स्त्रीपुंसाविव पुण्यपाप्मनी इव च निविष्टमपि नियतानुपूर्वीकमिति नित्यमित्याचक्षते नित्यानित्यविवेकविपश्चितो विचक्षणाः। न च तावतापि तदपरिणाममनाद्यन्तस्वभावमात्मस्वरूपमिवानधिगतसर्वविक्रियम्, प्रतिकल्पं स्रक्ष्यमाणप्राणिकर्मसहानुगेन जगन्नियन्त्रा परमेश्वरेणैव आहितनिजशक्तिभिः पूर्वकल्पे तपःसमृद्धिसमाराधितपरमपूरुषैरतीन्द्रियार्थनिरीक्षणनिपुणैः परमर्षिभिस्तस्याखिलस्य श्रुतिपदव्यपदेश्यसन्दर्भस्य स्मर्यमाणत्वात्। न च ते सर्वे वेदा युगपदुद्बभुर्विलिल्यिरे वा; किन्तु कदाचित्काचिच्छाखा उत्ससाद प्रादुर्बभूव चापरा, यथा इदानीमेव कठकपिष्ठलादिशाखा उत्सन्नप्राया अध्येतृविरहाद् ग्रन्थविलोपाच्च।

एवं सहस्रशाखे सामनि काश्चिदेव शाखा लब्धप्रचारा अपराश्च समूलमुन्मूलिताः कालमहिम्ना। प्रचचार चाचिरादेव कालाद् वाजसनेयिशाखा सब्राह्मणमन्त्रिका, भगवन्तं भास्करमाराध्य याज्ञवल्क्यो महर्षिस्तां लेभे इति हि पुराणेतिहासाचार्याः। न च तावता अचिरप्रवृत्ता सा शाखा न वेदो, नापि कृत्रिमेत्यनित्या, तस्याः सुचिरकालप्रवृत्तानामाश्वलायनादिशाखानामिव विधूतकल्मषैर्जातिस्मरैराधिकारिकैः परमर्षिभिः स्मर्यमाणत्वाविशेषादविशेषाच्चानुपूर्वीनित्यतायाः। यथोक्तं द्वादशस्कन्धे श्रीमद्भागवते—

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मन् छन्दांस्यधिगवेषयन्।
गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम्॥

याज्ञवल्क्य उवाच— ओं नमो भगवते आदित्यायेत्यारभ्य यातयाम यजुःकाम उपसरामीति। सूत उवाच—

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादतः॥
यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पञ्च तथा विभुः।
जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः॥ इत्यादिना।

---

१. पं. १८९३.

इदमेव तु वेदानां नित्यत्वे परमं प्रमाणं यद् याज्ञवल्क्यसमानसमया ऋषयस्तत्प्रणीतासु स्मृतिषु पौरुषेयवाक्यतां प्रतिपन्नाः। प्रतिपेदिरे च तद्दृष्टेष्वेव मन्त्रब्राह्मणभागेषु अपौरुषेय-वेदस्वरूपताम्। अस्ति ह्येष प्रकृतिकृतो नियमः— प्रायोजनाः समानसमयम्परमोत्कृष्टं महात्मानमपि लङ्घयितुमिच्छन्ति, तदीयास्वाश्चर्यशक्तिषु स्वयं विश्वासभाजोऽपि च पुनरीर्ष्यया तथा प्रयतन्ते यथेतरे जनास्तं बहुमानविश्वासभाजनं न जानीयुस्तथा च यदि याज्ञवल्क्यप्रणीतासु स्मृतिषु तत्प्रोक्तेषु मन्त्रब्राह्मणेषु च तात्कालिकानां पौरुषेयग्रन्थान्तरैः समताग्रहो मन्त्रब्राह्मणेषु वा पौरुषेयताग्रहः कथमिवाभविष्यदथाप्यधास्यँस्तेऽवश्यं तेषां समतामवेदरूपतां च, ते च तेषामविप्रतिपद्य वेदरूपतामातस्थिरे, तदवश्यमचिरप्रवृत्ता अपि वाजसनेयिशाखा चिरप्रवृत्त-शाखान्तराणामिव वेद इति वेदावेदविभागतत्त्वज्ञाः।

अत एव तु "छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि" (४।२।६६) इति सूत्रे अन्यत्राभिधेयस्यानित्यत्वाच्छन्दोब्राह्मणानां तद्विषयवचनमिति वार्तिककारः, व्याकरणभाष्यकारोऽपि च तत्र तत्र वेदावेदविभागं तथैवातस्थे। अत एव "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" (४।३।१०५) इति सूत्रे "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वादिति वार्त्तिकम्, पुराण-प्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेष्वित्यत्र याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिप्रतिषेधो वक्तव्यः। याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि। सौलभानीति। किं कारणम्? तुल्यकालत्वात्। एतान्यपि तुल्यकालानीति" इति वदन्तौ भाष्यवार्त्तिककारौ अचिरप्रवृत्तेषु ब्राह्मणेष्वपि वेदत्वमन्वमंसातामित्यतिस्फुटमेव। पाणिनिरपि च पुराणप्रोक्तेष्विति वदन् चिराचिरप्रवृत्तत्वलक्षणं ब्राह्मणे विशेषमङ्गीकुर्वाणोऽपि याज्ञवल्क्यप्रोक्तेषु ब्राह्मणेषु ताण्डिभाल्लविशाट्यायन्यैतरेयिणामिव नाचिरप्रवृत्ततां मेने इति वार्त्तिककारेण तस्याचिरप्रवृत्तत्व-बोधनपुरस्सरमयथभावोऽभिहितः। केचित्तु व्याकरणप्रणेतृमुनित्रयस्यापि याज्ञवल्क्यप्रोक्तेषु ब्राह्मणेष्वचिरप्रवृत्तत्वमनुमतम्, यतः सूत्रकारोऽपि पुराण-प्रोक्तेष्विति ब्रूते ततश्चाचिरप्रवृत्तब्राह्मणव्यावृत्त्यर्थमेव पुराणपदमिति। एवमेव काशिकापद-मञ्जर्यां हरदत्तोऽपि याज्ञवल्क्यादयो ह्यचिरकालप्रवृत्ता इत्याख्यानेषु वार्तेति वदन् सूत्रकारस्यैव पुराणपदमुपाददानस्य याज्ञवल्क्यप्रोक्तानि ब्राह्मणानि स्वल्पकालप्रादुर्भूतानि, अत एव न सञ्जि-घृक्षितानीति मेने। भवतु किमप्येतत्सर्वथाऽपि तु वेदावेदविभागोऽयमाजानिकसम्प्रदायसिद्धो वेदनित्यताविद्विषामपि दुरपह्नवस्तथा हि सर्वज्ञकल्पास्तथागतप्रभृतयः केनापि कारणेनन वेद-नित्यतापक्षं समूलमुन्मूलयितुमिच्छन्तोऽपि अहमहमिकया तदुपक्रम्य अनेकनिबध्नान्निब-न्धन्तोऽपि च न पारयाम्बभूवुस्तेषामिदम्प्रथमताबोधने वा पुरुषविशेषाभिप्रायप्रभवत्वबोधने वा। न चाद्यत्वेऽपि यत्नसहस्रमवलम्ब्यापि शेकुः केचन कालविशेषं पुरुषविशेषं वा निर्देष्टुं येनामुना पुरुषेणायं वेदोऽमुष्मिन् काले प्रणीत इति प्रामाणिकानां श्रद्धेयं स्यात्।

प्रादुर्भावस्त्वस्माकमप्यनुमतो न हन्तुमीष्टे लेशतोऽपि विवक्षितां वेदनित्यताम्, तथा हि स्मरन्ति—

"युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा" ॥इति।

न हि प्रादुर्भावसमये विद्यमानाः परमर्षयस्तन्नित्यतां संशिश्यिरे। न चर्षीणां सर्वेषामनाश्वास्यतां प्रथयन् कश्चिदाश्वसनीयः, न हि सर्वं लोकमनाश्वास्यज्ञानानोऽभिदधानो वा प्रेक्षावतामपेक्षणीयवचा वा स्याद् व्यवहाराय वा पर्याप्नुयादिति वेदनित्यतापक्षमाक्षिपताऽपि परमर्षिभिः संसस्मरिरे वेदा इत्यगत्याऽङ्गीकरणीयमापन्नम्। न चेतोऽन्यद्वेदनित्यतावादिनोऽप्यभिमतं नित्यत्वम्, यत्प्रतिसर्गं समानानुपूर्वीकतया तपःसम्पत्समृद्धैर्वृद्धैः परमर्षिभिः स्मर्यमाणत्वम्, तच्चेदं परोऽप्यङ्गीकरोतीति चिरप्रवृत्तशाखास्विवाचिरप्रवृत्तास्वपि शाखासु समानो वेदत्वव्यवहार इति सिद्धान्तसिद्धम्।

तत्रैष श्रुत्याम्नायत्रयीवेदादिपदव्यपदेश्योऽपौरुषेयाक्षरराशिरवान्तरानेकभिदाप्रविभिन्नोऽपि प्रथमतो मन्त्रब्राह्मणभेदभिन्नस्तत्रत्यानामेव च क्रियापराणामनिर्णीतार्थवाक्यानां निर्णयाय प्रवृत्तेयं षोडशाध्यायी पूर्वमीमांसा।

तत्र द्वादशाध्यायी बहुभिर्बहुधा च व्याख्यातेति द्वादशाध्यायीपदव्यपदेशमुपयाता पूर्वमीमांसा। वस्तुतस्तु अस्त्येषा षोडशाध्यायी तत्रोत्तरां चतुरध्यायीं संकर्षकाण्डपदेन व्यवहरन्ति। इयं च सङ्कीर्णार्थनिरूपणपरेति संकर्षण-पदेन संकर्ष-पदेन चोच्यत इति द्वादशाध्यायीभूमिकायां समगरिष्महि। अस्याश्च पूर्वमीमांसाया आर्षं व्याख्यानमुपवर्षमहर्षिप्रणीता वृत्तिर्यामसकृदेव भाष्यकाराः शबरस्वामिन उट्टङ्कितवन्तः। आधुनिकेष्वपि च शास्त्रदीपिकादिग्रन्थेषु अस्ति तदुल्लेखः। सा च वृत्तिर्मूले प्रचुरप्रचारे अनेकविकल्पास्पदतां चोपगते प्रणीतेति तु लोकव्यवहारसिद्धं कालमहिम्ना वृत्तावप्यनानुकूल्यमुपयातायां तामुत्साद्य नानाविधानि व्याख्यानानि प्रववृतिरे। आरेभिरे चाचार्या वेदबाह्यबौद्धादिमतभीत्या तत्सम्मिश्रानिव निरीश्वरवाद-मन्त्रमयदेवतावाद-पाठैकफलोपनिषद्वादान् व्यवस्थापयितुम्।

उपलब्धेषु पूर्वमीमांसाग्रन्थेषु शाबरभाष्यं प्राचीनतमं मान्यतमं च, शङ्कराचार्या अपि तत्र तत्र सूत्रभाष्यादिषु प्रंसङ्गतः शबरस्वामिन उद्दिश्य—यथाहुः शास्त्रतात्पर्यविदः— यथा च शास्त्रतात्पर्यविदामुपक्रमणमिति सबहुमानं निर्दिशन्ति स्म। कुमारिलवार्त्तिकमपि सुप्रसिद्धम्, तच्च श्लोकवार्त्तिकम्, वार्त्तिकम्[१], टुप्टीकापदेन चोच्यते। परमिदं द्वादशाध्यायीपर्यन्तमेव मिलति, अग्रे संकर्षकाण्डस्य वार्त्तिकं वर्तते न वेति नावधारयितुं पार्यते; परन्तु शाबरभाष्यं

१. प्रथमपादे श्लोकवार्त्तिकम्, ततो निवीतान्तं वार्त्तिकमिति तदनन्तरं तु टुप्टीकेत्याचक्षते टुप्शब्दः कस्या भाषायाः कश्च तस्यार्थ इति विशिष्य न ज्ञायते प्रायोजनाः— टुप्टीकापदेन संक्षिप्ताक्षरव्याख्यानं मन्यन्ते, तदेतत्कुत इति विज्ञाः स्वतो विदाङ्कुर्वन्तु। अहं तु मन्ये अनुष्टुप्टीकेति, अनुष्टुप्छन्दसोऽतिलघुतया संक्षिप्ताक्षरताबोधनाय प्रथमतो जना अनुष्टुप्टीकेति वदन्तोऽपभ्रंशमाना आरेभिरे टुप्टीकेति वक्तुम्, केषुचित्पुस्तकेषु दशमाध्यायादिवार्त्तिकान्ते टुब्दूषण्याम् इति पाठोऽपि चेत्प्रामाणिकस्तर्हि अनुष्टुब्दूषणी संक्षेपेण परमतनिरासतात्पर्यिका व्याख्या इति तात्पर्येण समाधेयः। अद्वैतसिद्धिकारप्रभृतयस्तु निजग्रन्थेषु निवीतोत्तरकौमारिलवार्त्तिकं टुप्टीकापदेनैव व्यवहरन्तीति तु तज्ज्ञानानां निर्विवादमेव।

संकर्षकाण्डपर्यन्तं साकल्येन जैमिनीयसूत्रार्थनिरूपणपरं प्राणायि शबरस्वामिभिरिति भाट्टचन्द्रिकाद्वारा सम्यगवगन्तुं शक्यं यतस्तत्र तत्र संकर्षसूत्राणि व्याचक्षाणेन ग्रन्थकृता शाबरं सांकर्षभाष्यं ग्रन्थतः संवाद्यानेकस्थलेषूद्धृतम् ।

तदेवं संकर्षव्याख्यानमुपलभ्यमानं भाट्टचन्द्रिकैव श्रुतं च शाबरम् । अपरे तु शास्त्रदीपिका-तन्त्ररत्न-भाट्टकुतूहलप्रभृतयो ग्रन्था न संकर्षान्तमुपलभ्यन्ते, किन्तु द्वादशाध्याय्यन्तमेव ।

यद्यपीदं पूर्वमीमांसाशास्त्रं न्यायशास्त्रमिव न युक्तिग्रन्थिकठिनं सुविस्तरतरं च, नापि वेदान्तशास्त्राणीव प्रतिपदं विप्रतिपत्तिपदं संशयशतसमुत्थानसंभवमनेकप्रस्थानमथ परश्शत-सुकठिनग्रन्थग्रन्थिलं च, यतः संभाव्येतास्य प्रणाशः; किन्तु अस्त्येतद् वेदाध्ययनसापेक्षं कर्म-काण्डोपजीव्यं चेति कालमहिम्ना वर्णाश्रमधर्मविलोपे सर्वाश्रमोपजीव्ये ब्रह्मचर्ये सर्वथा विलोपमुपेयुषि उपजीव्ययोः कर्मकाण्ड-वेदाध्ययनयोर्विलोपेन तथा प्रणनाश यदद्य प्राचां मीमां-सकानां नामापि नावधारयितुं पार्यते—प्रभाकरगुरूणां तौतातिकानां च न कश्चिद् ग्रन्थ उपलभ्यते केवलं तदीयं मतमुपलब्धेषु ग्रन्थेषूत्थापितमिति कथञ्चिदवगम्यते । सौन्दलस्य तु मीमांस-कतया नैयायिकग्रन्थेषु[१] प्रसिद्धस्यापि उपलब्धपूर्वमीमांसाग्रन्थेषु मतोल्लेखोऽपि न विद्यते ।

केचित्पुनर्निरर्गलसंगरणनिपुणाः कुमारिलमेव तुतातभट्टं मन्यन्ते । तद्यथा प्रबोधचन्द्रो-दयनाटकेऽपि द्वितीयाङ्के द्वितीयश्लोके —

नैवाश्रावि गुरोर्मतं[२] न विदितं तौतातिकं[३] दर्शनं
तत्वं ज्ञातमहो न शालिकगिरां[४] वाचस्पतेः का कथा ।
सूक्तं नापि महोदधेरधिगतं माहाव्रती[५] नेक्षिता
सूक्ष्मा वस्तुविचारणा नृपशुभिः स्वस्थैः कथं स्थीयते ॥ इत्युक्तम् ।

एतेन टीकोक्तव्याख्यानेन तुतातः कुमारिलभट्ट इति गुरुश्च प्रभाकर इति, शालिकपञ्जिका च प्रभाकरमतावलम्बिनां परेषां ग्रन्थ इति स्फुटं सिद्ध्यति । एवं च तातः पितरि पुत्रे चेति प्रकारेण तु— व्याख्यानास्थितस्तु— शब्दो यस्य तातः अर्थोपदेष्टृतया पितृस्वरूपस्स तुतातः कुमारिलभट्टस्तदनुयायिनस्तौतातिका इति मन्यन्ते । अयं च पक्षो नास्मभ्यं रोचते, यतः कुमा-

---

१. तच्छिष्येण शालिकनाथेन शालिकनाथीनाम्ना वा पञ्जिकानाम्ना वा निर्मितोऽपूर्णग्रन्थो मिलति ।

२. प्रभाकरस्य ।

३. कौमारिलम् । यद्यपि प्रबोधचन्द्रोदयस्य मुद्रितपुस्तके माधवाचार्याणां सर्वदर्शनसंग्रहे च तौतातित-शब्द उपलभ्यते, तथाऽपि तमहमनवधाननिबन्धनमनवबोधनिबन्धनं वा दुष्पाठं मन्ये । बहुषु चेत्पु-स्तकेषु तौतातित इति पाठोपलम्भस्तर्हि तौतातिकशब्दपाठस्याप्युपलम्भादर्थानुगुण्यात्पारम्परिक-तौतातिकपदव्युत्पत्तिप्रसिद्ध्या च द्वयमेवास्तु तत्र तौतातितपदव्युत्पत्तिः प्रायः पूर्ववदेव केवलं तार-कादित्वादितच्कृतोऽर्थविशेषः ।

४. प्रभाकरमतावलम्बिनाम् । महोदधेर्ममहाभाष्यकारस्य ।

५. पाशुपतशास्त्रसंहतिः ।

रिलभट्टः शाबरे वार्त्तिकं प्रणिनायेति न तावता तस्य तद्दर्शनमित्याख्यातुं शक्यम्, अत एव तु इहैव—नैवाश्रावि गुरोर्मतमित्युक्तं न तु दर्शनम्, ततश्चायं प्रबोधचन्द्रोदयकारस्य श्रीकृष्णमिश्रस्य तात्पर्यविषयीभूतं तौतातिकं दर्शनमन्यदेवास्ति कौमारिलवार्त्तिकादिति मन्यामहे, अत एव तु सूत्रव्याख्यानप्रणेतृष्वेष शब्दो भवति रामानुजं दर्शनम्, शाङ्करं दर्शनम्, माध्वदर्शनमिति, न तथा कौमारिलं दर्शनमित्यभिदधते, ततश्च तौतातिकं दर्शनं कौमारिलं दर्शनमिति प्रबोधचन्द्रोदयटीकायै तौतातिकं दर्शनं कौमारिलमिति ब्रुवता न बहु मन्ये। कथयन्ति च पुरातनमितिहासम्—कदाचित्कुमारिलोऽभवदधीयानो मीमासां गुरुगृहे तत्र च कस्याञ्चित्तदानीमध्याय्यत्वेन प्रचलितायां जैमिनीयसूत्रव्याख्यायामासीत्पाठः—अत्रापि नोक्तं तत्र तु नोक्तमिति द्विरुक्तम्—इति, तं च पाठं निरीक्ष्य कुमारिलस्य गुरुर्विसिष्मियेऽत्यन्तं किमिदम्—अत्रापि नोक्तं तत्र तुनोक्तमिति कथं द्विरुच्येत, न हि द्विरनुक्त्या द्विरुक्तिसंभवः, ततश्च किञ्चित्कालं सुविचार्यापि नाप निर्णयं ग्रन्थार्थस्य। सति चैवमुन्मना एव पाठं विसृज्य निर्जगाम गृहाद् गुरुः। शिष्यस्तु कुमारिलः, अत्रापिना अपि शब्देन अयमर्थ उक्तः, तत्र तुना तुशब्देन उक्त इति द्विरुक्त इत्येवं रीत्या पदविभागं योजनां च लिखित्वा गुरुभार्यायै तत्समर्प्य निर्ययौ। गुरुस्तु पुनरुन्मनस्क एव सायमाययौ गृहम्, पत्नी तु पतिमालोक्य शास्त्रचिन्तनश्रमजुषं जोषमेवार्पयाम्बभूव कुमारिललिखितं पदच्छेदमर्थसमन्वयं च।

स च [१]गुरुर्भृशं पिप्रिये शिष्यस्य तादृशीमसाधारणीं व्युत्पत्तिं सरलचित्ततां चावधार्य तेनैतेन तु— शब्दार्थावधारणकौशलेन, गुरुस्तं कुमारिलं [२]तु—तातमवादीदिति अङ्गीकुर्मस्तावदिदं कुमारिलकौशलं तेन गौरवीं गुर्वनुकम्पां च कुमारिले, परं तु नैष तु—तातभट्टः, स तु शबरस्वामिनोऽप्यतिप्राचीन इति पञ्जिकाचिन्तामणिप्रभृतिग्रन्थव्यासङ्गेन सुज्ञानम्।

---

१. पूर्वमीमांसासु गुरुपदेन व्यवहृतः प्रभाकर इति तु शालिकनाथीयेन स्पष्टं सिध्यति, तथा हि—

स्वाध्यायविधिवाक्यार्थविचारे प्रयतामहे।
प्रभाकरगुरोर्दृष्ट्या मीमांसाऽऽरम्भसिद्धये॥

इत्यारम्भश्लोकः।

शास्त्रमुखं नाम गुरोराविष्कर्तुं गभीरमपि भावम्।
शालिकनाथेन कृतं प्रकरणमेतत्प्रसन्नतरम्॥

अयं च प्रथमप्रकरणान्तश्लोकः। द्वितीयप्रकरणस्यादौ च।

अर्थासंस्पर्शिताशङ्का यथा शब्दस्य वार्यते।
प्रभाकरगुरोः शिष्यैस्तथा यत्नो विधीयते॥

अयं श्लोकः। एवं च गुरुः प्रभाकर इति न संशयः।

अत एव गुरु-भट्ट-प्रभाकरा इति पुरुषत्रयतात्पर्येण केषाञ्चिदभिधानमसंगतमेव।

२. वस्तुतस्तु तुतातभट्टो नाम कश्चनातीव प्रसिद्धः प्राचीनमीमांसक इति गुरुस्तु प्रसादेन तं कुमारिलं तुतातमुवाच आशीरात्मना, यथेदानीमपि कञ्चन सुप्रौढपण्डितं गागाभट्टं मन्यन्ते।

यद्यपि भाट्टदीपिकापदेनैव सङ्कर्षचतुरध्यायीव्याख्यानमपि प्रसिद्ध्यति तथाऽपीयं चतुरध्यायीव्याख्या न भाट्टदीपिका नापि खण्डदेवकृतिः; परन्तु भाट्टचन्द्रिकाख्या भास्करकृतिश्च । भाट्टदीपिकाकारात्खण्डदेवादनन्तरं भाट्टचन्द्रिकाकारो गम्भीरनामकब्राह्मणपुत्रः खण्डदेवकृतिं भाट्टदीपिकां द्वादशाध्यायीव्याख्यास्वरूपां स्वीयया सङ्कर्षचतुरध्यायीव्याख्यया भाट्टचन्द्रिकाख्यया संयोज्य भाट्टचन्द्रिकाख्यामकरोदिति विस्पष्टमस्ति एतद्ग्रन्थान्तिमश्लोकैस्तद्यथा—

खण्डदेवकृतभाट्टदीपिका लक्षणैः कतिपयैरसम्भृता ।
इत्युदीक्ष्य बुधभास्कराग्निचिद्भारती बरिभराम्बभूव ताम् ॥
अद्यावधि कृतिरेषाऽऽद्यन्तविहीनेति दीपिकाख्याऽऽसीत् ।
षोडशकलाभिरधुना परिपूर्णा भाट्टचन्द्रिकात्वमगात् ॥
आसीत् षोडशलक्षणी श्रुतिपदा या धर्ममीमांसिका
सङ्कर्षाख्यचतुर्थभागविधुरा कालेन साऽजायत ।
गायत्री त्रिपदात्मिकेव विबुधैरद्यापि पापठ्यते
तां पूर्णमकरोच्छ्रमेण महता गम्भीरजो भास्करः ॥इति ।

तस्माद् द्वादशाध्यायीव्याख्या चतुरध्यायीव्याख्या च नैककर्तृका नैकनाम्नी चेति साधु प्रसाधितम् । एतद्व्याख्यानव्यतिरिक्तं सङ्कर्षकाण्डव्याख्यानं नोपलभ्यते, केवलं शाबरं सङ्कर्ष काण्डव्याख्यानं ग्रन्थेषूपलभ्यते उद्धाररूपेण; परन्तु शाबरं सङ्कर्षव्याख्यानं न केनापि बहुधा ज्ञायते वाऽप्युपलभ्यते वा । मन्ये, आधुनिकानां विद्याविवर्द्धनरसिकानां देशान्तरीणानां सम्राड्जातीयानामखण्डोद्यमानामुद्योगेन विलुप्तप्रायप्रचारमपि साङ्कर्षशाबरव्याख्यानम् अलवर-जयपुर-जम्बूप्रदेशादिस्थितमहापुस्तकालयेभ्योऽन्वेषणेन लभ्येतेति ।

यतः शाबरसाङ्कर्षव्याख्यानं नातिचिरं विलुप्तप्रचारं भाट्टचन्द्रिकायां तदीयपङ्क्तीनामुद्धारदर्शनात्, अस्ति चायमुद्धारस्तादृशो येनानुमातुं शक्यते यदयं निरीक्षितव्याख्यानेन केनचित्पुरुषेणोद्धृतः पाठ इति । एवं च भाट्टदीपिकाकारः खण्डदेवो जगन्नाथस्य पण्डितराजोपाधेर्मीमांसासु गुरुस्तत्समकाल इति सुनिश्चितम् यतः पण्डितराजः स्वयमाह रसगङ्गाधरे देवादेवाध्यगीष्ट स्मरहरनगरे इति ।

तस्मात् शाहजहाँनाम्नः सुप्रसिद्धसम्राजः प्रेमपात्रं पण्डितराज इति तस्य शाहजहाँसमकालता । ततश्च पण्डितराजगुरुणा खण्डदेवेन निर्मिताया दीपिकायाः पूर्तिस्वरूपा इयं भाट्टचन्द्रिकाऽतिनवीनेति स्पष्टमवगम्यते, तत्काले चेच्छाबरभाष्यपुस्तकं प्रचलितमासीत्तर्हि तत्काललिखितपुस्तकानामेतत्कालपर्यन्तावस्थानस्य सर्वथा सम्भावितत्वेन प्राचीनग्रन्थसमासादनरसिकैः शाबरसाङ्कर्षभाष्यपुस्तकलाभे कृतः समुद्योगोऽवश्यं फलेग्रहिरिति साधु सम्भाव्यते ।

एतस्याश्चन्द्रिकाख्यव्याख्याया एकं पुस्तकं जडे इत्युपाधिधारिणां श्रीरामचन्द्रशास्त्रिणां पुस्तकालयादवापम्, द्वितीयं परिव्राजकप्रवरतारकाश्रममठस्थपुस्तकागारात्तृतीयं काशीस्थराजकीयप्रधानविद्यामन्दिरपुस्तकागारादेवं पुस्तकत्रयमासाद्यारब्धे मुद्रणे अवधानेन पुस्तकत्रयपाठावलोकने

एकमेव त्रिष्वेषु पुस्तकेषु मातृकास्वरूपं रामचन्द्रशास्त्रिणां पुस्तकमवशिष्टे[१] द्वे अपि तत एव लेखिते अतिनूतने अशुद्धिबहुले च इति अतिसमनियतया तदीयलेखपाठादिभङ्ग्याऽवधार्यात्यन्तं खिन्नमना मुद्रणे नातिपवित्रं सन्दिग्धाक्षरं त्रुटिबहुलं क्वचित् च्युतपाठमेकपुस्तकमपर्याप्तमिति सविशेषमनुस्मृत्य हतप्रायप्रयत्न एवासम्; तथाऽपि काशीस्थेन श्रेष्ठिश्रेष्ठेन श्रीगोविन्ददासगुप्तेन सुमहताऽऽयासेन एवं मद्रासप्रान्तात्सङ्कर्षणकाण्डपुस्तकमानाय्य दत्तम्, तदिदं मध्ये द्वित्रस्थलेषु खण्डितपत्रमपि पुस्तकं स्वक्षरं सूत्रवृत्तिविभागवत्, केनचिदधीतम्, शोधितम्, नानतिपवित्रम्, प्राप्तमिति बहूपकृतोऽस्म्यस्मिन् मुद्रणकार्ये। ततश्च यत्र मद्रासप्रान्तप्राप्तपुस्तकं विकलं तत्र केषुचित् पत्रेषु एकमात्रेण रामचन्द्रशास्त्रिणां पुस्तकेन मुद्रितपुस्तकमशूशुधं सूत्रमात्रावलम्बेन वृत्तितात्पर्यमवधृत्य, यत्र तु द्वयमपि तत्रोभाभ्यामपि ताभ्यां मुद्रणकार्यं निरवहम्। आशासे च एतस्य मुद्रितपुस्तकस्य प्रचारेणावधृतसङ्कर्षकाण्डसद्भावाः केचन शास्त्रोन्नयनपरायणाः क्वचिल्लिखितं सङ्कर्षपुस्तकमुपलभ्य मां कृपयाऽवबोधयेयुश्चेत्तर्हि तदुपसाद्य पुनरपि पाठापपाठाधिकपाठादिनिर्णयं कुर्यामुपस्कुर्यां पुनरपि सङ्कर्षमुपकुर्यां च जिज्ञासून् अभिमन्येय चात्मानं शास्त्रविवर्द्धनकृतश्रममिति।

यद्यपि प्रथमं सङ्कर्षे टिप्पणीं कर्तुमहं प्रवृत्तस्तदन्वतिष्ठममुद्रयं च किञ्चिदादौ तथाऽपि भूयोव्यापारस्य मुद्रणनिर्माणयोर्यौगपद्यमसम्भावनीयमित्यभिमत्य पुनरुपारमम्। यतिष्ये च पुनर्यथाऽवकाशं तदीयसमापने।

अस्त्येतदपीह विदुषां विमर्शनीयं यदत्र सङ्कर्षचतुरध्यायीसूत्राणि द्वादशाध्यायीसूत्रापेक्षयाऽल्पाक्षराणि, न च वृत्तिविलिखितोऽर्थस्ततोऽवगन्तुमिङ्गितुं वा शक्य इति परमवैजात्यम्, ततश्च सम्भाव्यते कदाचिद् वृत्तिकारेण भास्करेण सूत्रैकदेशा एव प्रतीकतया उद्धृता न तु साकल्येन सूत्राणीति, प्राचां हि विदुषामसकृद् दृष्टचरीयं रीतिर्यत्ते एकदेशमुपन्यस्यैव व्याख्यातुमारभन्ते, ततश्च विविधशास्त्रपरिशीलनश्रमजुषो विद्वांसोऽत्र स्वयं परीक्षिष्यन्ते किमेतानि सूत्राणि सकलानि विकलानि वेति। इदमपि चात्रावधेयमस्ति सङ्कर्षकाण्डस्थानां सकलसूत्राणामत्र व्याख्यानमथवाऽधिकरणसूत्राणामेव।

सर्वं चैतद्विप्रतिपन्नं शाबरसाङ्कर्षोपलम्भेऽनायासेन विवेक्तुं शक्यमिति तदुपलम्भायैवोद्योग आवश्यकः। एवं चैतस्य विप्रतिपन्नत्वमवधार्याधिकरणाद्यनुल्लिख्य विषयसूचनिकास्थाने यथोपलब्धानि सूत्राण्येवालिखम्। आशासे च भगवतो यज्ञनारायणस्य प्रसादेन चिरं वैकल्यमुपयातमिदं पूर्वमीमांसाशास्त्रं भाट्टचन्द्रिकोपेतसाङ्कर्षसौलभ्येन वैकल्यं जहदपि शाबरोपलम्भेन सर्वथा साङ्गं स्यादिति। अस्मि चात्र कृतावधानो यदि कश्चन विद्वान् इहत्योऽथवा देशान्तरीणः शाबरसाङ्कर्षमुपलभेत, मामनुगृह्य सन्दिशेत्तर्हि सर्वसाधारण्येन तत्प्रकाशं कुर्यामिति शम्।

आश्विनकृष्णप्रतिपदि
भौमे, सं. १९५०.

१. I am grateful to M.M. Gangadhara Shastri of the Sanskrit College, Benares, for his kind information as to the existence of the book in the house of P. Ram Chandra Shastri Jare.

स्नेहपूर्त्तिभूमिका

पण्डितश्रीराममिश्रशास्त्री

[1]अत्र स्नेहपूर्त्तिग्रन्थे चत्वारो धाराप्रपातास्तत्रैकैकस्मिन् धाराप्रपाते चत्वारो बिन्दवः। एवं च षोडशबिन्दुसमुदायात्मन्यस्मिन् ग्रन्थे प्रथमो बिन्दुरयमस्मिन् पण्डितपत्रे समाप्तिमुपयातः। परन्तु यद्येको बिन्दुरस्य किञ्चिदधिकैकवर्षेण पूर्तिमापत्तर्हि बहुविस्तरस्यास्य ग्रन्थस्यास्मिन्नल्पोदरे पत्रे समापनं पञ्चदशवर्षपर्यन्तमहाकालसाध्यमनुसंधाय सर्वथा समवलोक्य चास्थास्नुतां लोकस्यामुष्य, विरतोऽस्मि विरमितोऽपि च पण्डितपत्रे मुद्रणात्। अधुना पुनरस्य मुद्रणं महानिबन्धस्य भविता स्वातन्त्र्येण स्वक्षरेषु सुशीघ्रमेव।

यद्यप्येष निबन्धो महाजटिलातिकुटिलवादियुक्तिनिराकरणपर इति सर्वथा सारल्येन सर्वजनसाधारण्येन च सर्वार्थान् बुबोधयिषतोऽपि मे कथं कथमप्यनवाप्तान्वीक्षिकीशिक्षाणामनासादिततर्ककौशलानामगोचरतयोपेक्षास्पदतामुपगतस्तथाऽप्यस्य न सर्वत्र तादृशं काठिन्यमस्ति यादृशं वादिपरासनपरप्रकरणेषु भासत इति प्रेक्षिष्यन्ते विपश्चितः।

सिद्धान्तसिद्धार्थावबोधपरप्रकरणानि पुनरस्य सुलभानि येषु ब्रह्मसूत्रार्थसौष्ठवाख्यानं छान्दोग्यबृहदारण्यकादितात्पर्यनिरूपणं गीतार्थस्य षट्कत्रयभेदभिन्नस्य विशिष्टाद्वैत एव सामञ्जस्यमेकदेवतावादश्चेत्यादयोऽर्था आञ्जस्येनेह सुविस्तरं निरूपिताः। तदेतद् भगवदनुग्रहेण ग्रन्थमुद्रण एव लोकैर्विज्ञास्यत इति न बहुनिरूपणीयम्।

विशिष्टाद्वैतसम्प्रदाये पूर्वं बोधायनमहर्षिप्रणीता[2] वृत्तिर्ब्रह्मसूत्राणां द्रमिडाचार्यप्रणीतं[3] भाष्यं टङ्काचार्यनिर्मितं वार्त्तिकं चासीत्।

आसंश्चापरेऽपि भारुचि-गुहदेवाद्याचार्यप्रणीता निबन्धास्तेष्वेषु कालमहिम्ना विलोपमुपेयिवत्सु भगवद्भिर्यामुनाचार्यपादैस्तमर्थमुद्द्योतयितुं सिद्धित्रयादिग्रन्थाः प्राणायिषत। येष्वार्षमतविलोमार्थानां [4]भर्तृप्रणीतभाष्यादीनां निराकरणमासीत्। तदनन्तरं चाद्वैतसाम्प्रदायिकैर्भाष्य-पञ्चपादिका-विवरण-वार्त्तिकादिनिबन्धैस्तदीययुक्तीनामुत्तराभासेषु कृतेषु भगवद्भिर्भाष्य-

---

१. पं., न्यू सि. १८, (२ फरवरी, १८९६) १-४.

२. यस्या निराकरणं तत्र तत्र श्रीद्शङ्कराचार्यादिभिराधुनिकवैदान्तिकैः क्रियते।

३. द्रमिडाचार्यमतं श्रीद्शङ्कराचार्यैरुपनिषद्भाष्ये भामतीकारेण चोत्थापितम्।

४. ये वेदान्ताचार्यपदेन प्रसिद्धिमुपेयिवांसः।

कारैः श्री६रामानुजमुनिभिर्भाष्य-पञ्चपादिकाद्युक्तयुक्तिसमुत्सारणपुरस्सरं विशिष्टाद्वैतं श्रीभाष्य-नामकमहानिबन्धप्रणयनेन लोके पुरस्कृतम्।

तदनु मनुष्यस्वभावसुलभं मात्सर्यमासाद्य वा श्रीभाष्याशयमनवधृत्यैव वा कैश्चिदन्तरालकालप्रभवैरद्वैतसम्प्रदायैस्तदुपरि युक्त्याभासविलासप्रसारे कृते सर्वतन्त्रस्वतन्त्रधिषणैर्वेङ्क[1]टाचार्यादिभिर्याथातथ्येनोत्तरं कृतं तदनन्तरं पुनरद्वैतसिद्धिकार-सिद्धान्तलेशकारादिभिराग्रहैकसहायैर्युक्त्याभासेषु तन्निराकरणपरतयोपन्यस्तेषु दुर्बलमतेर्लोकस्य महानयं व्यामोहोऽनार्षे बोधायनादिमहर्षिप्रदर्शितब्रह्मसूत्रार्थविरुद्धार्थे युक्तिपथविप्रतीपे समुत्पन्न इति तन्निराकरणार्थमयं मे समुद्यमः।

अस्ति चेदं प्रयोजनान्तरमपि महतोऽमुष्य महाऽऽयासेन निबन्धनिबन्धनस्य प्रायोजनाः सरलदृष्टयः (अकबर-जहाँगीरप्रभृतिसम्राट्समये) आसन् बहवो महानिबन्धानां निबन्द्धारो महात्मानो यैर्निर्मितानां ग्रन्थानां व्याख्यानमपि सुदुस्संभवमाधुनिकानाम्। विशेषतश्च दर्शनशास्त्राणां विलोप एवाधुनाऽभवदपरिपक्वमतीनां केषाञ्चिदमीषां शुष्कवागाडम्बरमात्रप्रचारेण। दृश्यते हि काश्यादिषु विद्यामहाक्षेत्रेषु चिरमधीयानानामपि न तादृशोविद्यासु परिपाको यादृशः पूर्वमिति कथयन्ति।

तदेतत्तेषामभिधाय कियदर्थवदिति विवेकिनोऽमत्सराः स्वयं मीमांसितार इत्युदास्महे; परं तु यदि कस्यचिन्महानिबन्धस्य स्नेहपूर्त्यादिसदृशस्य वादाहवमहाक्षेत्रस्य निर्माणमुद्रणप्रचारादिकमधुना न भवेत्तदाऽवश्यं कालान्तरे आधुनिकानां विदुषां कृत्यनुपलम्भान्न ज्ञातारो भविष्यन्तो भारतवर्षीया देशान्तरीया वा आधुनिकानां विदुषां विद्यामाहात्म्यमिति मुगलसाम्राज्यापेक्षया प्रायः सर्वेषु विषयेषु विवर्द्धमानविभूतेर्भारतवर्षस्य नय-विनयोन्नतावनतायाः प्रजासमदुःखसुखाया दयामयमूर्तेर्निजधर्मानुयायिहृदयायाः श्री१०८राजराजेश्वर्याःप्रतापमध्यन्दिनसमये दर्शनशास्त्राणां मिथ्याऽवनतिं जानीयुरिति तादृशभ्रमनिरसनेनोपयोक्ष्यतेऽयं व्यापारः।

आबाल्यादभूवमहमिह राजकीये शिक्षाविभागे विद्याविवर्द्धनप्रयत्नः। आसं चाभिपूजितो भृशं शिक्षाविभागदीक्षान् राजकीयकार्यवीक्षकानारभ्य भारतवर्षीयप्रधानराजकीयकार्यालयाधिकृतराजपुरुषपर्यन्तम्।

अभूवं च कृपया पृष्टोऽसकृदेव तैर्विश्वस्तैर्भारतवर्षीयनीतिपरिवृत्तिसमयेषु।

अन्वमंस्त च ते मां निजगरिम्णैव सहकारिणं नैतिकेषु साम्राज्यप्रबन्धेष्वपीति सर्वमवधाय विधाय च कृतज्ञताप्रवणां मनोऽमुं समयं संस्कृतशास्त्रेष्वपि गुणिगणाढ्या

१. तदेतद्भाष्यं गौडपादाचार्यशङ्कराचार्यदीनामद्वैतिनामुपनिषदर्थे उपजीव्यमभवदिति तद्विदः।

मभिख्यापयितुं चेष मे यत्न इति सर्वफलविधातुर्भगवतो नारायणस्यानुग्रहेण फलेग्रहिप्रयत्नो भवेयमिति भृशमभ्यर्थये ।

काश्यामगस्त्यमुन्याश्रमाश्रमो वाराणसीनिवासनिबद्धप्रवृद्धसमादरः । परमपुरुषकृपासरित्पूरपरीवाहपूर्णपात्रसत्संप्रदायाचार्यपण्डितस्वामि **श्रीराममिश्रशास्त्री ।**

सं. १९५२

माघे कृष्णपक्षे बुधे प्रतिपदि ।

भाट्टचिन्तामणिवर्णनम्

पण्डितश्रीबालशास्त्री
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[१]अथ प्रकरणपञ्चिकाया गुरुप्रभाकरमतप्रतिपादनैकपरायणायाः प्रकाशनोत्तरमवश्यं कश्चन भाट्टसिद्धान्तनिरूपणप्रवणो निबन्धः प्रकाशनमर्हति। यतो जैमिनिदर्शनमवलम्ब्य त्रीण्येव मतानि परस्परव्यावृत्तात्यन्तविशेषवन्ति प्रसिद्ध्यन्ति गुरुमतं भट्टमतं मुरारिमतं च । तत्र मुरारिमतानुसारी द्वादशाध्यायीव्याख्यानपरो निबन्धो नाद्यत्वे कोऽपि प्रसिद्ध्यति। भाट्टमतानुसारिणश्च भाट्टदीपिकाशास्त्रदीपिकाभाट्टरहस्यप्रभृतयो यद्यपि बहवो निबन्धा उपलभ्यन्तेऽथापि तेऽतिविस्तृताः कठिनतरसंस्कृतग्रथिताः सुलभपुस्तकाश्चेतिकृत्वाऽयं भाट्टचिन्तामणिनामधेयः स्पष्टार्थसंस्कृतो नातिप्राचीनोऽपि प्राचीनतमसम्प्रदायानुसारी संक्षिप्तः सकलभाट्टमतनिबन्धसारसंग्राहकोऽतिदुर्मिलपुस्तकः काशीविद्यासुधानिधिचकोरनेत्रातिथिभावमर्हतीति तन्मुद्रणाय सोल्लासं प्रयतामहे। रचयिता चास्य भट्टकुलतिलको विश्वेश्वरभट्टापराभिधानो गागाभट्टः। योऽद्य यावदागोपालाङ्गनमुत्तमोत्तमविद्वदुपमानभावं प्रतिपदं लभते।

अथ तस्य प्रथममुद्रणीयतर्कपादस्थप्रकरणानि प्रतिपत्तिसौकर्याय सूच्यन्ते—

---

१. पं. ५, ५७ (फरवरी १, १८७१) २०९-१०.

२३. अर्थापत्तिस्वरूपम्
२४. अनुपलब्धिस्वरूपम्
२५. अभाववादः
२६. शब्दप्रामाण्यनिर्वचनम्
२७. आकाङ्क्षायोग्यतयोः स्वरूपम्
२८. तात्पर्यकारणत्वकल्पनम्
२९. शक्तिग्रहप्रकारः
३०. वृत्तिस्वरूपम्
३१. गौण्यादिलक्षणानिरुक्तिः
३२. रूढादिपदभेदप्रदर्शनम्
३३. वाक्यार्थस्य लाक्षणिकत्वोपपादनम्
३४. प्रसङ्गात्स्फोटनिर्वचनम्
३५. प्रवर्तकज्ञानव्यवस्थापनम्
३६. विधिभेदप्रकाराः
३७. विधिलक्षणम्
३८. धात्वर्थनिरुक्तिः
३९. आख्यातार्थनिरुक्तिः
४०. कारकान्वयनिरुक्तिः
४१. लकारार्थनिरुक्तिः
४२. प्रातिपदिकार्थजात्यादिनिरुक्तिः
४३. प्रथमादिसुबर्थनिरुक्तिः
४४. समासार्थनिरुक्तिः
४५. नञर्थनिरुक्तिः
४६. उपसर्गार्थनिरुक्तिः
४७. निपातार्थनिरुक्तिः
४८. त्वतलाद्यर्थनिरुक्तिः
४९. विधिप्रामाण्यम्
५०. शब्दनित्यत्वम्
५१. अर्थनित्यत्वम्
५२. सम्बन्धनित्यत्वम्
५३. स्फोटोपपादनं तन्निराकृतिश्च
५४. वेदानामपौरुषेयत्वस्य साधनम् इति ।

■

शास्त्रदीपिकाया भूमिका

पण्डितश्रीराममिश्रशास्त्री
काशीस्थब्रह्मामृतवर्षिणीसभायाम्

[1]वेदा हि ऋग्यजुःसामाथर्वभेदैर्मन्त्रब्राह्मणारण्यकोपनिषदादिभेदैरवान्तरैर्मण्डलप्रपाठकसूक्तानुवाकवर्गकाण्डाध्यायादिलक्षणैरपरैश्च विशेषैः सन्ति बहुधा प्रविभक्ताः। तेऽमी बुभुत्सूनामर्थनिरूपणसौकर्याय कर्मकाण्डोपासनाकाण्डज्ञानकाण्डरूपेण पूर्वाचार्यैर्व्यभाजिषत। तत्र मन्त्रभागस्य संक्षेपतः सर्वविद्यास्थानभूतस्यापि प्रायो[2]यागोपयोगिद्रव्यदेवतादिस्मारकतया कर्मकाण्डताम्, ब्राह्मणानां च मन्त्रोदितार्थेतिकर्त्तव्यताप्रतिपादनबहुलानां तच्छेषताम्, प्रायो ब्राह्मणैकदेशस्वरूपाणामुपनिषदां नीरक्षीरन्यायेन उपासना-ज्ञाननिरूपणपराणामुपासना-ज्ञानमूलतां चाचक्षते। तत्रापि च षोडशाध्यायीरूपेण कर्ममीमांसाशास्त्रेण अनादिनिधनाविच्छिन्नवैदिकसंप्रदायस्थेमा याथातथ्येन प्रतिनियतक्रमाणामनुन्मिषितस्वरवर्णविपर्ययाणामैहिकामुष्मिकार्थसंदोहदोग्ध्रीणां तत्रभवतीनां श्रुतीनामर्थनिर्णयाय भगवान् जैमिनिर्बादरिबादरायणादिपूर्वाचार्यपरम्परापरिप्राप्ता एव वेदार्थनिर्णयौपयिकीस्सद्युक्तीः सूत्रयाञ्चकार। तत्रादिमा द्वादशाध्यायी कर्मकाण्डपदेन प्रसिध्यति। शेषा चतुरध्यायी तु द्वादशाध्याय्युक्तार्थावशिष्टार्थनिरूपणपरा संकर्षकाण्डपदेन व्यवह्रियते। अस्ति चैषा विप्रकीर्णवेदवाक्यार्थनिरूपणपरा। अत एवैनां संकर्षकाण्ड-पदेन व्यवहरन्ति, सम्यक् निःशेषतया स्फुटतया च कृष्ट्वा आकृष्य विप्रकीर्णवेदवाक्येभ्यः संगृह्य निर्णीयन्ते अर्था यत्रेति संकर्ष इति व्युत्पत्त्या "अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्" इत्यधिकारस्थेन "हलश्च"इति घञा तथार्थवगतेः। यश्चामुष्याः संकर्षणकाण्डपदेन व्यवहारः सोऽपि अधिकरणल्युटा तथाऽर्थाभिधानायैव। विप्रकीर्णार्थनिरूपणपरतयैव तु द्वादशाध्याय्यामिव शेषचतुरध्याय्यां प्रत्यधिकरणं न संगतिः। द्वादशाध्याय्या सह तु शेषचतुरध्याय्या अस्त्येव संगतिमदर्थप्रतिपादकतयैकग्रन्थत्वम्, वेदान्तचतुरध्याय्या तु न संगता षोडशाध्यायी तस्या ज्ञानकाण्डरूपायाः पृथगर्थनिरूपणपरतयाऽत्यन्तभिन्नत्वात्। अत एव तु अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति सूत्रस्थाथशब्दस्य महत्याऽऽरभट्या वृत्तिकाराभिमतकर्माधिगमानन्तर्यार्थकतां व्युदस्य साधनचतुष्टयसंपत्त्यानन्तर्यार्थकतामास्थिषत श्रीद् शङ्कराचार्याः।

श्रीभाष्याचार्यास्तु अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति सूत्रस्थाथशब्दस्य कर्माधिगमानन्तर्यार्थत्वमास्थाय विंशत्यध्यायीस्वरूपयोः पूर्वोत्तरमीमांसयोरेकशास्त्रतामाहुः— "संहितमेतच्छारीरकं जैमिनीयेन षोडशलक्षणेनेति शास्त्रैकत्वसिद्धिरिति" इति, "वृत्तात्कर्माधिगमादनन्तरं ब्रह्मविविदिषेति" इति च, पूर्वाचार्यवचनं[3] प्रमाणतयोपदर्शयन्तः।

---

१. पं. १४, न्यू सि. (५ मई, १८९२)

२. ईशावास्योपनिषदः संहितान्तर्गतत्वात्प्रायःपदम्।

३. भगवद्बोधायनवचनम्।

युक्तं चैतद् वेदाविरोधितर्कोपन्यासपुरःसरं वेदार्थविचाररूपत्वादुभयोर्मीमांसयोः। अत एव तु ज्योतिष्टोमदर्शपौर्णमासबृहस्पतिसवादिज्ञानमात्रेणापवर्गतत्साधनयोरविदितत्वात्पुरुषार्थ-तदुपायज्ञानं कार्त्स्न्येन न पर्यवस्यतीति कर्मकाण्डे तत्तदर्थबोधकश्रुतिषु तत्तत्प्रकरणावसाने नाभ्यासोऽर्थपरिसमाप्तिबोधको दृश्यते, वेदान्तेषु तु न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते। नावर्तन्ते नावर्तन्ते। वेदानुशासनं वेदानुशासनम्। तस्माद् ब्राह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद् ब्राह्मणो महिमानमाप्नोति। अमृतः समभवदमृतः समभवदित्यभ्यासो भवति।

वेदान्तेषु प्रतिविद्यमवसानेऽभ्यासप्रयोजनं तु इतरविद्यानैरपेक्ष्येण एकैकस्याः परमपुरु-षार्थब्रह्मावाप्तिलक्षणफलप्राप्तिहेतुत्वबोधनम्, एकैकयैव विद्यया तत्र पुरुषार्थपर्यवसानेन विद्या-न्तरस्य ज्ञातव्यत्वनियमाभावेनानपेक्षणीयत्वात्।

अत एव तु श्रुतिदृष्टरीतिमनुकुर्वता वेदविदग्रेसरेण कृष्णद्वैपायनशिष्येण जैमिनिना पूर्व-काण्डस्योत्तरकाण्डसापेक्षपरमपुरुषार्थावाप्तिहेतुतासूचनाय अथातो धर्मजिज्ञासेत्यारभ्य अन्वा-हार्ये च दर्शनादित्यन्ते द्वादशाध्यायीग्रन्थे, चतुरध्यायीस्वरूपे संकर्षकाण्डे वा अध्यायान्ते "एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थाऽवधृतेस्तदवस्थावधृतेः" इत्यादिव्याससूत्रेष्विव पदावृत्तिरर्थपरिस-माप्तिबोधिका नादृता। संकर्षणकाण्डे तु सर्वशेषे काण्डसमाप्तिसुसूचयिषया वाक्यावृत्तिरा-दृता, न तु समस्तसूत्रावृत्तिः शास्त्रपरिसमाप्तिद्योतिका, यथोत्तरकाण्डे अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दादिति परमर्षिः सूत्रमभ्यस्यन् पूर्वोत्तरमीमांसयोः समाप्तिस्पष्टमवबोधयतीति श्रुत्यर्थनित्य-निरीक्षणनीतनिजजनुषां मादृशामनपरपरिशीलितो भगवद्बोधायनमतोपपादनप्रकारः।

अत एव तु "द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽतः" (अ. ४. पा. ४. सू. १२) इत्युत्तरकाण्डे पूर्वकाण्डोदितार्थमुपजीव्यत्वेनावलम्बे भगवान् कृष्णद्वैपायनः, तद्यथा "द्वादशाहमृद्धिकामा उपेयुः"। "द्वादशाहेन प्रजाकामं याजयेदित्युपैतियजतिचोदनाभ्यां सङ्कल्पभेदेन सत्रमहीनं च भवति तथा सङ्कल्पभेदादुभयविधं शरीरमशरीरञ्च मुक्तमाचार्यो मन्यते" इति।

एवमेव तु "दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने" (अ. ४ पा. ४. सू. २) इति सूत्रे श्रुतिं परानपेक्षतया प्रत्यक्षपदेन, स्मृतिं च स्वप्रामाण्ये श्रुतिमुखनिरीक्षणसापेक्षतयाऽनुमानपदेन सिद्धवद् व्यवजहार, यतोऽयमर्थः पूर्वकाण्डे प्रमाणलक्षणे सुनिरूपितः, ततश्च तादृशार्थानां समानतन्त्रसिद्धार्थतया तथाऽभिधानमिति तद्विदां न संशयः।

न च कर्तृस्मर्तृभेदः शास्त्रानैक्यसाधनायालम्, मुनित्रयप्रणीतत्वेऽपि व्याकरणस्यैकत्वात्, स्मर्तॄणां मधुच्छन्दःप्रभृतीनां बहुत्वेऽपि तत्स्मृतिविषयग्यर्जुःसामसंहितादिभागानामेकत्वाच्च आधुनिकैरपि च संभूय ग्रन्थाः प्राणायिषत, यथा धूर्तस्वामिकपर्दिभ्यामापस्तम्बसूत्रव्याख्यानम्, यथा वा पाणिनीयसूत्रव्याख्यानं वामनजयादित्याभ्यामेवमादि।

न च कर्मब्रह्ममीमांसयोरेकशास्त्रत्वे कर्मिणामेव ब्रह्मविद्याधिकारे च पूर्वकाण्डोदितापशूद्राधिकरणेनैव निर्विद्यानां ब्रह्मविद्याऽनधिकारबोधसिद्धौ वेदान्तचतुरध्याय्यां पुनस्तद्वारणायाप-शूद्राधिकरणारम्भे कृतकरत्वप्रसङ्ग इति न तयोरैकशास्त्र्यमित्यनुमिमीमहे इति साम्प्रतं ग्रहण-

धारणादिलक्षणलौकिकसामर्थ्यमात्रस्याधिकारकारणतां भ्रान्त्या प्रतिपद्यमानान् प्रति, दुरुपदेशवशात् साधनचतुष्टयमात्रस्य पूर्ववृत्तितां प्रतिपद्य ब्रह्मविद्यासु प्रवर्तमानान् प्रति वा, मध्वादिविद्यास्विवानुपनीतानामपि ब्रह्मविद्यास्वधिकारं जानानान् प्रति वा, भ्रान्तोपदेशवशाद्वैदिकाचारस्य तत्त्वज्ञानेऽनपेक्षाभ्रमवतः प्रति वा, पूर्वकाण्डविचारे इवोत्तरकाण्डविचारेऽपि वर्णाश्रमधर्मानुपालनावश्यम्भावद्रढिम्ने वा तस्य सार्थक्येन कृतकरत्वप्रसङ्गरूपचोद्यानवतारात्। यथा च परस्यैवापशूद्राधिकरणं न सङ्गतं तथा वयमिहैवाग्रे पराक्रम्य समर्थयिष्यामहे इत्यकिञ्चिदिदम्।

न च "अथातो धर्मजिज्ञासा" इति प्रतिज्ञायाऽऽरब्धे शास्त्रे ब्रह्मनिरूपणमसाम्प्रतमिति शङ्क्यम्। सिद्धसाध्यरूपेण धर्मद्वैविध्यस्य शास्त्रसिद्धतया द्विविधधर्मनिरूपणप्रतिज्ञानेन षोडशाध्याय्या साध्यरूपं धर्मं निरूप्य सिद्धरूपस्य तस्याभिधानेन क्रमेणार्थप्रतिपादनपरयोः कर्मब्रह्ममीमांसयोः संगतत्वात्। धर्मद्वैविध्ये प्रमाणं तु, "इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम्। अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्" इति याज्ञवल्क्यस्मृतिः, इयं हि आत्मदर्शनस्य परमधर्मतां ब्रुवाणा सिद्धसाध्योभयधर्मबोधिकेति स्पष्टमेव। एषा हि परमर्षीणां शैली यत्स्थलविशेषे असिद्धार्थप्रसिद्धिबहुलेन धर्मशब्देनात्मानम्, क्वचित्तु तादृशेन यज्ञशब्देन, सिद्धधर्मस्वरूपमात्मानमुपादित्सन्ते, यथा गीतासु "श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज् ज्ञानयज्ञः परन्तप" इत्यादिषु, तदुभयसाधारणधर्मत्वं चालौकिकश्रेयस्साधनत्वश्रेयस्स्वरूपत्वान्यतरत्वमित्यन्यत्र कृतविस्तरा वयमिहोपेक्षामहे। नाप्यवान्तरो विशेषः शास्त्रानैक्यसाधकस्तस्य पादाध्यायाधिकरणपूर्वोत्तरषट्कादिभेदेन भिन्नस्य शास्त्रानैक्यसाधकतायाः सर्वसंप्रतिपन्नत्वात्। न चैवं कल्पसूत्रगृह्यसूत्रादीनामपि वेदार्थविचाररूपतया सर्वस्याप्यास्तिकशास्त्रस्यैक्यमेवं ब्रुवाणस्य स्यादिति फल्गु शङ्क्यम्।

तेषां वेदार्थविचारत्वाविशेषेऽपि युक्तिमात्ररूपताविरहेण भेदसाधकविशेषस्यात्यन्तसुवचत्वात्। न चैवं पूर्वोत्तरमीमांसयोरेकशास्त्रत्वे तर्कादिपदेन षण्णामवगमः शास्त्रषट्कादिव्यवहारश्च विलुप्येतेति वाच्यम्, अवान्तरविशेषमादाय तादृशव्यवहारस्याञ्जस्येनैव समर्थनात्। मा चैवमवान्तरं षट्काध्यायपादादिलक्षणं भेदमादाय शास्त्रसप्तकादिव्यवहारोऽप्यतिप्रसजेदिति शङ्किष्ठा नैमित्तिके सति निमित्तानुसरणं न तु निमित्तमस्तीत्यारोप इति न्यायेन यादृशो व्यवहार आजानिकस्तन्निर्वाहाय निमित्तगवेषणेऽपि निमित्तमस्तीत्येतावन्मात्रेणासतो व्यवहारस्यापादयितुमशक्यत्वात्।

यच्च फलजिज्ञास्यभेदेन पूर्वोत्तरकाण्डयोर्भेदाभिधानं तदपि बालसम्मोहनमात्रम्, "अथातः क्रत्वर्थपुरुषार्थयोर्जिज्ञासा" इत्यादिजैमिनीये जिज्ञास्यभेदेऽपि शास्त्रैक्यस्य सर्वसम्प्रतिपन्नत्वात्, फलभेदोऽपि न शास्त्रभेदे तन्त्रं तस्यासिद्धत्वात्। तथा हि "अग्निहोत्रादि तु तत्कार्य्यायैव तद्दर्शनात्", "सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत्" इत्यादिव्याससूत्रपरम्परया—

"यज्ञो दानं तपः कर्म न त्याज्यं कार्य्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।

एतान्यपि तु कर्म्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥

"सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते" इत्यादिभगवद्गीतावाक्यैः, यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन" इत्यादिश्रुतिभिश्च निष्कामकर्म्मणो ज्ञानेन सहैककार्य्यकारणतायाः शतधा प्रसाधितत्वात्। अस्तु वा निष्कामकर्म्मणामपि ज्ञानदार्ढ्यप्रयोजकत्वं न साक्षादपवर्गहेतुत्वं तावताऽपि सिद्धसाध्योभयभेदभिन्नं धर्ममथातो धर्म्मजिज्ञासेति निरूप्यत्वेन प्रतिज्ञाय षोडशाध्याय्या साध्यरूपं तमभिधाय वेदान्तचतुरध्याय्या सिद्धरूपस्योपजीवकस्य परमधर्म्मस्यात्मनिरूपणस्य समुचितत्वाद् उपजीव्यनिरूपणानन्तरमुपजीवकनिरूपणस्य यौक्तिकत्वेन ज्ञानकर्म्मसमुच्चयोपेक्षापक्षेऽपि मीमांसयोरेकशास्त्रतायाः सुदृढत्वात्।

यदपि जिज्ञास्ये भूतत्वभव्यत्वलक्षणवैलक्षण्यं पुरस्कृत्य क्रमोपक्रान्तयोः पूर्वोत्तरमीमांसयोः क्रमविवक्षाऽसंभवाभिधानं तदप्यापातरमणीयं यतो भव्याया अप्युपासनाया अस्तीह भूतब्रह्मनिरूपणपरे शास्त्रे क्रियासमभिहारेणाभिधानं यथोपकोसलोपासनप्रतीकोपासनान्नोपासनप्राणोपासनदहरविद्याशाण्डिल्यविद्यादीनाम्, न च तत्प्रासङ्गिकमिति शक्यं शङ्कितुमपि उपासकस्यार्चिरादिमार्गेण मूर्द्धानमभिभिद्य निष्कामतो ब्रह्मलोकावाप्तिलक्षणफलपर्यन्तस्यार्थजातस्य इहैव शास्त्रे निरूपणप्रक्रमात्, न हि [१]त्रयीत्रिकाण्डीसमाम्नातस्योपासनस्य वेदान्तशास्त्रमपहायापरत्र मीमांसनम्।

अत एव स्वयमपि तु आनन्दमयाधिकरणोपक्रमे— "एवमेकमपि ब्रह्मापेक्षितोपाधिसम्बन्धं निरस्तोपाधिसम्बन्धं चोपास्यत्वेन ज्ञेयत्वेन च वेदान्तेषूपदिश्यत इति प्रदर्शयितुं परो ग्रन्थ आरभ्यते" इति स्पष्टमुपासनापरत्वं वेदान्तानामभिहितम्, एवमेव तु क्रममुक्त्यर्थोपासनानामिव तत्र तत्र कर्मसमृद्ध्यर्थोपासनानामभ्युदयफलार्थानां चोपासनानामिहैव निरूपणमिति न बहु निरूपणीयं निरूपकेषु। एवं च कर्मसमृद्ध्यर्थोपासनानामपीहैव निरूपणीयत्वे कर्मावबोधानन्तर्यपक्षाक्षेपोऽनवधानेन स्वपक्षाक्षेप इति सिद्धमस्खलितं कर्मावबोधानन्तर्यम्।

अत एव तूपसंहारेऽपि "अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दादि"ति भगवान् कृष्णद्वैपायनोऽनावृत्तिलक्षणं शास्त्रफलमुपासकस्यैव प्राप्तव्यमूचे। ततश्च भूतब्रह्मनिरूपणपरेऽपि शास्त्रे भव्याया अप्युपासनायाः अधिकारीतिकर्त्तव्यताफलपर्य्यन्तं विवेचनात् फलनिष्ठो भूतत्वभव्यत्वलक्षणोऽविशेषोऽकिञ्चित्कर इति साधु प्रसाधितम्। अत एव तु भव्यस्य धर्मस्य ज्ञानकालेऽसत्त्वात् भूतस्य च ब्रह्मणोऽनित्यनिर्वृत्तत्वादिति प्रतिपाद्यवैलक्षण्यसमर्थनश्रमोऽप्यकिंञ्चित्करः, न ह्युदासीनस्य प्रतिपाद्यनिष्ठतादृशावान्तरविशेषस्य प्रतिपाद्यनिरूपणक्रमभङ्गप्रयोजकतासंभवः। इतरथा तु "अथातः शेषलक्षणम्" इति तृतीयाध्याये जैमिनीयद्वितीयलक्षणेन कर्मभेदमभिधाय शेषशेषित्वचिन्तनपरतया प्रवृत्ते शेषशेषित्वविचारोऽप्यसङ्गतः स्यात्, कर्मभेदतच्छेषशेषित्वादेरर्थस्य क्रमनिरूपणीयस्यापि विलक्षणत्वात्, न हि कर्मब्रह्मनिष्ठो विशेष एव पौर्वापर्यभङ्गप्रयोजको नापर इति शक्यते वक्तुम्।

१. कर्मज्ञानोपासनालक्षणार्थप्रतिपादनपरो वैदिकसन्दर्भः।

एतेन "एवं च सत्यथातो ब्रह्मजिज्ञासेति तद्विषयः पृथक् शास्त्रारम्भ उपपद्यते प्रतिपत्तिविधिपरत्वे हि अथातो धर्मजिज्ञासेत्येवारब्धत्वान्न पृथक्शास्त्रमारभ्येत, आरभ्यमाणं चैवमारभ्येत—अथातः परिशिष्टधर्मजिज्ञासेति, अथातः क्रत्वर्थपुरुषार्थयोर्जिज्ञासेतिवत्" इत्यपि प्रत्युक्तमथातो धर्मजिज्ञासेति सामान्यतो धर्मनिरूपणं प्रतिज्ञाय कर्मरूपं तमभिधाय सिद्धरूपस्य तस्याभिधाने शिष्यावधानाय अथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्येव सूचयितुमुचितत्वात्, शिष्यावधानफलं हि प्रतिज्ञाशास्त्रम्, न च शिष्यावधानोपधानं यथा ब्रह्मजिज्ञासेत्युक्त्या तथा परिशिष्टधर्मजिज्ञासेति सूत्रणेऽपि। किञ्च पूर्वं कर्मब्रह्मसाधारणधर्मनिरूपणं प्रतिज्ञायापि चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म इति सूत्रेण लिलक्षयिषितः क्रियारूपो धर्म एव निरूपयितुमुपक्रान्तस्तथा च परिशिष्टधर्मजिज्ञासेत्युक्तौ चोदनालक्षण एव कश्चित् परिशिष्टो धर्म इह जिज्ञास्यते? आहोस्विज्जगज्जन्मादिलक्षणोऽपर इति शिष्याः संशयीरन् जन्माद्यस्य यत इति ब्रह्मलक्षणवाक्यार्थावगमात् प्राक्, यथास्थितसूत्रकरणे तू कर्मब्रह्मणोर्वेदार्थत्वलक्षणसामान्येऽपि इदम्प्रथमः कश्चिदयमपूर्वो धर्मो निरूप्यते, यो लक्षयिष्यते जन्माद्यस्य यत इति शान्तशङ्काः शिष्याः स्पष्टमवबुध्यन्त इति युज्यते तथा सूत्रसन्दर्भो महर्षेर्व्यासस्य। किञ्च अथातः क्रत्वर्थपुरुषार्थयोर्जिज्ञासेति दृष्टान्तावष्टम्भोऽपि परस्य न शोभनः, यतः सूत्रकृन्महर्षिरिह विशिष्याभिधेयमुपादत्ते क्रत्वर्थपुरुषार्थयोरिति, न तु परार्थयोरिति। एवं चेह न परिशिष्टधर्मजिज्ञासेति वक्तव्यम्; किन्तु ब्रह्मजिज्ञासेत्येवेति न किञ्चिदेतत्। किञ्च क्रमनिरूपणीययोरत्यन्तसाजात्यनिर्बन्धे गन्धवत्याः पृथिव्या निरूपणानन्तरं निर्गन्धानामपां निरूपणम्, विशेषगुणशून्ययोः कालदिशोर्निरूपणसमनन्तरं च ज्ञानेच्छाद्यनेकविशेषगुणयोगिन आत्मनो निरूपणमसङ्गतमित्यप्यापद्येतेति बहु व्याकुली स्यात्।

यदपि केचन ब्रह्मजिज्ञासायां कर्मावगमानन्तर्यमसहमानाः "सति चानन्तर्यार्थत्वे यथा धर्मजिज्ञासा पूर्ववृत्तं वेदाध्ययनं नियमेनापेक्षते, एवं ब्रह्मजिज्ञासाऽपि यत्पूर्ववृत्तं नियमेनापेक्षते तद्वक्तव्यम्, स्वाध्यायानन्तर्यं तु समानम्। नन्विह कर्मावबोधानन्तर्यं विशेषः, न, धर्मजिज्ञासायाः प्रागप्यधीतवेदान्तस्य ब्रह्मजिज्ञासोपपत्तेः" इति साटोपमूचुस्तत्प्रतिब्रूमहे— अत्र स्वाध्यायानन्तर्यं तु समानमित्युक्त्या ब्रह्मजिज्ञासायां स्वाध्यायानन्तर्यस्यौदासीन्येन विवक्षितुमशक्यत्वेऽपि धर्मजिज्ञासायां स्वाध्यायानन्तर्यमङ्गीकृतमिति स्पष्टं सिद्ध्यति, तत्रैवं वादी प्रष्टव्यः, किं यत्किञ्चित्स्वाध्यायाध्ययनानन्तर्यं सर्वस्वाध्यायाध्ययनानन्तर्यं वा विवक्षसि, तत्र सर्वस्वाध्यायाध्ययनासम्भवेन प्रथम एवावलम्बनीयः पक्षस्तथा च यथा यत्किञ्चित्स्वाध्यायाध्ययनानन्तर्यं धर्मजिज्ञासायामेवं नित्यनैमित्तिकादियत्किञ्चित्कर्मावगमानन्तर्यं ब्रह्मजिज्ञासायामपि सुवचम्, यतो भवत्पक्षेऽपि संन्यासिनामेव ज्ञानाधिकारिताया व्यवस्थापनेन संन्यासप्रतिनियतकर्मावगमानन्तर्यस्य भवतोऽप्यापतितत्वात्, ब्रह्मचर्यस्य च सर्वाश्रमप्रकृतित्वेन तदनन्तरमेव संन्यासाधिकारिताया वक्तव्यत्वेन तदवगमानन्तर्यस्यावश्याभ्युपेयत्वाच्च। न च ब्रह्मचर्यसंन्यासयो- रुपलक्षणत्वमेव ब्रह्मजिज्ञासायां न विशेषणत्वमिति वक्तुं पारयसि, तथा सति संसा-

रस्यानादित्वेन यदा कदाचिद्विद्यमानयोस्तयोरव्यावर्तकत्वेन तत्कारणताया एव दुर्निर्वहत्वप्रसङ्गादित्यादि मदीयब्रह्मसूत्रवृत्तावनुसन्धेयम्।

अत्रेदमवदधीमहि कर्मावगमानन्तर्यं प्रद्विषतामपि स्वाध्यायानन्तर्यं कर्मब्रह्मसाधारणं सोढव्यमत एव इहैव "स्वाध्यायानन्तर्यं तु समानम्" इत्युक्तम्, ततश्च स्वाध्यायानन्तर्यस्याथशब्दार्थत्वासम्भवेऽपि स्वाध्यायाध्ययनाव्यभिचारित्वं ब्रह्मजिज्ञासायां प्रयत्नशतेनापि व्यवस्थापनीयम्। न च तत्संभवति वेदाध्ययनानधिकारिणामपि ब्रह्मावगमसम्पत्तिसिद्धेरसकृत्पुराणेतिहासेषु प्रसिद्धेः। एवं च यथा स्वाध्यायानन्तर्यं ब्रह्मजिज्ञासायां भवता समर्थनीयं तथैव कर्मावगमानन्तर्यं ममापि सुसमर्थमिति न कश्चिद्विशेषोऽभिनिवेशं विना।

एतेन धर्मजिज्ञासायाः प्रागप्यधीतवेदान्तस्य ब्रह्मजिज्ञासोपपत्तेरिति विभीषिकाप्रदर्शनमपि मन्देष्वेव स्वभावभीरुषु, न तु युक्तितनुत्रेषु कुशलेषु पूर्वोक्तरीत्या ब्रह्मजिज्ञासायां कर्मावगमानन्तर्यस्य कर्मब्रह्मजिज्ञासयोः स्वाध्यायानन्तर्यस्येव सुनिर्वहत्वात्।

यदपि परे कर्मब्रह्मजिज्ञासयोरधिकृताधिकारं शेषशेषिभावं चामृष्यमाणा भगवद्बोधायनपक्षं प्रतिक्षेप्तुमुद्यच्छन्ते कुशकाशमवलम्बमानाः, तदेतदपि प्रमाणपरतन्त्राणामरुन्तुदम्, यतः—

"अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्"॥ इति।

स्मृतिः कर्मस्वधिकृतस्यैव स्पष्टं मोक्षाधिकारमाह, अतथाऽऽचरतश्चाह सपातं पुनरनधिकारमपरा स्मृतिः—

"अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः॥ इति।

एवं च यथाऽऽहिताग्नेरेवाग्निसाध्येषु कर्मस्वधिकारो यथा वा चातुर्मास्येनेष्टवत एव सोमेऽधिकारो यथा वा विधिवदधीतवेदस्यैव कर्मस्वधिकारस्तथाऽवगतकर्मण एवोत्तरमीमांसास्वधिकार इति सिध्यत्यधिकृताधिकारः कर्मब्रह्ममीमांसयोः, अननुष्ठितकर्मणामपि ब्रह्मजिज्ञा सोदयेन कर्मणामयथाभावस्तु अनधीतस्वाध्यायानामपि ब्रह्मजिज्ञासोदयेन समानयोगक्षेम इति न ममैव बहु प्रयतनीयमित्यब्रूमहि।

अस्ति च शेषशेषिभावोऽपि कर्मब्रह्ममीमांसयोः, कर्मणां ब्रह्मजिज्ञासोद्देशेनानुष्ठितानां ब्रह्मजिज्ञासाफलकत्वेन परोद्देशाप्रवृत्तत्वरूपपारार्थ्यस्याञ्जस्येनेव समर्थनात्। न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुरिति श्रुतिस्तु भगवदनर्पितानां कर्मणां मोक्षहेतुत्वाभावमाह, न तु कर्मणामेवायथाभावम्, त्यागेनैके अमृतत्वमानशुरिति इहैव त्यागस्य मोक्षहेतुत्वाभिधानात्, त्यागश्चेह "यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते" इति स्मार्तो ग्राह्यो न पराभिमतः कर्मस्वरूपत्यागस्तथा च सकामकर्मणां ज्ञानोत्पादविरोधित्वेऽपि भगवदर्पितानां निष्कामकर्मणां ज्ञानहेतुतया शेषशेषिभावः साधु समर्थितो भवति।

अत एव तु संक्षिप्याखिलवेदान्तार्थनिरूपणव्याजेन अष्टादशाध्यायीस्वरूपगीतार्थोपसंजिहीर्षया च प्रवृत्तेऽष्टादशाध्याये संन्यासस्य त्यागस्य च तत्त्वं पृष्टवतेऽर्जुनाय—

"काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः" ॥

इति भगवता पूर्वमज्ञानावस्थायामनुष्ठितानां काम्यकर्मणां संसारस्यानादितया भोग्यकर्मप्रचयस्य चानन्ततया भोगेन क्षपणासम्भवाद् भगवति भरन्यासः सन्न्यासः, सर्वकर्मफलत्यागश्च त्याग इत्युपदिष्टो न तु कर्मणां स्वरूपत्यागः। एवमेव तु—

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥

इति परमतमुपन्यस्य अतिस्निग्धाय शिष्यायार्जुनाय शास्त्रतत्त्वमुपदिदिक्षुः श्रीभगवान्—

"निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम!।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र! त्रिविधः परिकीर्तितः ॥
यज्ञो दानं तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥
एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ! निश्चितं मतमुत्तमम् ॥
नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥
दुःखमित्येव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ इत्यभिदधौ।

ततश्च सात्त्विकराजसतामसभेदभिन्नं त्यागमुपदिशता पावनानि मनीषिणामिति कर्मणां ज्ञानवतामप्युपादेयतामभिब्रुवाणेन भगवता कर्मफलत्याग एव त्यागो न तु कर्मणां स्वरूपत्याग इति स्पष्टमाख्यायत इति न किञ्चिच्चोद्यमवशिष्यते।

तत्रैवं सति यो वेदान्तवाक्यानां सहकारितयाऽपि कर्मानपेक्षाप्रतिपादनपरः "न च वाक्यं सहकारितया कर्म्माण्यपेक्षत इति युक्तम्। अकृतकर्म्मणामपि विदितपदतदर्थसङ्गतीनां समधिगतशाब्दन्यायतत्त्वानां गुणप्रधानभूतपूर्वापरपदार्थाकाङ्क्षासन्निधियोग्यतानुसन्धानवतामप्रत्यूहं वाक्यार्थप्रत्ययोत्पत्तेः। अनुत्पत्तौ वा विधिनिषेधवाक्यार्थप्रत्ययाभावेन तदर्थानुष्ठान-

परिवर्जनाभावप्रसङ्गः। तद्बोधतस्तु तदर्थानुष्ठानपरिवर्जने परस्पराश्रयः। तस्मिन् सति तदर्थानुष्ठानपरिवर्जनम्, ततश्च तद्बोध इति। न च वेदान्तवाक्यानामेव स्वार्थप्रत्यायने कर्म्मापेक्षा, न वाक्यान्तराणामिति साम्प्रतम्। विशेषहेतोरभावात्" इति भामतीनिबन्धः, सोऽपि अल्पज्ञधिषणाधर्षणायित एव, ज्ञानिनोऽपि कर्मणामनुष्ठेयत्वप्रतिपादकनिरुक्तभगवद्गीतावाक्यविरोधाद् वक्ष्यमाणयुक्तिविरोधाच्च।

अत्रैवं पराक्रम्यते— इह वाक्याद्वाक्यार्थावगमो निष्कम्पप्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणफलपरिपाकपर्यन्तं विवक्षितोऽथवा जरद्गवादिवाक्यसाधारण्येन पदार्थोपस्थितितदसंसर्गाग्रहपर्यवसन्नोऽथवा खपुष्पनरशृङ्गादिप्रतिपादकवाक्यसाधारण्येन वैकल्पिकप्रत्ययरूपोऽत्यन्तासदर्थ- साधारण इति विवेचनीयम्, तत्र द्वितीयतृतीयपक्षयोरुत्पन्नोऽपि बोधो न निष्कम्पप्रवृत्तिलक्षण- फलपाकपर्यवसायीति प्रथम एव पक्षः क्रोडीकरणीयस्तत्सामग्री च नाकाङ्क्षासन्निधियोग्यत्वानुसन्धानमात्रं पौष्कल्येन तद्वतामपि अननुष्ठितकर्मणामदृष्टविशेषशून्यानां दशकृत्वः शब्दबोधयतामपि लौकिकवैदिकवाक्येभ्यः प्रवृत्तिनिवृत्त्योरदर्शनात्, अधीष्व वत्सेति प्रत्ययिततरपित्रादिवाक्यं शृण्वतां तदर्थं सम्यगाकलयतामपि अदृष्टविशेषप्रतिबन्धेऽधिजिगांसानुदयदर्शनाददृष्टविशेषे चाशु तथाप्रवृत्तिदर्शनात्तत्कारणीभूतकर्मणां कारणत्वसिद्धेरवर्जनीयत्वात्, अदृष्टस्य साधारणकारणत्वेन तद्धेतुतासिद्धेरनुल्लङ्घनीयत्वाच्च। यदि तु साधारणकारणत्वाभ्युपगमेऽपि असाधारण्येनादृष्टतत्कारणकर्मादेः कारणत्वं निषिषेधयिषितमिति मन्यसे, तर्हि अदृष्टादेः सामान्यतः साधारणकारणत्वेऽपि तत्तत्कार्यविशेषे तत्तदसाधारणरूपेणैव कारणताया वक्तव्यत्वादसाधारणकारणत्वमप्यावश्यकमिति रूपविशेषेण साधारणासाधारणकारणतायाः सुवचतया न तदपि चोद्यमवतरति, अस्तु वा साधारणकारणमेवादृष्टतज्जनककर्मादिकं तत्रापि न नो द्वेषस्ततोऽप्यस्मदभिप्रेतादृष्टादिकारणत्वसिद्धेरप्रत्यूहत्वात्।

यच्च अकृतकर्मणां वाक्याद्वाक्यार्थावगमानुत्पत्तौ विधिनिषेधशास्त्रैर्वाक्यार्थावगमासंभवेन तदनुष्ठानवर्जनाभावोद्भावनं तत्तु शिष्यधीव्यामिश्रणमात्रं भवन्मते पूर्वपूर्वाध्यासव्यक्तीनामुत्तरोत्तराध्यासहेतुताया इव पूर्वपूर्वादृष्टव्यक्तीनामुत्तरोत्तरभाविकार्यहेतुतायाः सिद्धान्तसिद्धतया प्राचीनकर्मजन्यादृष्टविशेषेण विधिनिषेधशास्त्रेभ्यो निष्कम्पप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपफलपर्यवसायिबोधसम्भवेन तादृशशङ्कायाः सुदूरपराहतत्वात्।

एतेन "तद्बोधतस्तु तदर्थानुष्ठानवर्जने परस्पराश्रयः, तस्मिन् सति तदर्थानुष्ठानवर्जनं ततश्च तद्बोधः" इति भामतीनिबन्धोऽप्यपास्तः, विधिनिषेधशास्त्रैर्वाक्यार्थे जननीये पूर्वोपार्जितकर्मजन्यादृष्टव्यक्तेरपेक्षणीयतया तादृशादृष्टव्यक्त्या च पूर्वोत्पन्नया स्वोत्पत्तौ स्थितौ ज्ञप्तौ वा जनिष्यमाणायास्तादृशविधिनिषेधशास्त्रबुद्धेरनपेक्षणीयतयाऽपेक्षितुमशक्यत्वाच्च परस्पराश्रयदोषशङ्कया अवतरितुमप्यशक्यत्वात्।

न हि ययाऽदृष्टव्यक्त्या विधिनिषेधशास्त्रार्थावगमः, सैव व्यक्तिस्तयैव विधिनिषेधशास्त्रार्थावगत्या तदानीन्तन्या जन्येत्यातिष्ठामहे यतो दोषसम्भावना स्यात्।

यदपि "तत्त्वसमीति वाक्यात् त्वंपदार्थस्य कर्तृभोक्तृस्वरूपस्य जीवात्मनो नित्यशुद्ध-बुद्धोदासीनस्वभावेन तत्पदार्थेन परमात्मनैक्यमशक्यं द्रागित्येव प्रतिपत्तुम् आपाततोऽशुद्ध-सत्त्वैर्योग्यताविरहनिश्चयात्। यज्ञतपोदानतनूकृतान्तर्मलास्तु विशुद्धसत्त्वाः श्रद्दधाना योग्यता-वगमपुरःसरं तादात्म्यमवगमिष्यन्तीति चेत्, तत्किमिदानीं प्रमाणकारणं योग्यतावधारणमप्रमा-णात्कर्म्मणो वक्तुमध्यवसितोऽसि प्रत्यक्षाद्यतिरिक्तं वा कर्म्मापि प्रमाणम्। वेदान्ताविरुद्ध-तन्मूलन्यायबलेन तु योग्यतावधारणे कृतं कर्म्मभिः"। इति भामत्यामुक्तम्, तदपि यथाश्रुतप्रतिपत्तृशिष्यप्रज्ञाप्रतारणमात्रम्।

अत्र तत्किमिदानीं प्रमाणकारणं योग्यत्वावधारणमप्रमाणात्कर्मणो वक्तुमध्यवसितोऽसि प्रत्यक्षाद्यतिरिक्तं वा कर्मापि प्रमाणमिति वदता प्रमाणस्य स्वरूपसतोऽनन्यापेक्षस्य प्रमाका-रणत्वमभिमन्यते? उत प्रमाणस्यैव प्रमाणसहकारित्वं नाप्रमाणस्येत्यभिप्रेयते? अथवा प्रमा-णसहकारितामात्रेण प्रमाणत्वमापाद्यते? नाद्यः, स्वरूपसतश्चक्षुरादेः प्रमाकारणत्वाङ्गीकारे साततिककार्योत्पादप्रसङ्गात्, तदेकमात्रकार्योत्पादे च कार्यान्तरानुत्पादप्रसङ्गात्। न ह्येकं किञ्चि-त्पर्याप्तं स्वकार्ये; किन्तु संभूयेति सिद्धान्तव्याघाताच्च, तथा सति चक्षुःपिधानभित्तिव्यवधा-नादिसत्त्वेऽपि स्वरूपसता चक्षुषा ज्ञानोत्पादावश्यंभावप्रसङ्गाच्च। द्वितीये तु प्रमाणस्य चक्षुरादेर्व्याप्तिज्ञानादिस्वरूपानुमानप्रमाणसहकारित्वेऽपि नैष नियमो यत्प्रमाणमेव प्रमाणसह-कारीति अप्रमाणस्यापि कामलादिदोषाभावस्य चक्षुरादिसहकारित्वादप्रमाणस्यापि वा बाधा-द्यभावस्यानुमानादिसहकारित्वात्, अतादृशस्यैव शक्तिज्ञानस्य शक्ये सादृश्यज्ञानादेश्च शब्दोपमानसहकारितायाः सर्वसम्प्रतिपन्नत्वाच्च, तृतीयस्तु पक्षोऽप्रमाणस्यापि शक्तिज्ञानादेः प्रमाणं सहकुर्वतोऽप्यप्रमाणत्वस्य सर्वसम्प्रतिपत्त्यैव परास्तः।

यदि तु योग्यत्वावधारणं क्लृप्तसामग्र्यैव भवति, न तु कर्मादृष्टादिद्वारेत्यभिप्रैषि, तर्हि कर्मा-दृष्टादिकं न क्लृप्तसामग्र्यामन्तर्भवतीति कुतोऽवधारितमायुष्मता, यदि वेदान्ताविरुद्धतन्मूलन्या-यबलेन योग्यत्वावधारणे तद्भिन्नस्य कर्मादेरन्यथासिद्धिं समर्थयसे, तर्हि सहस्रशो वेदान्ताविरुद्धतन्मूलन्यायाभियोगभाजामपि तत्त्वमस्यादिवाक्येभ्योऽनाखण्डार्थधीसमुत्पत्तिरिति तस्यैवान्यथासिद्ध्या कुतो न संतुष्यसि? यदि तु कर्मादृष्टादेरन्तःकरणशुद्धावेवोपयोगो न तु वाक्यार्थज्ञानेऽपीत्यभिसंधत्से, तत्किमदृष्टं न कार्यमात्रे हेतुः, वेदान्तवाक्योत्था धीर्वा न[1] कार्य-मात्रान्तर्गता, केनचिद्रूपेण साधारणकारणस्यैव वा सतो रूपान्तरेण नासाधारणकारणत्वमेकस्य वा कारणस्य नानाकार्यजनकत्वं न निरीक्षितवानसि न जातु "दैवं चैवात्र पञ्चमम्" इति पारमेश्वरवचसि वा क्षणमपि श्रद्धां व्यधाः, यदेवं कर्मजन्यादृष्टस्यान्तःकरणशुद्धावेवोपयोगमतिप्रयासेन समर्थ्य वाक्यार्थबुद्धौ तस्यान्यथासिद्धिसमर्थने कृतपरिकरो गृहीतदीक्ष इवाभासि।

यदि त्वदृष्टस्य कारणत्वेऽपि कर्माणि तेनान्यथासिद्धानीति ब्रूषे, एवं तर्हि पाणिव्यापार-व्यवहितत्वात्कुलालस्य घटहेतुत्वं स्वव्यापारव्यवहितत्वाद्दण्डस्यैव वा तद्धेतुत्वं दुःसमर्थं स्यात्,

१. वेदान्तवाक्योत्थधियमवष्टभ्य पराक्रान्तमस्माभिर्वृत्तिषु।

न स्याच्च रवेरर्थप्रकाशकत्वं किरणव्यवहितत्वात्, वृष्टेर्वा सुभिक्षहेतुत्वं कृषिनदीपूरभेदादिव्यवहितत्वात्, वेदेऽप्यारुण्यादीनां द्रव्यद्वारकक्रयसाधनत्वममुख्यं स्यादिति त्वयापि "न हि व्यापारेण व्यापारिणोऽन्यथासिद्धि"रित्यङ्गीकरणीयम्, तत एव च ममापि कर्मणां कारणत्वनिर्वाह इति किं ते चोद्यमवशिष्यते। अत एव तु नापूर्वेण यागोऽन्यथासिद्ध इति वेदविदामुद्घोषोऽन्यथा तु अपूर्वेण यागोऽन्यथासिद्ध इति सर्वैवौन्मूलिता मीमांसेत्यतिकष्टम्, एवमेव तु भगवान् कृष्णद्वैपायनोऽपि कर्मजन्यस्य भगवत्प्रसादलक्षणापूर्वस्य सर्वफलहेतुतामाह "फलमत उपपत्ते"रिति। एवञ्च तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थबुद्धौ तद्धेतुषु योग्यतादिज्ञानेषु च प्रत्येकमेव कार्येषु कर्मणां कारणत्वसिद्धेरवर्जनीयतया ज्ञानेऽपि कर्मणां कारणत्वमित्यविचाल्योऽयं बृहस्पतेरपि बोधायनीयो वैदिकः पक्ष इति कृतधियां सुधियां परामर्शः।

यदपि प्रवर्तकमानमेयत्वोदासीनमानमेयत्वलक्षणवैलक्षण्यवता प्रमाणेन बोधितत्वात्कर्मब्रह्मणोर्न तत्प्रतिपादकशास्त्रस्य क्रमनियमः, धर्मो हि यागादिलक्षणः प्रवर्तकमानेन यजेतेत्यादिना मीयते, ब्रह्म तूदासीनेन तत्त्वमस्यादिवाक्येनेति, तदिदमप्यविचारसारं यतो मानभेदो न मेयवैजात्यं प्रयोजयति, एकस्मिन्नेव घटादौ प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणसंप्लवस्य, धर्माधर्मयोर्वा अनुमानागमादिलक्षणप्रमाणस्य संप्लवेऽपि प्रमेयस्यैकजातीयत्वात्। यदि तु नियोगविषयत्वतदविषयत्वलक्षणवैलक्ष्य कर्मब्रह्मनिष्ठं विवक्ष्यते, तदा तादृशावान्तरविशेषस्य सर्वत्राप्यावश्यकत्वेन कुत्रापि क्रमो विवक्षितुं न शक्यः स्यात्, ततश्च द्वादशाध्याय्या अपि प्रतिपाद्यार्थभेदेन क्रमाविवक्षणेऽसङ्गतत्वापत्तिरिति वृद्धिमिच्छतो मूलहानिरित्यतिकष्टम्।

किञ्चाथशब्दस्य कर्माधिगमनैरपेक्ष्येण साधनचतुष्टयसंपत्त्यानन्तर्यार्थकत्वे शूद्राणामपि ब्रह्मविद्याऽधिकारप्रसङ्गो दुर्वारः, कर्मिणां तु ब्रह्मविद्याऽधिकारे विधिवदधीतवेदानामेव कर्मस्वधिकृतत्वेन शूद्रादेश्च तदसंभवान्नापत्तिः। किञ्च वर्णाश्रमधर्मनिरपेक्षस्य ज्ञानमात्रस्य मोक्षमुख्योपायत्वे अपशूद्राधिकरणमपि कदर्थितं स्यात्।

केचित्तु अनुपनीतानां वरुणबृहस्पतीन्द्रादीनां ब्रह्मविद्यावत्त्वाधिगमादनुपनीताः शूद्रा अपि विषयसौष्ठवाकृष्टा लौकिकसामर्थ्यभाजश्च प्रवर्तेरन् विद्यास्विति ते मात्रं प्रवर्तिषत भ्रान्त्येति बोधनमपशूद्राधिकरणफलम्, देवास्तु देवविग्रहग्राहकपुण्यपुञ्जेन स्वतःप्रतिभातवेदा इति तेषामुपनयनं नावश्यकमित्यातस्थिरे, तदिदमसमीक्ष्याभिधानमिति न मृष्यामहे देवेष्वपि ब्रह्मक्षत्रत्वादिलक्षणत्रैवर्णिकविभागसद्भावेन तत एव तेषामुपनयनकल्पनेनानुपनीतत्वविरहात्। तथा हि श्रुतिः — **"ब्रह्मा बृहस्पतिः क्षत्रमिन्द्रो मरुतो वै देवानां विशः"**। इति।

न च **"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"** इति श्रुत्या श्रुतिश्रवणजन्यातिशयस्यैव साक्षात्कारहेतुतया प्रतिपन्नत्वादकृततथाश्रवणस्य नाधिकारो ब्रह्मविद्यास्विति न दोष इति वाच्यम्, तथा सति मुमुक्षुत्वादीनामिव श्रवणजन्यातिशयस्यापि ब्रह्मज्ञानात्पूर्वमपेक्षणीयत्वे साधनपञ्चकस्य पूर्ववृत्तत्वं प्राप्तमिति साधनचतुष्टयपूर्ववृत्तित्वोक्तिर्भृशं क्षुभ्येत, तत्रेष्टापत्तौ च कर्मावबोधपूर्वभाव एव भगवद्बोधायनाभिमते किमित्यकारणः प्रद्वेषः,

न चानवगतकर्मणामप्यधीतवेदान्तानां ब्रह्मजिज्ञासोदयादवगतकर्मणामपि च साधनचतुष्टय-शून्यानां जिज्ञासाऽनुदयान्न तथेति युक्तम्, **"कषाये कर्मभिः पक्वे ततो ज्ञानं प्रवर्तते"**, **"ज्ञान-मुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः"** इत्यादिप्रमाणशतेन कर्मणां ज्ञानहेतुतासिद्धौ कर्माधिगमपूर्ववृत्तित्वोक्तेरावश्यकतया कर्मावगमे[१] वैजात्यमभ्युपेत्य जन्मान्तरसाधारणकर्मा-वगमस्य ब्रह्मज्ञानहेतुतां वाङ्गीकृत्य व्यभिचारयोः सुपरिहरत्वेन कर्मब्रह्मावगत्योः शास्त्रावगत-कार्यकारणभावस्याबाध्यमानत्वात्। एवमेव तु अत्यन्तान्तरङ्गं शिष्यमुपलभ्य भगवानपि गी-तासु—

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्"॥

इत्यादिना कर्मणामुपादेयत्वमसकृदुपदिदेशेत्यब्रूमहि इह चापरत्र चेति।

अत्रेदमालोचयामः— साधनचतुष्टयसम्पन्नाः शूद्रादयोऽपशूद्राधिकरणेन ब्रह्मविद्यायाम-नधिकारं बोध्यन्ते? उतासम्पन्नाः? आहोस्वित्तदुभयसाधारणाः? न तावदाद्यः, साधनसम्पन्नानां शूद्राणामपि पुराणेतिहासप्रमाणिकाया विशिष्टज्ञानवत्ताया दुरपह्नवत्वेन उपायो हि वार्यते, न फलमिति न्यायेन फलपरिपाकवतां तादृशां धर्मव्याधप्रभृतीनां ब्रह्मविद्याऽनधिकारिताया बाधि-तमर्थं वेदोऽपि न बोधयतीति न्यायेन श्रुतिसहस्रेणापि बोधयितुमशक्यत्वात्। व्याधस्य हि विद्यासु विनयेन स्वानधिकारं ख्यापयतोऽतिनिर्बन्धेन गुरूकरणं स्मर्यते, ततश्च यं महर्षयोऽपि ब्रह्मविद्यासु उपदेष्टारं वव्रिरे, तस्य स्वयं विद्यायां कः संशयोऽवशिष्यते। न द्वितीयः, साधन-शून्यानामनधिकारितायाः स्वतः परिप्राप्तत्वात्, न ह्यनधिकारादनधिकार इत्यपि क्षेमाय, तथा सत्यनधिकारिणां साधनचतुष्टयशून्यानामैहिकामुष्मिकार्थानुरागवतां श्रोत्रियाणामप्यनधिकार बोधनाय पृथगधिकरणारम्भस्यावश्यकत्वापातात्। न हि साधनशून्यैः शूद्रैरेवाधिकमपराद्धम्, यदि तु अध्ययनगृहीतस्वाध्यायजन्यतदर्थज्ञानवत एव वैदिकेष्वधिकार इत्यपशूद्राधिकरणे अध्ययनवेदवाक्यश्रवणादिविधुरस्य शूद्रस्य विद्याऽधिकारनिषेधात्, न शूद्राय मतिं दद्यादिति स्मृतेरापाततोऽपि तस्य विद्यामहिम्नाऽवगत्युपायासम्भवेन तदर्थित्वानुपपत्तेश्च शूद्रस्य विद्या-यामनधिकार इति ब्रूषे, हन्त! तर्हि अर्थित्वसामर्थ्यशून्यशूद्रस्य विद्याऽनधिकारबोधने अप-शूद्राधिकरणवैयर्थ्यशङ्कां नोत्तीर्णोऽसीति घट्टकुट्यां प्रभातम्। न च विषयसौष्ठवेनार्थिताया लौकिकसामर्थ्यसत्त्वेन च प्रवर्तमानाः शूद्राः प्रत्याचिख्यासिता विद्यायामिति तदधिकरणसङ्ग-तिरिति वाच्यम्, एवं सति हि साधनचतुष्टयसम्पन्नानधिकारिणो निर्विशेषमात्मतत्त्वं चाधिकृत्य प्रवृत्तासु ब्रह्मविद्यासु मुधैव चेच्छूद्रा निराक्रियन्ते तर्हि नटान् विटान् गणिका गायकाँश्चापि प्रत्याख्यातुमधिकरणान्तरमारम्भणीयं स्यात्, न हि एतेऽप्यधिकुर्वते, कश्च तथा सति कामहतं श्रोत्रियमपेक्ष्य शूद्रादेर्विशेष उक्तः स्यादनधिकारादेवानधिकारसमर्थने इति पूर्व-मेव समगरिष्महि।

---

१. यावता ज्ञानोत्पादप्रतिबन्धककल्मषापनयसम्भवस्तावत्त्वलक्षणवैजात्यमिहाभिमतम्।

यदि तु वेदाख्याक्षरराशेरर्थतः स्वरूपतश्च ग्रहणानधिकारो बोध्यत इत्युच्यते, तर्हि अविद्यैकप्रत्युपस्थापितस्वरूपस्य ग्रहीतृग्राह्यग्रहणस्वरूपप्रपञ्चस्य वस्तुयाथात्म्यज्ञानैकनिवर्त्यस्य तेनैव निवर्हणे किं वेदग्रहणेन। न हि भवन्मते कर्मकाण्डस्येव ज्ञानकाण्डस्य प्रवृत्तिरविद्यावत्पुरुषमवष्टभ्य यतो वर्णाभिमानिनस्तस्य निषेधः सफल इति वक्तव्यं स्यात्। यदि तु व्यवहारप्रवृत्तं पुरुषमभिप्रेत्य निषेधसाफल्यं समर्थयसे, तदाऽप्यपेतब्रह्मक्षत्रादिभेदमात्मानमवगच्छन्तमुपक्रम्य प्रवृत्तेषु वेदान्तेषु तादृशार्थाभिधाने कामचिकित्सातन्त्रयोरपीहैव मीमांसनप्रसङ्गः, अपशूद्राधिकरणविचारस्येव तयोरप्युपयोगानुपयोगयोः साक्षात्पारम्पर्येण च समानत्वात्। किञ्च, कथमपि शिष्यस्य वर्णाश्रमकर्मवयोऽभिमानसम्बन्धो भवेदपि परं गुरोर्ज्ञानस्य परां काष्ठामुपेयुषस्तदसम्भवेन "संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च" इत्यादिसूत्रेण शरीरमात्राधेयातिशयानां तदभिमानवत्पुरुषाधेयातिशयानां वा संस्काराणामतिदूरोपकारकाणामिहापेक्षितत्वाभिधानमसंगतमित्यतिस्फुटमेव, क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गादित्यनेनापि च पौत्रायणस्य क्षत्रियत्वसमर्थनं व्यर्थं विद्यायाः सर्वाभिमानविप्रतीपस्वभावायाः क्षत्रियत्वाद्यनपेक्षत्वात्तद्विरोधिस्वरूपत्वाच्चेत्यसकृदवोचाम।

यदि तु अधीतवेदो हि विदितवेदार्थो वेदार्थेष्वधिक्रियते, न च शूद्रस्य वेदाध्ययनमस्ति, उपनयनपूर्वकत्वाद्वेदाध्ययनस्य, उपनयनस्य च वर्णत्रयविषयत्वादिति ब्रूषे, तर्हि स्वस्ति भवते आयातोऽसि मार्गेण इदमभिधापयितुमेवायमस्मदीयो भगीरथरथपथाश्रयः। तद्यथा अध्ययनेन विदितवेदार्थस्य वेदार्थेषु कर्मोपासनाज्ञानेष्वधिकारः, तच्चाध्ययनमुपनयनपूर्वकमिति व्यापकोपनयननिवृत्त्या अध्ययननिवृत्तौ तद्व्याप्यानां कर्मोपासनाज्ञानानां निवृत्तिरिति फलति। ततश्चोपनयननिवृत्तिद्वारकाध्ययनाख्यकर्मनिवृत्त्या शूद्रस्य ब्रह्मविद्यानिवृत्तिसाधने कण्ठोक्तं विद्यायाः कर्मावगमानन्तर्यम्। यदि तु साधनचतुष्टयस्येव कर्मावगमस्य नाधिकारिविशेषणत्वमिति तत्पक्षाक्षेप इत्यभिसंधत्से, तर्हि तदपि नातिशङ्कनीयमिति ब्रूमः, यतः स्वविषयानुष्ठानजन्यापूर्वसम्बन्धेन कर्मावगमस्य यागस्येवापूर्वसम्बन्धेन कारणतायाः सुघटत्वादधिकं तु अस्मदीयवृत्तावनुसन्धेयमित्युदास्महे[१]।

साधनचतुष्टयसदसद्भावनिरपेक्षाः शूद्राः प्रत्याचिख्यासिता विद्यास्विति तृतीयस्त्ववशिष्टपक्षः पूर्वपराकृतपक्षद्वयसमानयोगक्षेम इति तदपाकरणाय न पृथग् यतनीयमवशिष्यते।

न चार्थितायाः सामर्थ्योपबृंहिताया एवाधिकारकारणत्वात्, केवललौकिकसामर्थ्यस्य चादृष्टे कर्मणि अपर्याप्ततया शास्त्रीयेऽर्थे शास्त्रीयं सामर्थ्यमप्यपेक्षितमिति तस्य शूद्रेष्वध्ययनविरहेण निराकृतत्वान्नावकल्पन्ते शूद्रा उपनिषद्भ्योऽधिगन्तुं ब्रह्मविद्यामिति वाच्यम्।

यतोऽपशूद्राधिकरणेन साधनचतुष्टयसम्पन्ना वार्यन्ते? उतासम्पन्ना इति जिज्ञासायामुक्तमेवावर्तते, इति समशङ्कोत्तरमिदं नाम्रेडनीयम्। यदि तु साधनचतुष्टयसंपत्तावपि शूद्रा नाधिकृता विद्यायामिति बोधनमपशूद्राधिकरणकृत्यमित्युच्यते, तर्हि किमुद्रया तत्तस्य

१. ब्रह्मसूत्राणामक्षरस्वारस्यसंरक्षणेन अर्थकथनरूपा व्याससूत्राणां वृत्तिर्मत्प्रणीतायामचिरान्मुद्रयितुमिच्छामः।

कृत्यमित्युच्यताम्, तत्र यदि वेदप्रयुक्त्यभावाच्छूद्राणामनधिकारबोधकं तदिति ब्रूषे, तर्हि अस्तु शूद्रत्वाभिमानिनो द्विजत्वप्रयोज्येष्वाधानादिष्वनधिकारो यथा राजजातीयाभिमानकर्तृके राजसूये ब्राह्मणवैश्ययोस्तथाऽभिमन्यमानयोः; परन्तु अशनायाद्यतीतमपेतब्रह्मक्षत्रशूद्रत्वादिभेदमसंसार्यात्मतत्त्वमधिकृत्य प्रवृत्तासु ब्रह्मविद्यासु साधनचतुष्टयसम्पन्नस्य जात्या शूद्रस्य शूद्रत्वाभिमानरहितस्यानधिकारे कारणं किमिति तावतापि नोक्तं भवति। न हि ब्राह्मणत्वाभिमाननिबन्धना द्विजत्वाभिमाननिबन्धना ब्रह्मविद्या इत्युत्प्रेक्षितुमपि शक्यम्, तस्याः सर्वाभिमानविप्रतीपभूमित्वात्। यदि तु साधनचतुष्टयवतामपि चिरसंभृताऽविद्यासंस्कारानुवृत्त्या मनागपि शूद्रत्वाभिमानोऽनुवर्त्तत इति तादृशा एव प्रत्याचिख्यासिता ब्रह्मविद्यासु, अत एव तु "शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे" इति वदतां ज्ञानकाष्ठामुपागतानामपि महात्मनां विदुरप्रभृतीनां वेदप्रयुक्त्यनधिकारनिबन्धनं नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे इत्यभिधानमित्युच्यते, तर्हि साधनचतुष्टयमुत्कीर्त्य "तेषु हि सत्सु प्रागपि धर्मजिज्ञासाया ऊर्ध्वं च शक्यते ब्रह्म जिज्ञासितुं ज्ञातुं च न विपर्यये" इति साधनचतुष्टयस्यानन्यापेक्षकारणत्वाभिधानमुपरुध्येत, विरुध्येत च "तस्मात्तस्यात्रानन्तर्यं वक्तव्यं यद्विना ब्रह्मजिज्ञासा न भवति, यस्मिन् सति तु भवन्ती भवत्येवे"ति भामतीनिबन्धोऽपि।

किञ्च, विद्यासु विदुरप्रभृतीनामनधिकारबोधनमपशूद्राधिकरणफलमित्यत्यन्तं दुर्भणितं भवान्तराधिगतज्ञानानां कृतकार्याणां तेषां प्रत्याख्यातुमशक्यत्वात्, अत एव तु "विदुरप्रभृतयस्तु शूद्रयोनिप्रभवा अपि विशिष्टज्ञानसम्पन्नाः स्मर्यन्ते" इति स्वयमप्युक्तम्। एवमेव तु इहैव भारतवचने नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे इति वेदानभिधातृत्वमेव बोध्यते, न तु वैदिकार्थानभिज्ञत्वमितरथा तु नातोऽन्यज्ज्ञातुमीश्महे इत्युक्तं स्यादिति। तस्मादुपासनानात्मकस्य वाक्याद्वाक्यार्थावगमरूपस्य[१] कर्म्मादृष्टाद्यकिञ्चित्करपदार्थमुखनिरीक्षणनिरपेक्षस्य ज्ञानस्य वैदिककर्म्मसु व्यापृतानां त्रैवर्णिकानां दुरासदत्वेऽपि तदनधिकारिणां परेषामेव श्रौतस्मार्तानपेक्षसमीचीनन्यायाभियोगभाजां तज्ज्ञानं सुसम्पादमिति साधु मीमांसाद्वयार्थनिरूपणमिति कृतं वाचां विसर्गैः।

भवतु किमप्येतत् संहितमसंहितं वा मीमांसाद्वयमिति सर्वथाऽपि तु जैमिनीयषोडशाध्यायी कर्म्ममीमांसाशास्त्रम्, चतुरध्यायीस्वरूपं च व्यासमुनिप्रणीतं वेदान्तशास्त्रमित्यविवादपदं व्याससूत्राणां व्याख्यानम्, शिष्टसमादृतत्वेनार्षत्वेन युक्तिसिद्धार्थाभिधायित्वेन विश्वासभूमिर्बोधायनवृत्तिरिवास्य चादिमं व्याख्यानमुपवर्षमहर्षिप्रणीता वृत्तिः, यां शबरस्वामिप्रभृतयोऽत्यन्त- प्राचीनमीमांसकाः क्वचित्प्रमाणतया क्वचिच्च निराकरणीयतयोद्धृतवन्तः। आधुनिका अपि मीमांसका वृत्तिग्रन्थं स्थलविशेषे संवादितया क्वचिच्च विसंवादितयोपन्यास्थन्।

योऽपि ब्रह्मसूत्राणां जैमिनिप्रणीतत्वव्यामोहहेतुरिव नैष्कर्म्यसिद्धिग्रन्थः, तद्यथा "यदपि जैमिनीयं वचनमुद्घाटयसि तदपि तद्विवक्षाऽपरिज्ञानादेवोद्भाव्यते, किं कारणम्। यतो न जैमिनेरयमभिप्राय आम्नायः सर्व एव क्रियार्थ इति, यदि ह्ययमभिप्रायोऽभविष्यत् "**अथातो**

१. कर्मादृष्टादीनामकिञ्चित्करत्वाभिधानं परमतेन।

ब्रह्मजिज्ञासा जन्माद्यस्य यतः" इत्येवमादिब्रह्मवस्तुस्वरूपमात्रयाथात्म्यप्रकाशनपरं गम्भीरन्यायसन्दृब्धं सर्ववेदान्तार्थमीमांसनं श्रीमच्छारीरकं नासूत्रयिष्यत्, असूत्रयच्च, तस्माज्जैमिनेरेवायमभिप्रायो यथैव विधिवाक्यानां स्वार्थमात्रप्रामाण्यमेवमैकात्म्यवाक्यानामप्यनधिगतवस्तुपरिच्छेदसाम्यादिति" इति, सोऽपि न तदर्थावगमकः, यतो न जैमिनेरयमभिप्राय आम्नायः सर्व एव क्रियार्थ इति, यदि ह्ययमभिप्रायोऽभविष्यत् **"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा जन्माद्यस्य यतः"** इत्येवमादिब्रह्मवस्तुस्वरूपमात्रयाथात्म्यप्रकाशनपरं गम्भीरन्यायसंदृब्धं सर्ववेदान्तार्थमीमांसनं श्रीमच्छारीरकं नासूत्रयिष्यत्। भगवान् वादरायणो ब्रह्मस्वरूपनिर्दिदिक्षया तथा, ततश्च जैमिनेरेवाम्नायस्य क्रियार्थतामाचक्षाणस्य अक्रियार्थवेदभागस्य च वैयर्थ्यमभिदधानस्य न तात्पर्यं यदुपनिषद्वाक्यानामानर्थक्यमिति; किन्तु विधिवाक्यसहपठितानामर्थवादादिवाक्यानां विधिवाक्यैकवाक्यतापन्नानामेवार्थानुष्ठापकत्वलक्षणं प्रामाण्यम्, न हि अर्थवादवाक्यानि कञ्चिदर्थं स्तुत्वा निन्दित्वा वा तावता कृतार्थानि, तेषां स्तुतिनिन्दापरत्वे पदस्थानीयतया शाब्दबोधानुपधायकत्वात्। अत एव "विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः" इति स्पष्टं जैमिनिस्तेषामेवैकवाक्यतां प्राह। अत्रायं भावो नैष्कर्म्यसिद्धिकारस्य जैमिनिव्यासौ गुरुशिष्यौ सन्तौ वेदार्थमीमांसने प्रवृत्तौ परस्परं विप्रसंवदेयातामितरजनानामिवेति न कथञ्चित्सम्भवि उभयोरेवोभयमतानुगन्तृतायाः स्वसूत्रेष्वेव स्फुटमुपलम्भात्, तद्यथा— "औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत्प्रमाणं वादरायणस्यानपेक्षत्वात्।" (अ. १ पा. १०५) इति। एवं भगवान् वादरायणोऽपि परं जैमिनिर्मुख्यत्वात्, ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः जैमिनिव्यासयोः समं श्रुतिपारदृश्वत्वमुत्कीर्त्यते—

अक्षपादप्रणीते च काणादे सांख्ययोगयोः।
त्याज्यः श्रुतिविरुद्धोंऽशः श्रुत्येकशरणैर्नृभिः॥
जैमिनीये च वैयासे विरुद्धांशो न कश्चन।
श्रुत्या वेदार्थविज्ञाने श्रुतिपारं गतौ हि तौ॥ इति।

एवं च गुरोर्व्यासस्य मतानुरोधेन जैमिनेरर्थनिरूपणस्यावश्यम्भावे अक्रियार्थाम्नायवैयर्थ्याम्नानं नोपनिषद्वैयर्थ्यसमर्थनाय किन्त्वर्थवादादिवाक्यानां विधिवाक्यैकवाक्यतापन्नानां सार्थकत्वाख्यानायेति न तयोर्विसंवादिता। एवं च नैष्कर्म्यसिद्धिग्रन्थे ब्रह्मसूत्राणि जैमिनिमुनिप्रणीतानीत्युक्तमिति भ्रमो निराकृतः।

बोधायनवृत्तेरनादरमूलं विषस्य विषमौषधमित्यवधार्य दत्ताभयं शून्यवादिमतनिराचिकीर्षया लम्भितपदं निर्विशेषाद्वैतमतमिवैतस्या आर्षवृत्तेरनादरमूलन्तु प्राभाकरादिमतप्रचारः, ऋषयो हि कर्मकाण्डस्योपासनाकाण्डस्येव भगवदाराधनरूपताममंसत व्यवास्थिषत च।

प्राभाकरप्रभृतयस्तु कर्मस्वेव भोगापवर्गप्रदशक्तिमुपयन्तः कार्यपरवाक्येभ्य एव शाब्दबोधोपधानमाद्रियमाणा उपनिषदोऽप्यपार्थकयन्ति, सोऽयं तेषां वरविघाताय वधूद्वाहः, यस्माद्धि

वेदपुरुषादाराधनप्रीतात् "फलमत उपपत्तेः"इत्यादिप्रमाणैः फलमुदीक्षन्ते विचक्षणाः स एव चेद-वधारितः पुराणपुरुषः कृतं तर्हि विनश्वरैर्यागैः। "**वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः**", "**तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामी**"त्यादिप्रमाणशतैर्यासु चोपनिषत्सु निभृतभराः श्रुतमतनिदिध्यासतात्मतत्त्वा आत्मानमन्विच्छन्तस्तितीर्षन्ति संसारसागरम्, ता एव ब्रह्मचारिण्योऽसंभावितपुंसंपर्का भ्रमप्र-मादादिदोष- संसर्गासहिष्णव उपनिषद्देव्यो नोपदधते धियं कृतं तर्हि परापेक्षैर्व्यभिचारादिदो-षशङ्काकलङ्कितै- रलब्धपदैरनुमादिप्रमाणैः। न हि कामधेनोरनादरे करभः कार्यकारक इति कल्पते संकल्पयितुमपि।

तत्रैवं सति जगद्व्यवहारोपप्लव एव कृतः स्यादिति न परोक्षं प्रेक्षावताम्।

तस्मादसदावेशैरेतैरेव मीमांसाया आर्षवृत्तिरुत्सादितेति सुनिश्चितं परीक्षकाणाम्। बोधा-यनवृत्तिर्वा उपवर्षवृत्तिर्वा अपरे वा आर्षा ग्रन्थाः परैरुत्सादिता उपसादिताश्च तत्स्थाने निज-निर्मिता ग्रन्था इतीदानीं शोकनाटनमस्थाने क्रियमाणम् "**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादाँश्च भाषसे**" इति भगवदुक्तरीत्या हासास्पदतां गोचरयति, पुरुषाधमत्वं चावेदयतीति उपयुक्तेषु वैशद्यमित्याभाणकोक्तन्यायेन प्रसभमस्माभिरिदानीं निजमतिवैभवेन प्रचलितैरेव ब्रह्मसूत्रजैमि-निसूत्रगीतोपनिषद्वाक्यैरर्था निरूपणीयाः पूरणीयाश्चार्था यथामति, रक्षणीयश्चायमनन्यशरणोऽनु-दिनं ह्रासमुपेयवान् पितृपितामहक्रमागतो महानिधिरिव, चिन्तामणिरिव, कल्पपादप इव, निजाभिजन इव, वेदशास्त्रसार्थः।

तत्राधीतिबोधाचरणप्रचारणरूपेषु रक्षापादेष्वेकः पुस्तकमुद्रणेनापि कथञ्चित् प्रचारणपादः सबलो भवति स्थैर्यविधये इत्यनुध्याय सर्वथा निरभिसन्धिः कथमपि यज्ञपुरुषमाराधयितुकामः शास्त्रदीपिकामुद्रणमुद्रया शब्दमूर्तिधरस्य श्रीविष्णोः प्रचारणपादसंवाहने प्रवृत्तः।

शास्त्रदीपिकाकारश्चायं सुगृहीतनामा पार्थसारथिमिश्रो यं कर्णाकर्णिकया संक्षिप्ताक्षरा-र्थबहुललेखप्रणाल्या च मैथिलं प्रतिपद्यामहे, अस्ति चापरस्तन्त्ररत्नग्रन्थोऽपि व्यासेन मीमां-सार्थप्रतिपादनपरः पार्थसारथिमिश्रप्रणीतः, न्यायरत्नाकराभिधा श्लोकवार्त्तिकटीकाऽपि[1] तैनेव निर्मिता। एषा च दीपिका परिपक्ववयसा पार्थसारथिमिश्रेण निरमायीत्युपपादनकौशलेन "**अन्यानि तु दूषणानि तन्त्ररत्न एव दर्शितानीति नेह प्रपञ्च्यन्ते**" एवंविधेन दीपिकायां तत्र तत्रोपन्यासेन चावधारयामः। यद्यपि सन्ति न्यायसुधा-भाट्टदीपिका-पञ्जिका-कणिका-विधिनिर्णय- विधिरसायन- भाट्टरहस्य- मीमांसाकुतूहल-मीमांसाकौस्तुभ-मीमांसाऽधिकरण-मालाप्रभृतीनि मीमांसाग्रन्थरत्नानि, तथाऽपि यादृशः परितोषः समादरश्च विदुषां दीपिकायां न तथा ग्रन्थान्तर इत्यवधार्यादौ तस्या एव प्रकाशने प्रावर्तिष्महि। यद्यपीह कथोपकथया शाबर-मतम्, भाट्टमतम्, प्राभाकरमतमित्यनेकमीमांसकमतसंदर्शनं तथाऽपि कुमारिलमतेन शास्त्र-दीपिकानिर्माणमिति सुप्रसिद्धमेव। अत्र च ग्रन्थे दशमाध्याये ५९९ पृष्ठे प्रसङ्गतो हरिम-

१. पण्डितविन्ध्येश्वरीप्रसादेन सा टीका मया दृष्टेति मां प्रत्युक्तम्।

तमप्युत्थापितम्, यमतिप्राचीनं वैदान्तिकमपि प्रतिपद्यामहे यदीयोपनिषद्भाष्यतात्पर्येण बृहदारण्यकभाष्यादौ[१] शङ्कराचार्याः स्वप्रणीतव्याख्यानस्य संक्षिप्ततां मेनिरेऽभिदधिरे च। यं च बृहदारण्यकशाङ्करभाष्यटीकाकारा भर्तृशब्देन कथयन्ति, सोऽयमतिप्राचीनो मीमांसाद्वयाचार्यः प्रसिद्धभर्तृहरिर्वा (यमभिप्रेत्य महाभाष्यव्याख्यानावसरे आदावेव कैयटः "**तथाऽपि हरिबद्धेन सारेण ग्रन्थसेतुना**" इत्यभिदधौ)। अन्य एव वा कश्चित्ततोऽपि प्राचीनतमस्ततोऽप्यभ्यर्हिततमश्च पुरुषश्रेष्ठ इति नेश्महे विशिष्यावधारयितुं गमकानुपलम्भात्।

एतस्य च ग्रन्थस्य मुद्रणावसरे अशुद्धिबहुलानि खण्डितानि जीर्णान्यतिजीर्णानि च पुस्तकान्यापमवापं च कथंचिद्विश्वासभूमितां प्रापमेकं बालसरस्वतीभवनस्थपुस्तकमपरं च ब्रह्मामृतवर्षिणीसभापुस्तकालयस्थं पुस्तकम्, मुद्रणानन्तरं च शोधनपत्रावसरे काशीस्थराजकीयप्रधानविद्यामन्दिरस्थमतिप्राचीनं तथाऽप्यनतिशुद्धम्, नवीनमपरं तथाऽपि शुद्धं पुस्तकं संवाद्य तत्र तत्र पाठोपपाठापपाठादिकं शुद्धिपत्रे न्यवीविशम्, मुद्रणावसरे च प्रायोनव्येष्वेव शिष्येषु निभृतशोधनभरेण मया बह्वपराद्धमिह दीपिकाग्रन्थ इति साहजिकगुणचक्षुषो गुणिनः क्षमन्तामिति साञ्जलिबन्धसमभ्यर्थये, प्रार्थये च शास्त्रदीपिकामधीयाना अध्यापयन्तश्च सन्तस्तत्र तत्र शुद्धिपत्रतोऽप्यधिका अशुद्धीरुपलभमानास्ताः संकलय्य यदि मामनुगृह्णीयुस्तद्दानेन तर्हि निष्कारणदयाभाजनमात्मानं मंस्ये इति।

■

१. एतेन चिकीर्षिताया वृत्तेर्भर्तृप्रपञ्चभाष्येणागतार्थत्वमुक्तमिति। (भर्तृप्रपञ्चभाष्याद्विशेषान्तरमाह—अल्पग्रन्थेति)

जैमिनिसूत्रवृत्तिभूमिका

पर्वतीयश्रीनित्यानन्दशर्मा

[१]इह खलु सर्वेषां प्राणिनां सुखाय प्रवर्तमानानां तत्साधनानि प्रतिपित्सूनां दुःखसाधनानि जिहासूनां क्षणिकप्रीतिसाधनेषु बहुलदुःखपरिणामेषु कर्मसु रागौत्कट्येन सुखसाधनत्वमात्रमनुसंदधानानामैहिकसुखोपभोगतत्पराणामायाससाध्येषु हितपरिणामेषु मोहावरणेन तत्त्वमनवगच्छतामालस्यादिना ततो निवृत्तानां हेतुवादमवलम्बमानानां स्थूलदेहे आत्मत्वभ्रमवतामामुष्मिकमपरिगृह्णतां तस्मिन् संदिहानानां च पुनः पुनर्दुःखार्णवे निमज्जतामपि असंविदानानां स्वातन्त्र्यमधिगच्छतां नरकं पिपतिषूणामुद्धाराय परमकारुणिको भगवान् जैमिनिः तेषां यथाधिकारं वैदिककर्मकलापप्रवृत्तिप्रवणत्वं संपादयिष्यन् वेदप्रामाण्यं व्यवस्थाप्य द्वादशलक्षण्या तदर्थमध्यवासाययत्। तस्याश्च दुरवगमतया मन्दमतीनां ततोऽनवबोधमालोच्य भाष्यकारादयस्तां व्याचक्षते। सर्वेष्वेव भाष्यादिग्रन्थेषु प्रायः वैदिकवाक्यानि प्रदर्श्य संदेहाक्षेपसमाधानान्येवाधिकरणाङ्गानि प्रदर्शितानि, न तु सौत्राणि पदानि विगृह्य व्याख्यातानि। तदेतां न्यूनतां परिजिहीर्षू रामेश्वरसूरिः मन्दतमानां सूत्राक्षरार्थं बुभुत्सूनामुपकाराय सुबोधिन्याख्यां वृत्तिमरचत्। परमोपकारकस्याप्यस्य ग्रन्थस्य मुद्रणं विना दुर्लभतया आधुनिकानां सौत्राक्षरार्थयोजने क्लेशमालक्ष्य परोपकाराय बद्धपरिकरैः मुद्रणायोद्युक्तैः काशिकराजकीयप्रधानपाठालयाध्यक्षैः **श्रीयुतवेनिससाहेबमहाशयैः** एतद्ग्रन्थशोधनाय प्रवर्तितोऽहं पूर्वं तारकाश्रममठस्थमेकमेवाशुद्धिबहुलं पुस्तकमुपलभ्य इदं कार्यं प्रारभे। कतिपयभागमुद्रणानन्तरं चोपकारव्रतनिष्ठतया संस्कृतविद्यापुस्तकसङ्ग्रहरसिकस्य **श्रीयुतगोविन्ददासगुप्तमहाशयस्य** पुस्तकालयाद् द्वितीयं नातिशुद्धं पुस्तकमुपलभ्य स्थलविशेषेषु शाबरभाष्येण श्रीद्गुरुचरणैश्च संशयमपाकार्य यथामति अशोधये। मुद्रितं च पुस्तकं पुनर्निरीक्षमाणो बह्वीरशुद्धीरुपलभ्य संकलय्य च शुद्धिपत्रे न्यवीविशम्। अथापि मम प्रमादेन अर्थानवबोधेन सीसकाक्षरयोजकदोषेण वा सञ्जाता अशुद्धीरुपलभ्य बोधयन्तु गुणैकपक्षपातिनो दोषज्ञा विद्वांसः। ग्रन्थसमाप्तिकालश्च—

नन्दबाणाद्रिभूशाके शुच्यां भूते सिते रवौ।
रचितो ग्रन्थसंदर्भो विश्वेशचरणेऽर्पितः॥

इति दशमाध्यायान्ते,

खर्तुशैलेन्दुसंख्याके शाके फाल्गुनमासके।
सिते पक्षे दशम्यां श्रीविश्वनाथप्रसादतः॥
रामेश्वरः प्राप्तमतिस्तन्त्राध्यायस्य वृत्तिकाम्।

---

१. पं. १८९९।

इत्येकादशाध्यायान्ते,

क्ष्मर्त्वद्रिक्ष्मामिते शालिवाहशाकेऽविमुक्तके।
सहस्यसितपक्षेऽथ द्वितीयायां रवौ निशि॥
रामेश्वरः सूत्रवृत्तिं निर्मायाथ यथामति।
अन्नपूर्णाविश्वभर्तृचरणेऽर्पितवानिमाम्॥

इति ग्रन्थान्ते च द्वितीयपुस्तके उपलम्भाद् एकषष्ट्युत्तरसप्तदशशततमः १७६१ शकाब्दः स्पष्टमेवावगम्यते। तारकाश्रममठस्थपुस्तके ग्रन्थान्ते शितिकण्ठभट्टविरचितायामिति लेखस्तु एतद्विरोधाद् ग्रन्थकर्त्रज्ञानमूलक एव। अत एव तत्पुस्तके पादान्तेऽध्यायान्ते च न ग्रन्थकर्त्तुरुल्लेखः। द्वितीयपुस्तके च पादान्ते अध्यायान्ते च सर्वत्र **रामेश्वरसूरेरुल्लेखो** दृश्यते श्लोकाश्चैते उपलभ्यन्तेऽतो रामेश्वरसूरेरेव कर्तृत्वं निश्चीयते।

मुद्रितपुस्तकस्यादौ शितिकण्ठभट्टकृतेत्युल्लेखोऽपि तदानीं द्वितीयपुस्तकानुपलब्ध्या मठस्थपुस्तकपर्यालोचनमूलक एव।

ग्रन्थान्ते तदुल्लेखस्तु तन्मुद्रणकाले द्वितीयपुस्तकोपलब्धावपि मुद्रणार्थं प्रथमपुस्तकादेव पुस्तकस्य लेखितत्वात् शोधनसमये प्रमादाच्च स्थित इत्युपरम्यते बहुलेखनेनेति शम्।

■

योगचन्द्रिकायाः प्रस्तावना

श्रीबेचनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[१]यमनियमरताः परं पुमांसं हृदि कलयन्ति समाधिभिर्यमद्धा।
तमखिलनिगमोक्तिसारभूतं प्रकृतिपरं परमेश्वरं नमामि ॥१॥
अधुना मधुनो रिपुणा प्रेरितमनसा मया व्यतर्कीदम्।
मुक्तेः साधनविद्या सम्प्रति मुद्र्या वरीयसी या स्यात् ॥२॥
न कर्णधारेण विना कथञ्चित् तरिः सरित्पारमुपैति नूनम्।
तथावलम्बेन विनेश्वरस्य जनो न यायाद् भवसिन्धुपारम् ॥३॥
ब्रह्माहमस्मीति विचारदक्षोऽप्यनेकजन्मार्जितपुण्यपापः।
विवेकशास्त्राश्रयमात्रयोगी विघ्नैरनेकैर्बहु बाध्यमानः ॥४॥
अतो निरालम्बपथं विहाय वेदान्तशास्त्रादिमनादिसिद्धः।
परेश्वरो वस्तुत एव यत्र निरूप्यते मुद्रयितुं तदीहे ॥५॥
तथाविधं वेद्मि च योगशास्त्रं परं तु धीरैर्गहनत्वमाप्तम्।
व्याख्यातृभिस्तत् प्रथमं समस्तसूत्रार्थमात्रप्रतिपादयित्रीम् ॥६॥
अनन्तविद्वद्वरसंप्रणीतां सुखेन साध्यां लघुतोऽपि लघ्वीम्।
प्रस्तौमि योगादिकचन्द्रिकाख्यामेकेन मासेन समापनार्हाम् ॥७॥

श्रीमत्सर्वनरेन्द्रमौलिमुकुटालङ्कारसर्वेश्वरी-
सम्बन्धादधिकाशि काशिततमे पाठालये शोभते।
भारत्याः सदनं वरं सुमनसामेनां दुरापां ततः
प्राचीनामलभिष्यहं सुविमलां तस्मादियं मुद्र्यते ॥८॥

काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयीयसंख्यावान्।
गौरीग्रामनिवासी बेचनरामोऽस्म्यहं कान्यकुब्जः ॥९॥

■

---

१. पं. ३ न्यू सि. (सितम्बर २, १८७८) २१६-१७.

योगचन्द्रिकाया उपसंहारः

श्रीबेचनरामशर्मा
साङ्ख्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[१] श्रीभोजराजरचनाविदनन्तनाम्ना तत्रत्यवल्गुवचनेषु कियद् गृहीत्वा।
दृष्टान्तजातमपहाय विहाय वादं सूत्रार्थमात्रविवृती रचितास्ति येयम् ॥१ ॥
विश्वम्भरस्य कृपया परमेश्वरस्य सेयं मया लघुतमेति धिया व्यमुद्रि।
पश्येयुरच्छसुधियः सदसद्विवेके दक्षास्ततो मम भवेत् सफलः प्रयासः ॥२ ॥
तद्भोजराजभवदेवगणेशवृत्तीरालोच्य भाष्यभणितानि तथा विमृश्य।
पाठान्तराणि विधृतानि मयाधिसूत्रं यानि स्युरेव विदुषामुपकारकाणि ॥३ ॥
यादृक् पाठो येन पूर्वं गृहीतस्तादृक् पाठस्तस्य वर्यो विभाति।
नैतन्न्याय्यं किन्तु सिद्धान्त एष व्याख्यापाठं वक्ति यं स प्रमाणम् ॥४ ॥
तस्माद् व्याख्यायां मया दर्शि यादृक् तादृक् पाठः स्थापितो वित्त विज्ञाः।
अस्मिन् भ्रान्तिश्चेन्मम स्यात् कदाचित् क्षान्तिः कार्या शान्तिमद्भिर्भवद्भिः ॥५ ॥
सूत्रं भाष्यं नैव निर्णेतुमीशा भाष्यं सूत्रं भ्रान्तितः केचिदूचुः।
एतद् विज्ञैः पाठनिर्देशकाले टिप्पण्या मे तत्र तत्रावधार्यम् ॥६ ॥
काशीस्थराजकीयप्रधानपाठालयीयसंख्यावान्।
सांख्याध्यापनकारी बेचनरामोऽस्म्यहं कान्यकुब्जः ॥७ ॥

■

---

१. पं. ३ न्यू सि. (सितम्बर २, १८७८) २५५-५६.

॥ॐ श्रीपतञ्जलये नमः॥

योगवार्तिकभूमिका

श्रीरामकृष्णशास्त्री
श्रीकेशवशास्त्री

[1]अथ धर्मार्थकाममोक्षाणां नित्यनिरामयानन्दरूपत्त्वान्मोक्षस्यैव परमपुरुषार्थत्त्वं श्रुतिस्मृतिपुराणादिभिः प्रतिपाद्यते। स च स्वरूपमात्रेणावस्थानमेवेति च। तच्च नित्यसिद्धमपि स्वरूपं प्रकृतितो विविच्य ग्रहीतुमसमर्थानामविवेकिनामसिद्धवद्भाति। यतस्ते प्रकृतिगुणैराकुलेक्षणाः सन्त आत्मानं कर्तृत्त्वभोक्तृत्त्वादिभिर्विविधैः परधर्मैरेव प्रतिपद्यन्ते। न तान् शतान्यपि श्रुतिस्मृतियुक्तीनामात्मतत्त्वं ग्राहयितुं पारयन्ति। तानेवंविधान् विमर्शमात्रेणात्मस्वरूपमात्रमवगन्तुमशक्यं मन्यमानांस्तदुद्धरणयोग्येनैवोपायान्तरेणोद्दिधीर्षुर्भगवान् पतञ्जलिः साङ्गोपाङ्गं योगमनुशासतीं चतुष्पादीं प्रणिनाय। तस्याश्चातिसङ्क्षिप्ततया समग्रशास्त्रप्रमेयग्रहणासमर्थान् जनानुपचिकीर्षुः परमकारुणिको भगवान् व्यासदेवो भाष्यमारचयाञ्चकार। तदपि निगूढार्थातिप्रौढसङ्क्षिप्तोक्तिनिबद्धतया जनानां दुर्बोधमालोक्यानायासतो यावत्तदभिप्रायावगतये सकलतन्त्रस्वतन्त्रधिषणैः सांख्यप्रवचनभाष्यकारैर्विज्ञानभिक्षुभिः सविस्तरप्राञ्जलोक्तिमयं योगवार्तिकं नाम तस्य व्याख्यानमुपनिबबन्धे। तमिमं ग्रन्थं यथार्थभाष्यतात्पर्यप्रदर्शकं विविधशङ्कासमाधिघटितं परापरमतखण्डनमण्डनमण्डितं सांख्यसिद्धान्तातिव्युत्पादकं सकलविपश्चिज्जनविनोदकं चालोच्य काशिकराजकीयप्रधानपाठशालायां प्रधानाध्यक्षैः श्रीमद्डाक्तरजीथिबोसाहबैः सांख्याचार्यपरीक्षाविषयवर्गे सन्निवेशितमपि पुस्तकदौर्लभ्याद्वैपुल्येन पठनपाठनाद्यगोचरीभूतमिवालक्ष्य तत्पुस्तकवैपुल्यसंपत्तये तस्य मुद्रणमेव श्रेयो मन्यमानैरुक्तमहाशयैः पण्डितपत्रे तन्मुद्रणायावां प्रावर्त्त्यावहि। ततश्चावामेकं पुरातनं वार्त्तिकपुस्तकमपरे च द्वे नवीने प्रत्यन्तरे कथञ्चित्संपाद्य तैश्च महता परिश्रमेण पाठशालापुस्तकं संशोध्य तत्र तत्र यथासम्भवमिलितान् पाठभेदान् प्रदर्शयन्तौ तन्मुद्रणमारभावहे। प्रार्थयावहे चादौ श्रीजगदीश्वरमावयोरिष्टसाधनेन परिश्रमं सफलीकर्तुं विदुषश्चास्मत्प्रमादतो यत्र कुत्रापि पतितानि स्खलितानि नौ बोधयितुम्।

१ जनवरी, १८८३ ईस्वी.

---

१. पं., ५ न्यू सि. (१८८३) ३९-४०.

ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तस्य भूमिका

पण्डितश्रीसुधाकरद्विवेदी

नित्यं श्रीजानकीजानिर्जयतीह जगत्पतिः।
अनन्तो जगदाधारशेषोऽभूद्यस्य सेवया॥

अयं ब्रह्मगुप्तोऽस्य सिद्धान्तस्य २४ अध्याये पृ. ४००—

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपालात्।
पञ्चाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः॥
ब्राह्मः स्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन॥

इति लेखानुसारेण शके ५२० प्रादुरभूत्। अत्र 'जिष्णुसुत' इति लेखात्, तथा—

शशिदृक् पार्थं यद्द्वित्रिभलग्नेषुणाऽत्र संस्करणम्।
जिष्णुजमतं तदुक्तं न मन्मतं वच्मि युक्तिमिह॥

इति भास्करीयगणिताध्यायसूर्यग्रहणाधिकारवचनाद्भास्करग्रन्थे बहुत्रैतादृग्लेखाच्चास्य पिता विष्णुगुप्त एवात्र न संशयः। बहूनां मतेऽयं विष्णुगुप्तस्य पौत्रो गुप्तपदान्ताद्वैश्य-कुलोद्भूतो रीवानगराधिपतेर्व्याघ्रभटेश्वरस्य प्रधानज्यौतिषी किलासीत् (द्रष्टव्या गणकतरङ्गिणी पृ. १६-१७)।

संप्रति यूरपदेशीयविदुषामन्वेषणेन गुर्जरदेशमध्ये भिनमालनामग्राम एवास्य जन्मस्थानं सिध्यति। (See, Indian Antiquary, XVII., p. 192, July, 1888.)

श्रूयते चास्य महाकरणस्य खण्डखाद्याख्यस्य टीकायां वरुणकृतायामाचार्यविशेषणं 'भिल्लमालकाचार्य' इति। अस्माद्गुर्जरदेशीयगणकानां मुखकथातोऽपि ब्रह्मगुप्तस्य जन्म-स्थानं भिल्लमालकः सम्प्रति भिनमालनाम्ना प्रसिद्ध एव सिध्यति।

अयं भिनमालनामा ग्रामो गुर्जरदेशोत्तरसीम्नि मालव(मारवाड)देशतो दक्षिणभागे, आबू-पर्वतलूणीनद्योर्मध्ये तत्पर्वताद्वायुकोणे पञ्चयोजनान्तरे सम्प्रति प्रसिद्धः।

तन्त्रपरीक्षाध्याये पृथूदककृतटीकायां कुलशोभेयमाचार्यस्येति लेखात् (द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य १६७ पृष्ठम्) मन्मतेऽयं नीचानां भिल्लादीनां पुरोहितोऽतो भिल्लमालकाचार्यत्वेन प्रसिद्धो नीचकुलोद्भूतः। न हि देशस्य कश्चिदाचार्यो भवतीति भृशं बुद्धिमद्भिर्विचिन्त्यम्।

१. पं. २४, न्यू सि. १२ (दिसम्बर, १९०२) १-८.

सम्प्रत्युपलब्धताम्रपट्टादिलेखाद्गुर्जरदेशे ख्रीष्टशक ७५६- ९४१ मध्ये चावडवंशीया राजान आसन्, तथा चीनदेशीयहुएनसंग- (Hieun Thsang) चरलेखानुसारेण तेषां राजधानी च 'भिलमाल' आसीदित्यत्र न संशयः। चावडवंशीया एव ब्रह्मगुप्तोक्तचापवंशीया राजान इतीतिहासतत्त्वविदामनुमितिः। मन्मते चापवंशीयो व्याघ्रमुखनामा कश्चिन्नरपतिः सिन्धु- (पञ्जाब) देशे बभूव (See, Archaeological Survey of India Reports, Vol. XIV., p. 65, Sunit)

यद्वंशीयाः सप्तदशमुद्राः सिन्धु- (पञ्जाब) देशे लुधियानानामस्थाने चोपलब्धास्तथा यन्निदेशतः कश्चिद्विद्वान् बगदादनगरे खलीफाआलमन्सूरनिकटे जगाम। (See, Alberuni's India by Dr. E.C. Sachau, Vol. II., p. 15.)

इदानीमपि ब्रह्मगुप्तस्य करणग्रन्थो बहुत्र सिन्धु- (पञ्जाब) देशे प्रसिद्धः। तदीयकरणखण्डखाद्यानुसारेण सारणीतो बहुत्र तद्देशे गणकाः पञ्चाङ्गं च रचयन्ति।

एतत्कृतस्यास्य सिद्धान्तग्रन्थस्यैका प्रतिः काशिकराजकीयपाठालयतो द्वितीया डॉ. थिबोसाहिबमहाशयतस्तृतीया चायोध्यानरेशप्रधानज्योतिर्विच्छ्रीयज्ञदत्तशर्मणो मया लब्धा। डॉ. थिबोमहाशयस्य पुस्तकं कस्यचिद्दक्षिणदेशीय- (Deccan College, Poona) डे. का. पुस्तकस्य प्रत्यन्तरम्। इदं पुस्तकं तथा पण्डितश्रीयज्ञदत्तपुस्तकं चैकमातृकमेव। इदं पुस्तकत्रयमतीवाशुद्धं बहुत्र स्खलितं चास्ति।

यत्पुस्तकानुसारेण व्यक्ताव्यक्ताध्याययोर्द्वादशाष्टादशसंख्ययोराङ्ग्लभाषायामनुवादः कोलब्रुकसाहिबेन कृतस्तत्पुस्तकमेतत्त्रयतो भिन्नमित्यसंशयं विभाति पाठविभेदात्। तत्पुस्तकस्य कुट्टकाध्यायः संप्रति इण्डिया-आफिस-सरस्वतीभवने वर्त्तते। (See, Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Library of India Office, Part V., P. 995)

पृथूदककृताऽस्य सिद्धान्तस्य टीका[१] या कोलब्रुकसाहिबेन भारतवर्षे ह्युपलब्धा सा च सम्प्रति लण्डननगरे इण्डिया-आफिस-सरस्वतीभवने वर्त्तते। तस्या एका प्रतिर्मद्द्वारेण डॉ. थिबोसाहिबमहाशयेनोत्पादिता, साऽपि संप्रति मन्निकटेऽस्ति। अहो इण्डिया-आफिस-सरस्वतीभवने अस्य पुस्तकस्य पुटकबन्धनकालेऽनवधानतया पत्राण्यसङ्गतानि जातानि, बहुत्र खण्डितानि च सन्ति। तानि कदाचिदनुपयुक्तपत्राणां मध्ये स्युरिति तेषां सम्यगन्वेषणं

१. इदं पुस्तकं कस्यचिन्मैथिलाक्षरैर्लिखितस्य पुस्तकस्य प्रत्यन्तरमिति निःसंशयं प्रतिभाति। ११ पत्रे ९ इत्यस्य स्थाने ७ इति लेखात्। एवमन्यत्रापि। विसर्गात् परतः 'क'स्थाने 'क्व' इति लेखात्। यथा १२ पत्रे ६ पङ्क्तौ। तथा विसर्गस्थाने 'ष' इति लेखात्, यथा १२ पत्रे १ पङ्क्तौ। वाक्यविरामेऽपि सन्धिकरणात्। यथा गोलाध्यायस्य २१ पत्रे २ पङ्क्तौ 'सर्वमुपपन्नमुक्तमखण्डेन। कुत्रचित् 'न्त' स्थाने 'नू' इति लेखात्। एकस्मिन् पत्रे मैथिलाक्षरे 'श्रीगणेशाय नमः' इति लेखाच्च।

समुचितम्। (See, Catalogue of The Sanskrit Manuscripts in the Library of India Office. Part V., p. 993-995.)

मया महताऽऽयासेन तत्रति-पाठक्रम एवं नियोजितः—

गोलाध्यायभाष्यम् १-४५ आदौ खण्डितम्।

मध्यमाधिकारभाष्यम् ४५-५९।

अत्र मध्यमाधिकारे ३१ श्लोकपर्यन्तमेव भाष्यम्।

ततः स्पष्टाधिकारस्य २९ श्लोकतष्टीकाऽऽरब्धा ६० पत्रतोऽत्र प्राचीनसंख्या पत्रोपरि १, तथा ११५।

अग्रेऽत्र ६८ पत्रमसङ्गतम्, यत्र प्राचीनसंख्या ९।

ततः ८७ पत्रपर्यन्तं संलग्नग्रन्थस्त्रिप्रश्नाधिकारस्य ६ श्लोकपर्यन्तं टीका। अत्र प्राचीनपत्रसंख्या २८। ततस्त्रिप्रश्नाधिकारस्य २७ श्लोकतष्टीका, पत्रसंख्या प्राचीना १ तथा १५९, नवीना २१८। अग्रे संलग्नग्रन्थस्य त्रिप्रश्नाधिकारस्य ३३ श्लोकपर्यन्तं टीकाऽन्तिमपत्रप्राचीनसंख्या ५ तथा १६३, नवीना संख्या च २२२। ततश्चन्द्रग्रहणाधिकारस्य ४ श्लोकटीकाऽऽरब्धा प्राचीनपत्रसंख्या १ तथा २९७। नवीना संख्या च २५७। ततः सूर्यग्रहणस्य २३ श्लोकपर्यन्तं टीका। अन्तिमप्राचीनपत्रसंख्या ३६ तथा २३२, नवीनसंख्या च २९२। इण्डिया-आफिस-पुस्तकपुटके चेयमन्तिमपत्रसंख्या। ततो ग्रहयुत्यधिकारस्य ११ श्लोकतष्टीकारब्धा, यत्र प्राचीनपत्रसंख्या १ तथा १६४, नवीना संख्या २२३। ततो मध्यगत्युत्तराध्यायस्य ४० श्लोकपर्यन्तं संलग्नग्रन्थो यत्रान्तिमप्राचीनपत्रसंख्या ११९, नवीना संख्या च १७८। ततो मध्यगत्युत्तराध्यायस्य ४५ श्लोकटीकाऽऽरब्धा। अत्र प्राचीनपत्रसंख्या १२० नवीनसंख्या च १७९। ततस्त्रिप्रश्नोत्तराध्यायस्य५६ श्लोकपर्यन्तं टीका। अत्रान्तिमप्राचीनपत्रसंख्या ४६ तथा १५८, नवीना संख्या च २१७।

एवमत्र खण्डितगोलाध्यायस्य। खण्डितमध्यमाधिकारस्य। खण्डितस्पष्टाधिकारस्य। खण्डितत्रिप्रश्नाधिकारस्य। खण्डितचन्द्रग्रहणाधिकारस्य। खण्डितसूर्यग्रहणाधिकारस्य। खण्डितग्रहयुत्यधिकारस्य। भग्रहयुत्यधिकारस्य। तन्त्रपरीक्षाध्यायस्य (दूषणाधिकारस्य)। गणिताध्यायस्य (पाटीगणितस्य)। खण्डितमध्यगत्युत्तराध्यायस्य। स्फुटगत्युत्तराध्यायस्य। खण्डितत्रिप्रश्नोत्तराध्यायस्य च टीका वर्त्तते।

सर्वेष्वपि पुस्तकेषु 'संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादियन्त्रेभ्यः' इत्यादिश्लोको मध्यमाधिकारे नास्ति। मया गणकतरङ्गिण्यां मल्लारिकृतग्रहलाघवटीकातो व्यलेखि (द्रष्टव्या—गणकतरङ्गिणी, पृ. १८-१९)।

उपलब्धमूलपुस्तकत्रये पञ्चविंशतितमेऽध्याये वस्तुतो ब्रह्मगुप्तकृतो ध्यानग्रहोपदेशाध्यायो वर्त्ततेऽतो मयाऽयं पृथक्त्वेन तन्नाम्ना मुद्रितः। अत्र बहुत्र स्खलितानि पदानि तानि गणितेन संशोध्य मुद्रितान्यपि सुधीभिर्भृशं विचिन्त्यानि।

अस्य सिद्धान्तस्य चतुर्विंशतितमेऽन्तिमे संज्ञाध्याये (पृ. ४०८)—

गणितेन फले सिद्धिर्ब्राह्मे ध्यानग्रहे यतोऽध्याये।
ध्यानग्रहो द्विसप्ततिरार्याणां न लिखितोऽत्र मया॥

इति नवमश्लोकेन ध्यानग्रहोपदेशाध्यायस्य रचनैतत्सिद्धान्तरचनातः पूर्वं विभाति; परन्तु तत्राहर्गणसाधनप्रकारेण सिद्धान्तरचनाकाल एवास्य रचना सिध्यति, तथा 'नवतिथयोऽष्टिविभक्ता' इत्यादिगद्येन खण्डखाद्यरचनातः पश्चात् सिध्यति।

मन्मते केनचिदनभिज्ञेनेदं गद्यं प्रक्षिप्तं वस्तुतः खण्डखाद्यश्लोका ये मया टीकायां लिखितास्ते ध्यानग्रहोपदेशाध्यायस्था एव पश्चादाचार्येण लाघवार्थं खण्डखाद्ये च पुनर्लिखितास्त इति।

अस्य सिद्धान्तस्य द्वादशाध्याये गणिताध्याये पाटीगणितरूपे मया पाठकानां विनोदाय निजटीकायां चतुर्वेदाचार्यपृथूदकटीकात उदाहरणानि संहृत्य लिखितानि। अष्टादशाध्याये कुट्टकाध्यायसंज्ञे च कोलब्रुकानुवादानुसारेण द्वित्राणि त्रुटितवृत्तानि नूतनानि तदर्थबोधकानि रचितानि तथा तदीयाः सूत्रसंख्याश्च सर्वत्र विलिखिताः। विंशतितमाध्यायस्य छन्दश्चित्युत्तराभिधस्याशयः सम्प्रति मनसि न स्फुरति। अतो मूलग्रन्थोपलब्धा आर्या एव विलिखितास्ताश्च बुद्धिमद्भिर्भृशं विचिन्त्यास्तदर्थतोऽहमप्यनुग्राह्योऽन्येष्वपि सर्वेष्वध्यायेषु मत्संशोधितान्यपि पदानि पुनर्विचारणीयानीति बुद्धिमत्सु सुजनेषु मदीयाऽभ्यर्थना।

अत्र ग्रन्थे भग्रहयुत्यधिकारसमाप्तिपर्यन्तं ग्रन्थसंख्या ३७९ (द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य १४४ पृ.)

तन्त्रपरीक्षाध्याये ग्रं. सं.	६३	
गणिताध्याये	६६	
मध्यगत्युत्तराध्याये	४८	(आचार्यलेखानुसारेणात्रैकार्यात्रुटिः)
स्फुटगत्युत्तराध्याये	५५	(आचार्यलेखानुसारतोऽत्रैकार्याऽधिका)
त्रिप्रश्नोत्तराध्याये	६०	
ग्रहणोत्तराध्याये	४७	(आचार्यलेखानुसारतोऽत्रैकार्याऽधिका)
शृङ्गोन्नत्युत्तराध्याये	१०	
कुट्टकाध्याये	१०२	(आचार्यलेखानुसारतोऽत्रैकार्यात्रुटिः)
शङ्कुच्छायादिज्ञानाध्याये	२०	
छन्दश्चित्युत्तराध्याये	१९	(आचार्यलेखानुसारेणात्रार्यात्रयत्रुटिः)
गोलाध्याये	७०	

यन्त्राध्याये	५०	(आचार्यलेखानुसारेणात्रार्याचतुष्टय-मधिकम्)
मानाध्याये	१२	
संज्ञाध्याये	१३	
सर्वश्लोकसंख्या	१०२१	

आचार्यलेखानुसारेण सर्वश्लोकसंख्या १०२०। अत्र संज्ञाध्यायस्योपसंहारश्लोकं हित्वा द्वादशार्या हीनाः क्रियन्ते तर्हि १००८ इयमाचार्योक्ता संख्याऽऽयातीति बुद्धिमद्भिर्विचिन्त्यम्। (द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य पृ. ४०८)

ध्यानग्रहोपदेशाध्याये "नवतिथयोऽष्टिविभक्ता इत्याद्यार्याषट्कं खण्डखाद्याच्चिन्त्यमित्यत्र षट्कस्थाने सप्तकं भवेत्। तर्हि उपसंहारश्लोकं हित्वा द्वासप्ततिरार्याणां भवति।

खण्डखाद्ये वस्तुतः ६-७ श्लोकौ चालनसाधकावेवम्।

'मिश्रेष्टान्तरगुणिता भुक्तिर्दिवसे निशादले प्रथमे।
रात्र्यर्धेऽभीष्टान्तरहता परे त्विष्टमिश्रयोगेन॥
मिश्रेणोदयकाले रात्र्यर्धेनास्तमयकाले।
षष्ट्या विभज्य लब्धं विशोध्य तात्कालिको भवति' ॥

षट्कपदानुरोधान्मया प्रथमार्यापूर्वार्द्धं द्वितीयोत्तरार्द्धं चोपयुक्तं गृहीत्वैकार्या षष्ठी मूलग्रन्थे स्थापितेति सुधीभिरूह्यम्।

यत्सिद्धान्तभवप्रकारविलसत्सत्सूत्ररत्नाकराद्-
द्वित्राणि श्रमतः समालभत तत्सूत्राणि विद्भास्करः।
तेने तैश्च शिरोमणिं निजगुणैः सांवत्सराणां वर-
स्तस्यामुं तिलकं सुधाकरकृती चक्रे जगन्मोहनम्॥

अनुचितानि पदानि सुबुद्धितो गणितगोलजचारुविचारतः।
बत विशोध्य वदन्तु महोदया इति निवेदयतीह सुधाकरः॥

■

दिङ्मीमांसाया भूमिका

पण्डितश्रीसुधाकरद्विवेदी

सम्प्रति वेदेषु यत्र कुत्रचिन्नक्षत्रवशेन यद्दिक्साधनमुपलभ्यते, तद्वशेन वेदरचनाकालं किल निरूपयन्ति भारतीया यूरपदेशीयाश्च दैशिकाः। तदर्थमेवास्माभिर्यथाबुद्धि ज्ञातध्रुवशरकनक्षत्रवशेन दिग्ज्ञानं कथं भवतीत्यत्र ये ये प्रकारा गोलयुक्त्या भवन्ति ते सर्वे चेह प्रदर्शितास्तेभ्यश्च निर्दिष्टनक्षत्रवशतोऽभीष्टपुरे पलांशाश्चानीता वेदेषु नक्षत्रोदयेन कः कालोऽपेक्षित इत्यस्य सम्यङ् मीमांसा च कृता। यथावदेतदवलोकनेन वैदिकदिक्साधनविषये सर्वमेव स्फुटं भवतीति मदुपरोधतो बुद्धिमद्भिर्भूतो दिक्साधनानयनज्ञानपरायणैर्मध्यस्थबुद्ध्या सदसद्विवेकावलम्बिभिरियं मीमांसा सावधानतया कृत्स्ना निरीक्षणीयेति भृशं तान् महोदयान् नक्षत्रबिम्बोदयज्ञानाभिलाषिणः प्रार्थयते।

■

शाश्वतधर्मदीपिकाया भूमिका

मानवल्ल्युपनामको श्रीगङ्गाधरशास्त्री
साहित्यशास्त्राध्यापकः,
काशीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशालायाम्

[१]साम्प्रतं प्रचरितेषु धर्मशास्त्रनिबन्धेषु वर्णाश्रमधर्मास्तिथिविशेषकृत्यानि च भारतवर्षीय-जनोपकारबद्धदीक्षैः प्रेक्षावच्छिरोरत्नैर्महता परिश्रमेण विविधश्रुतिस्मृतिपुराणैकवाक्यतानि-रूपणपुरःसरं निरूपितानि विजयन्ते। परमिमानि शमदमादिसामान्यधर्मविमुखैर्यथावदाचरि-तान्यपि न संपादयन्ति यथोक्तं फलमिति मन्दादरा इव क्रमेणाविदितानाचरितसामान्यधर्मा वर्णाश्रमधर्मेष्वप्यधुनातना बहवो जनाः। मन्ये चेमे धर्माः सकलश्रुतिस्मृतिप्रभृतिषु भृशं नित्य-तया प्रशंसिता अपि तादात्विकैः सर्वैरिव भारतवर्षीयैराश्रितत्वान्नुताननाचरतां पशुप्रायतया निश्चयान्नु संक्षिप्य नोपदर्शिताः प्राक्तनैर्बुधवरैः। ते च मन्वादिस्मृतिभ्यो महाभारतादिमान्यनि-बन्धेभ्यश्च निष्कृष्य निरूपणीया इति चिरादासीद्वाराणसीस्थसंस्कृतसमाजमधितिष्ठतां महाशयानामाशयः। अत्रान्तरे निखिलमहीपरिपालनार्थमवतीर्णा भगवतः परमेश्वरस्य मूर्तिरिव श्रीमती विजयिनीदेवी नानाविधद्वीपवास्तव्यमनुजमौलिमालिकायमानशासनापि निजैकानुव्रतेषु भारतजनेषु परममनुग्रहमाविश्चिकीर्षुस्स्वीकरोति भारतवर्षराजराजेश्वरीति पदमिति प्रहृष्यतां भारतवर्षीयाणां सर्वेषु नगरेषु प्रावर्तत महोत्सवः। यस्मिंश्च प्रवर्तमाने काशिकायाम्—

आशागजश्रुतिपथातिथिभिः शतघ्नीघोषैर्द्युलङ्घनधियेव चलद्भिरुच्चैः।
सम्राट्सभावसुमतीं समया स्तवैश्च साम्राज्यघोषमयतां व्रजति स्म सर्वम्॥
राज्ञ्याः पदं सककुदं सकलेश्वरेभ्यो भूपाः परं न सममन्वत साधुवादैः।
आशान्तरालविततप्रतिनाददम्भाद्दिक्पालकैरपि सुरैरिदमन्वमोदि॥
पुष्पाञ्जलीन् विसृजतां करकुड्मलेभ्यः कूलङ्कषप्रमदमेदुरमानसानाम्।
साहायकं विदधिरे सपदि प्रजानां पुष्पोपमा वियति काल्पनिकाः प्रदीपाः॥
चित्राम्बुधौ न निरमज्जयदाशु केषां चेतोऽद्भुता वियति दीपततिर्भ्रमन्ती।
दासीभवत्सकलदिग्वनिताकराग्रनीराजनाभ्रममहो हृदये दिशन्ती॥
ये सौखशायनिकतामगमन्नुडूनां नामाक्षरत्वमभजन्त च ये प्रदीपाः।
ते तत्प्रतापमवनौ गगने च सन्तं कस्यान्तरन्तरितबाधमबोधयन्न॥

---

१. पं. (दिसम्बर २, १८७८) ४३०-४३२.

एवंविधे महोत्सवे मिलितेषु परमेश्वरप्रार्थनया महाराज्ञीदैनन्दिनसाम्राज्यसंपदं सभाजयितुं संस्कृतसमाजसभ्येषु **श्रीयुतपण्डितबापूदेवशास्त्रि**मदीयगुरुवर**श्रीद्दबालशास्त्रि**प्रमुखेषु चिराभिलषितं सामान्यधर्मनिरूपणं प्रकृतमहोत्सवस्मारकतया विस्तरपर्यालोचनाक्षमजनोपयोगितया च निश्चिन्वता **श्रीयुतप्रमदादासमित्र**महाशयेन प्रोत्साहितोऽहं प्रावर्तिषि संग्रहीतुं मन्वादिस्मृतिभ्यो महाभारताच्च विशेषतः प्रकृतोपयोगिनो विषयान्। तानिमानतिसंक्षिप्य निबन्धुमुत्सुकोऽपि रामणीयकातिशयेन बहुत्र विवेचनार्हतया चोपयुक्तांशपरिपूरणपुरःसरं किञ्चित्सविस्तरमेव संग्रथ्य समार्पयमुक्तमहाशयेभ्यः। तैश्च सप्रसादमर्हत्येष निबन्धो नानाविधदेशवासिमहाशयनेत्रपात्रतां शक्ष्यति च कृतस्तोकसंस्कृतपरिचयानपि साधु बोधयितुं शमदमादिनित्यधर्माणामवश्यानुष्ठेयतां सोपपत्तिमित्यभिहितो वाराणसेयप्रधानपाठशालाध्यक्ष**श्रीयुतनिस्फिल्डसाहिब**महाशयैर्वितीर्णकाशीविद्यासुधानिधिपत्रद्वारकप्रकाशनानुमतिश्चोपक्रमे क्रमेणामुं मुद्रयितुम्। प्रार्थये च महाशयान् कल्याणौपयिकप्रवृत्तिमन्मादृशाल्पज्ञजनहस्तावलम्बनधुरन्धरान् पूरयितुममुं न्यूनांशबोधनेन संशोधनेन च बुद्ध्यपराधजनितानां दोषाणामनुग्रहीतुं च माममुष्मिन्नयनार्पणायासेनेति।

■

शाकुन्तलनाटकानुवादविमर्शः

श्रीगोविन्ददेवशास्त्री

[१]इह खलु भारते वर्षेऽद्यत्वे प्रचरितानामुत्तमनाटकानामवतंसभूतस्य कविवर-**श्रीकालिदास**प्रणीताभिज्ञानशाकुन्तलाभिधेयनाटकस्योत्तमो रसः केवलं संस्कृतज्ञैरेवाद्ययावदास्वादितो न पुनः प्राकृतजनैरित्येतेष्वत्यन्तं दयमानो मोहमयीनगरनिवासी **घोसालकरोपाह्वगोपालरावः** समग्रस्यास्य नाटकस्य महाराष्ट्रभाषया विरचितमनुवादं मुद्रणद्वारा प्रकाश्यैकं तदीयपुस्तकमेतत्पत्रसंपादकाय काशिकसंस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यक्षाय **श्रीग्रिफिथसाहिबायो**पहाररूपेण प्राहिणोत्। अयं च महाशयोऽस्य ग्रन्थस्य महाराष्ट्रभाषीयातिमञ्जुलपदैर्निबद्धां सुकोमलगद्यपद्यमयीं कवितां दृष्ट्वाऽतिप्रहृष्टान्तःकरणो विशेषतोऽस्य ग्रन्थस्य सदसद्विवेचने मां न्ययुङ्क्त। अहं चाद्ययावददृष्टाश्रुतपूर्वस्य शाकुन्तलीयमहाराष्ट्रभाषीयानुवादस्य दर्शने समुप- जातपरमकुतूहलः सकलमिमं ग्रन्थं सम्यगवाचयं नाध्यगच्छं च कमपि दोषं केवलं केषुचित् स्थलेषु प्राकृतभाषीयरसानुबन्धेनान्येन वा केनचित् कारणेन संस्कृतक्रमस्त्यक्तः, क्वचिच्च ग्रन्थबहिर्भूतोऽप्यर्थोऽतिमञ्जुलपदैरुपनिबद्धस्तदेतदुभयमपि रसिकजनमनःसु प्रमोदततिमेवाङ्कुरयेदिति निश्चिन्वानोऽस्मि। अपरं चात्र भूमिकायां कविवरमुकुटालङ्करणभूतोऽयं कालिदासः सारस्वतब्राह्मण आसीदिति यल्लिखितम्, तत्र किञ्चिद्वक्तुकाम इदमावेदयामि यदत्र मैथिलब्राह्मणेष्वियमस्ति दृढा प्रसिद्धिर्यत्कालिदासो मैथिलब्राह्मण एवाऽऽसीन्नान्यजातीय इत्यतोऽस्य ग्रन्थस्य रचयिताऽवश्यमत्र विषये दृढप्रमाणदानेनापनयत्विमां सुरूढां प्रसिद्धिमितीहमानोऽस्मि। आशासे चैतद्ग्रन्थकर्तुरयमुद्यमः संस्कृतप्राकृतोभयभाषाप्रवीणानां मनःस्वेतद्ग्रन्थस्यानन्ददातृत्वेन सफलो भवेदित्यलं बहुपल्लवितेन।

■

---

१. पं. ४ (मई २, १८७०) २७२.

श्रीकाशीधर्म्मसभाप्रकाशितपरीक्षाविषयादिव्यवस्थितिप्रतिपादक-पत्रसंक्षेपः

पण्डितश्रीशीतलप्रसादत्रिपाठी

[१]परीक्षाया आरम्भः श्रीमत्या भगवत्याखिलभुवनवन्दितचरणकमलया कमलया भक्तजनोपनीतमाघ्यकुसुमाद्युपहारस्वीकारेणानुगृहीतायां माघशुक्लपञ्चम्यां भविता।

अस्मिन् वर्षे वेदव्याकरणज्योतिषन्यायसाङ्ख्ययोगधर्म्मशास्त्रवेदान्तपूर्वमीमांसासर्वदर्शनद्वैतवादकाव्यालङ्कारपुराणेतिहासवैद्यकसंगीतमन्त्रशास्त्रसूत्रकोषकामशास्त्रेषु शतद्वयपरिमितानां छात्राणां परीक्षा भविष्यति।

तत्र वेदे, परीक्षकः श्रीपण्डितबापूभट्टः श्रीपण्डितजयरामभट्टः। माध्यन्दिनशाखाप्रमुखेषु चतुर्षु विषयेषु श्रीपण्डितकृपाकृष्णप्रभृतयोऽन्येऽपि सप्त परीक्षकाः। प्रथमश्रेण्यां पारितोषिकं १०१ रूप्यकाणि, द्वितीयश्रेण्यां पारितोषिकं ३१ रू., तृतीयश्रेण्यां पारितोषिकं ११ रू.। व्याकरणे परी० श्रीपण्डितसखारामभट्टः, श्रीपण्डितचन्द्रशेखरत्रिपाठी। प्र० पा० ५१ रू., द्वि० पा० ३१ रू., तृ० पा० ११ रू.। ज्योतिषे परी० श्रीपण्डितबापूदेवशास्त्री, श्रीपण्डितदेवकृष्णमिश्रः। प्र० पा० ५१ रू., द्वि० पा० ३१ रू., तृ० पा० ११ रू.। न्याये परी० श्रीराधामोहनतर्कभूषणभट्टाचार्य्यः, श्रीताराचरणतर्करत्नभट्टाचार्य्यः। प्र० पा० ५१ रू., द्वि० पा० ३१ रू., तृ० पा० ११ रू.। साङ्ख्ययोगयोः परी० श्रीपण्डितबेचनरामत्रिपाठी, श्रीपण्डितराजारामशास्त्री। प्र० पा० २१ रू., द्वि० पा० ११ रू., तृ० पा० ५ रू.। धर्म्मशास्त्रे परी० श्रीरामदुलारविद्यामणिभट्टाचार्य्यः श्रीपण्डितबालकृष्णशास्त्री। प्र० पा० ५१ रू., द्वि० पा० २१ रू., तृ० पा० ११ रू.। वेदान्ते परी०[२] प्र० पा० ५१ रू., द्वि० पा० ३१ रू., तृ० पा० ११ रू.। पूर्वमीमांसायां परी० श्रीपण्डितहरेकृष्णः, श्रीपण्डितगणेशशास्त्री, श्रीपण्डितनीलदेवः। प्र० पा० ५१ रू., द्वि० पा० ३१ रू., तृ० पा० ११ रू.। सर्वदर्शने परी० श्रीजयनारायणतर्कालङ्कारभट्टाचार्य्यः, श्रीताराचरणतर्करत्नभट्टाचार्य्यः। प्र० पा० ५१ रू., द्वि० पा० ३१ रू., तृ० पा० ५ रू.। द्वैतवादे परी. - - - प्र. पा. ३१ रू., द्वि. पा. २१ रू., तृ. पा. ११ रू.। काव्यालङ्कारयोः परी० श्रीपण्डितशीतलप्रसादत्रिपाठी, श्रीपण्डितरामचन्द्रशास्त्री। प्र० पा० ४१ रू., द्वि. पा. २१ रू., तृ० पा. ११ रू.। पुराणेतिहासयोः परी० श्रीपण्डितभाऊशास्त्री, श्रीपण्डितपरमेश्वरदत्तः। प्र० पा० ४१ रू., द्वि. पा. ३१ रू., तृ० पा० ११ रू.। वैद्यके परी० श्रीपण्डितरामचन्द्रशास्त्री, श्रीपण्डितहरिरामः। प्र० पा० ३१ रू., द्वि० पा० २१ रू., तृ० पा० ११ रू.। सङ्गीते परी०

---

१. पं. ५, ५७ (फरवरी १, १८७१) २३२-३३.

२. अनिर्दिष्टपरीक्षकाभिख्यकासु विद्यासु परीक्षाकाले केचित् सभ्याः छात्रात् परीतुं प्रार्थिता भविष्यन्ति।

. . . श्रीहरिरामवाजपेयी स्वरभेदे परीक्षकः। प्र. पा. ४१ रू., द्वि. पा. २१ रू., तृ. पा. ११ रू.। मन्त्रशास्त्रे परी॰ श्रीपण्डितगौरीशङ्करः, श्रीमदुदयचन्द्रशिरोमणिभट्टाचार्य्यः। प्र॰ पा॰ ३१ रू., द्वि॰ पा॰ २१ रू., तृ॰ पा॰ ११ रू.। सूत्रे परी॰ प्र॰ पा॰ ३१ रू., द्वि. पा॰ ५ रू., तृ.पा. ५ रू.। कोषे परी॰. . . प्र॰ पा॰ ५१ रू., द्वि॰ पा॰ २१ रू., तृ॰पा॰ ११ रू.। कामशास्त्रे परी॰. . . प्र॰ पा॰ ३१ रू., द्वि॰ पा॰ २१ रू., तृ॰ पा॰ ११ रू.।

अथ परीक्षकसहायकाः

श्रीपण्डितदेवदत्तद्विवेदः। श्रीपण्डितवस्तीरामद्विवेदः। श्रीपण्डितविभवरामः। श्रीकालीप्रसादशिरोमणिभट्टाचार्य्यः। श्रीकैलासचन्द्रशिरोमणिभट्टाचार्य्यः। श्रीपण्डितानन्तरामभट्टः। श्रीपण्डितलक्ष्मीनृसिंहशास्त्री। श्रीपण्डितढुण्ढिराजपन्तधर्म्माधिकारी। श्रीपण्डितवेणीरामशेषः। श्रीपण्डितवामनाचार्य्यः।सत्यामपेक्षायामिमे विद्वांसः परीक्षकाणां साहाय्यमवलम्बिष्यन्ते।

अथ परीक्षानिरीक्षकाः

श्रीमान् बाबू ऐश्वर्य्यनारायणसिंहः। श्रीमान् बाबूशिवप्रसादः। श्रीमान् मित्रोपनामको बाबूप्रमदादासः। श्रीमान् बाबूहरिश्चन्द्रः। श्रीपण्डितरघुनाथप्रसादः। एते खलु विश्रुतकीर्त्तयो महामतयो महाशयाः परीक्षाकर्म्मणि कृताकृतावेक्षकाः स्थास्यन्ति।

यथोक्तासु तत्तद्विद्यासु दत्तयथोचितपरीक्षश्छात्रः प्रथमश्रेण्यां "**तद्विद्यापारङ्गतो**" द्वितीयश्रेण्यां "**तद्विद्याप्रवीण**"स्तृतीयश्रेण्यां "**तद्विद्याप्रविष्ट**" इति यथाक्रममुपाधित्रयं लप्स्यते।

तत्रापि प्रतिश्रेणि प्रश्नोत्तरदाने लब्धशतपरिमितयोग्यताबोधकाङ्क "**उत्तम**"श्छात्रस्तच्छ्रेणीनियतं पारितोषिकमुपनामप्रशंसापत्रञ्चेति त्रितयं "**मध्यमश्छात्र**" उपनामप्रशंसापत्रञ्चेति द्वितयं, "**सामान्यश्छात्रः**" केवलं प्रशंसापत्रमधिगमिष्यति।

परीक्षां दित्सवो लोकाः पौषीं पूर्णिमामारभ्य माघशुक्लचतुर्थीं यावत्, पूर्वनिर्द्दिष्टविद्यान्तर्गतस्वेष्टविषयनामनिर्द्देशगर्भं स्पष्टसन्दर्भमधोनिवेशितनिजसत्रं प्रार्थनापत्रं लिखित्वा प्रस्तुतसभाया लेखाध्यक्षाणा[१]मन्यतमस्य समीपं प्रेषयितुमनुज्ञायन्ते।

प्रश्नोत्तरलेखनाद्यवकाशश्च प्रतिदिनं मध्याह्नादुत्तरं घण्टाद्वयवादनमारभ्य घण्टापञ्चकवादनं यावत्।

ब्राह्मणातिरिक्तौ क्षत्रियवैश्यावपि परीक्षां दित्सू तां दातुमनुमन्येते, तौ पुनर्योग्यतानुसारेणोपाधिप्रशंसापत्रे एवाधिगमिष्यतो न तु पारितोषिकम्।

अथ पूर्वनिर्दिष्टपारितोषिकातिरिक्तं पारितोषिकम्

---

१. लेखाध्यक्षाः श्रीपण्डितबालशास्त्री, श्रीपण्डितगयादत्तः, श्रीताराचरणतर्क्करत्नभट्टाचार्य्यः, श्रीमान् बाबू-ऐश्वर्य्यनारायणसिंहः, श्रीमान् बाबूशिवप्रसादः, श्रीपण्डितरघुनाथप्रसादः, श्रीमान् बाबू हरिश्चन्द्रः।

कौथुमशाखायां पाठे व्याख्याने च समर्थाय छात्राय श्रीमान् सर्वजनमान्यः परमवदान्यो बाबू ऐश्वर्य्यनारायणसिंहः १०१ रू. पारितोषिकं प्रदास्यति। श्रीमान् ताराचरणतर्करत्नभट्टाचार्य्यः न्यायशास्त्रस्य प्रथमश्रेण्यां २५ रू., माध्यन्दिनशाखायां पाठे व्याख्याने च समर्थाय गौड़जातीयायान्तेवासिने २५ रू., सङ्गीतशास्त्रस्य प्रथमश्रेण्यां १० रू., पारितोषिकं वितरिष्यति। प्रतिश्रुतञ्च श्रीमता विद्वत्कुलकुमुदचन्द्रेण बाबूहरिश्चन्द्रेण काव्यकामशास्त्रान्यतरस्य प्रथमश्रेण्यां ५० रू., समग्रस्य यजुषः पाठे व्याख्याने च समर्थाय महात्मने १००० रू., वेदान्तशास्त्रे रश्मौ भाष्यप्रकाशे च १०० रू., पारितोषिकं प्रदातुम्। वेदान्तातिरिक्तायाः कस्याश्चिद्विद्यायाः कस्यामपि श्रेण्यां काचिद्वनिता सम्यक् परीक्षां दास्यति चेत् तस्यै श्रीमान् बाबूहरिश्चन्द्रः तच्छ्रेणीनियतात् पारितोषिकादष्टगुणाधिकं पारितोषिकं प्रदास्यति।

एतस्यां माघकृष्णचतुर्दश्यां प्रधानाध्यक्षसंमत्या सभासद्भिः काव्यफलितयोः पृथग्विभागः कृतः, तत्र पारितोषिकाद्यपि पार्थक्येन व्यवस्थापितमिति।

संवत् १९२७ माघकृष्णामायाम्।

भाषान्तरावतारविचारः

पण्डितश्रीशीतलप्रसादत्रिपाठी

[१]यूरपदेशे प्रसिद्धानां तद्देशभाषानिबद्धानां विद्यानां भारतवर्षनिवासिजनोपकृत्यै प्रथमं कस्यां भाषायामवतारः समुचित इति जिज्ञासायां कस्यचिद्यूरपदेशीयविद्याप्रबन्धस्य संस्कृतावतारसाहाय्यमन्तरा भारतवर्षे प्रचरितास्वन्यासु भाषास्ववतारो नातिसमीचीनः, तत्साहाय्येन तु सुसमीचीनोऽतस्तादृशप्रबन्धस्य प्रथमं संस्कृतावतार एव समुचित इत्यस्मदीयं मतम्। यः कोऽपि जीवन्त्या सततं प्रतिपालयन्त्या च संस्कृतवाग्रूपया जनन्या सह भारतवर्षे प्रचरितानामितरवाचामद्यापि विद्यमानं सम्बन्धं न जानाति, तमिदमस्मदीयं मतमसम्भाव्यमिव प्रतिभायात्। स्वल्पेन विचारेण तु तत्रासंभाव्यत्वबुद्धिरपयाति। कस्यचिद्यूरपदेशीयप्रबन्धस्य कस्यामपि प्राच्यभाषायामवतारणे किमतीव काठिन्यमिति प्रश्ने प्राच्यैः प्रतीच्यैश्च विद्वद्भिर्यं कञ्चन विषयमवलम्ब्य महतायासेन कल्पितेषु पश्चात् स्वस्ववर्णनप्रकारेण निबद्धेषु तत्तद्विद्यांशेषु कियत् सारूप्यं कियच्च वैरूप्यमिति निर्णय एव काठिन्यमित्युत्तरम्। विविधा हि शास्त्रसंबन्धिन्यो विद्यासंबन्धिन्यो वा कल्पना विविधान् वर्णनप्रकारान् जनयन्ति। यत्र चैतदुपेक्ष्यते विस्मर्य्यते वा तत्रातीव व्यत्यासो जायते। सम्प्रति भारते वर्षे प्रचरितायां यत्र यत्र भाषायां काञ्चिद्यूरपदेशीयां विद्यामवतारयितुं व्यवसीयते, तत्र सर्वत्र कल्पनायां वर्णने चायं महान् स्वरूपभेद उपलभ्यते। तथा च निखिलस्य भरतखण्डस्योपकृतये प्रचिकाशयिषितः प्रबन्ध एकदा संस्कृतवाण्या सम्यङ्निबद्धश्चेत् तर्हि यदभिलषितं तत् प्रायः सम्पन्नमेव। यथा टङ्कशालाया उपस्थितौ सुवर्णपिण्डैर्दीनारार्द्धदीनारादयो मुद्राविशेषा अनायासेन निर्मीयन्ते, तथा सकलजातीयानां विदुषामुपस्थितौ संस्कृतभाषानिबद्धस्य ग्रन्थस्य भरतखण्डप्रचरितासु सर्वासु भाषासु यस्यां कस्याञ्चिद्वा भाषायामवतारणे न किमपि काठिन्यम्। यदि कस्यचित् सुपरीक्षकस्याधिकारे किमपि पुस्तकमनवद्यायां संस्कृतवाण्यामवतार्य्येत, तर्हि तत्र कस्यापि भ्रान्तिशङ्का नैव जायते। आङ्लभाषातः साक्षादवतारिते तु ग्रन्थे विपरीतग्रहसन्देहोऽभीक्ष्णमुपजायते। अतिशुद्धः संस्कृतेऽवतारितः प्रबन्धो राज्ञः कोषगृहे निहितेन सुवर्णाद्युत्तमधातुघटितेन मानदण्डेन तुल्यः, येन तद्देशे व्यवहृता निखिला अपि पित्तलकाष्ठादिनिर्मिता वस्त्रादिमानदण्डा याथार्थ्येन निर्णेतुं शक्यन्ते। भ्रमवारणायैतदपि वक्तुमुचितं यत् संस्कृतावतारः केवलमर्थस्य याथातथ्यनिर्णयाय निकषोपलत्वेन स्वीकृतः स्यात्, न तु विषयाणां पारिभाषिकशब्दानाञ्चार्पणेन संपादनीयाया भारतवर्षीयभाषास्ववतारणेऽनुसरणीयाया वर्णनरीतेरिति शम्।

■

---

१. पं. ६, ६४ (सितम्बर १, १८७१) ९५-९६.

अत्र भारते वर्षे संस्कृतसरस्वत्या मृतत्वेनोपेक्षणीयत्व-मतखण्डनम्

पण्डितश्रीशीतलप्रसादत्रिपाठी

[१]ये केचन मृतभाषापदेन सामान्यत उपस्थापितमर्थमवलम्ब्य भारते वर्षे संस्कृतवाणी मृतभाषेत्येवं परिगणयन्ति, तेषामयं महान् प्रमादः। दश मनुष्यान् प्रति मृतभाषापदस्य कोऽर्थ इति प्रश्ने नव मनुष्या लोकैर्मातृभाषा[२]रूपेण सम्प्रत्यव्याह्रियमाणा भाषा मृतभाषेत्येवं सहसैवोत्तरयिष्यन्ति। अनेन च लक्षणेन दशसु मनुष्येषु षडवरैर्मनुष्यैस्तादृशी भाषावगम्यते, यस्याः परिशीलनं यदि कथमप्यपेक्षितं स्यात्, प्राधान्येन बुद्धिमज्जनकौतुकार्थमेव; परन्तु स्वल्प एव विचारो यस्य कस्यंचिद्धृदये, पूर्वोक्तलक्षणानुसारेण मृतत्वेन व्यवहर्तुमुचितानां भाषाणां निखिलः संघो न कथयमप्यत्र प्रतिपादिताया विवृते[३]र्गोचर इति विश्वासं जनयितुमलं स्यात्। तथा हि इङ्लण्डदेशनिवासिभिर्लोकैरङ्लोसेक्सनाख्या लाटिनाभिधाना चेति भाषाद्वयमप्येषु दिवसेषु नालभ्यते; परन्तु तयोर्द्वयोरपि मृतभाषापदेन व्यवहारस्तयोस्तुल्यसम्माननार्हत्वद्योतक इति न कथमप्युचितम्। यदि तयोर्भाषयोः सम्प्रतीङ्लण्डदेशे व्याह्रियमाणायां भाषायामुपयोगोऽपेक्ष्येत तर्हि यतस्तद्देशनिवासिनो जनाश्चिरकालात् शब्दात्मकमर्थात्मकं वा किमप्यभिनवं वस्तु नाधिगच्छन्ति, सेयमेङ्लोसेक्सनाख्या भाषा आङ्ग्लभाषाया मृतजननीत्वेन व्यवहृता स्यात्; परन्तु यस्याः प्रसादात् तद्देशवासिनां भाषा प्रतिवर्षं वृद्धिमुपयाति, यन्निबद्धया च विद्यया प्रत्येकवंशपरम्पराया बुद्धिः संस्क्रियते, सेयं लाटीनभाषा जीवन्ती धात्रीवाचरतीत्यत्र न संशयः, यद्यपि परिभाषानुसारेण तस्या मृतत्वेन स्वीकारो रोचतां नाम; परन्तु यद्यनयोर्भाषयोर्मृतभाषेति सामान्यसञ्ज्ञया तिरोहितो भेदो महानस्ति, तर्हि तेनैवानायासशिथिलेनावस्तुघटकधर्म्ममूलकेन सामान्यसञ्ज्ञारूपेण प्रच्छदपटेनात्यन्तमस्फुटैरनेकपुटैः संस्कृतभाषायामप्यावृत्तायां यो भ्रमाविष्टां बुद्धिं नारोहति, सोऽयं भेदो महत्तम इति स्पष्टमेव। अतः संस्कृता वाणी, सर्वेषु गुरुविषयेषु, तादृशादेतत्पत्रपाठकान्नाधिकं मृता, यो ह्यात्मनो जीवितकालानन्तरमपि जीवने सन्देहाभावं दर्शयितुं शक्नुयाच्चेत्, स्वसङ्केतानुसारेण निजमरणानन्तरभाविनीं वृत्तिं परिकल्पयितुं क्षमो भवेदिति शम्॥ [Translated from an article on the Prospects of India, religious and intellectual, Benares Magazine, March, 1849]

■

---

१. पं. ६, ६५ (अक्टूबर २, १८७१) १२४.

२. जन्म स्थाने मात्रादिवृद्धजनव्यवहारादिना गृहीतसंकेतैः पदैर्घटिता भाषा मातृभाषा।

३. विवृतेरिति। यस्याः परिशीलनं यदि कथमप्यपेक्षितं स्यात्, प्राधान्येन बुद्धिमज्जनकौतुकार्थमेवेत्येवंरूपाया इत्यर्थः।

कीर्तिस्तम्भस्थो लेखः

[१]इण्डियनमेलनामकपत्राद् ज्ञायते। सिंहलद्वीपस्थबोन्टोटानगरनिवासी पाल्माङ्युला-नामकनगरस्थायास्तृपिताभिधायाः पुस्तकसंशोधनाय व्यवस्थापितायाः प्रधानधर्माचार्यसभायाः संपादकस्तद्देशीयपाल्युपपदकप्रधानपण्डितेभ्यो वयसा न्यूनोऽपि विद्यया प्रज्ञया चान्यूनो बौद्ध-मतशास्त्रविचक्षणशिरोमणिर्यात्रामूले धर्म्मारामनामको बौद्धाचार्यस्त्रिचतुर्भ्यो वर्षेभ्यो दुःसहक्ले-शकरेण रोगविशेषेण मुहुर्मुहुराक्रान्तकलेवरः शय्यातलगतस्तत्क्लेशमसहमानो भगवतः श्रीबुद्धस्य साचिव्यमिच्छन्निवेमं लोकं विहाय स्वरारुरोह। ह्योऽहं स्थविरसुभूतेः सकाशादिमं वृत्तान्तमश्रौषम्। "तव पियमित्तभूदो वनवासविहारवासी यात्रामूल्ले धम्मारामो नाम थेरो इमस्सिं जनवारिमासे अट्ठावीसत्तिमे दिने रात्तियां परलोकं गदो अहो सव्वो संघारो अणिच्चा त्ति"। तव प्रियमित्रं स्थविरो वन्यैकान्ताश्रमवासी यात्रामूल्ले धर्मारामो नाम अस्मिन् जनवरि-मासे अष्टाविंशतितमे दिने रात्र्यां पश्चिमयामे परलोकं गतः। अहो सर्वः संसारोऽनित्य इति। हाः!!! महदेतत्खेदस्य पदमेतादृशनिःसीमशमदमदयानिधेस्तस्याकाले मरणम्, को नामेदानीं दुरूहतरप्राचीननिबन्धसंशोधनाय व्यवस्थापितां तृपितकाभिधां सभामलङ्कुर्यात्, कश्च तानति-प्रौढान् बौद्धमतनिबन्धान् संशोध्य मुद्रयेत्। ये च स्वीयभाग्योदयोद्रेकेण तमपश्यंस्ते नून-मिदानीं संस्मृत्य संस्मृत्य तदीयामतिसज्जनतां दयालुतां निर्लोभितां परमं पावित्र्यं दृढां चेश्वरे भक्तिमन्यानप्यनेकान् लोकोत्तरांस्तदीयसद्गुणगणान् विगलिताङ्गाः शयनाशने अपि विहाय विनष्टसंज्ञाः केवलं महते शोकाय चिराय भविष्यन्ति। किं बहुना, यदि जगति कश्चन मृत्यो-रुपायोऽभविष्यत्तर्हि के नाम तन्नगरनिवासिनो जनास्तत्रातिनिध्येनातिप्रियतमानपि स्वीयानसून् मृत्यवे समर्प्य तं नारक्षिष्यन्। अहह!!! नूनमूनपञ्चाशद्वर्षस्यास्य मरणं सर्वाणि बौद्धकुलानि तद्द्वीपनिवासिनोऽन्यांश्च जनानवश्यं खेदयति स्म। अहो विषमः कालो यदनवद्यगुणगणा-करस्याकाल एव मरणम्। अशक्याश्च स्वयशोराजिराजितानेकदिगन्तास्तदीयसद्गुणगणाः प्रादेशमात्रेऽत्र वृत्तपत्रे मुद्रयितुमिति। इदं तावत्सानुनयं प्रार्थये जगत्यस्मिन्सुकीर्तनीयगुणगणा-कराणां शिरोमुकुटत्वेन कीर्तनीयस्यास्य स्तुतिपूर्वकं स्मरणं प्रमाणीकरणीयं सहृदयहृदयैरा-यैंरिति।

■

१. पं. ७, ७४ (जुलाई १, १८७२) ५५-५६.

कतिपयप्रश्नविचारः

वेतालोपाह्वो विनायकशास्त्री

पुरा किल श्रीमद्भास्कराचार्यप्रभृतिभिर्विद्वद्भिः सिद्धान्तशिरोमणिप्रभृतयो ग्रन्था विरचितास्तत्र च तैः पूर्वपूर्वशास्त्रेभ्यो लघुभूताः प्रकाराः पूर्वाचार्यानुक्तकतिपयप्रश्नानां नवीनप्रकाराश्च प्रदर्शिताः। अद्यत्वे त्वस्मद्गुरुप्रवरैः श्रीमद्बापूदेवशास्त्रिभिश्चानेके नवीनाः प्रश्नाः सभङ्गाकाः कल्पिताः। किञ्च यत्र यत्र सिद्धान्तग्रन्थेष्वसकृत्कर्मोक्तं तत्र सर्वत्र सकृत्प्रकारेणैव निर्वाहः कृतः। अथ तेषामाज्ञया तत्सविधमधीयानेन मया बहूनां नवीनानां प्रश्नानां भङ्गान् विरचय्य पूर्वोक्तकतिपयप्रश्नानां प्रकारान्तराणि च निर्माय ग्रन्थरूपेणोपनिबद्ध्य कतिपयप्रश्नविचार इति तस्य नामाभिधायि। स चायं प्रबन्धको विद्वज्जननयनगोचरीभूय विद्यार्थिनां च कर्णपदवीमनुसृत्य मदीयं परिश्रमं सफलयतादिति सर्वान् विज्ञापये।

अक्षक्षेत्रप्रकरणम्

संकटां विघ्नराजं च नत्वा गुरुपदद्वयम्।
ध्यात्वा कतिपयप्रश्नविचारः क्रियते मया ॥१॥

अनन्ते त्रिप्रश्ने नभसि यदि हंसा बुधवराः
समुड्डीयास्यान्तं चिरमलभमानाः खलु तदा।
खगोऽत्यल्पीयोऽहं परिचितयथाशक्तिपतनः
समुड्डीये नो किं सकलसुजनप्रार्थनमिदम् ॥२॥

त्रिप्रश्नसिन्धौ गहने विशाले नान्तं न पारं यदवापुरार्याः।
तथापि पोतं चरणौ गुरूणां विधाय तर्तुं मनसि स्पृहा मे ॥३॥

उद्देशकः —

उद्वृत्तशङ्कुं समवृत्तशङ्कुं यद्वा कुजीवामथ तद्धृतिं च।
ज्ञात्वाक्षभां मे वद शीघ्रमग्रामग्राग्रखण्डं च निरीक्ष्य विद्वन् ॥४॥

उत्तरम्—

समशङ्कूर्ध्वखण्डेन हृतादुद्वृत्तशङ्कुतः।
यद्वाग्रकादिखण्डेन भक्तादग्राग्रखण्डतः ॥५॥

---

१. पं. ७, ७६ (सित. २, १८७२) १०३-१०५.

कुगुणाच्च कुजीवोनतद्धृत्या विहतात् पदम्।
रविनिघ्नं पलाभा स्याद् बहुत्रैतत् प्रयुज्यते ॥६॥

उद्देशकः—

अग्रादिखण्डं समवृत्तशङ्कुं ज्ञात्वाथ तद्धृत्त्यपमज्यके वा।
उद्वृत्तशङ्कुं समवेक्ष्य चाग्रां पलप्रभां कोविद मे वद त्वम् ॥७॥

उत्तरम्—

अग्रादिखण्डकृत्या वेदाहतया विहीनो यः।
समवृत्तशङ्कुवर्गो हीनयुतस्तत्पदेन समशङ्कुः ॥८॥
अग्रादिखण्डविहृतः षड्गुणितः स्याद्द्विविधा पलभा।
अग्रोन्मण्डलशङ्कू समशङ्क्वग्रादिखण्डयोः स्थाने ॥९॥
तद्धृत्त्यपमज्ये वा प्रकल्प्य साध्याथवा द्विधा पलभा।
सद्युक्तियुक्तमेतत् प्रोक्तं स्फुटमेव गोलविदाम् ॥१०॥

उद्देशकः—

विद्ध्वोन्नतांशान् सममण्डलस्थे रवौ क्षितिज्यामभिवीक्ष्य शीघ्रम्।
पलप्रभां चेद्बुध बोबुधीषि त्वत्तोऽपरः को भुवि गोलवेत्ता ॥११॥

उत्तरम्—

कुज्यार्धवर्गसहितात् समशङ्कुवर्गा-
न्मूलं ततः किल कुमौर्विकयोनितं स्यात्।
कुज्योनतद्धृतिरतः सुलभा पलाभा
कुर्यात् क्रियां यदि सुधीरिह पूर्वमुक्ताम् ॥१२॥

उद्देशकः—

यो वेत्ति पलभां शीघ्रमग्राकुज्योनतद्धृती।
ज्ञात्वा स गणितारण्यचारी गणककेसरी ॥१३॥

उत्तरम्—

कुज्योनतद्धृतिदलस्य तथाग्रकायाः
कृत्योर्युतेः पदमदक्ष्ण विहीनितं सत्।
कुज्योनतद्धृतिदलेन कुशिञ्जिनी स्यात्
साध्याक्षभात्र कृतिभिः खलु पूर्वयुक्त्या ॥१४॥

क्रान्तिज्याग्राग्रखण्डे सुगणक यदि वा कुज्यकाग्रादिखण्डे
ज्ञात्वा वाग्राग्रखण्डं पुनरथ समवृत्तस्थितेऽर्के तु शङ्कोः।
ऊर्ध्वं खण्डं विलोक्य प्रवद विषुवतीं वीक्ष्य वा क्रान्तिमौर्वीं
बुद्ध्वा चोद्धतशङ्कुं न हि जगति तदा गोलविज्ञस्त्वदन्यः ॥ १५ ॥

उत्तरम्—

अग्राग्रखण्डस्य दलस्य वर्गात् क्रान्तिज्यकावर्गयुतात् पदं यत्।
अग्राग्रखण्डार्धयुतं तदग्रा ततोऽक्षभा पूर्ववदेव साध्या ॥१६ ॥

कुज्याग्रादिमखण्डे क्रान्तिगुणाग्राग्रखण्डयोः स्थाने।
कल्प्ये ततोऽग्रमौर्वी ततः पलाभा च संसाध्या ॥१७ ॥

यदूर्ध्वखण्डं समवृत्तशङ्कोरग्राग्रखण्डं परिकल्प्य साध्या।
अग्रा भवेत् सैव समाख्यशङ्कुः पूर्वप्रकारेण ततः पलाभा ॥१८ ॥

प्रकल्प्य वोद्वृत्तनरं समाख्यशङ्कूर्ध्वखण्डं च तथापमज्याम्।
कुज्योनितां तद्धृतिमत्र साध्यः समाख्यशङ्कुः पलभापि तस्मात् ॥१९ ॥

उद्देशकः —

अग्राग्रखण्डकं यद्वा समशङ्कूर्ध्वखण्डकम्।
विज्ञाय तद्धृतिज्ञाशु विद्वन्नक्षप्रभां वद ॥२० ॥

उत्तरम्—

अग्राग्रखण्डसमवृत्तनरोर्ध्वखण्ड-
वर्गौ च तद्धृतिहतौ घनमूलमाभ्याम्।
स्यात् कुज्यका किल तदूनिततद्धृतिश्च
साध्या ततोऽत्र पलभोक्तवदेव विद्भिः ॥२१ ॥

उद्देशकः —

अग्राग्रखण्डकं ज्ञात्वा समशङ्कूर्ध्वखण्डकम्।
विज्ञाय गोलविज्ञाशु विद्वन्नक्षप्रभां वद ॥२२ ॥

उत्तरम्—

समशङ्कूर्ध्वखण्डेन हतादग्राग्रखण्डतः।
घनमूलं तदर्कघ्नं पलभा भवति ध्रुवम् ॥२३ ॥

उद्देशकः —

ज्ञात्वा समवृत्तनरं यद्वा कुज्योनतद्धृतिं वीक्ष्य ।
ब्रूहि द्रुतमक्षाभां विद्वन्नग्राग्रखण्डज्ञ ॥२४॥

उत्तरम्—

अग्राग्रखण्डकसमं परिकल्प्य पूर्वमुद्वृत्तशङ्कुमथ तेन समाख्यशङ्कुः।
भक्तः फलात् कुरहितात् पदमग्रकाग्रखण्डघ्नमेवमसकृत् परिसाधनीयः ॥२५॥

उद्वृत्तशङ्कुरथ तद्धृतमर्कनिघ्न-
मग्राग्रखण्डमिदमेव पलप्रभा स्यात्।
अग्राग्रखण्डकसमां परिकल्प्य कुज्यां
कुज्योनतद्धृतिरनेन विभाजिताप्तात् ॥२६॥

सैकात् पदं निहतमेतदथाग्रकाग्र-
खण्डेन तत् तु भवति क्षितिमौर्विकैवम्।
तां साधयेदसकृदत्र ततः पलाभा
पूर्वक्रिया यदि भवेद् द्रुतमेव सिद्ध्येत् ॥२७॥

उद्देशकः —

ज्ञात्वाग्रां कुज्यां वा समवृत्तनरोर्ध्वखण्डज्ञ।
पलभां ब्रवीहि तूर्णं चेदक्षक्षेत्रविज्ञानम् ॥२८॥

उत्तरम्—

अग्राग्रखण्डं समवृत्तशङ्कोरूर्ध्वेन खण्डेन समं प्रकल्प्य।
तद्भाजिताग्रा फलतो निरेकान्मूलं हतं तत् समवृत्तशङ्कोः ॥२९॥
ऊर्ध्वेन खण्डेन तदग्रकायाः स्यादाद्यखण्डं त्वसकृत् प्रसाध्यम्।
तदत्र सूर्याभिहतं समाख्यशङ्कूर्ध्वखण्डोद्धृतमक्षभा स्यात् ॥३०॥

समशङ्कूर्ध्वखण्डेन तुल्यां कुजोनतद्धृतिम् ।
प्रकल्प्य तद्धृता कुज्या फलात् सैकात् पदं हतम् ॥३१॥

समशङ्कूर्ध्वखण्डेन भवेत् कुज्योनतद्धृतिः।
असकृत् तां प्रसाध्यातः पलभा प्रोक्तवत्कृते ॥३२॥

उद्देशकः —

उद्वृत्तशङ्कुमग्रादिखण्डं वा वीक्ष्य कोविद।
पलभां तद्धृतिज्ञ त्वमावेदय धिया स्वया ॥३३॥

उत्तरम्—

तद्धृतिसमः समाख्यः शङ्कुः कल्प्योऽथ तद्धृतः।
उद्वृतशङ्कुरेतद्धीनाद्रूपात् पदं यत् स्यात् ॥३४॥
तत् तद्धृत्याभिहतं समशङ्कुः स्यादसावसकृत्।
साध्यस्ततः पलाभा सुलभा पूर्वक्रिया यदि क्रियते ॥३५॥
उद्वृत्तनरस्थाने परिकल्प्याग्रादिखण्डकं तस्मात्।
असकृत् समशङ्कुर्यः सैवाग्रा स्यादथोक्तवत् पलभा ॥३६॥
श्रीबालशास्त्रिविदुषां सविधं पठित्वा प्राक् शब्दशास्त्रमथ तज्जनितावबोधः।
श्रीबापुदेवगुरुवर्यकृपाकटाक्षात्सज्ज्यौतिषं प्रपठतीह विनायको यः ॥३७॥
तन्निर्मिते कतिपयप्रश्नविचाराभिधप्रबन्धेऽस्मिन्।
अक्षक्षेत्रप्रकरणमाद्यं सम्पूर्णतामगमत् ॥३८॥

॥ इत्यक्षक्षेत्रप्रकरणम् ॥

चरज्याद्यप्रकरणम्

[१]चरणौ नरसिंहस्य ज्यायस्त्वाद्वन्द्यता ययोः।
प्रणमामि कराञ्जल्या रम्यौ शरणदौ नृणाम् ॥१॥

प्रश्नः —

ज्ञात्वा चरज्याम्रपमज्यकां च पलप्रभां ब्रूहि चराक्षभे तु।
विज्ञाय विद्वन्नपमज्यकां मे वदाशु चेद् बुध्यसि गोलसंस्थाम् ॥२॥

अस्य भङ्गः —

त्रिज्याभक्तार्कहता चरशिञ्जिन्यन्यसंज्ञः स्यात्।
स क्रान्तिज्याविहतो द्युज्यागुणितो भवेत् पलभा ॥३॥
परेण भक्ता पलभाप्तवर्गात् सैकात् पदं तेन हता त्रिभज्या।
क्रान्तिज्यका स्यात् पलभापराख्यौ व्यत्यस्य यत् सिद्ध्यति सा द्युजीवा ॥४॥

[१]. पं. ७, ७७ (अक्टूबर १, १८७२) १२३-२५.

द्वितीयप्रकारस्य श्रीमद्गुरुचरणोक्तः प्रकारान्तरेण भङ्गः —

वेदेन्द्रनिघ्न्यक्षरमौर्विकायाः पलप्रभाघ्न्या त्रिभजीवयाप्तम्।
अक्षप्रभां तत् प्रविकल्प्य साध्या पलज्यका क्रान्तिगुणः स एव ॥५॥

प्रश्नः —

भानौ सममण्डलगे समुन्नतांशांश्च चरकालम्।
अवलोक्याशु वदेद्यः पलभामग्रां स गणकाग्र्यः ॥६॥

अस्य भङ्गः —

पृथक् चरज्या समशङ्कुभक्ता त्रिज्याहता ये फलयोः कृती स्तः।
तत्राद्यखण्डं प्रथमाभिधं स्याद् द्वयोर्वियोगार्धमथान्यसंज्ञम् ॥७॥
परवर्गात् प्रथमाढ्यात् पदं पराढ्यं ततः पदं द्विष्ठम्।
समशङ्क्ववर्गाभिहतं स्यातां क्रमतोऽग्रकापलभे ॥८॥

प्रश्नः —

उदयसमयलब्धांस्तीक्ष्णरश्मेर्दिगंशां-
श्चरसमयमवेक्ष्य द्राग्वदेद्योऽपमांशान्।
प्रवदति च पलाभामग्रणीस्तान्त्रिकाणां
सगणकगणवक्त्राम्भोरुहोद्बोधनेऽर्कः ॥९॥

अस्य भङ्गः —

अग्रांशकोटिजीवाघ्नी चरज्या प्रथमाभिधा।
त्रिज्याहतं चरज्याग्रावर्गान्तरपदं परः ॥१०॥
चरकोटिज्यया भक्तः परः स्यात् क्रान्तिमौर्विका।
रविघ्नः प्रथमो भक्तः परेण पलभा भवेत् ॥११॥

प्रश्नः —

तद्धृतिं चरकालं च बुध्वा ब्रूहि पलप्रभाम्।
क्रान्तिज्यकां च चेत् तेऽस्ति गोलालोकनचातुरी ॥१२॥

अस्य भङ्गः —

चरकोटिज्याविहता चरज्यका तत्कृतिर्द्विष्ठा।
व्यासार्धवर्गतद्धृतिगुणिता प्रथमान्यसंज्ञौ स्तः ॥१३॥

---

१. पं. ७, ७७ (अक्टूबर १, १८७२) १२३-२५.

अन्यार्धवर्गेण युताद्यदाद्यान्मूलं तदन्यार्धविहीनितं सत्।
कुशिञ्जिनी स्यात् क्रिययाद्ययातः प्रसाधयेद् द्राक् पलभापमज्ये ॥१४॥

प्रश्नः —

भुजमुन्नतकालं च ज्ञात्वोद्वृत्तगते रवौ।
पाटवाहंकृतिस्ते चेद् द्राक् क्रान्तिज्याक्षभे वद ॥१५॥

अस्य भङ्गः —

क्रमाच्चरज्याचरकोटिजीवे अग्रादिखण्डत्रिगुणोद्धृते ते।
वर्गीकृते स्तः प्रथमान्यसंज्ञेपरार्धवर्गात् प्रथमेन युक्तात् ॥१६॥
यन्मूलमन्यार्धयुगस्य मूलं क्रमादिनाग्रादिमखण्डकाभ्याम्।
हतं पलश्रुत्यपमज्यके स्तस्ततः प्रसाध्या सुधिया पलाभा ॥१७॥

प्रश्नः —

उन्नतसमयच्छाये दृष्ट्वोद्वृत्तं गते भानौ।
सत्वरमक्षच्छायां वद विद्वन् क्रान्तिजीवां च ॥१८॥

अस्य भङ्गः —

क्रमाच्चरज्याचरकोटिजीवे उद्वृत्तशङ्कुत्रिगुणोद्धृते ते।
वर्गीकृते आदिमखण्डमाद्यःपराभिधं योगदलं द्वयोर्यत् ॥१९॥
आद्योनात् परवर्गात् पदं तदूनान्वितात् परान्मूले।
रविनिघ्ने द्विविधः स्यात् पलकर्णोऽतोऽक्षभापमज्ये च ॥२०॥

प्रश्नः —

शङ्कुतलोन्नतकालावुन्मण्डलगे रवौ वीक्ष्य।
पलभां ब्रवीति योऽसौ गणकेषु कथं न मान्यः स्यात् ॥२१॥

अस्य भङ्गः —

अग्राग्रखण्डनिहताच्चरकोटिजीवावर्गार्धतः स्वहतया चरजीवयाप्तम्।
तत्त्रिज्यकाकृतियुतेः पदमाप्तहीनं स्यादग्रकात्र पलभा सुधियः स्फुटातः ॥२२॥

प्रश्नः —

चरज्यकाक्षितिज्यके कथञ्चनावगम्य च।
विचक्षण प्रचक्ष्व मेऽक्षभा कियत्प्रमाणिका॥२३॥

अस्य भङ्गः —

चरजीवाक्षितिमौर्व्योर्यत् कृतिवियुतेः पदं हता तेन।
चरगुणकुज्याभिहती रविभिर्गुणिता त्रिभज्यया भक्ता॥२४॥
यत् फलमक्षाभा स्यात् क्रान्तिज्यातो बुधैः साध्या।
ज्ञायत एतत् सुधिया स्पष्टप्रतिपत्तये मयोक्तमिदम्॥२५॥

प्रश्नः —

विज्ञाय संसदि सतां क्षितिजीवयोनां यस्तद्धृतिं चरमपि प्रवदेत् पलाभाम्।
सोऽयं कुशाग्रमतिरत्र जगत्यमीषां स्याद्गर्वनाशनपटुर्गणकाग्रणीनाम्॥२६॥

अस्य भङ्गः —

चरज्यकावर्गदलेन निघ्नी कुशिञ्जिनीहीनिततद्धृतिः सा।
त्रिभज्यया स्वाहतया विभक्ता चरज्यकावर्गयुताप्तवर्गात्॥२७॥
यन्मूलमाप्तेन विहीनितं तत् क्षितिज्यका स्यादिति धीमतोह्यम्।
अतः सुधीभिः प्रथमोक्तमार्गं विचिन्त्य चित्ते पलभा प्रसाध्या॥२८॥

प्रश्नः —

ज्ञात्वोर्ध्वखण्डं समवृत्तशङ्कोश्चरज्यकां चापि वदेत् पलाभाम्।
मन्ये स विद्वान् गणितार्णवान्तर्मज्जज्जनोत्तारणकारणं नौः॥२९॥

अस्य भङ्गः —

समवृत्तनरोर्ध्वखण्डनिघ्न्याश्चरमौर्व्याः पदमत्र चापमज्याम्।
परिकल्प्य दिनज्यकाक्षितिज्ये अथ चाग्रां तत एव साधयेज्ज्ञः॥३०॥
समवृत्तनरोर्ध्वखण्डकाग्राभिहतिः क्रान्तिगुणेन भाजिता स्यात्।
कुगुणोनिततद्धृतिस्तु तद्घ्नात् कुगुणान्मूलमिहापमज्यकान्या॥३१॥
तत इत्थमिदं मुहुर्विदध्यादपमज्याप्रमुखास्ततोऽक्षभा स्यात्।
असकृद्विधिमन्तरा न सिद्ध्येदिदमुद्दिष्टमपीह कोटियत्नैः॥३२॥

प्रकारान्तरेण भङ्गः —

युतोर्ध्वखण्डेन समाख्यशङ्कोश्चरज्यका तद्धृतिरत्र कल्प्या।
चरज्यकाकल्पिततद्धृतिभ्यामुक्तप्रकारात् कुगुणः प्रसाध्यः ॥ ३३ ॥
यत्तद्धृतिघ्नात् समवृत्तशङ्कूर्ध्वखण्डवर्गाद् घनमूलमत्र।
सा स्यात् कुजीवोनिततद्धृतिस्तत्कुज्यायुतिस्तद्धृतिरेवमेषा ॥३४॥
मुहुः प्रसाध्येह परिस्फुटा स्यात् ततः पलाभा सुलभा बुधानाम्।
भङ्गो द्विधैवं मयका निरुक्तः परोऽपि चिन्त्यः स्वधिया सुधीभिः ॥३५॥
श्रीबालशास्त्रिविदुषां सविधं पठित्वा प्राक् शब्दशास्त्रमथ तज्जनितावबोधः।
श्रीबापुदेवगुरुवर्यकृपाकटाक्षात्सज्ज्यौतिषं प्रपठतीह विनायको यः ॥३६॥
तन्निर्मिते कतिपयप्रश्नविचाराभिधप्रबन्धेऽस्मिन्।
पूर्णं द्वितीयमभवत् प्रकरणमेतच्चरज्याद्यम् ॥३७॥

॥इति चरज्याद्यप्रकरणम् ॥

सममण्डलप्रवेशप्रकरणम्

[१]

[१]यामुने नु पुलिने विहारिणं हारिणं प्रणतगोपयोषिताम्।
मानसस्य हृदि नन्दनन्दनं नन्दनं मुनिहृदां स्मराम्यहम् ॥१॥

प्रश्नः —

द्राक् समवृत्तस्थरवौ वीक्ष्य नतासूनयमम्।
ब्रूत पलाभां सुधियो माणवकाक्रीडिततः ॥२॥

अस्य भङ्गः —

त्रिज्यार्कघातो नतकालकोटिज्यया हृतः स्यात् परसंज्ञ एषः।
द्युज्याहतः क्रान्तिगुणेन निघ्नः पलप्रभा स्यात् सुधियेदमूह्यम् ॥३॥

प्रश्नः —

सवितरि सममण्डलाश्रिते यो नतसमयं पलभां च वीक्ष्य शीघ्रम्।
वदति यदि सुधीरपक्रमज्यां स तु गणकैः सकलैरपीह वन्द्यः ॥४॥

---

१. पं. ७, ७८ (नवम्बर १, १८७२) १४३-१४६.

अस्य भङ्गः —

पर: पलाभाविहतोऽस्य वर्गात् सैकात् पदं तद्विहता त्रिजीवा।
स्यात् क्रान्तिजीवाथ पलप्रभान्यौ व्यत्यस्य सिध्येद्यदियं द्युजीवा ॥५॥

अस्य प्रश्नस्य श्रीमद्गुरुचरणोक्तः प्रकारान्तरेण भङ्गः —

पलप्रभाघ्नी नतकालकोटिज्यकात्रिभज्याविहृता यदाप्तम्।
अक्षप्रभां तत् प्रविकल्प्य साध्यापलज्यका क्रान्तिगुणः स एव ॥६॥

प्रश्नः —

नतकालं वीक्ष्य रवौ समाख्यवृत्तं समायाते।
कुज्योनतद्धृतिज्ञ द्राक् क्रान्तिज्याक्षभे ब्रूहि ॥७॥

अस्य भङ्गः —

कुज्योनतद्धृतिनतासुजकोटिमौर्व्यो-
वर्गान्तरात् पदमिदं परसंज्ञनिघ्नम्।
कुज्योनतद्धृतिसमाहतमक्षभातः
क्रान्तिज्यका निजधिया सुधियावगम्या ॥८॥

प्रश्नः —

याति रवौ समवृत्तं नतकालं वेधतोऽवगम्येह।
समवृत्तशङ्कुवेत्तः शीघ्रं क्रान्तिज्यकाक्षभे ब्रूहि ॥९॥

अस्य भङ्गः —

दृग्ज्या त्रिजीवागुणिता नतासुज्यया विभक्ता द्युगुणो भवेत् सः।
ततोऽक्षभापक्रमजीवयोः स्याज्ज्ञानं झटित्येव बुधाग्रणीनाम् ॥१०॥

प्रश्नः —

वीक्ष्याग्रकां च समवृत्तसमाश्रितेऽर्के ज्ञात्वा नतं समयमाशु वदेत् पलाभाम्।
क्रान्तिज्यकां च गणितार्णवपारगोऽसौ धीरेव चात्र सुधियां प्रतिभूत्वमेति ॥११॥

अस्य भङ्गः —

त्रिज्यावर्गार्धहताग्रालवकोटिज्यकाकृतिः प्रथमः।
नतकालकोटिजीवाविहताग्रायाः कृतिस्त्वन्यः ॥१२॥
या परयुक्ताद्यकृतिस्तन्मूलादाद्यहीनितान्मूलम्।
भानुहतं पलभा स्यादपमज्यातो ऽवगन्तव्या ॥१३॥

प्रश्नः —

मार्तण्डे प्रविशति सति सममण्डलमत्र वीक्ष्य नतकालम्।
तद्धृतिमपि बुध्वाशु क्रान्तिज्यामक्षभां च मे ब्रूहि ॥ १४॥

अस्य भङ्गः —

नतकालकोटिजीवातद्धृतिघातो नतासुगुणकृत्या ।
द्विघ्न्या हतोऽस्य वर्गान्नतासुजीवाहतत्रिभज्यायाः॥१५॥
कृत्या युक्तान्मूलं फलोनितं त्रिज्यया गुणितम्।
द्युज्या भवेदिहातः सुगमः पलभापमज्यकावगमः॥१६॥

प्रश्नः —

भास्वति तिष्ठति यः समवृत्तं वीक्ष्य नतं समयं कुगुणं च।
वेत्त्यचिरात् पलभामपमज्यां स्याद् गणितामृतदोहक एषः॥१७॥

अस्य भङ्गः —

नतासुकोटिज्यकया विनिघ्नी क्षितिज्यका व्यासदलार्धभक्ता।
लब्धत्रिमौर्व्योः कृतियोगमूलं लब्धोनितं स्याद् द्युगुणोऽक्षभातः॥१८॥

प्रश्नः —

समवृत्तनरोर्ध्वखण्डवेदिन् नतकालं सममण्डलाश्रितेऽर्के।
अभिवीक्ष्य वदाक्षभापमज्ये गणिते ते सुमतेऽस्ति पाटवं चेत्॥१९॥

अस्य भङ्गः —

नतकालज्यावर्गात् समवृत्तनरोर्ध्वखण्डकार्धहतात्।
नतकालकोटिमौर्व्याः कृत्या विहतात् फलं यत् स्यात्॥२०॥
तत्त्रिज्यावर्गयुतेर्मूलं लब्धोनमत्र समशङ्कुः।
स्यादस्मात् क्रान्तिज्यापलभे स्तः प्रोक्तमार्गेण॥२१॥

प्रश्नः —

नतासून् ज्ञात्वा यो विशति समवृत्तं दिनमणौ
नरं चोद्वृत्तेऽर्के वदति पलभापक्रमगुणौ।
प्रशास्तारं मत्तेभगणकगणानां भुवि न के
विदुर्ज्योतिःशास्त्रे हिमशिखरिणीमं मृगरिपुम्॥२२॥

अस्य भङ्गः —

दृग्ज्याशङ्कू   ये स्त उद्वृत्तगेऽर्के ते विज्ञेयौ दृग्ज्यकाशङ्क्वभिख्यौ।
या स्यात् कोटिज्या नतासूद्भवा तद्दृग्ज्याघातेनाहतात् त्रिज्यकाप्तात्॥२३॥
शङ्कोर्लब्धेर्वर्गे आद्यस्तदाढ्यो दृग्ज्यावर्गेणोद्धृतः शङ्कुवर्गः।
अन्याख्यः स्यादर्धितान्यस्य वर्गादाद्येनाढ्यान्मूलमन्यार्धयुक्तम्॥२४॥
तस्मान्मूलं भानुनिघ्नं पलाभा स्यात् क्रान्तिज्यातः प्रसाध्या सुधीभिः।
स्पष्टं चैतद्धीमतां यन्मयोक्तं तन्मन्दानामेव बोधाप्तिहेतुः॥२५॥

प्रश्नः —

निरीक्ष्य समयं नतं तु समवृत्तगेऽर्केऽग्रका-
दिखण्डमपि वीक्ष्य योऽपमगुणाक्षभे वक्त्यसौ।
सगोलगणिते सरस्यमितातान्त्रिकैः सारसा-
लिभिर्विलसितेऽप्यलं लसति राजहंसः सुधीः॥२६॥

अस्य भङ्गः —

बालकोटिजीवाग्रादिमखण्डोद्धृते क्रमतः।
सकलज्यात्रिज्ये तत्कृत्योरन्तरार्धमाद्याख्यम्॥२७॥
स्वघ्नं द्वितीयखण्डं परोऽन्यहीनादथाद्यकृतेः।
पदमेतदूनयुक्तादाद्यान्मूलं रविक्षुण्णम्॥२८॥
द्विविधः पलकर्णः स्यादस्मादक्षप्रभापमज्ये च।
द्विविधे स्यातामेतत् स्पष्टं सुधियां धियामग्रे॥२९॥

प्रश्नः —

स्वपूर्वापरं वृत्तमाप्ते नतासून् दिनाधीश्वरे वीक्ष्य चाथो चरासून्।
अभिज्ञाय विज्ञः पलाभामवैति तदीयं तु कः साम्यमत्राभ्युपैति॥३०॥

अस्य भङ्गः —

सूत्रभक्तचरज्याया मूलं द्वादशभिर्हतम्।
पलभा स्यात् ततः साध्यो रीत्या पूर्वोक्तयापमः॥३१॥

प्रश्नः —

समवृत्तगते भानौ नतकालं चाक्षजं वलनम्।
वीक्ष्याक्षभापमज्ये छायां च वदाशु मे विद्वन्॥३२॥

अस्य भङ्गः —

नतासुगुणभाजिताक्षवलनज्यकाथो नता-
सुकोटिगुणतो यदाक्षवलनस्य कोटिज्यया।
हतात् फलमथैतयोर्वध इदं त्रयं त्रिज्यका-
हतं त्विह पलज्यकासमनरापमज्याः क्रमात् ॥३३॥

प्रश्नः —

अग्राग्रखण्डमभिवीक्ष्य समाख्यवृत्तं याते तु भास्वति नतं समयं च वीक्ष्य।
द्रागेव योऽपमगुणं पलभां च वेद कीदृक् तदस्ति गणितं यदयं न वेद ॥३४॥

अस्य भङ्गः —

अग्राग्रखण्डान्नतकालकोटिज्यया हतान्मूलमपक्रमज्याम्।
प्रकल्पयित्वा द्युगुणं क्षितिज्योनतद्धृतिं चापि समाख्यशङ्कुम् ॥३५॥

प्रसाधयेत् क्रान्तिगुणेन भक्तोग्रकाग्रखण्डघ्नसमाख्यशङ्कुः।
कुज्या भवेत् तन्निहतक्षितिज्यो नतद्धृतेर्मूलमपक्रमज्या ॥३६॥

इत्थं मुहुः साध्यमिमाः स्फुटाः स्युः क्रान्तिज्यकाद्याः पलभा ततश्च।
एवं गताध्यायवदुक्तयुक्त्या द्वितीययापि द्रुतमेव सिध्येत् ॥३७॥

श्रीबालशास्त्रिविदुषां सविधं पठित्वा प्राक् शब्दशास्त्रमथ तज्जनितावबोधः।
श्रीबापुदेवगुरुवर्यकृपाकटाक्षात् सज्ज्यौतिषं प्रपठतीह विनायको यः ॥३८॥

तन्निर्मिते कतिपयप्रश्नविचाराभिधप्रबन्धेऽस्मिन्।
सममण्डलप्रवेशप्रकरण एतन्नतासुखण्डमभूत् ॥३९॥

॥ इति सममण्डलप्रवेशप्रकरणे नतकालखण्डं प्रथमं समाप्तमभूत् ॥

सममण्डलप्रवेशप्रकरणम्

[२]

[१]शङ्करः शं चरीकर्ति यः शर्वरीनायकोऽमुष्य भूषाविशेषोऽप्यभूत्।
उत्तमाङ्गस्थया गङ्गया सङ्गतस्तं भजेयोभया साकमङ्कस्थया ॥१॥

---

१. पं. ७, ७९ (दिसम्बर २, १८७२) १६३-६६.

प्रश्नः —

समुन्नतासून् समवृत्तसंस्थे भास्वत्यभिज्ञाय पलप्रभां च।
आचक्षते क्रान्तिगुणं द्रुतं यो मन्येऽवतीर्णं द्युमणिं तमन्यम् ॥२॥

अस्य भङ्गः —

द्वीन्द्वक्षभावधहतात् पलकर्णवर्गाद्यच्चोन्नतासुविपरीतगुणात् त्रिमौर्व्या।
तब्धं तयोः कृतिवियोगपदं यदेतद्भक्तः समुन्नतगुणोऽपममौर्विका स्यात् ॥३॥

अस्य प्रश्नस्य श्रीमद्गुरुचरणोक्तौ प्रकारान्तरेण भङ्गौ —

त्रिज्यानिघ्नादक्षकर्णस्य वर्गाद्विदेन्द्रघ्नीमुन्नतासूत्क्रमज्याम्।
त्यक्त्वा शेषादुन्नतासुज्यकाक्षश्रुत्याहत्याप्तं समाख्यप्रभा स्यात् ॥४॥
तस्याः समनरः साध्यस्तस्मादक्षभया हतात्।
पलकर्णेन लब्धस्य चापं क्रान्तिर्भवेत् सकृत् ॥५॥
द्विघ्नी त्रिभज्या नयनाहतानामक्षांशकानां भुजजीवयाप्ता।
या योन्नतासूत्क्रममौर्विका च त्रिजीवया संविहता तयोर्यत् ॥६॥
वर्गान्तरान्मूलमनेन भक्तोन्नतासुजीवापममौर्विका स्यात्।
समुन्नतास्वक्षलवावबोधाद् दृष्टे प्रविष्टे समवृत्तमर्के ॥७॥

प्रश्नः —

प्रविशति यदादित्यो वृत्तं समाख्यमिहोन्नतं
समयमपमज्यां ज्ञात्वा यो वदेत् पलभां द्रुतम्।
निखिलगणकामन्दानन्दप्रदो गणितस्थली
समभिपतितः पाटीरोऽसौ श्रमापहरो विदाम् ॥८॥

अस्य भङ्गः —

पृथक् स्थिते उन्नतकालजाते क्रमोत्क्रमज्ये निहते क्रमेण।
त्रिराशिजीवापममौर्विकाभ्यां यदेतयोर्वर्गयुतेः पदं तत् ॥९॥
त्रिभज्यया भाज्यमदो यदाप्तं सा तद्धृतिः स्यादथ बुद्धिमद्भिः।
अतः प्रसाध्या द्विविधा पलाभा प्रोक्तप्रकारं मनसा विचार्य ॥१०॥

अस्य प्रश्नस्य श्रीमद्गुरुचरणोक्ताः प्रकारान्तरेण भङ्गाः —

स्यादुन्नतः काल इहेष्टसंज्ञस्तस्य ज्यका द्युज्यकया विनिघ्नी।
त्रिज्योद्धृता तद्धृतिमत्र लब्धं प्रकल्प्य तस्याः पलभा चरं च ॥११॥
द्युज्या चरोनेष्टगुणेन निघ्नीत्रिज्योद्धृता तद्धृतिखण्डमूर्ध्वम्।
ततोऽक्षभा तद्धृतिखण्डमूर्ध्वं ततोऽक्षभा स्यादसकृच्च तस्मात् ॥१२॥
इष्टक्रमज्योत्क्रममौर्विके वा त्रिज्यापमज्यानिहते क्रमेण।
कार्ये तयोर्वर्गयुतिर्युगाब्धिहिमांशुवर्गेण हताद्यसंज्ञा ॥१३॥
या क्रान्तिजीवेष्टदलज्यकाघ्नीद्विघ्नी च या च द्युगुणेन निघ्नी।
इष्टज्यका तत्कृतिसंयुतिर्द्विक्ष्माभृद्विनिघ्नी परसंज्ञिका स्यात् ॥१४॥
त्रिज्यापमज्यावधवर्गभक्तौ तौ चाद्यहीनात् परवर्गतो यत्।
मूलं तदूनाढ्यपराद्युगेन्द्रैर्हीनात् पदं स्याद् द्विविधा पलाभा ॥१५॥
क्रान्तिज्यया त्रिज्यकयोन्नतासुक्रमोत्क्रमज्ये क्रमशो विभक्ते।
तद्वर्गयोगो युतिसंज्ञकः स्याद्युत्या हतायघ्नतुरूनयुत्याः ॥१६॥
पदेन नेत्रोनयुतिर्युतोना पृथक् तदर्धात् पदमर्कनिघ्नम्।
द्विधाक्षभा स्यादपमोन्नतासुज्ञानाद् दिनेशे समवृत्तयाते ॥१७॥

प्रश्नः —

विद्ध्वा समुन्नतलवान् समवृत्तयाते सूर्योऽधिगम्य च समुन्नतकालमानम्।
यो द्राग्ब्रवीति पलभां खलु भास्करोऽसौ स्याद् दुष्टगाणितिकगर्वतमोपहारी ॥१८॥

अस्य भङ्गः —

दृग्ज्योन्नतकालज्याभिहतिः समशङ्कुभाजिता लब्धम्।
योज्याख्यं तत्कृत्या युत उन्नतकालदलमौर्व्याः ॥१९॥
वर्गोऽष्टघ्नस्तत्पदमाढ्यं योज्येन तद्रसैर्गुणितम्।
त्रिगुणहृतं पलकर्णः पलभावगमस्ततः सुगमः ॥२०॥

प्रकारान्तरेण भङ्गः —

त्रिज्याविनिघ्नः समशङ्कुवर्गोदृग्ज्यार्धनिघ्न्युन्नतकालजीवा।
समुन्नतासूत्क्रमजीवया तौ भक्तौ भवेतां प्रथमान्यसंज्ञौ ॥२१॥

परकृतिसहिताद्यतः पदं यत् परहीनं कुगुणोनतद्धृतिः स्यात्।
इह खलु पलभापमज्यके वा सुधियातः स्वधियैव साधनीये ॥२२॥

अस्य प्रश्नस्य श्रीमद्गुरुचरणोक्तः प्रकारान्तरेण भङ्गः —

अत्रोन्नतासूत्क्रममौर्विकाघ्नस्त्रिज्याहतो द्वादशवर्ग आद्यः।
समप्रभार्धेन हतोन्नतासुज्यका त्रिभज्याविहृतान्यसंज्ञः ॥२३॥

अन्यस्य वर्गेण युताद्यदाद्यान्मूलं तदन्यान्वितमक्षकर्णः।
ततोऽक्षभाया अपि चापमस्य ज्ञानं द्रुतं स्याद्गणकाग्रणीनाम् ॥२४॥

प्रश्नः —

तपने समवृत्तमागते यो विबुधः शङ्कुतलं समुन्नतासून्।
अभिवीक्ष्य पलप्रभां वदेद् द्रागपमज्यां च न के विदः स्तुयुस्तम् ॥२५॥

अस्य भङ्गः —

वाक्यकोटिज्ये प्रकल्प्य समशङ्कुदृग्ज्यके साध्या।
एकोनतद्धृतिः स्यात् कुज्या पलभापमज्यके च ततः ॥२६॥

प्रश्नः —

भास्वति समवृत्तगते विज्ञाय हृतिं समुन्नतं समयम्।
यः पलभापमजीवे वक्ति स विद्वद्वरो ज्ञेयः ॥२७॥

अस्य भङ्गः —

तद्धृत्युन्नतकालज्यावर्गान्तरपदं हतम्।
त्रिज्ययोन्नतकालस्य व्यस्तमौर्व्या विभाजितम् ॥२८॥
अपमज्या भवेदेवं पलभा द्विविधा ततः।
सुधिया स्वधिया साध्या विमृश्य प्रोक्तमार्गतः ॥२९॥

प्रश्नः —

उन्नतकालं च कलां प्रविशति समवृत्तमादित्ये।
विज्ञायाक्षुब्धः सन्नक्षाभां मे विचक्षणाचक्ष्व ॥३०॥

अस्य भङ्गः —

अत्रोन्नतासुविपरीतगुणस्य वर्गेणार्धीकृतेन रहितस्त्रिगुणस्य वर्गः।
कुज्योनतद्धृतिहतः प्रथमः परस्तु कुज्योनतद्धृतिसमुन्नतकालमौर्व्योः ॥३१॥

वर्गान्तरं त्वथ परात् प्रथमस्य कृत्या युक्तात् पदं प्रथमहीनमियं क्षितिज्या।
अक्षप्रभापमगुणावत एव साध्यौ जागर्ति चेतसि यदोक्तविधिः सुधीभिः ॥३२॥

प्रश्नः —

ज्ञात्वा क्षितिज्यां च समुन्नतासून् दिनाधिनाथे सममण्डलस्थे।
पलप्रभां क्रान्तिगुणं च विद्धि चेन्नैपुणं ते गणिते सगोले ॥३३॥

अस्य भङ्गः —

अनन्तरोक्तमार्गेण कुज्यया कुज्ययोनिता।
तद्धृतिः सिध्यति क्रान्तिज्याक्षभे तत उक्तवत् ॥३४॥

प्रश्नः —

चरासुवेदी समवृत्तसंस्थे रवौ विलोक्योन्नतकालमानम्।
वेत्त्यक्षभां योऽपममौर्विकां च ज्ञेयः स सिद्धान्तविदां वरिष्ठः ॥३५॥

अस्य भङ्गः —

उन्नतकालचरान्तरमौर्व्या चरशिञ्जिनीं विभजेत्।
तत्पदमर्कहतं स्यात् पलभा सुलभापमज्यातः ॥३६॥

प्रश्नः —

ज्ञात्वा नतासूंश्च समुन्नतासून् दिवाकरे याति समाख्यवृत्तम्।
योऽक्षप्रभां क्रान्तिगुणं च विद्यात् स चोदिताशेषविशेषवेदी ॥३७॥

अस्य भङ्गः —

नतासून्नतासूद्भवा योगकोटिज्यका स्याच्चरज्या ततोऽक्षप्रभात्र।
बुधैराद्यखण्डोक्तमार्गेण साध्यापमज्या च तस्माद्विचिन्त्यावगम्या ॥३८॥

प्रश्नः —

अन्त्यामुन्नतकालं समवृत्तस्थे दिवाकरे ज्ञात्वा।
ब्रूह्यक्षभापमज्ये गणिते गोले च नैपुणं यदि ते ॥३९॥

अस्य भङ्गः —

अन्त्यावर्गादुन्नतकालज्यावर्गविश्लिष्टात्।
अन्त्योन्नतकालोत्क्रममौर्व्योः कृतियोगसंभक्तात् ॥४०॥

मूलं त्रिभशिञ्जिन्या समाहतं स्यादपक्रमज्यातः।
द्राक् सिध्यति पलभा चेत् स्फूर्तिः प्रोक्तप्रकाराणाम्॥४१॥

प्रश्नः —

वीक्ष्योर्ध्वखण्डं समवृत्तशङ्कोः समुन्नतासून् समवृत्तगेऽर्के।
योऽपक्रमज्यां पलभां वदेद् द्राक् स एव गोलार्णवतारणे नौः॥४२॥

अस्य भङ्गः —

इह समुन्नतकालदलज्यकां द्विगुणितां परिकल्प्य तथान्त्यकाम्।
अथ ततः सुधिया क्रिययोक्त्यापमगुणं परिसाध्य ततो विदा॥४३॥

समवृत्तनरोर्ध्वखण्डवेत्त्रा पलभा तद्धृतिरन्त्यका च साध्या।
क्रमतोऽसकृदित्थमेव कुर्यादपमज्यापलभे स्फुटे भवेताम्॥४४॥

अथान्ये प्रश्नाः —

अग्राग्रखण्डमभिवीक्ष्य समाख्यवृत्तं याते रवौ किल समुन्नतकालमानम्।
द्रागक्षभां वद तथापममौर्विकां चेद् गोलस्त्वया गणकमाणवकास्त्यधीतः॥४५॥

प्रविशति समाख्यवृत्तं भास्वति वीक्ष्योन्नतं समयम्।
ज्ञात्वोन्मण्डलशङ्कुं विद्वन् पलभापमज्यके वद मे॥४६॥

सवितरि समवृत्तं याति वीक्ष्योन्नतासू-
नथ च समभिवीक्ष्याग्रादिखण्डं सुधीर्यः।
अपमगुणपलाभे शीघ्रमाचक्षतेऽसौ
सकलगणकहृद्यार्थप्रदः कल्पवृक्षः॥४७॥

एषां भङ्गः —

विद्वान् शश्वदनन्तरोक्तविधिना क्रान्तिज्यकां साधयेत्
प्रोक्तं कर्म समाख्यशङ्क्ववयवाद्यत् तूर्ध्वखण्डाद्बुधैः।
तच्चाग्राग्रिमखण्डतो वितनुयादुद्वृत्तशङ्कोश्च वा
यद्वाग्रादिमखण्डतोऽपमगुणाक्षाभे भवेतां स्फुटे॥४८॥

प्रश्नः —

ज्ञात्वाक्षजं वलनमुन्नतकालवेदिन्
धाम्नां निधौ तु सममण्डलमाश्रिते द्राक्।
ब्रूया अपक्रमगुणं पलभां यदि त्वां
मन्ये वसन्ततिलकं गणकर्तुवृन्दे ॥४९ ॥

अस्य भङ्गः —

अनन्तरोक्तेन पथापमज्या साध्याक्षजं यद्वलनं तदीया।
कोटिज्यका द्युज्यकया विनिघ्नी त्रिज्योद्धृता लम्बगुणो भवेत् सः ॥५० ॥
अतः प्रसाध्या हतिरन्त्यकातः क्रान्तिज्यका लम्बगुणस्ततः स्यात्।
इत्थं विदध्यादसकृत् स्फुटाः स्युः क्रान्तिज्यकाद्याः पलभा ततश्च ॥५१ ॥
श्रीबालशास्त्रिविदुषां सविधं पठित्वा
प्राक् शब्दशास्त्रमथ तज्जनितावबोधः।
श्रीबापुदेवगुरुवर्यकृपाकटाक्षात्
सज्ज्यौतिषं प्रपठतीह विनायको यः ॥५२ ॥
तन्निर्मिते कतिपयप्रश्नविचाराभिधप्रबन्धेऽस्मिन्।
सममण्डलप्रवेशप्रकरणमितमुन्नतासुखण्डं च ॥५३ ॥

॥ इत्युन्नतासुखण्डम्। समाप्तं च सममण्डलप्रवेशप्रकरणम् ॥

दिगंशादिप्रकरणम्

[1]नत्वभदन्तं विविधार्थदं तं विघ्नान् हरन्तं स्तुवतां दुरन्तम्।
अध्यायमेतं विधिना समेतं प्रोक्तादनूनं कथयामि नूनम् ॥१ ॥

प्रश्नः —

विज्ञायाक्षलवान्नतं च समयं ज्ञात्वाथ विद्वानता-
नंशान् यस्त्वपमं ब्रवीति झटिति स्यादेष विद्वद्वरः।
सिद्धान्ताख्यमतङ्गजस्य गणिताभिख्याटवीचारिणो
नूनं कुम्भविदारणाद्विधिममुं मुक्ताफलं लब्धवान् ॥२ ॥

---

१. पं. ९, १०६ (मार्च, १९७५) २३८-४०.

अस्य भङ्गः—

या षड्गुणाद्विघ्ननतासुजाताजीवाथ दृग्ज्यापलकर्णघातः।
तौ वर्गितावाद्यविहीनितान्यान् मूलं युतोनं पलभाघ्नहत्या ॥३॥

तत् त्रिज्यकावर्गहतं रविघ्नं चाथाक्षकर्णत्रिगुणाहतिर्या।
याचार्कनिघ्नी नतकालजीवा तद्वर्गविश्लेषविभाजितं सत् ॥ ४ ॥

गोलक्रमात् क्रान्तिगुणो द्विधास्यादथो यदाल्पं पदमेव शोध्यात्।
तदापदोनादमुतोऽपि साध्या क्रान्तिज्यका प्रोक्ततदुत्तरैव ॥ ५ ॥

मूलीयखण्डद्वययोर्यदा स्यादुक्तप्रकाराद्विपरीतशुद्धिः।
तदा तदुद्दिष्टमशुद्धमेव विज्ञेयमत्रैतदथाग्रतश्च ॥६ ॥

द्वितीयप्रकारेण भङ्गः—

लम्बज्यकापरिणता नतकालकोटिज्याद्यः परोऽक्षगुणवर्गयुताद्यवर्गः।
यच्छङ्कुवर्गरहितात् परतः पदं स्यादाद्याहतेन खलु तेन पलज्यकाद्यः ॥७॥

शङ्कुर्द्विधाऽयुतवियुक् त्रिगुणाहतोऽसावन्योद्धृतोऽपमगुणो द्विविधोऽप्युदक् स्यात्।
आद्योऽल्पको यदि नरात् परथा पदाद्यघातो द्विधा पलगुणघ्ननराढ्यहीनः ॥८॥

सोऽन्योद्धृतस्त्रिभगुणेन हतोऽपमज्यागोलक्रमात् क्वचिदियं हि सती द्विधापि।
क्वैषा सती भवति तत् कथयाम्यथापि धीरा बुधा अनुपदं प्रविचार्यतां तत् ॥९॥

तृतीयप्रकारेण भङ्गः—

लम्बज्यकापरिणता नतकालजीवा कल्प्योऽपमक्रमगुणः परिकल्प्य जाग्राम्।
दृग्ज्यां च लम्बगुणमत्र चरासुभायाः साध्यस्तयोर्विवरयोगविनीनखाङ्कः ॥ १०

द्वेधोदगेवं भवति ह्यपमो यदा तु खाङ्काधिका युतिरतो नवतिर्विशोध्या।
एषोऽपमो भवति दक्षिण एव वाच्यं चासत्त्वमस्य परमापमतोऽधिकत्वे ॥११॥

प्रश्नः—

योऽपमज्ञोऽत्र विध्वा नतांशान् नतं कालमप्यत्र विज्ञाय वक्त्यक्षभाम्।
द्रागसौ बुद्धिमत्स्वाग्रगण्योऽथवा भास्कराचार्यवर्यावतारो मतः ॥१२॥

अस्य भङ्गः—

क्रान्त्यंशानक्षांशान् प्रकल्प्य साध्योऽपमः प्रकाराभ्याम्।
सन्निहिताभ्यामुदगिह सिध्यन्त्यक्षांशकास्ते स्युः ॥१३॥

प्रश्नः—

नतांशान् नतासूंश्चरासूंश्च धीमानभिज्ञाययोऽक्षप्रभां द्राग् ब्रवीति।
विदामग्रतः कस्तदग्रेसरः स्यात् सुधीः शास्त्रयाथार्थ्यबोधे पृथिव्याम् ॥१४॥

अस्य भङ्गः—

शङ्कुहता चरजीवा विहृतान्त्यकया फलं यत् तत्।
उन्मण्डलशङ्कुः स्यादुक्तक्रिययाक्षभातश्च ॥१५॥

प्रश्नः—

देशं दिशं समवगम्य नतं च कालं योऽरं रविं वदति वावनिमण्डलस्थः।
निःशङ्कमञ्चति जनः सकलोऽपि तं च पञ्चीकृतं गणितजालमनेन मन्ये ॥१६॥

अस्य भङ्गः—

पलांशकोट्युत्क्रममौर्विकाघ्नी दिगंशकोटिज्यकया च निघ्नी।
नतासु जीवा स्वहतत्रिभज्याविभाजिता स्यात् प्रथमाभिधानः ॥१७॥
योगान्तरज्या नतकालभागदिगंशयोर्दक्षिणसौम्यदिक्त्वे।
दिग्भागकानां प्रथमाढ्यहीना दिगंशकेभ्यो नतकालभागाः ॥१८॥
न्यूनाधिकश्चेत् फलचापमन्यः शुद्धयेद्यदाद्यो विपरीतशुद्ध्या।
संयोज्यते वा फलचापकोटिरन्याभिधः स्यात् परकोटिमौर्व्या ॥१९॥
लम्बज्यकादिग्लवकोटिजीवावधोद्धृताद्यात् फलचापकोटिः।
सौम्योऽपमः स्यादथ चान्यमौर्वी नतासुकोटिज्यकया विनिघ्नी ॥२०॥
विभाजिता त्रिज्यकया भवेच्चेद्यदाल्पिका दक्षिणदिग्ज्यकातः।
तदापमो दक्षिणदिक्क एव सुधीभिरूह्योऽपि कुशाग्रधीभिः ॥२१॥

प्रश्नः—

आशालवापक्रमवित् क्वचिच्च सम्यङ्नतं कालमथापि बुध्वा।
देशं तमाख्याति विवृद्धबुद्ध्याऽसौ किं जनः किंजनपत्वमीयात् ॥२२॥

अस्य भङ्गः —

द्युज्याविनिघ्नी नतकालजीवा दिगंशकोटिज्यकया विभक्ता।
दृग्ज्या भवेच्चामुत एव साध्या द्विधा पलज्योक्तपथा सुधीभिः॥२३॥

प्रश्नः —

चरकालं नतकालं समकालं दिग्लवानुपालम्ब्य।
वेदालं लम्बलवान् योऽलं समलङ्कृतं कुलं तेन॥२४॥

अस्य भङ्गः —

नतासु कोटिज्यकया विनिघ्न्या मौर्व्या चरासूद्भवया विहीना।
कृतिस्त्रिमौर्व्याः प्रथमो द्वितीयो दिग्ज्याविनिघ्न्या नतकालमौर्व्याः॥२५॥
दिगंशकोटिज्यकया हृताया वर्गौ द्वितीयार्धयुताद्यकः स्वः।
कृती कृताद्यश्चर कोटिमौर्वी कृत्या द्वितीयाहतया युतोऽन्यः॥ २६॥
परोनितायाः स्वकृतेः पदेन युतोनितात् स्वात् परसंज्ञभक्तात्।
पदे त्रिभज्याकृतिसंगुणो स्याद्द्विधा द्युजीवा द्विविधोऽपमोऽतः॥२७॥
खाङ्काधिकाश्चेन्नतकालभागास्तद्द्रवौ दक्षिणगोलसंस्थे।
संसाधने ये प्रथमस्य खण्डे तद्योग आद्योऽन्यदिहोक्तवत् स्यात्॥२८॥

प्रश्नः —

नतांशान् दिगंशान् नतासूंश्च बुध्वा वदेद्यः पलाभां द्रुतं चापमज्याम्।
लसद्बुद्धयस्तान्त्रिकाणां सभासु बिभीयासुरेतद्भुजङ्गप्रयातात्॥२९॥

अस्य भङ्गः —

दिगंशकोटिज्यकया विनिघ्नी दृग्ज्या नतासु ज्यकया हृता स्यात्।
दिनज्यकातः सुधिया प्रसाध्याक्षज्या द्विधा पूर्वविधीन् विचिन्त्य॥३०॥

प्रश्नः —

अक्षभामाक्षजं वालनं यो नतं कालमप्यत्र विज्ञाय वेदापमम्।
शंसतां धीमतां सद्वचः स्मारिणी हार्प्यतेऽस्मै जयाशंसिनीस्त्राग्विणी॥३१॥

अस्य भङ्गः —

नतकालगुणाहताक्षमौर्व्याः क्रमलब्धे वलनज्यया त्रिमौर्व्या।
भवतः प्रथमापरौ ततोऽत्राक्षगुणं चाद्यमिहाग्रकां प्रकल्प्य॥३२॥

चरकालगुणात् पराद् द्विधा यो ह्यपमस्तद्वियुतिर्युतिश्च शोध्या।
नवतेरपमो द्विधाप्युदक् स्यान्नवतिः शुद्ध्यति चेद्युतेः स याम्यः ॥३३॥

प्रश्नः —

नतानसूनपक्रमं विलोक्य चाक्षवालनम्।
प्रचक्ष्व मेऽक्षभां क्षणाद्विचक्षणान्वदक्षिणाम् ॥३४॥

अस्य भङ्गः —

नतासुभागाक्षजवालनोत्थयोर्ज्ययोश्च कोटिज्यकयोर्वधात् फले।
त्रिभज्ययाद्यस्त्रिभमौर्विकोद्धृतोऽपमज्यकाघ्नः प्रथमः परः परः ॥३५॥
गोलक्रमादाद्ययुतो नितोऽन्यो नतेऽक्षभूनाड्यधिके परोनः।
आद्योऽमुना यद्वलनज्यकाद्युमौर्विकाघ्न्याः फलमक्षभा स्यात् ॥३६॥

प्रश्नः —

नतं समयमग्रकां नतलवांश्च विज्ञाय यो
ब्रवीति पलभापमौ स गणकाग्रगण्योऽथवा।
स गाणितिकसंसदि स्वयमुपेत्य पृथ्वीतले
तमांसि मनसां सतां रविरिव क्षणात् क्षीणयेत् ॥३७॥

अस्य भङ्गः —

अन्त्यां प्रकल्प्य नतकालजकोटिमौर्वीं
तद्भाजितोऽथ रविशङ्कुवधोऽग्रकाघ्नः।
त्रिज्योद्धृतश्च पलभां परिकल्प्य लब्धं
याज्ञज्यका भवति सापममौर्विका स्यात् ॥३८॥
साध्यस्ततश्चरगुणी नतकालकोटि-
ज्यासंस्कृतादमुत उक्तवदन्त्यका स्यात्।
साध्यं यथोक्तवदतश्चरमन्त्यकैवं
कार्यं मुहुः स्फुटतरापममौर्विका स्यात् ॥३९॥

द्वितीयप्रकारेण भङ्गः —

नतकालकोटिजीवामन्त्यां परिकल्प्य तद्दलेन हतः।
शङ्क्वग्रयोर्वधस्तच्चापीकृतकर्धितं क्रान्तिः ॥४०॥

स्यात् तस्माच्चरकालस्ततोऽन्त्यका च प्रसाध्येत्थम् ।
कार्यं मुहुः स्फुटा स्यात् क्रान्तिज्या चाक्षभापि ततः ॥४१ ॥

तृतीयप्रकारेण भङ्गः —

नतकालकोटिजीवां प्रकल्प्य हृतिमेतया विहृतः ।
शङ्क्वग्रयोर्वधः स्यादपमज्यातो नतासु विदा ॥४२ ॥

अक्षश्रुतिः प्रसाध्या तद्विहृतोऽर्काहतः शङ्कुः ।
स्याद्धृततिरसकृत्क्रिययानयापमज्या स्फुटाक्षभातः स्यात् ॥४३ ॥

प्रश्नः —

विध्वादिगंशान् नतकालवेदिन्नग्रां च विज्ञाय वदाक्षभां द्राक् ।
क्रान्तिं च चेद्गोलविलोकनात् ते प्राज्ञत्वगर्वोऽभ्युदितोऽस्ति चित्ते ॥४४ ॥

अस्य भङ्गः —

अग्रांशदिग्लवभवान्तरयोगकोटिज्याद्यस्तयोस्तु समभिन्नदिशोः स भक्तः ।
दिग्भागकोटिजगुणेन हतोऽग्रकांशकोटिज्यया फलजकोटिलवाश्चरांशाः ॥४५ ॥

कल्प्या अतश्च नतकालविदा प्रसाध्ये बुध्वोन्नतासुसमयार्धगुणद्युजीवे ।
घातात् तयोस्त्रिभगुणेन हतात् फलस्य चापं द्विसंगुणममुष्य च कोटिमौर्व्या ॥४६ ॥

दिक्कोटिभागगुणसंगुणया विभक्ताग्राभागकोटिगुणनिघ्नतासु मौर्वी ।
आद्याहता च फलकोटिधनुश्चरांशा इत्थं मुहुः स्फुटतराः स्युरतोऽपमश्च ॥४७ ॥

प्रश्नः —

नतलवान् नतकाललवान् सुधीः समवगम्य तथाक्षजवालनम् ।
द्रुतविलम्बितमत्र पलप्रभां कथमपि प्रवदेत् तमहं नमे ॥४८ ॥

अस्य भङ्गः —

नतकालवलनयोर्यः कोटिज्यकयोर्वधोऽनेन ।
वियुतयुतानतकाले तिथिनाडीभ्योऽधिके न्यूने ॥४९ ॥
त्रिज्यादृग्ज्याभिहतिर्दक्षिणगोलेऽनया विहीना सा ।
आक्षजवलननतासूद्भवयोर्मौर्व्योर्वधेन संभक्ता ॥५० ॥

सा वलनज्या क्षुण्णा नतकालज्योद्धृताक्षज्या ।
अपमोऽत एवमसकृत् क्रान्तिज्याक्षज्यके स्फुटे भवतः ॥५१ ॥

प्रश्नः —

नतकालं दिग्भागानाक्षजवलनं तथावगम्य द्राक् ।
पलभामपमं ब्रूते स्तूयासुस्तं न किम्वार्याः ॥५२ ॥

अस्य भङ्गः —

दिग्ज्याघ्नवलनमौर्व्याढ्यान्त्रिज्यघ्नान्नतासुकोटिगुणात् ।
दिक्कोटिवलनकोट्योर्ज्यावधविहतात्त्रिभज्यकागुणितात् ॥५३ ॥
लब्धं शङ्कुः कल्प्याः साध्या तस्माद्भुजांशकोटिज्या ।
सावलनज्या क्षुण्णा नतकालगुणोद्धृताक्षज्या ॥५४ ॥
अक्षज्यां दिग्भागान् नतकालं चापि विज्ञाय ।
क्रान्तिः शङ्कुः साध्यस्त्वित्थं साध्यो मुहुः शङ्कुः ॥५५ ॥
अक्षज्याक्रान्तिज्यानतकालज्या भुजश्चापि ।
क्रमतोऽमुतः प्रकारात् सम्यक् स्फुटतामुपेयासुः ॥५६ ॥
श्रीबालशास्त्रिविदुषां सविधं पठित्वा प्राक् शब्दशास्त्रमथ तज्जनितावबोधः ।
श्रीबापुदेवगुरुवर्यकृपाकटाक्षात् सज्ज्यौतिषं प्रपठतीह विनायको यः ॥५७ ॥
तन्निर्मिते कतिपयप्रश्नविचाराभिधप्रबन्धेऽस्मिन् ।
दिग्भागादिप्रकरण एतन्नतकालखण्डमभूत् ॥५८ ॥

प्रोषितप्रियसमागमः

धर्माधिकारिश्रीढुण्ढिराजशास्त्री
श्रीयुतकाववरगाल्डास्मथाभिधमहाशयविरचिताद्
'हार्मिट'–नामककाव्यादवतारितः

* * *

[१]'एञ्जलिना' नामिका काचन समृद्धश्रेष्ठिकुमारिका रूपयौवनधनसम्पत्तिगर्विता स्वविवरिषया समागतेषु समृद्धतरेषु प्रार्थकेष्वेकं विविधविद्याकलादिगुणगणैर्वरिष्ठं द्रविणरहितं युवानमेड्विननामानं विवाहार्थिनं प्रत्याचख्यौ। स च तयाऽवमानितः किञ्चन निर्जनं वनमध्युवास। सापि स्वसमानगुणनिवहैरुपशोभितं वरान्तरमलभमाना तस्यैव परमसुन्दरगुणाननुस्मरन्ती तद्वियोगदुःखिता तमेव मार्गयन्ती वनाद्वनान्तरं बभ्राम। अथैकस्मिन्दिवसेऽस्तंगतवति सवितरीतस्ततः परिभ्रमन्ती दैववशात्तदध्युषित एव वने समागता। तत्र च भस्मोद्धूलनधूसरितसर्वाङ्गं जटिलं तापसं मध्येकुटीरकस्योपशोभमानं दर्शनमात्रेणाशक्यप्रत्यभिज्ञानं रात्रिवासाय कुत्रचिच्छरणपथं जिज्ञासमाना वदति स्म, "अयि वनवासेत्यादिना"।

अयि वनवासविहारिन् देशय मार्गं मुने पुरतः।
याऽभिदरीं दीपशिखा आह्वयतीवातिथीन् किरणैः ॥१॥
असहायोऽहं दीनो विचरामि यथा यथा मन्दम्।
विपिनाली दीर्घतरा तथा तथा भाति मे पुरतः ॥२॥
अयि पुत्रक यासि कुतः प्रतियाहीत्यब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः।
निर्दय एष पिशाचस्तत्र हि हन्तुं प्रलोभयति ॥३॥
यद्यपि नैष कुटीरो मामक आढ्यस्तथापि नो पिहितः।
अशरणदीनाः सततं साधु लभन्तामभीष्टमितः ॥४॥
निवर्त्य तस्मादधिवासमद्य रात्रौ कुरुष्वेह कुटीरकस्य मे।
भजस्व तल्पं तृणनद्धमाशिषो निःशङ्कचेता उपभुङ्क्ष्व किञ्चित् ॥५॥
स्वैरं गुहायाः परितश्चरन्ति कुरङ्गयूथानि निहन्मि नाहम्।
भजामि तत्रापि दयार्द्रभावं दयालुरीशो भजते यथा मयि ॥६॥
आहरामि स्वयं शैलशाद्वलात्फलमूलकैः।
शाकैः पूर्णं करण्डं च निर्झरात्सलिलं शुचि ॥७॥

---

१. पं. ९, १०६ (मार्च, १९७५) २३८-४०.

परावर्तस्वात: पथिक जहि चिन्ता हि निखिला
भवन्त्यस्मिंल्लोकेऽबुधजनपरिभ्रान्तिकलिताः ।
न चास्ति प्राप्तव्यं मनुजतनयेनेह भुवने
यदस्ति प्राप्तव्यं तदपि चिररात्राय न भवेत् ॥८ ॥

प्रतिब्रुवन् कोमलया गिरा तदा स यूथिका पुष्पचयं किरन्निव ।
प्रेम्णा कुलीनः पथिको विनीतः प्रत्युज्जगामानुकुटीरमादरात् ॥९ ॥
अनुच्छ्रितं वेश्म ततो ददर्श गूढे वने भाग्यवशादुपागतम् ।
भ्रमाद्विमार्गे व्रजतां शरण्यं समीपवास्यस्वजनस्य गुप्त्यै ॥१० ॥
यस्मिंस्तृणाच्छादितवेश्मनोन्तर्नापेक्ष्यते स्वामिकृता हि रक्षा ।
निरर्गलद्वारसमीपदेशे ययौ पवित्रं युगलं सहैव ॥११ ॥
सायं यदा श्रान्तिनिरासहेतोः सुखं निषेदुः समजाः पशूनाम् ।
समूह्य वह्निं स मुनिः कराभ्यामारब्धवांस्तोषयितुं गृहागतम् ॥१२ ॥
परिविष्य फलानि कौतुकात् स्मयमानः स मुनिः प्रहर्षितः ।
समयं श्रवणीयसत्कथश्चिररात्राय निनाय भाषणैः ॥१३ ॥
बिडालशावाः परितस्तदानीमुदप्लवन्त प्रमदाकुला भृशम् ।
हसन्तिकाकाष्ठचटत्कृतिस्वनाः सुखाकरा झिल्लिकुलारवोऽभवन् ॥१४ ॥
नैकं तत्पथिकशुचं प्राभवदीषल्लघूकर्तुम् ।
गुरुशोकाकुलचेता वर्षितुमारब्धवानश्रु ॥१५ ॥
मुनिर्ददर्शास्य विवृद्धचिन्ता गाढं समाधिः परितप्यमानः ।
चिन्ताभिराहाऽसुखि पान्थ बाल शोकः कुतस्ते हृदयान्तराले ॥१६ ॥
निर्वासितस्त्वं भ्रमसीह रम्यात्सौधादनिच्छन्पदताडितः किम् ।
प्रवासिनो मित्रवरस्य हेतोः प्रियावमानात्परितप्यसे किम् ॥१७ ॥
यदृच्छयाऽऽसादितहर्षजातं विनश्वरं क्षुद्रतरं हि हन्त ।
स्तुवन्ति तुच्छानि भृशं च येऽपि तेभ्योऽपि ते क्षुद्रतमा मता मे ॥१८ ॥
नाम्नः परं किं भवतीह मैत्र्यं छायेव कीर्तेर्वसुनोऽनुगामि ।
मोहाय यद्वद्भवतीन्द्रजालमकिञ्चनाश्रुप्रसवस्य बीजम् ॥१९ ॥

निरर्थकं प्रेमपदं सदा तदुत्पद्यते यौवतलीलया भुवि।
कुत्रापि तन्नैव भवेद्यथार्थं कपोतयुग्मे ह्यथवा सुलभ्यम् ॥२० ॥

धिक्कृत्य तन्मूढ जहि स्वकीयां मत्वा शुचं स्त्रीलसितं तृणाय।
श्रुत्वेदमीषत्पुलकाङ्कितेन ह्याविश्चकाराशु वियोगदुःखम् ॥२१ ॥

भास्वन्तः क्षणभङ्गुरा दिवि यथा प्रादुर्भवन्त्य स्थिरा
वर्णास्तद्वदमुष्य गण्डयुगले प्रादुर्बभूवुः क्षणात्।
नूत्नं तत्सहसाऽद्भुतं मुनिवरो लावण्यमस्यास्तदा
दर्शमतीवविस्मितमनास्तूष्णीं स्थितस्तत्क्षणम् ॥२२ ॥

अपत्रपासूचकवीक्षितेन प्रोच्छूनवक्षोजनियुग्मकेन।
क्रमेण लावण्यगुणैकसिन्धुराविष्कृता कान्ततमा वधूटी ॥२३ ॥

हन्ताहं भवने विवेश सहसा यत्रेश्वरो राजते
त्वं चासीशकृपाकटाक्षकलया लब्धार्थकामोऽनिशम्।
ऊचे दुर्भगतां गता मुनिवर त्वद्गेहमासादितं
वैयात्यादधुना क्षमस्व पथिक भ्रान्तेरिदं दूषणम् ॥२४ ॥

भवतु तवानुग्राह्या चेटीयं प्रोषितप्रियाऽज्ञानात्।
भ्राम्यति मार्गणरक्ता लभते नैव प्रियं स्वीयम् ॥२५ ॥

धनिकवरो मे तातोऽध्युवास टैनाभिधं नगरम्।
अहमेवैका पुत्री दायहरा तस्य रिक्थस्य ॥२६ ॥

दूराद्वत्सलतातपादवशगां मां लब्धुकामा गुणा-
नायाता बहवस्तदा प्रणयिनो ह्यारोपयाञ्चक्रिरे।
केचित्कामशराभितप्तमनसः केचिच्च कामातुर-
ख्यातिं दर्शयितुं शशंसुरमलं लावण्यमत्यद्भुतम् ॥२७ ॥

महार्हशुल्कैरनुवेलमारात् स्वाभिष्टसिद्धौ यतमानचेतसाम्।
युवा समागत्य ननाम चैड्विनः परं बभाषे न कदापि हृद्यम् ॥२८ ॥

विनीतसाधारणवेषसंवृतो नासीत्तदानीं स धनी न शक्तिमान्।
सर्वस्वमासीत्सुगुणाः सुबुद्धिस्त एव मेऽभिष्टतमास्तदीयाः ॥२९ ॥

गाथां जगौ प्रेमयुतां गुहागतः सुगन्धिभिः श्वाससमीरणैस्तदा।
गानप्रतिध्वानिभिरङ्गणं मम प्रपूरयामास निकुञ्जवृन्दम् ॥३० ॥
तुहिनं कुसुमानि वल्लरीणामनुकर्तुं न हि शेकुरस्य चेतः।
क्षणभङ्गुरता यतस्तदीये शुचिरूपे न हि मानसाम्बुजाते ॥३१ ॥
प्रसूनलावण्यपवित्रते तद्हृदन्तरालेऽभवतां हि सुस्थिरे।
धिङ्मां परं तद्गुणचञ्चलत्वमासीत्तदा मे प्रियविप्रयोगकृत् ॥३२ ॥
मय्यनुरक्ते तस्मिन्नाहमखिद्यंस्तस्य दुःखेन।
गर्वाग्रहतः सततमकारि चाञ्चल्यजं कपटम् ॥३३ ॥
यावत्सोऽतिविषण्णोऽवज्ञातो मानिनीं त्यक्त्वा।
पुण्ये विजनेऽरण्येऽयासीन्मन्ये जहौ प्राणान् ॥३४ ॥
त्यक्ष्यामि तत्रैव निजं कलेवरं प्राणेश्वरान्वेषणतत्पराहम्।
स्वीयापराधं परितापजीवनैर्निराकरिष्ये प्रियसंस्थितेः क्षितौ ॥३५ ॥
अनाथा निराशा करिष्ये तदर्थे यथा चैड्विनाख्यः प्रयातो मदर्थे।
तदोवाच सोऽतिप्रियं हृष्टचित्तः परेशप्रसादोऽन्यथा कर्तुमीशः ॥३६ ॥
मुनीशो विदित्वा यदा तामभीष्टां समश्लिष्यतिस्माथ रामां सुरुष्टाम्।
परावर्तयन्तीं मुखं तर्जयन्तीं भृशं विस्मितां तामुवाचेड्विनोऽहम् ॥३७ ॥
अयि एञ्जलिनेऽनिशं प्रिये मम मोहाय शरीरधारिणि।
इह पश्य निजं तमेड्विनं पुनराप्तं प्रियया त्वयाऽधुना ॥३८ ॥
प्राणेशि त्वं सर्वस्वं मे चित्ते वासान्नष्टाश्चिन्ताः।
संभाव्यन्ते विश्लेषा नः कच्चिच्चेतोऽन्यस्मिन्काले ॥३९ ॥
अस्मादेव मुहूर्तकात्परतरं नो नैव संभाव्यते
विश्लेषोऽथ कुरङ्गशावनयने सत्यानुरागौ चिरम्।
स्थास्यावस्तव मानसं प्रियतमेऽत्यन्तानुरक्तं मयि
शोको येन विदीर्यते स हि मम द्राग् दारयेन्मानसम् ॥४० ॥

■

वाराणसेयपाठशालायामाङ्ग्लसंस्कृतशालाया भूमिका

धर्माधिकारिश्रीढुण्ढिराजशास्त्री
काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालीयाङ्ग्लसंस्कृतविभागेऽनुवादकः

* * *

[१]चिरात्प्रभृत्यभ्यस्यमानानामुत्तरोत्तरमुपचीयमानपरिष्कृतीनां प्राच्यप्रतीच्यविद्वत्प्रवरैः स्वस्वप्रतिभोद्रेकबलेनोहितैः सूक्ष्मतरैर्गम्भीरै रमणीयैरत्यर्थमुपादेयैस्तर्कैरतीव वैतत्यं प्रापितानामपि भारताङ्ग्लाशास्त्राणां केवलमेकं वैगुण्यं शल्यमिवास्ते स्म, यत्तत्तद्गतानां तर्काणां परस्परं संवादविसंवादादेर्मुहुर्मुहुः प्रत्याकलनेन तारतम्यपरीक्षणाभावो यस्य च परमं निदानं तत्तद्ग्रन्थानां तत्तच्छास्त्रपारदृश्वनां विबुधानां च परस्परं भाषाभेद एवेत्येतन्निपुणं विचार्य निरुक्तं शल्यमुद्दिधीर्षरिव लीलाविग्रह इव पाण्डित्यस्य भौतिकं देहं विमलयशोरूपेण विपरिणमय्येव परलोकं प्रस्थितो महाशयो **बालण्टैनपण्डितो** दमदयाम्भोनिधेः सम्राजः श्री५विजयिन्या देव्या लब्धप्रसादातिशयः पुराऽस्यां वाराणसेयपाठशालायामाङ्ग्लसंस्कृतशालां प्रतिष्ठापयामास। यस्याश्च मुख्य उद्देशः संस्कृतदर्शनप्रवीणानामाङ्ग्लदर्शनज्ञानेन कुत्रचित्स्थलविशेषेषु पङ्ग्वन्धवदुभयोः सम्मेलनेन समीहितदेशलाभ इव रत्नकाञ्चनयोः संयोजनेन च सकललोकमनोहराङ्गुलीयकमिवानयोरपि भारताङ्ग्लशास्त्रयोः स्थलविशेषीयविषययोः परस्परं संगमनेन विचित्रातिचमत्कृतमहोपयोगिविषयान्तरलाभः।

परन्त्वेकैकदर्शनस्यापि साङ्गोपाङ्गमध्ययनं पूर्णेनैकेन मनुष्यायुषापि दुष्करं भवति, का पुनर्निखिलसंस्कृतदर्शनप्रवीणतां सम्पाद्याङ्ग्लदर्शनप्रवीणतासम्पादनपुरःसरमन्योन्यदर्शनीयविषयान् संयोज्यैकेन पुरुषेण सम्पादयिष्यमाणस्य चमत्कृताभिनवविषयान्तरलाभस्य प्रत्याशा। अतः संस्कृतदर्शनानामाङ्ग्लविद्वत्सु भारतीयविद्वत्सु चाङ्ग्लदर्शनानां शीघ्रतरप्रचारसाधनान्वेषणपरायणः काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यक्षवरः श्रीमान् ग्रिफिथ्साहिबाभिधमहाशयो द्वासप्तत्युत्तराष्टादशशततमे खीष्टीयाब्दे संस्कृताङ्ग्लशालीयान् पञ्चषान् संस्कृतपण्डितान् उभयविधदर्शनग्रन्थानामन्योन्यभाषयोः साधारणजनोपयोगिनो बाह्यप्रपञ्चविमर्शकाङ्ग्लग्रन्थानां भारतीयदेशभाषायां चानुवादाय नियोजयति स्म। दृढं संभाव्यते चायमन्योन्यभाषयोर्दर्शनावतारो नवीनोद्भावितशङ्कासमाधानरहितोप्यक्षरशः क्रियमाणोऽन्योन्यभाषापरिचयविमुखैरेकैकदर्शनपारङ्गतैर्भारतीयैराङ्ग्लैश्च महापण्डितैर्निरीक्षमाणस्तत्तदुट्टङ्किताक्षेपसमाधानाभ्यां परिपुष्टः शीघ्रमेवोभयविधदर्शनानां महतीमुन्नतिं सम्पादयिष्यतीति अथानुवादकारिपदे प्रतिष्ठितः **केशवशास्त्री** विविधदर्शनपारदृश्वना राजकीयसंस्कृतपाठशालीयधर्मशास्त्राचार्येण परमगुरुचरणेन कैलासवासिकार्लेकरोपनामकश्रीयुतपण्डितवर**राजारामशास्त्रिणा**

---

१. पं. १०, ११९ (१ अप्रैल, १८७८) २५९-६०.

प्रोत्साहितः प्रथमं बर्कलाभिधमहाशयविरचितज्ञानसिद्धान्तमालाया अनुवादं ज्ञानसिद्धान्तचन्द्रिकानामकं विरच्य प्रभुवरग्रिफिथ्साहिबाभिधमहाशयानुमत्या परमश्लाघनीयेऽस्मिन् मासिकपत्रे प्राकाशयत्। तमिममनुवादं वाचं वाचं हृष्यन् परमगुरुचरणस्तस्य महोपकारितां च विज्ञाय ग्रन्थकर्तारं बहुभिर्धन्यवादैरनुवादकारिणं शुभाशिषा च भूयो भूयोऽभिनन्दयामास। अथैतस्य विज्ञानवादस्य शङ्काभासनिरासपुरःसरं न्यूनतां परिहर्तुं महतोत्साहेन प्रवर्तमानयोः श्रीपण्डितवरराजारामशास्त्रि- श्रीयुतबालशास्त्रिणोः परमगुरुचरणश्रीराजारामशास्त्रिणो दिव्यपदं प्रति प्रस्थानेनातितरां दूयमानमानसः श्रीमद्गुरुवरो बालशास्त्री किञ्चिदुपेक्षितारब्धकार्योऽपि सम्प्रति विविधाङ्ग्लदर्शनपारङ्गमेन संस्कृतदर्शनेष्वपि विचित्रव्युत्पत्तिशालिना श्रीमता गफसाहिबाभिधमहाशयेन श्रीकेशवशास्त्रिद्वारा प्रोत्साहितोऽचिरेणैव सफलयिष्यति पश्चिमोत्तरदेशीयराजकीयनिखिलपाठशालाध्यक्षप्रतिनिधिपदं प्रतिष्ठितस्य श्रीग्रिफिथसाहिबाभिधमहाशयस्य मनोरथद्रुममिति सुदृढमाशासे। परन्त्वस्यां ज्ञानसिद्धान्तचन्द्रिकायां भूयो भूयः कुत्रचित् साधकप्रमाणविधया कुत्रचिच्च खण्डनायांशत उपन्यस्तं श्रीयुतलोकाभिधमहाशयमतं परमप्राचीनसंस्कृतदर्शनानुगुणं सोपपत्तिकमुपलभ्य निखिलतन्मतदर्शनाय जातकौतुकैः श्रीपरमगुरुचरणैर्गुरुचरणैश्च पुरैव प्रोत्साहितोऽहं श्रीमद्ग्रिफिथसाहिबप्रभुवराज्ञया श्रीलोकाभिधमहाशयविरचितस्य खण्डचतुष्टयात्मकस्य मानवीयज्ञानविषयकशास्त्रस्य प्रकृतज्ञानसिद्धान्तचन्द्रिकापरिष्कारोपयोगितया तृतीयं शब्दखण्डमेव प्रथमं संस्कृतेऽवतरणायोपाक्रमे। संप्रति च काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालाध्यक्षप्रतिनिधिपदं प्रतिष्ठितस्य श्रीमद्गफसाहिबाभिधमहाशयस्याज्ञया चिरलुप्तसंस्कृतभारतीयपुनःसंजीवनपीयूषेऽस्मिन् पत्रे मुद्रयितुमुपक्रमे। एतद्ग्रन्थस्य दूरान्वयिदीर्घतरगुढार्थकवाक्यकदम्बादिप्राचीनाङ्ग्लशैलीघटिततयातिदुरूहत्वेऽप्येतत्पाठशालीयाङ्ग्लसंस्कृतभागीयप्रधानाध्यापकवरस्याङ्ग्ले संस्कृते चोभयत्राप्रतिहतप्रतिभस्य श्रीयुतडाक्टरथिबोसाहिबाभिधमहाशयस्य साहाय्येनैतत्कार्यं सुनिर्वहन् सुयशो मान्यपुरुषेभ्यः शुभाशिषश्च लभेयमिति बाढं विश्वसिमि।

भूयो भूयोऽभ्यर्थये च सहृदयान् साधुपण्डितवरान् अत्र प्राथमिके मुद्रणे त्वराप्रमादादिकृतान् दोषान् सुविचार्य मां निवेदनेनानुग्रहीतुं प्रसीदन्त्विति शिवम्।

संवत् १९३३

चैत्रशुक्लसप्तम्यां शनौ

संस्कृतसमाजनाम्न्याः सभाया वृत्तान्तवर्णनम्

अथ माघशुक्लप्रतिपदि संवृत्तायाः सभायाः प्रथमोपस्तरणस्य वर्णनम् —

[1]तत्र तावत् प्रथमं सम्पादको रामकृष्णशास्त्र्युपोद्घातसभाया वृत्तान्तसारं संक्षेपतो लिखितं सर्वेभ्यः सभ्यवरेभ्यो वाचयित्वा निवेदयति स्म।

तदनन्तरं ढुण्ढिराजशास्त्री श्रीहर्षकालिदासकवितयोः कतराऽधिकगुणशालिनीत्यत्र विषये स्वनिर्मितं संदर्भलेखं वाचयति स्म। तद्यथा प्रथमं तावद्बहवो गाढतरमनोयोगेनापि कृपणतरामिवाऽनायासेन स्वीयार्थसम्प्रदानविमुखीं सकलभुवनभारतीभूषणायमानां श्रीहर्षकवितां काव्यगुणदोषविचारचातुरीपटीयसा काव्यप्रकाशकारेण काव्येषु हेयतया प्रदर्शितेन काठिन्यदोषेण दूषयन्ति, स्तुवन्ति च श्रीकालिदासकवितामुदारामिवाऽनायासेन स्वीयार्थवितरणशालिनीं द्राक्षामधुरां प्रसादादिगुणैः। तत्र प्रतिवदामि। नायं काठिन्यदोष आद्यायां सर्वत्रानुस्यूतो नाप्यपरस्यां प्रसादादिगुणाः प्रतिपद्यं येनैका निन्दनीयाऽपरा वन्दनीया वा भवेत्। हृदय सदा यादवत इत्यादिनलोदयकाव्येऽपरस्याः काठिन्यदोषस्य प्रतिपद्यमुपलम्भात्।

तव वर्त्मनि वर्ततां शिवं पुनरस्तु त्वरितं समागमः।
अयि साधय साधयेप्सितं स्मरणीयाः समये वयं वयः॥

तथा —

पश्यावृतोऽप्येष निमेषमद्रेरधित्यकाभूमितिरस्करिण्या।
प्रवर्षति प्रेयसि चन्द्रिकाभिश्चकोरचञ्चूचुलुकान्प्रतीन्दुः॥

तथा —

ध्वान्ते द्रुमान्तानभिसारिकात्वं शङ्कस्व सङ्केतनिकेतमाप्ताः।
छायाच्छलादुज्झितनीलचेला ज्योत्स्नानुकूलैश्चलिता दुकूलैः॥

एवमादिषु भूयिष्ठेषु पद्येषु श्रीहर्षकवितायाः प्रसादमाधुर्यादिगुणानां सुस्पष्टमुपलम्भाच्चेति। ततो गङ्गाधरशास्त्री तत्र प्रथमवादमकरोत्। तद्यथा—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः
पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे
चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः॥

अत्र तपस्यन्त्या देव्या देहोपरि निपतितानां प्रथमवृष्टिबिन्दूनां क्रियास्वभाववर्णने देव्याः समाध्युचितावस्थानाभिव्यक्तिद्वारा चिरनिदाघतप्तदेहोपरि पतनेन सुखपारवश्यसंभ्रमहेतौ प्रथमवृष्टावप्यविहता समाध्यवस्था व्यज्यते। तथा हि—

---

१. पं. १, न्यू सि. (जून १, १८७६) ४७-५१.

नासाग्रन्यस्तनयनः संवृतास्यः सुनिश्चलः।
ध्यायेच्च मनसा देवमुरो विष्टभ्य चाग्रतः॥

इति समाधिमतोवस्थानमाहुः। तत्र पक्ष्मसु स्थिता इत्यनेन नासाग्रन्यस्तनयनतारूपमर्धनिमीलनं व्यज्यते। सर्वथोन्मीलने पक्ष्मणामूर्ध्वाग्रत्वेन सर्वथा मीलने तेषामधोऽग्रत्वेन च तेषु जलबिन्दूनां स्थित्यसम्भवात्। पक्ष्मभ्यश्च्युतानां तेषामास्येऽप्रवेशेनाऽधरोष्ठे निपतनकथनेन संवृतास्यत्वं व्यज्यते। ततश्च्युतानां स्तनोत्सेधनिपतनादिवर्णनेनोरोविष्टम्भः। अलसवदवनतावस्थाने हि स्तनयोरन्तः संकुचिताकारतया तदुत्सेधयोस्तेषां पतनं न स्यात्। कथञ्चित् तयोः पतित्वा वलित्रयं प्राप्तानामपि वलिषु तिर्यगेव गमनं स्यान्न नाभिदेशप्राप्तिः। नाभौ च संवृतायां प्रवेशो न स्यात्। पक्ष्माधरादिपतनक्रमवर्णनेन निश्चलत्वं व्यज्यते। मुखादिचलने सति पक्ष्मपतितानां तेषामधरपयोधरादिक्रमेण पतनासम्भवात्। किञ्चैभिरेव लोकोत्तरं सौन्दर्यमपि व्यज्यते।

स्थिता इत्यनेन पक्ष्मणामविरलतायाः क्षणमित्यनेन तेषां मसृणतायाः पक्ष्मपतनशिथिलवेगैरुदबिन्दुभिस्ताडनोक्त्याऽधरस्यातिसुकुमारतायाः पक्ष्माधरपतनातिशिथिलवेगानां तेषां स्तनोत्सेधे चूर्णतावर्णनेन तयोरतिकाठिन्यस्योरोविष्टम्भेऽपि वलीषु तेषां स्खलनोक्त्या वलीनां विस्पष्टतायाः सर्वबिन्दूनां नाभावेव प्रवेशकथनेन शरीरस्य मसृणताया नाभेरतिगह्वरतायाश्च वर्णनात्। एवंविधस्वभावानुगुणविविधार्थवर्णनपरं लोकोत्तरमेतत्काव्यमनुभवन्तो वयमीदृशं चेत्पश्येम श्रीहर्षकाव्य ततो विचारयेम तत्कवितयोस्तारतम्यमिति।

ततो **रामकृष्णशास्त्री** अहह!! "देवः पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या" इत्यादीनि किल बहूनि पद्यानि सकलकाव्यप्रद्योतनायमानानि निरुपमानान्यनुभूय न भवान् खद्योतमिवैतदेकमेव पद्यं प्रस्तोतुमर्हति। यदनेनैकेन पद्यवर्णने पञ्चापि नलरूपधारिणः स्फुटतरं वर्ण्यन्ते। प्रायः श्रीहर्षकवितायां भवदभिनन्दितकाव्यादतीव सुमनोहराणि बहून्यनेकार्थकानि सन्ति पद्यानि। तदेतत्सर्वमननुसन्धायैतत्सदृशमेकमेव पद्यं सकलकालीदासकवितासारं सन्मार्ग्य चारुत्तरनैषधीयकवितां नाधिक्षेप्तुं प्रभवतीत्यवादीत्। ततः श्रीमान् सभाप्रोत्साहकमहाशयो गङ्गाधरशास्त्र्युदितमेव पद्यं सकलकवितासारं सम्मन्यमानस्तमेवान्वमोदत्। किञ्च, काव्यं नामाभिव्यक्तरसादिभिर्युतमेवानन्दं जनयति। रसश्च कान्तकामिन्यादिभिरालम्बनविभावैरुद्यानादिभिरुद्दीपनविभावैश्चोत्पादितः, कटाक्षाद्यनुभावैश्च गमितः, उन्मादादिभिर्व्यभिचारिभावैश्च पोषितः, शृङ्गारादिनामधेयो रत्यादिस्थायिभावात्मा। नैषधीयकविताश्चानेककार्थिका विविधकल्पनाभिर्युता अपि असम्भवदुक्तिकातिशयोक्तिबाहुल्येन नानन्दयितुमलं भवन्ति। किञ्च मन्येऽहं काव्यं नाम तदेवोत्तमं यच्छ्रुतमात्रेणार्थं प्रकाशयत्सुखमुत्पादयेत्। श्रीहर्षश्च महापण्डितः, परं तदीयकाव्यमतिक्लिष्टतया नीरसमिव न संहृदयेष्वाश्वानन्दाङ्कुरमासादयति। कालिदासीयं तु सालङ्काररसपुष्टं सरलं काव्यमवश्यं सहृदयहृदयेषु आह्लादं जनयेदिति तमेव श्लोकं पुनः पुनः संश्लोक्य कालिदासीयकवितां सर्वोत्तमां सममन्यत। ततो **गोविन्दशास्त्री** नैषधचरिते

षोडशतमे सर्गे प्राधान्येन रतिवर्णनेनातीव रसादिसम्भरितं सकलकाव्यगुणसंयुतं सकलतत्त्व-द्रसपरिशीलनशालिनां हृदि आह्लादमुत्पादयत्येव नैषधचरितम्। अभिनन्दयन्ति च महापण्डिता एतस्य महाकवेः कविताचातुरीं पाण्डित्यसौष्ठवं चेति, मन्येऽहं सर्वथा श्रीहर्षकवितैव कालिदासादिसकलकविकाव्यचूडामणिरिति वदति स्म।

ढुण्ढिराजशास्त्र्यपि पुनर्न केवलं काव्यं श्रुतं सदेव यदानन्दजनकं तदुत्तममिति मह्यं रोचते; किन्तु तदीयार्थावगमे सत्यानन्दजनकं यत्तदेवोत्तमं काव्यम्। किं च, पार्वत्यास्तपो-वर्णनप्रस्तावे सौन्दर्यसौकुमार्यादिशृङ्गारालम्बनविभाववर्णनमपि तत्र दोषमेवावहतीत्यवादीत्। केशवशास्त्र्यपि 'तं पातयां प्रथममास पपात पश्चाद्' इत्यादिव्याकरणाशुद्धिरपि कालिदास-कवितायां दृश्यते, श्रीहर्षीयं तु सकलदोषलेशशून्यं सर्वतः श्रेष्ठतमं मन्ये इति प्रत्यवादीत्।

बालकृष्णाचार्यस्तु हिन्दीभाषया निवेदितवान्। तस्यायमर्थः— एतद्देशीयानां संस्कृत-भाषाव्यवहारोऽतीव चिरन्तनो व्याकरणनिर्माणादपि प्रागप्रवर्त्तमानः साम्प्रतमेव परं मृतकल्पोऽ-भूत्। कवयस्तु काव्यं कुर्वाणा व्याकरणाशुद्धानपि चिरन्तनव्यवहारविषयतयाऽर्थपोषकान् तांस्तानेव शब्दान् प्रयुञ्जत इति व्याकरणाशुद्धिर्न काव्येऽर्थपोषकतायां दोषमावहतीत्यवादीत्। अथ च पुनः सभाप्रोत्साहकमहाशयो न संस्कृतभाषा मृता साम्प्रतमस्माकमेतद्देशीयानां सर्वे व्यवहाराः शास्त्रीयाः पठनपाठनग्रन्थनिर्माणप्रमुखा अद्यापि संस्कृतभाषयैव भवन्ति, कथं पनर्मृतेति? सततमस्माकं देशभाषाः पुष्णन्त्येषा संस्कृतभाषाद्यापि जीवत्येव। यत्पुनर्गोविन्द-शास्त्रिणोक्तं तत्रत्युच्यते। अस्तु नाम षोडशतमः सर्गो नैषधचरितस्य रतिवर्णनेन रससंवलितः, अस्ति च महापण्डितः खण्डनखण्डखाद्यप्रमुखसकलपण्डितवराभिनन्द्यमानग्रन्थसन्दर्भा-वलोकनश्रवणैरविवादितपाण्डित्यः श्रीमान् श्रीहर्षकविः परं कालिदासकविताद्राक्षामाधुरी नैषधीयकवितायां न कुत्राप्यनुभूयते सहृदयैः। वर्णयन्तु वा तत्पक्षपातिनस्तदीयकविता-माधुरीं मात्सर्यहीनानां रसज्ञानां परं सैव कालिदासकविता आनन्दं जनयेदिति मन्ये। यत्पुनर्ढुण्ढिराजशास्त्रिणोक्तं तदपि प्रत्युच्यते। न तपोवर्णनप्रस्तावे पार्वत्याः शृङ्गारातिशयो वर्णितः; किन्तु श्रीहर्षकाव्याधिकं व्यञ्जनयाऽर्थमभिदधाति कालिदासकाव्यमित्येव। न हि शृङ्गारशान्तयोरेकाश्रयतया वर्णनं कालिदासेन कृतं येन भवद्दोष उत्प्रेक्षितो भवेत्। किञ्च, निखिलस्यापि तपोवर्णनपरायणस्यास्य सर्गस्य विप्रलम्भशृङ्गारप्रधानतया पार्वत्यास्सौकुमार्य-सौन्दर्यातिशयवर्णनमप्यविरुद्धमेव। श्रीहर्षकवितायामर्थबाहुल्येऽपि व्यञ्जनया तादृशी न कुत्राप्यर्थप्रतीतिः। व्याकरणाशुद्धिरपि पर्यालोचने श्रीहर्षकवितायामपि स्यादेव, मास्तु वा, परं व्याकरणाशुद्धमपि किञ्चित् पद्यं रसादियुतं यदि तदा चमत्कृतिजननरूपं काव्यगुणं सम्पादयेदेवेति वादं समापयत्। ततश्चोत्तरसभायां श्रीकेशवशास्त्री नैयायिकाभिमतेश्वर-सर्वज्ञताविषये सन्दर्भलेखं पठिष्यति, श्रीराममिश्रशास्त्री च तत्र प्रथमवादं करिष्यति, ततः सभ्येषु विचारो भवेदित्यागामिसभाविचारविषये नियोगोऽभूत्। अनन्तरं सर्वे सभासद-स्तत्पक्षीयतिथ्यादिनिर्णयं कृत्वा सभाजनितसुखं सततमनुभवन्तः सभां विससृजुः।

[२]

[१]अथ फाल्गुनकृष्णप्रतिपदि संस्कृतसमाजनाम्नी सभोपस्तीर्णा। तस्यां च प्रथमं सभासम्पादको रामकृष्णशास्त्री पूर्वसभावृत्तान्तं यथावद्वाचयित्वा सभ्येभ्योऽश्रावयत्। ततः सभाप्रोत्साहकः श्रीप्रमदादासमित्रमहाशयः सकलसभ्यविवक्षितमेवार्थं श्रीबापूदेवशास्त्रिणः प्रार्थयत, तद्यथा— अगाधमतिदुरूहमपि ज्योतिःशास्त्रं यैरनेकलघुतरकल्पनाभिर्नानाविध-ग्रन्थनिर्माणेन सततमनुकम्पया सकलशिष्येभ्यः पाठनेन च बहुजनोपकारि सम्पादितम्, तत एव च येषां यशो भारतवर्षेऽवकाशमनासादयदिव सागरमप्यतीत्य नानाविधान्द्वीपानलङ्करोति, तैरियं सभा स्वाध्यक्षतां केवलमनुग्रहधिया निखिलजनातिगया च सुजनतयाऽङ्गीकुर्वद्भिः परमनुगृहीतेति। ततश्च ते सभाध्यक्षा उपदिशन्त इव सर्वेभ्यो विनयातिशयमनीदृशोऽप्यहं यतः सभाध्यक्षतामङ्गीकारितस्तेन नितरामुपकृतोऽस्मीति प्रमिताक्षरमब्रुवन्। ततश्च सभा-प्रोत्साहको विनयातिशयपुरःसरं श्रीबालशास्त्रिणामभिमुखीभूयाभ्यधत्त। तद्यथा, एकैकमपि हि शास्त्रमतिगभीरार्थतया सुचिरमप्यभ्यस्यमानं यत्र नाधिरोहति मतौ स्थिरतां तत्र कैववाऽऽशा नानाविधानां दर्शनानां वशीकरणे, तादृशानि सकलानि दर्शनानि यान्सन्ततमेवोपासते वेदोऽपि यथार्थ्येन यैः सकलो ज्ञायते, न च केवलं तज्ज्ञानमात्रमपि तु कण्ठतःपाठेऽपि शक्यते यैः कर्त्तुम्, कथंकारं तेऽस्मादृशलघीयो जनस्तुतिवचसा शक्येरन् गोचरीकर्त्तुम्। अथापि ते निरवग्रहेण सभायामस्यामनुग्रहेण संस्कृतोत्साहवशंवदेन च चेतसा सभाध्यक्षसहायताममंसत, तेनोन्मस्तकमुपकारं सभेयं धारयतीति। ततः केशवशास्त्री निजलिखितमाश्वरसर्वज्ञताविषये विचारमवाचयत्।

ईश्वरो हि न्यायविद्भिर्नित्यानां ज्ञानेच्छाकृतीनामाश्रयः परमात्मा विभुत्वादिगुणयुक्तः सर्वज्ञः स्वीक्रियते। अत एव भगवान्वात्स्यायनः 'तत्कारित्वादहेतुः' इति गौतमदर्शनतुरीया-ध्यायस्थसूत्रव्याख्यानावसरे आगमाच्च द्रष्टा बोद्धा सर्वज्ञातेश्वर इत्याद्याह। तथा चाशेष-सूत्राणि भूतभविष्यद्वर्त्तमानानि भौतिकान्यभौतिकानि वा कार्याणि परमात्मना सर्वदा ज्ञातान्येवावतिष्ठन्ते, न किमपि तदज्ञातं कार्यान्तरं पुरुषकारेण सम्पादयितुं शक्यते। एवं स्थिते स्वाराज्यकामो वाजपेयेन यजतां स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेनेत्यादीनां परःशतानां वेदोक्त-विधीनां परमात्माज्ञातार्थप्राप्तिसूचकत्वम्, आहोस्वित् तज्ज्ञातार्थप्राप्तिसूचकत्वमेवेति मीमांस्य-ताम्। तत्र नाद्यः, ईश्वरसर्वज्ञताहानिप्रसङ्गात्। नाप्यन्त्यः, ईश्वरज्ञातार्थानां त्ववश्यंभावात् तदर्थं वेदोक्तकर्मानुष्ठाने प्रेक्षावतामप्रवृत्तेः। न चेश्वरप्रेरिता एव जनास्तथाविधानि कर्माण्या-चरन्तीति वाच्यम्। कांश्चन पुरुषान् साधुफलकेषु कांश्चनासाधुफलकेषु कर्मसु प्रेरयत ईश्वरस्य नैर्घृण्यापत्तेः। न चैवं सम्भवति। यत्सर्वत्र समदर्शनो भगवानेकं पुरुषं श्रेयस्करमपरं चाश्रेयस्करं कर्म कारयेत्। एवञ्च .यथार्थात्मतत्त्वविन्नैयायिकोऽखिलान् वैदिकविधीन-पार्थान्मन्यमानोऽशेषकार्यजातस्येश्वरज्ञातत्वं स्मरन्नग्निशकटस्थितं बद्धकरचरणत्वात्स्वयम-

१. पं., २, न्यू. सि., ४ (सित.१, १८७६) २५२-२६०

चेष्टमानमपि तादृशशकटनीतं सदिष्टानिष्ठान् वा देशान्प्राप्नुवत्पुरुषान्तरमिवाभीष्टाननभीष्टान् वा भोगान् प्राप्नुवन् न कमपि पुरुषकारं कर्तुं प्रयतेत; परन्तु न्यायनये वेदस्यापि प्रामाण्यमङ्गीक्रियते। अत एव भगवान् गौतमो द्वितीयाध्याये **'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्याच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्'** इत्याह। तद्व्याचक्षाणो वात्स्यायनोऽपि तत्रेदं कृत्वेष्टमधिगच्छति इदं वर्जयित्वाऽनिष्टं जहातीत्याद्युदाहरति। इत्थं च वेदोक्तकर्मानुष्ठानसार्थक्यं स्वीकुर्वाणा न्यायकोविदाः कथं नामेश्वरसर्वज्ञत्वं साधयेयुः। वेदोक्तकर्मणामसिद्धकार्यसाधकत्व एव सार्थकत्वोपगमात्। कार्याणां च सिद्धेः प्रागविद्यमानत्वेनेश्वरज्ञानागोचरत्वात्। भविष्यतामपि कार्याणामीश्वरज्ञानगोचरत्वं मन्यते चेत्तेषामवश्यभावित्वेन तदर्थं वैदिककर्मानुष्ठानचोदनाया वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति तादृशचोदनायाः सार्थकत्वमुपपाद्येश्वरसर्वज्ञत्वं नैयायिकानां दुरुपपादमिव प्रतीयते। ततो **राममिश्रशास्त्री**— भो नेश्वरेऽस्य मनुष्यस्य स्वर्गो भविष्यतीत्येतावदेव ज्ञानमुपेयते येन भवदुक्तो दोषोऽवकाशमासादये, अपि तु यद्ययं मनुष्यो ज्योतिष्टोमेन यजेत ततोऽस्यापूर्वमुत्पद्येत, ततश्च, स्वर्गो भवेदथ न यजेज्ज्योतिष्टोमेन नोत्पद्येताप्यस्यापूर्वं ततश्च न स्यात्स्वर्ग, इति हि ज्ञानमुपेयते पदार्थमात्रस्य भगवज्ज्ञानविषयत्वादिति। ततो **ढुण्ढिराजशास्त्री**। यद्येवमुच्यते तर्हि भगवतः सर्वव्यक्तिषु सुखं दुःखाभावो वा भवत्वितीच्छामात्रेण तथाविधेन वा ज्ञानेन सर्वव्यक्तीनां सुखादिसम्भवेऽपि यतो न तादृशं ज्ञानमिच्छा वा, तत आपततीश्वरे वैषम्यनैर्घृण्यरूपो दोष इति। ततो **राममिश्रशास्त्री**। नायं दोषो भगवति तथाविधज्ञानेच्छयोः कर्मसापेक्षत्वात्। यस्य हि यादृशं शोभनं तदितरद्वा कर्म भवेत्तत्सहकारेण तथाविधमेव भगवतो ज्ञानमिच्छा वा अभ्यधायि चैतदेवमेव सूत्रकृता "कर्मणश्च जडतया सुखदुःखयोः सम्पादने स्वातन्त्र्याभावादीश्वरः सिध्यतीति" तर्हि कर्मैवालं कृतमीश्वरेणेति न दोष इति।

ततः **प्रमदादासमित्रमहाशयो** राममिश्राभिहितमेवार्थं संक्षिप्तं तत्तत्कारणव्यापारपूर्वकमेवयद्ययं मनुष्यो ज्योतिष्टोमेन यजेत, ततोऽस्यापूर्वमुत्पद्येतेत्येव ज्ञानमीश्वरेऽभ्युपगम्यत इति विस्तरेणोपपादयत। अथ शिवकुमारमिश्रो भवदुक्तो हि ज्ञानाकारो विकल्पात्मतामवगाहते स चेश्वरे न कैरप्युपेयते प्रमात्मकस्यैव ज्ञानस्येश्वरेऽभ्युपगमादित्यर्थकं वाक्यसन्दर्भं सकलसभ्यबोधाय विस्तरेणोपपादयत्। ततोऽयं पुरुषो यागं करिष्यत्येव ततोऽस्य स्वर्गो भविष्यत्येवेति हीश्वरे प्रमात्मकमेव ज्ञानमुपेयतेऽतो न भवदुक्तदोषावकाश इति राममिश्राशये श्रीबालशास्त्रिभिः स्फुटमुपपादिते, शिवकुमारमिश्र एवं सति प्रमात्मकमेव ज्ञानमीश्वरे वर्त्तते सकलवस्तुविषयकं चेति निश्चिन्वतः पुंसः प्रवृत्तेरनुपपत्तिरापद्यत इत्यवोचत्। ततोऽतिगहनोऽयं विचारो नाद्य समाप्नुयादिति सभान्तरे **केशवशास्त्रिशिवकुमारमिश्रौ** पूर्ववादं राममिश्रराजारामशास्त्रिणौ चोत्तरवादं कुर्यातामिति श्रीबालशास्त्रिभिरादिष्टेष्वेषु सायंसमयेऽपि जाते सभ्याः सर्वे सभां विससृजुरिति शम्।

[३]

अथ फाल्गुनशुक्लप्रतिपदि संस्कृतसमाजनाम्नी सभोपस्तीर्णा। तस्यां च सम्पादको रामकृष्णशास्त्री पूर्वसभावृत्तान्तं यथावदवाचयत्। तदनु प्रमदादासमित्रमहाशयो बालशास्त्रिभिः प्राङ्निरूपितमर्थं तथालिखितमवगत्य तान् प्रार्थयत्, श्रीमद्भिः प्राङ् निरूपितोऽर्थोऽतीवविशदः सयुक्तिकोऽल्पज्ञानामपि साधुबोधसम्पादको नात्र पत्रे यथावल्लिखित इति कृपया तं भवन्तोऽत्र पत्रे विलेखयितं प्रसीदन्त्विति। ते चागामिनि पत्रेऽवश्यमेव तदर्पयिष्यामि लेखितुमिति प्रत्यशृण्वन्। ततः शिवकुमारमिश्रः प्रारब्धविचारविषयेऽवोचत्। ईश्वरो हि नित्यज्ञानेच्छाकृतिकश्चेदुपेयते तत्समवेतस्य च ज्ञानस्य सत्यत्वं तदेव ज्ञानविषयेण कार्येणावश्यमेव भवितव्यं तत्सत्यत्वान्यथाऽनुपत्तेरिति निश्चिन्वतः पुरुषस्य प्रवृत्तिर्नोपपद्यते, तस्य तूष्णीम्भावेऽपि कार्याणामवश्यम्भावसिद्धेरिच्छाप्रतिबन्धकत्वात्।

किञ्च, लोके हि पूर्वं यदिष्टसाधनतया जानाति ततस्तदिच्छति ततः प्रवर्त्तत इत्यानुभविकः सर्ववादिसम्प्रतिपन्नश्च क्रमः, स च ज्ञानेच्छयोर्द्वयोरपि नित्यत्वाभ्युपगमे विरुध्यते। किञ्चैवमङ्गीकारे केवलेन ज्ञानेनेच्छया कृत्या वा सकलकार्योत्पत्तिव्यवस्थितेः सूपपादतया ज्ञानाङ्गीकार इच्छाकृत्योरिच्छाश्रयणे वा ज्ञानकृत्योः कृत्यभ्युपगमे वा ज्ञानेच्छयोरानर्थक्यमापद्यते। ततो राममिश्रशास्त्री— न हि क्षित्यङ्कुरादिकार्यैरेकदैव तदनुकूलज्ञानेच्छाकृतिमाननुमातुमिष्यते येन भवदुक्तदोषावकाशोऽपि तु पृथगेव तदनुकूलज्ञानवान् तदनुकूलेच्छावान् तदनुकूलकृतिमांश्चानुमीयते, कार्यत्वस्य ज्ञानवत्वेच्छावत्वकृतिमत्त्वैः पृथगेव व्याप्यत्वात्। ततश्च तदनुमितौ लाघवाज्ज्ञानेच्छाकृतीनां नित्यत्वमनित्यत्वे हि तेषामनन्तप्रागभावप्रध्वंसकल्पनेन गौरवापत्तिः। न च तेषां क्रमिकत्वभङ्गरूपो दोषः प्रकृतार्थबाधकः। लोके ज्ञानेच्छाकृतीनामनित्यत्वदर्शनेऽपि प्रकृते लाघवानुरोधेन तदनाश्रयस्येव तेषामक्रमिकत्वाश्रयणस्यादोषत्वात्। दृष्टान्तदृष्टसर्वधर्मानुरोधेनानुमानस्यायुक्तत्वादिति। ततः शिवकुमारमिश्रेण ज्ञानेच्छाद्यन्यतमेन निर्वाहे त्रितयाङ्गीकारस्य फलं किमिति प्रश्नस्य किमुत्तरमुक्तम्, इत्यभिहितो राममिश्रशास्त्री, क्षित्यङ्कुरादीनां कार्यत्वेन हि कर्ताऽनुमीयते, स एव चेश्वरः।

न च शरीराजन्यत्वेन कर्त्रजन्यत्वं सिद्ध्येदिति वाच्यम्, अप्रयोजकत्वात्। प्रसिद्धकर्तृजन्यत्वाभावसाधने सिद्धसाधनादप्रसिद्धकर्तृजन्यत्वाभावसाधने च प्रसिद्ध्यैव तत्साधनस्यायुक्तत्वाच्चेतनत्वव्याप्यतया ज्ञानेच्छाकृतीनामाकाशादिषु चेतनत्वस्य बाधाच्चेतन एवेश्वरः सिद्ध्यतीति। अथेश्वरः सत्यज्ञानवानिति निश्चन्वतः पुंसः प्रवृत्तिर्नोपपद्यत इत्याक्षेपमित्थं निराकरोत्प्रमदादासमित्रमहाशयः। भो केयं सम्प्रत्यवश्यंभावि भवेदेवेति सम्भावना भावत्कं हृदयमाकुलयति। किं ज्योतिष्टोमादिकमविदधतोऽपि पुंसः स्वर्गो भवेदित्यस्ति भगवति ज्ञानम्। न हि, किन्तु यद्येष पुमान् ज्योतिष्टोमेन यजेत ततोऽस्य स्वर्गो भवेदिति। न हीश्वरोऽपि क्लृप्तकारणकदम्बकव्यापारनिरपेक्षां कार्योत्पत्तिमनुसन्धत्ते, कारणगणनिर्माणस्यैव वैयर्थ्यापत्तेः। प्रलपितमिदं केनापि—

'अवश्यंभाविनो भावा भवन्ति महतामपि'। तथा—

'यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते'॥ इति।

न हि कश्चित्प्रेक्षवान् यदि मे स्याज्जीवनादृष्टं ततो जीवेयमेवेति तुङ्गादचलशृङ्गान्निजमङ्गं पातयन्ननुन्मत्त उच्यते। न चास्ति प्रवर्त्तकानां निवर्त्तकानां च श्रुत्यादिवचसामानर्थक्यमत्र पक्षे, तेषामुपायप्रदर्शनार्थत्वात्। न हि कश्चिदुपदेष्टा भाव्यभावने केवलमुपदिशन् भावकं चानुपदिशन्न वञ्चकः श्रोतव्यवचनश्च स्यात्। अतश्च भगवान् प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणं वेदं प्रकाशयन्निष्टेषु पुरुषाणामिच्छां जनयति, द्विष्टेषु च तां निवर्त्तयति। सा च तेषुतेषु कर्मस्विष्टजनकतामनिष्टजनकतां चागृण्हतः पुरुषस्य नोपपद्यत इति सर्वमेव साधु सार्थकमिति। ततः शिवकुमारमिश्रः— साधु महाशयैरुक्तं यज्जोतिष्टोमादिकमविदधतोपि स्वर्गो भवेदिति ज्ञानं भगवति नास्तीत्यादि; परन्तु केनैतादृशं ज्ञानमीश्वरे स्वीक्रियते, केन वा यद्येष पुमान् ज्योतिष्टोमेन यजेत अथ स्वर्गमाप्नुयादिति ज्ञानं तस्मिन्न स्वीक्रियते, को वाऽदृष्टमास्थाय तुङ्गशिखरादात्मानं पातयन्तमनुमोदयति, प्रत्युत भवद्भिरेवेश्वरीयज्ञानादिकं कूटस्थमुपगच्छद्भिर्यद्येष पुमानित्याद्याकारकं सम्भावनात्मकं तज्ज्ञानं न शक्यत उपगन्तुम्। न हि भाविवस्तु दृढं निश्चिन्वन् ईश्वर एवं सम्भावयितुमर्हति, भवतामेव च पर्वतात्पतन्ननुमोदनीय उन्मत्त इति भाषितुमशक्यश्च भविष्यति तदीयपतनप्रवृत्तेरनादीश्वरेच्छयैव परिगृहीतत्त्वादिति नित्यत्वकल्पे दोषमुद्भावयन्तः श्रीमन्तोऽस्मद्वक्तव्यमेव भाषमाणा अस्मन्मतप्रविष्टा इवाभान्ति। अस्माभिस्तु एतावन्मात्रमुच्यते यद् ईश्वरज्ञानव्यवस्थितातिरिक्तः कार्यलेशोऽप्युत्पादयितुमशक्य इति न्यायमतं स्मरतो मत्प्रवृत्यभावेऽपि तदन्यथाभावो न भवतीति निश्चिन्वतश्च कथं प्रवृत्तिरिति। यच्च राममिश्रेणापृष्टमपि प्रसिद्धकर्त्तृजन्यत्वाभावसाधनेत्यादिनोक्तम्। तत्रेदमुच्यते— भवन्मतेऽपि प्रसिद्धकर्तृजन्यत्वसाधने बाधः। अप्रसिद्धकर्त्तृजन्यत्वसाधने साध्याप्रसिद्धिरितितुल्यमेवेति या चास्य लाघवान्नित्त्यत्वसिद्धिरित्युक्तिः, सा तु नित्यत्वानित्यत्वयोर्लाघवचर्चातिरिक्तांशे साम्याभावादेवानादेया दोषान्तरराहित्यसाम्ये लाघवचर्च्चाद्रियते। यच्च कार्यत्वस्य इच्छावत्त्वादिना प्रत्येकं व्याप्यत्त्वात्सकलानुमानमित्युक्तम्, तदपि न साधु, नित्यचैतन्यवज्जन्यत्ववत्त्वेन सोपाधिकत्वात्।

किञ्चैवं सतीश्वरे ईश्वरत्वमेव न सिद्ध्यति जगत्कारणत्वमेव हि तस्मिन्नीश्वरत्वमभिमतन्नैः। स च न जगतः साक्षात्कारणं स्वप्रयत्नेन व्यवहितत्वात्। नापि स्वप्रयत्नद्वारा, तत्प्रयत्नस्य नित्यतया तत्प्रयत्ने व्यापारत्वस्याऽसंभवात्। स एव हि व्यापारो यस्तज्जन्यः सन् तज्जन्यं जनयेत्। न हि साक्षात्परम्पराभ्यामन्या काचित्कारणविधास्ति या भगवत्यवकाशमासादयेत्। किञ्च, केवलमदृष्टं जडात्मकतया शुभाशुभफले व्यवस्थापयितुमधिष्ठातृसहकारं विना न शक्नोतीति तदधिष्ठातृतया चेतन ईश्वरः कल्प्यते, एवं स्थितेऽवश्यमस्य चैतन्येन

जगदुत्पत्तौ कुत्रचिदुपकर्तव्यम्; परं तच्चैतन्यं न जगद्विषयिण्यां भगवदिच्छायामुपकोरति, तस्या नित्यत्वात्। नापि जगद्विषयके भगवत्प्रयत्ने तस्यापि नित्यत्वात्। नापि जगदुत्पत्तौ सहकारिकारणं तद्भगवदिच्छाप्रयत्नयोरेव जगदुत्पत्तौ पर्याप्तत्वात्। नन्वचेतनं कथमिच्छेत्प्रयतेत चेत्येवं चमत्कुरुथ चेत्, हन्त भोः! आयातं तर्हि चैतन्येच्छयोः प्रयोज्यप्रयोजकभावेनेति त्यज्यतामीश्वरीयज्ञानादिनित्यतायां दुराग्रहः। आदौ जानात्यनन्तरं कामयते इति दृष्टनियमस्यैवेदानीं भवताप्यनुसृतत्वात्। ईश्वरचैतन्यस्येश्वरेच्छादावनुपयोगित्वे तु जगदुत्पत्तिव्यवस्थायास्तत्तत्कार्योत्पत्तिप्राक्क्षणादितोऽपि सम्भवेनेश्वर एवानुपयुक्तः स्यादित्यहो नित्यत्वश्रद्धायां दुष्परिणामापातः। किञ्चेश्वरप्रणिधानाद्वेति पातञ्जलयोगसूत्रव्याख्यावसरे प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादा वर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णातीति द्वैपायनोक्तिर्भवदभिमते प्राणान्तक्लेशेनाराधनेऽपि दयालेशशून्ये ईश्वरे विरुध्यते। आस्तां वा श्रीमतामभिलाषः। मह्यं तु अष्टसंख्याकगुणवान् नित्यज्ञानेच्छाकृतिभिः पाशरज्जुभिरिवैकाकारतयाऽनादिकालाद्व्यवस्थाप्यमान ईश्वरो न रोचते; अपि त्वनन्तानन्तकोटिगुणविभूषितः कदाचित्सृष्टीच्छा कदाचित्पालनेच्छा कदाचित्संहारेच्छा कदाचिद्भक्तवरदानेच्छा कदाचिदेकान्तभक्तोद्धारेच्छेत्येवमादिभिर्नानाविधाभिः सत्येच्छाभिर्विलसन्नेव परमेश्वरो मदीयमानसे निवसेदिति अलमनल्पालापेनेति।

एवं परस्परं बहुना विवादेनानध्यवसीयमाने विषयेऽन्यतरकोट्यवधारणाशामुपायान्तरेणापश्यन्तः प्रमदादासमहाशयास्तदर्थं बालशास्त्रिणोऽभ्यर्थयन्, ते च तदानीं कुतश्चित् शारीरखेदाद्वक्तुमनिच्छन्तोऽपि तथाविधश्लाघनीयपुरुषप्रार्थनागौरवादीश्वरस्य नित्यज्ञानादिमत्त्वमित्थमसिद्धान्तयन्। भवेदेतदीश्वरस्यानित्यज्ञानादिमत्त्वं गुरुभूतमप्युपगन्तुमर्हं चेत्, नित्यज्ञानादिमत्त्वे आपाद्यमानानां दोषाणां मध्ये एकोऽप्यनित्यत्वकल्पे उद्धर्तुं शक्येत, न पुनस्तच्छक्यते। तथा हि— येऽप्यनित्यं तदास्थिषत, तैरपीदमुच्यताम्, किं भवन्मते भगवदिच्छायाः कार्यवर्गं प्रतिकारणत्वमस्ति न वा? अस्ति चेत्, अवश्यमनित्येच्छाया ज्ञानविशेषजन्यतया तदर्थमेव भाविवस्तुविषयकं ज्ञानं भाविवस्तुकारणीभूतभगवदिच्छातः प्रागेवेश्वरे उत्पद्यते इति मन्तव्यम्, ततश्च तज्ज्ञानस्य प्रमात्वानुरोधादेव कार्यावश्यम्भावनिश्चयादनित्यत्ववादेऽपि कथं प्रवृत्त्युपपत्तिः। ईश्वरेच्छयाः कारणत्वानङ्गीकारे तु ईश्वरोपगमस्यैवानर्थक्यापत्तौ तदीयज्ञानादीनां नित्यत्वानित्यत्वविचारो निरास्पदः स्यात्। किञ्च, योगिनां योगजप्रत्यक्षस्य सर्वविषयकत्वप्रमात्वाङ्गीकारात् स्वचिकीर्षितस्य तदीयविषयकोटिप्रवेशाप्रवेशाभ्यामपि स्वप्रवृत्त्यनुपपत्तिः, योगिप्रत्यक्षस्य यत्किञ्चिद्वस्तुमात्रविषयकत्वे तु तादृशज्ञानस्य लौकिकश्रमेणापि सिद्धतया दीर्घतरकालायाससाध्ययोगसिद्धौ प्रवृत्तिरेवानुपपन्ना स्यात्। प्रसिद्धं च योगिप्रत्यक्षं सर्ववस्तुविषयकमापामरम्। किञ्चेदानीमीश्वरीयज्ञानेऽस्मदीयज्ञानात् को विशेषः? न तावद्यथार्थत्वमात्रम्, अस्मदीयप्रमास्वपि तत्सम्भवात्। नापि सकलावगाहित्वम्, प्रमेयत्वादिना यावद्विषयिताया अस्मदीयज्ञानेऽपि सद्भावात्। नापि सकलतत्तद्व्यक्तित्वप्रकारकत्वम्, अनभ्युपगमात्। नापि प्रवृत्तिजनकतावच्छेदकविषयतावच्छेदकीभूतयावत्कार्यताकारणतावच्छेदकधर्मविषयक-

त्वम्, कार्यकारणभावावच्छेदककोटौ तद्व्यक्तित्वानामपि प्रवेशेन पुनरप्यनङ्गीकृताङ्गीकारापत्ते। अत्र साधारणधर्मातिरिक्तत्त्वं समादधीथाश्चेद् हन्त भोः, सर्वज्ञत्वसंकोचस्यावश्यकत्वे प्रमेयत्वेनैव सार्वज्ञ्यं समर्थयमानमन्यं प्रति किं वक्ष्यसीत्यलं यः सर्वज्ञः सर्वविदित्यादिश्रुतिसहगीयमानभगवत्सार्वज्ञविद्वेषिवक्रकल्पनाभिः। नित्यत्वकल्पे केचनासमाधेयदोषा निपतेयुश्चेद् अनिर्वचनीयतावादमाश्रित्य समाधेयाः, स हि चार्वाकाणामपि शरणीकरणीयः किं पुनरनेकादृश्यवस्तुस्वीकारभारमन्थरबुद्धीनामास्तिकानाम्। अन्यथा चार्वाकोऽपि सुखमेव कस्मात्कामयसे दुःखमेव कस्मान्नेत्येवं पृष्टः किमुत्तरयेत्? तस्माद् ईश्वरीयज्ञानादीनि कदाप्यप्रत्यक्षयद्भिरस्माभिः कथमतर्क्यमाहात्म्यस्य तानि यथावद् वर्णयितुं शक्यन्ताम् इति युक्तोऽनिर्वचनीयतावादो न तु तदीयज्ञानस्याल्पज्ञशङ्कामात्रात्संकोचनम्। यदि तु भगवतः कृतिर्न बहूनां दर्शनकृतामिष्टा तस्याः स्वाश्रयावच्छेदकशरीरक्रियास्वेवोपयोगादीश्वरे तदसम्भवात् केवलं नैयायिकेनैव सा स्वीक्रियते इत्युच्यते, तर्हि मास्तु सा, परम्भगवतो ज्ञानेच्छे तु नित्ये सर्वविषये अवश्यं मन्तव्ये इत्यलम्।

संस्कृतसमाजसम्पादकः रामकृष्णशास्त्री

तत्सहकारिणौ गङ्गाधरशास्त्रि-केशवशास्त्रिणौ च

[४]

[१]अथ ज्येष्ठकृष्णप्रतिपदि संस्कृतसमाजनाम्न्यां सभायां वृत्तायाः कथाया वर्णनम्। तत्र प्रथमं गङ्गाधरशास्त्री वैज्ञानिकमतमित्थमुपन्यस्यति स्म। विज्ञानमेवैकं तत्त्वमिति वैज्ञानिकास्तदित्थम्। रज्जुसर्पमरुमरीचिका- गन्धर्वनगर- स्वाप्निकगजारोहणादिज्ञानानि ऋते विषयेभ्यो ज्ञानबहिर्भूतेभ्यो यथा स्वरसमनुभवमधिरोहन्ति, तथैतानि घटपटादिविषयकज्ञानानि स्वात्मकं तं तं विषयमवगाहमानानि न बाह्यविषयसत्त्वोपष्टम्भलब्धजीवनानि यश्चासौ घटज्ञानात् पटज्ञानं विभिन्नमिति विषयवैचित्र्यपक्षपातो ज्ञानानां सोऽपि स्वत्मकविषयवैचित्र्यनिबन्धेन ज्ञात एवेति नातिरिक्तबाह्यविषयसत्तां प्रमापयति न काञ्चन वैचित्रीमकल्पयतो भवतोऽपि बाह्यविषयवैचित्र्यमात्रमेव ज्ञानवैचित्र्यनिर्वाहः। ज्ञानवैचित्र्येण विषयवैचित्र्यं विषयवैचित्र्येण वैचित्र्यं ज्ञानस्येति स्पष्टमितरेतराश्रयात्। तस्मान्न बाह्यविषयाभ्युपगमो ज्ञानवैचित्र्यं निर्वहति; किन्तु ज्ञानस्यैवायमतिशयो यद् ज्ञानं स्वात्मनैव ज्ञानान्तरेभ्यः आत्मानं विमोचयद् विषयविषयिभावावगाहि वर्तत इति। अन्वग्राहि चैतत् पक्षः प्राच्यैः। सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोरिति। न हि नीलस्य प्रत्ययमन्तरेण आत्मानं प्रत्ययो वा नीलमन्तरेणात्मानं प्रतिलभत इति हि तदर्थः। यश्च आशामोदकानि नापनयन्ति क्षुधं वैज्ञानिकीं परन्तु आपणवीथिकास्थान्येवेत्यधिक्षेपः सोऽप्यसावधस्ताद्दत्ताञ्जलिरिति सुखितमास्महे इति शम्।

---

१. पं. ३, न्यू सि., ४ (सित. १, १८७७) २३८-२५५.

ततो राममिश्रशास्त्री— तदेतत्तार्किकेभ्यो न रोचते। योऽयं मरुमरीचिकादृष्टान्तावष्टम्भवशादेष्टव्यो बाह्यविषयोपप्लवः सोऽयं मरुमरीचिकाप्रत्ययानामभ्रान्तत्वे सति स्याद् प्रमात्मकज्ञानस्यैव साधनबाधनक्षमतायाः सर्वतैर्थिकसिद्धान्तसिद्धत्वात्। न च बाह्यविषयानसहिष्णुनापि भवता मरुमरीचिकादिप्रत्ययप्रामाण्यमभ्युपेयं तथा सति ज्ञानानां भ्रमप्रमादिव्यवहारनिबन्धनसकम्पनिष्कम्पप्रवृत्त्युपधायकत्वामुपपत्तेः। तस्मान्मरुमरीचिकादिदृष्टान्तप्रतीतीनां भ्रमात्मकतया न बाह्यविषयमोषोपष्टम्भभावोऽपि, यच्च न काञ्चन ज्ञानवैचित्रीमप्रकल्प्य बाह्यविषयवैचित्र्यमात्रेण ज्ञानवैचित्र्यनिर्वाहः। ज्ञानवैचित्र्येण विषयवैचित्र्यं विषयवैचित्र्येण च ज्ञानस्येति स्पष्टमितरेतराश्रयादित्युक्तं तदपि विषयानवधाननिबन्धनम्। ज्ञानं हि द्व्यात्मकतयाऽऽत्मानं लभते— विषयात्मना तद्विषयविषयात्मना चेति सर्वानुभवसिद्धम्। तथा च विचित्रभावेनावस्थितविषयविषयकत्वेन ज्ञानवैचित्र्यं विषयवैचित्र्यं तु स्वत एव विषयवैचित्र्यं किं ज्ञाप्यमिति जिज्ञासायां तु ज्ञानान्तरज्ञाप्यमेवेत्युत्तरं न तावता भवदुक्तान्योन्याश्रयावकाशः, यतो ज्ञानं विषयं परिच्छिन्दद् आत्मानमश्नुते विषयस्तु न तथेति सिद्धान्तात्। यच्च सहोपलम्भनियमादित्युक्तं तदसाधकं विपक्षबाधकतर्कशून्यत्वात्। विभिन्नत्वेनाभिमतयोरपि घटपटयोर्घटपटाविति समूहालम्बने सहोपलम्भात् किञ्च, यदि स्युरबाह्या विषयास्तदा गृहे विनिर्णीतघटः पुमान् गेहे घटाभावकालेऽपि घटमासादयेत् नासादयेच्च समुत्पन्नविपरीतधीर्घटवत्यपि घटम्। किञ्च, तत्स्यादालयविज्ञानं यन्नीलादिकमुल्लिखेत्। तत्स्यात्प्रवृत्तिविज्ञानं यद्भवेदहमास्पदम्, इति भवन्मतेऽपि प्रवृत्तिविज्ञानालयविज्ञानयोर्नीलाद्युल्लेखित्वानुल्लेखित्वाभ्यामेव विशेषो ग्रहीतव्यः इति स्वानुभवमतिरोधाय परिच्छिनत्तु भवानेव विषयविशेषमपरिच्छिद्य ज्ञानं न स्वात्मानं लभत इति। किञ्च, अनवधृताज्ञानसंशयविपर्यासस्य ते कथं कथायां प्रवेशः परकीयास्ते त्वया दुरवधारणाः परपुंवृत्तिस्वरूपत्वात् तेषां परबुद्धेश्चासाक्षात्कारादिति।

ततो गङ्गाधरशास्त्री— अत्रायं वैज्ञानिकानामाक्षेपनिक्षेपः। न तावन्मरुमरीचिकादिदृष्टान्तानां भ्रमत्वात्साधनाक्षमत्वं सुवचम्। तेषां भ्रमत्वस्यैवासिद्धेः। तथा हि— बाह्यविषयसिद्धेरुत्तरमेव हि जलाद्यभाववति जलादिप्रकारताकतया तेषां भ्रमत्वं वाच्यं नान्यथा। विज्ञानस्यैवैकस्यास्मन्मतेऽङ्गीकारेण सर्वत्रैव घटादिविरहस्य सत्तया सर्वेषामेव ज्ञानानां भ्रमत्वप्रसक्तेर्भवन्मतसिद्धभ्रमलक्षणस्य तैरनङ्गीकारात्। प्रत्युत भ्रमात्मकज्ञानमेव तैर्नाङ्गीक्रियते भ्रमत्वप्रमात्वविभागस्यैव शशविषाणायमानत्वात्। न चैवं सति सकम्पनिष्कम्पप्रवृत्याद्युपपत्तिर्न स्यादिति शङ्कनीयम्, भवन्मतेऽपि वस्तुतो भ्रान्तस्य तत्र भ्रान्तिमननुव्यवस्यतस्तत्र निष्क्रम्यप्रवृत्तेरानुभाविकतया वस्तुतो भ्रमे प्रवृत्तिजनकत्वाभावस्यैवमेव वस्तुतः प्रमायां प्रवृत्तिजनकत्वस्य चासिद्धेः; अपि तु तत्र भ्रान्ततां प्रमातृताञ्च गृह्णत एव पुरुषस्य तादृशप्रवृत्त्यादिदर्शनेन भ्रान्तिज्ञानत्वतदभावयोरेव निरुक्तप्रवृत्त्यादिजनकतायाः सर्वमते सिद्धतयाऽस्मन्मतेऽपि विज्ञाने भ्रमत्वाख्यवैलक्ष्यण्यग्रहे प्रवृत्त्यभावस्य तदभावे च प्रवृत्तेरुपपत्तेः। तादृशवैलक्षण्यग्रहश्च भवन्मतेऽपि तद्वति तत्प्रकारकत्वग्रहप्रयोजकीभूतया प्रत्यक्षादिसामग्र्या प्रयोज्य इति मन्मतेऽपि

तुल्यमेव। अपि च विज्ञानवैचित्र्यस्य विषयवैचित्र्यनिबन्धनत्ववादे विषयवैचित्र्यस्य ज्ञानवैचित्र्यनिबन्धनत्वस्यैव वाच्यतयाऽन्योन्याश्रयः।

यत्तु ज्ञानं द्व्यात्मकतयाऽऽत्मानं लभते विषयात्मना तद्विषयविषय्यात्मना चेति विषयवैचित्र्यनिबन्धनमेव ज्ञानवैचित्र्यं विषयवैचित्र्यं तु स्वतः सिद्धमेव ज्ञानान्तरज्ञाप्यवैचित्र्यवदिति चाभिदधुस्तद्वैज्ञानिकवादस्य विज्ञानातिरिक्तवस्त्वभाववादरूपतया विज्ञाने द्व्यात्मकत्वस्यैवासिद्धेः पराहतम्। विषयवैचित्र्यस्य स्वतः सिद्धत्वं त्वाशामात्रमेव। एवं सति तार्किकमते पञ्चमपदार्थस्य विशेषस्यासिद्धेः। घटपटयोर्भेदोपपादनाय तदारम्भकभेदोपपादनक्रमेण तदन्त्यारम्भकभेदोपपादनाय हि विशेषा आश्रीयन्ते। तद्विषयस्य स्वतः सिद्धवैचित्र्याङ्गीकारेऽन्ते रण्डाविवाहन्यायायितमेव। ज्ञानान्तरज्ञाप्यत्वं तु पुनस्तज्ज्ञानवेचित्र्यसापेक्षमेवेति पूर्वप्रदर्शितन्यायेनैव ज्ञान एव स्वतस्सिद्धं वैचित्र्यं किमिति नाश्रयेः। आवश्यकमेव प्रत्युत तवैव विषयवैचित्र्याप्रयोज्यमेव ज्ञाने स्वतःसिद्धं वैचित्र्यं स्वप्नभ्रममदादिज्ञानवैचित्र्योपपादनस्यावश्यकत्वात्। यदपि सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोरित्यस्य निराकरणं विपक्षबाधकतर्कशून्यत्वात्समूहालम्बनज्ञाने घटपटयोः सहोपलम्भेऽपि भेदस्य सर्वैरङ्गीकारेण व्यभिचाराच्चेत्यूचुस्तन्नियमपदाननुसन्धानमूलकमिति विशदमेव। अवयव्युपलम्भस्य मतान्तरे तार्किकमते च धान्यराश्युपलम्भस्यावयवधान्योपलम्भस्यावयवधान्योपलम्भव्याप्योपलब्धिरूपतया तदभेदस्य स्वीकारेणान्वयव्याप्तेर्घटघटाभावादीनां सहोपलम्भाभावेनाभेदाभावस्य स्वीकारेण व्यतिरेकव्याप्तेश्च सुलभतया तेन भेदस्यैव साधनं स्यादिति सम्भावनाया अपि दूरोत्सारितत्वात्। घटपटयोः क्वचिदेकोपलब्धिविषयत्वेऽपि स्वविषयकत्वव्यापकविषयकत्वस्य घटादावभावेन घटाभेदापादनस्य पटेऽशक्यत्वाच्च। नियमपदेन व्याप्तेरेवाभिधानात्। अत एव ज्ञानत्वावच्छेदेन स्वविषयकत्वविवक्षणे कस्यापि तथाविधव्यापकविषयताया अभावेन स्वाभिमतासिद्धेर्यत्किञ्चिज्ज्ञाने स्वविषयतायाः स्वीकारे प्रागुक्तसमूहालम्बनात्मकज्ञानविषयताया घटादौ सत्त्वादभेदापत्तिरिति न। स्वविषयकत्वव्यापकविषयताकत्वसम्बन्धेन स्ववैशिष्ट्यस्यैव स्वाभेदनियामकत्वाभ्युगमात्।

न च ययोरुत्पन्नविनष्टघटयोरङ्कुरयोर्वा सहैव ज्ञानमजनि, तयोरैक्यापत्तिरिति वाच्यम्, तादृशयोरप्रसिद्धेरैक्येऽपि दोषाभावात्। अङ्कुरान्तरग्रहप्रतिबन्धकसामग्रीसत्त्वे तत्स्थले जिघृक्षितताङ्कुरग्राहकसामग्रीसमनैयत्येन तस्या अङ्कुरान्तरग्राहकत्वसत्तया समूहालम्बननैयत्यविघटकत्वेन भेदस्य सुवचत्वाच्च। एवं बाह्यविषयानभ्युपगमवादे गेहे विनिर्णीतघटः पुमान् घटाभावकालेऽपि घटमासादयेन्नासादयेच्च घटसत्तादशायामपि घटाभावं निश्चिन्वन्स्तमिति दूषणमपि न। त्वन्मतेऽपि घटं निश्चिन्वतो गेहे घटेन्द्रियसंयोगसमनन्तरमेव तदुपलब्धिरिष्टा विशेषणतया भुवि घटाभाव गृह्णतश्च तदभावानुव्यवसायः, न तु केवलं वस्तुतो घटसत्तायास्तदभावसत्तायाश्च तत्तद्ग्रहप्रयोजकत्वम्। तथैव मन्मते घटात्मकविज्ञानवतोऽपि गृहघटात्म-

कविज्ञानेन्द्रियात्मकविज्ञानयोस्सम्बन्धस्यैव तत्प्राप्तिप्रयोजकताया अभ्युपगमेन तत्र वैचित्र्येणैव घटात्मकविज्ञानानुदयात् तदिन्द्रियस्यासम्बन्धेन तत्प्राप्तेरनापत्तेः। अयमेव किल विज्ञानवादिनां त्वन्मताद्विशेषः। यद् भवान् प्रत्यक्षादिगोचरवस्तुजातस्य वास्तविकीं सत्तामभ्युपैति। स च त्वन्मते रज्जुसत्तादशायां सर्पस्येव सर्वस्याप्यवास्तविकीं विज्ञानस्यैवानादिव्यवहारगोचरीभूतानेकतत्तद्धर्मरूपेण वास्तविकीं सत्ताम्। नैतावता क्वचिदपि व्यवहारेऽतिप्रसङ्गोऽप्रसङ्गो वा।

एवमेव किल वेदान्तिनोऽप्यपर्यनुयोज्या भवन्ति। अत एव तत्स्यात्प्रवृत्तिविज्ञानं यन्नीलादिकमुल्लिखेदिति नीलाद्युल्लेखित्वस्य मया स्वीकारेऽपि न विज्ञानातिरिक्तवस्तुसत्ताभ्युपगता भवति पारमार्थिकव्यावहारिकत्वाभ्यां विविक्तविषयत्वात्। एवञ्चानवधृताज्ञानविपर्ययस्य ते कथङ्कथायां प्रवेशः परबुद्धेरप्रत्यक्षत्वादितिप्रभृति सर्वमेव विचार्यमाणे स्वतो विशीर्यते व्यवहारदशायां व्याप्त्यादिग्रहस्य साध्यादिनिश्चयस्य प्रत्यक्षशाब्दादेश्च तवेव तादृशसामग्रीबलान्ममापि तादृशसामग्र्यात्मकविज्ञानबलादेवोपपत्तेस्त्वदपेक्षया व्यवहारे विसंवादाभावादिति कृतं बहुनेति।

ततो राममिश्रशास्त्री— किञ्च, बाह्यविषयसत्तामनभ्युपेत्य लज्जात्मकस्वीयज्ञानेन स्वीयज्ञानात्मकस्वीयपानात्मकज्ञानेनोपशमननिर्वाहेऽपि अकुपितत्रिदोषस्य विमूर्च्छितपुंसः सञ्जीविनी पुनरकिञ्चित्करी स्यात् अचेतयमानस्य तस्य स्वीयज्ञानात्मकसञ्जीवन्या विरहसत्वात् स्थिराया बाह्यभूतसञ्जीविन्याश्चानभ्युपगमात्। न च स्वीयज्ञानविरहेऽपि जीवतो ज्ञानात्मकप्रदानावच्छिन्नज्ञानात्मकसञ्जीविन्या उपकारकत्वमिति साम्प्रतम्। अन्यदीयज्ञानात्मकस्य वस्तुनोऽन्यदीयोपकारकारित्वे चैत्रीयज्ञानात्मकाशनेन मैत्रस्य पज्ञातिरिति साधुरिति समर्थितः कार्यकारणभावः। किञ्च ज्ञानाभावकालेऽपि अनुव्यवस्येत् न व्यवस्येच्च ज्ञानोत्तरमपि अनुव्यवमायात्मकज्ञानस्य स्वविषयीभूतव्यवसायसत्तानैरपेक्ष्यात्। यदि च ज्ञानात्मकज्ञानज्ञानात्मकात्मनोर्ज्ञानात्मकः सन्निकर्षोऽनुव्यवसायमसन्निकर्षश्च तदभावमिति सूक्ष्ममप्यालोकयसे अङ्ग, तर्हि! विषयसत्त्वोदासीनयोर्निरुक्तात्मनोः सन्निकर्षतदभावयोरनुव्यवसायतदभावनियामकयोः कोऽयं विषयसत्तया सहानुगमनानियमः कदाचिदनुव्यवसायतदभावौ तावदतिपतेतां विषयसत्तामिति किं न स्यात्। किञ्च, सहोपलम्भनियमेन सिषाधयिषितोऽयमभेदः पारमार्थिक उतापारमार्थिकः? पारमार्थिकत्वे नास्मत्क्षतिः, पारमार्थिकत्वं हि ते स्वीयज्ञानानतिरिक्तात्मकत्वं तच्च ममापि त्वदीयज्ञानेऽभीष्टम्। स्वस्मिन्स्वतादात्म्याद् वस्तुसतोऽस्मदभिप्रेतस्य भेदस्य च त्वदीयज्ञानानतिरिक्तात्मना अभेदशतकेनाप्यपलपितुमशक्यत्वात्, अन्यथा चैत्रीयज्ञानात्मकेन भेदेन अभेदसिद्धिप्रतिरोधं त्वमपि कस्मान्नाभ्युपगच्छेः। न द्वितीयः, अभेदस्य अपारमार्थिकत्वं हि ज्ञानातिरिक्तात्मकत्वम् तच्चास्माकम् इष्टं न तव इति फलितं नः प्रयासकुसुमेन किं चानुमितेः प्राक् साध्यप्रमिथ्यावाद्याधुनिकवैदान्तिकमतप्रतर्दकदूषणानि चोपयुक्तानि सिद्धिरपि न सुकरेत्यादिदूषणशतकं प्रमाणशास्त्रकुशलैः स्वयमूह्यन्त एवेति कृतं वाचां विस्तरैरिति शम्।

[५]

अथ भाद्रपदकृष्णप्रतिपदि नियतसमये श्रीयुतबाबूप्रमदादासमित्रमहाशयमन्दिरे संस्कृतसमाजनाम्नी सभोपातिष्ठत तत्रभवतामध्यक्षवराणां कतिपयसभासदां च कार्यवशात्तत्रानुपस्थानादतीतसभावृत्तान्तालेखनाच्च समुपस्थिताः सभ्याः सभाकृत्यमारब्धुं किञ्चिदनिच्छव इव प्रत्यैयन्त; परन्तु वन्ध्यं दिनं मा भूदिति धिया सभाप्रोत्साहकेन प्रेरितः केशवशास्त्री पूर्वसभाप्रक्रान्त एवाध्यक्षवरैः सम्यक् प्रतिपादितेऽपि वेदान्तविषये पुनः सन्दिहान इवेदमाह। तद्यथा— यद्यपि स्वाप्निकविषयाणां जागर्तौ जागराविषयाणां च स्वप्ने तयोः पुनः सुषुप्तौ तस्याश्च स्वप्नजागरणयोर्बाधितत्वाद्बाधितस्य च मिथ्यात्वाद्विषयमात्रस्य मिथ्यात्वेन ज्ञानभेदकाभावाज्ज्ञानघनैकब्रह्मण एवावशेषादद्वैतं सिद्ध्यति, तथापि ब्रह्मप्रतिबिम्बभूतानां जीवानां स्वगतभूतपूर्वसुखदुःखादिभोक्तृत्वत्त्वभ्रमस्मरणाद् ब्रह्मणश्च तदभावाद्बिम्बप्रतिबिम्बभावाच्च तयोर्वैधर्म्येण द्वैतमापद्यते।

ततो ढुण्ढिराजशास्त्री, व्यावहारिकसत्तादशायां युगपत्सुखदुःखादिभोगवैचित्र्यं तदुपभोक्त्रानन्त्यसद्भावमन्तरा न घटत इत्यनन्तास्सुखदुःखादिभोक्तारः कल्प्यन्ते। ते च जीवापरपर्याया ब्रह्मप्रतिबिम्बान्येव। पारमार्थिकसत्तादशायां तु तदुपभोग्यानां सुखदुःखादीनां मिथ्यात्वाद्भोगासिद्धौ चिदेकमयानां जीवानां ब्रह्मसारूप्यान्निराबाधमेवाद्वैतमित्यवोचत्।

ततः केशवशास्त्री— पारमार्थिकसत्तादशायां विषयाणामिव तदुपभोगस्य तदुपलब्धेर्वाऽलीकत्वेऽपि कथं नाम जीवा भूतपूर्वमात्मभ्रमनुस्मरन्तो ब्रह्मणो न विभिद्येरन्नित्यभ्यधात्।

ततः सभाप्रोत्साहकः— नूनं घटपटादिविषयाणां परमार्थेऽलीकत्वेऽपि न तदनुभवस्मृतेरलीकत्वं शक्यते वक्तुम्। न हि कश्चित्स्वप्नादावनुभूतानां विषयाणां जागरे मिथ्यात्वेऽपि तदनुभवस्मृतिमपलपति। तथा चात्ममोहस्मर्त्तृणां जीवानां भ्रमकल्पनाशून्येन ब्रह्मणा सहाभेदो दुरुपपाद इव प्रतीयते, तत्रेदमुच्यते— न तावज्जीवब्रह्मणोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावो मुखादर्शमुखादिलौकिकपदार्थसदृशो येन तयोर्भेद आपद्येत; किन्तु भास्वराणां सूर्यादीनां जलादावुपसंक्रान्तानां किरणानां च बिम्बप्रतिबिम्बभावेन सदृश एव विवक्ष्यते। यथा जलादिगतं सूर्यप्रतिबिम्बं साक्षात्सूर्यनिर्गतकिरणपुञ्जात्मकमेवेति न ततो विभिद्यते तथा विभोः परमात्मनोऽन्तःकरणावस्थिता जीवाभिधा अंशास्ततोऽभिन्ना एव; परन्त्वेवं परमात्मनोऽभिन्ना अपि जीवा उपाधिसम्बन्धात् ततो भिद्यन्ते। अत एव तेषां सुखदुःखादिसम्बन्धः। यथा सूर्याभिन्ना अपि किरणास्ततो निर्गच्छन्तो जलमुपसंक्रम्य सूर्याद्भिद्यमानाः सन्तो जलकम्पादिमन्तः सौरदाहकशक्तिशून्याश्च भवन्ति, तथा च द्वैतापत्तिरित्युच्यते चेद्व्यावहारिकदशायामिष्टैव सेत्यवादीत्।

ततः शिवकुमारमिश्रः— न हि जीवात्मनि युगपदेव परमात्मभेदोऽभेदश्च सम्भवतः। विरुद्धधर्मयोरसामानाधिकरण्यनियमात् तथा चात्माभिन्न एव जीव उपाधिवशाद्भिन्न इव भासत इति वक्तव्यम्, न तु कथमपि ततो भिद्यत इति। यथा सूर्यात्मापि सूर्यकरस्ततो भिन्न इव भासते न तु वस्तुतस्तथाभूतो भवति, किरणपुञ्जात्मकत्वाद्धि सूर्यस्येत्याह।

ततः सभाप्रोत्साहकः— सूर्यस्य किरणपुञ्जात्मकत्वं तु न तावत्परीक्षया सिध्यति। तस्य तथात्वे हि किरणधाराप्रवाहानुवृत्तौ सततं प्रवर्तमानायामनन्तानन्तकालादूर्ध्वं किरणानां निःशेषतायां सूर्यस्यैव विलयापत्तेः।

ततः केशवशास्त्री— किमिति धूमस्येव किरणानां निस्सरणानुवृत्तिरनुमन्यते। ते च दीपशिखाकिरणा इव सदा प्रसृता एवावतिष्ठन्ते। तेषां क्रमिकोदयादिकं तु तद्व्यावधायकमिहिकाद्यपगमादिक्रमाश्रितं बोध्यम्, तथा च सूर्यस्य किरणपुञ्जात्मकत्वेऽपि न क्षतिरित्याद्यब्रवीत्।

अत्रान्तरे सन्ध्यावन्दनसमयमुपस्थितं दृष्ट्वा प्रक्रान्तं विषयं सभान्तरे विचिचारयिषन्तस्सर्वे सभ्याः सभां व्यसृजन्।

[६]

अथ कार्तिककृष्णप्रतिपदि नियतसमये सभाप्रोत्साहकानां श्रीयुतबाबूप्रमदादासमित्रमहाशयानामालये संस्कृतसमाजनाम्नी सभोपातिष्ठत। तत्रभवन्तावुभावपि सभाध्यक्षौ कतिपये सभासदश्च कार्यान्तरवशान्नैनामपि सभामसभाजयन्। अवशिष्टानां च सभ्यानां कतिपयेष्वागतेष्वपरेष्वागमिष्यत्स्वेव सत्सु नियतसभाकृत्यारम्भात् प्राक् सभाप्रौत्साहको महाशय ईश्वरसर्वज्ञतास्वीकारे समाक्षिप्तानां निखिलदोषाभासानां निरासायाध्यक्षवरैः पूर्वतरसभायां सम्यक् प्रतिपादितेनानिर्वचनीयत्ववादेनेषदतुष्ट इवेदमाह। तद्यथा— परमेश्वरस्य सर्वज्ञतया नित्यज्ञानवत्तयैव च सकलाभीष्टसिद्धावत्राऽनिर्वचनीयत्वसमाश्रयणमनावश्यकमिव प्रतीयते। यतो हि नित्यज्ञानवानीश्वर इति निश्चिन्वानस्य पुंसः स्वकार्यसिसाधयिषया कथं प्रवृत्तिरित्याद्याक्षेपा ईश्वरस्य सर्वज्ञतया तादृशप्रवृत्तेरपि तज्ज्ञानगोचरत्वेनाऽवश्यम्भावान्निरालम्बा एव। अन्यथेश्वरसर्वज्ञताया एव हानिप्रसङ्गात्। नन्वेवं तर्हि किं नित्यज्ञानवानीश्वर इति निश्चिन्वन् पुमाननिच्छन्नपि बलादीश्वरज्ञानगोचरत्वमात्रेणैव व्यापारविशेषान् कार्यत इति चेत् प्रवृत्तिकारणीभूतेच्छादीनामपि भगवज्ज्ञानविषयत्वेनावश्यंभावादनिच्छापूर्वकप्रवृत्तिकल्पने मानाभावात् यत्र च ज्योतिष्टोमादीन् विदधतोऽपि पुरुषस्येष्टसिद्धिर्न दृश्यते, यत्र वा तानविदधतोऽपि पुरुषान्तरस्य सा दृश्यते तत्र भगवज्ज्ञाने इष्टसिद्ध्यननुगतस्यैव पुरुषविशेषकर्तृकज्योतिष्टोमादेरज्योतिष्टोमपूर्वकपुरुषान्तरेष्टसिद्धेर्वा कल्पने न कोऽपि दोषावकाश इति विनैवानिर्वचनीयत्ववादाश्रयणं सर्वं सूपपद्यत इति।

केशवशास्त्री— भगवज्ज्ञानगोचरत्वागोचरत्वाभ्यामेव सकलप्रवृत्तिनिवृत्त्युपपत्तौ सर्वेषां वेदोक्तविधीनां वैय्यर्थ्यं प्रसज्येत। न तावत्सिद्धस्यैवार्थस्य प्रवर्तने वेदः प्रवर्तते, तस्यापूर्वविधायकत्वस्यैव सर्वसम्मतत्वात्। किं चास्मिन् पक्षे सकलजनोद्देशेनेष्टसिद्ध्युपायोपदेष्टृत्वं चास्य न सम्भवति, यत्कर्तृकाग्निष्टोमादेरीश्वरज्ञातत्वं तदुपदिदिक्षयैव तस्य प्रवृत्तत्वात्। तस्य जनान्तरोपदेशकत्वे फलाभावात्। एवं च वेदोक्तविधीनां सार्थकत्वं सार्वज्ञ्यं चेश्वरस्योपगच्छतामस्माकमनिर्वचनीयतावाद एव शरण्योऽस्तीत्यवोचत्।

प्रमदादासमित्रमहाशयः— किं भो वेदस्यैवाभावे कथं नाम जनाः स्वाभीष्टार्थसिद्ध्युपायान् जानीयुः, कथं च तेषु तेषु कर्मसु तेषां प्रवृत्तिः स्यादिति जनैरश्रुतपूर्वाणामीश्वरज्ञातानां च विधीनां प्रदर्शकस्य वेदस्य न कथमपि वैय्यर्थ्यमुद्भावयितुं शक्यते। यच्चोच्यते सकलजनोद्देशेनेष्टसिद्ध्युपायोपदेष्टृत्वमस्य न सम्भवतीति, तदप्ययुक्तम्, न खलु सकलसस्यादिक्षेत्राद्यार्द्रीकरणाय प्रवृत्ता वृष्टिः फलाभावात्समुद्रे न पततीति शक्यते कल्पयितुम्। तथा च सकलजनोपकाराय निष्पक्षपातं प्रवृत्तो भगवद्वाक्यकल्पो वेद ईश्वरसम्मतत्वात्सकलमानवव्यक्तीरविशेषेणैवोद्दिश्य प्रवर्तते तदुक्तविध्यनुष्ठानादिकं तु स्वस्वादृष्टानुसारतः कतिपय एव जना अनुतिष्ठन्तीति युष्माकमपि स्वीकार्यमेवेत्याह।

अत्रान्तरे सर्वान् प्रतीक्षितान्तसभ्यानुपस्थितान् दृष्ट्वा श्रीयुतपण्डिततवामनाचार्यं च तद्दिनसभाध्यक्षत्वेन वृत्वा तदनुमत्योपसम्पादकः केशवशास्त्री पूर्वसभावृत्तान्तं यथावदवाचयत्। तदनु पूर्वसभोपक्रान्तां द्वैतापत्तिमेवाधिकृत्य तन्निराचिकीर्षया विचारः प्रावर्तत।

तत्र सभाप्रोत्साहको महाशयः — आत्माभिन्नोऽपि उपाधिसम्बन्धवशाद्भिन्नो भवति। उपाध्यपगमे चोदकापगमे प्रतिबिम्बस्येव किञ्चिज्ज्ञात्वादिजीवरूपेण जीवस्याप्यपगमात्केवलस्य परमात्मन एवावशेषादद्वैतमेवेत्यवादीत्।

केशवशास्त्री— उपाध्यपगम एव चेदैकात्म्यं सिद्ध्यति तर्ह्यात्मबोधेन किं क्रियताम्। तादृशबोधोत्तरमप्युपाधीनां प्रविद्यमानतयाऽद्वैतासिद्ध्या सकलानर्थस्य तादवस्थ्यात्। तथा च ज्ञान्यज्ञानिनोरविशेषप्रसङ्गः।

सभाप्रोत्साहकमहाशयः— ज्ञानप्राप्त्युत्तरं च जीवः स्वप्नजागरणसुषुप्तिगोचराणां विषयाणां बाधितत्वेन मिथ्यात्वं विभावयन्त्स्वबिम्बभूतस्य परमात्मन एव च केवलं सत्यत्वमनुसन्दधदिष्टप्राप्त्या चाहृष्यन्ननिष्टसिद्ध्या चाविषीदन् परमात्मपरायणः सर्वदुःखातिगो भवति। अज्ञानी तु सर्वं विषयजातं सत्यं मन्यमानो ऽनुवेलमनर्थपरम्परामनुभवतीति प्रसिद्ध एव ज्ञान्यज्ञानिनोर्विशेष इति।

गङ्गाधरशास्त्री— न केवलं ज्ञानप्रप्त्युत्तरं विषयमिथ्यात्वमेवानुभूयते जीवेन; किन्तु स्वात्मनः परमात्मतादात्म्यमपि। तदेव च तत्त्वमस्यादिवाक्यैर्जहदजहल्लक्षणवृत्त्या प्रतिपाद्यते। अत एव जीवन्मुक्तानां ब्रह्मैवाहं न संसारीत्याद्युक्तिरपि संगच्छते।

गहनोऽयं विषयो नाध्यक्षवरैर्विना पारं गमिष्यतीत्यद्यात्रैव विरम्यतामिति सभाप्रोत्साकमहाशयेनाभिहितं सर्वेऽन्वमोदन्त। ततश्चोत्तरसभायां केशवशास्त्री प्रारब्धवादमधिकृत्य किञ्चिद्विलिख्य पठिष्यति। प्रोत्साहकमहाशयश्च प्रथमवादं करिष्यतीति निश्चित्य सभां व्यसृजन्।

[७]

अथ मार्गशीर्षशुक्लप्रतिपदि संस्कृतसमाजनाम्नी सभा यथापुर्वमास्तीर्णा। तस्या केशवशास्त्री प्रथमं पूर्वसभावृत्तान्तं संवाच्य प्रारब्धवादमाक्षिप्य लीलावाद एव युक्तः प्रतिभातीत्युपापादयत्। यथा सर्वो हि जन्तुस्तत्तत्सुखमभीप्सन्त्साधुष्वसाधुषु वा कर्मसु

प्रवर्त्तते। एको हि यमनियमस्वाध्यायादिकायक्लेशैः स्वसुखं साधयितुं यतते। अपरश्च रुचिरान्नपानादिग्राम्यविषयोपभोगैरेव। तावेतौ समं वेदवेदाङ्गपारगावपि स्वस्वसुखसाधनत्वेन भिन्नभिन्नकारणसामग्रीमाश्रयन्तौ तत्तत्कर्मसमुत्थमपूर्वमिह परत्र वोपभुञ्जाते इत्यनुभूयते श्रूयते च। तत्रानयोर्विजातीयसुखविशेषाभीप्सापूर्वकसामग्रीविशेषादरः किं पूर्वजन्मकर्मनियत आहोस्विदीश्वरेच्छानियतः। तत्र केचन पूर्वजन्मकर्मनियत एव स इति वदन्ति।

यतो हि समानादेव गुरोः शिक्षमाणानां सममभ्यासशालिनां च पुरुषाणामेक उत्तमोऽपरो माध्यमो निकृष्टो वा सम्पद्यते। कस्मादिदं कारणसाम्येऽपि फलवैचित्र्यं सम्भवतीत्यस्ति कोऽप्यदृष्टकारणविशेष इत्यनुमीयते। तादृशदृष्टकारणेष्वपि वैचित्र्यापादकं किमिति पृष्टे ततोऽपि पूर्वपूर्वजन्मकर्मेत्यनवस्थां स्वीकुर्वन्ति। प्रामाणिकानवस्थाया अदूषितत्त्वात्। परे त्वीदृशानवस्थास्वीकारापेक्षया स ऐक्षतेत्यादिवचनादवश्यस्वीकार्येश्वरेच्छावैचित्र्यमेवाभ्यर्हितं मत्वा तेनैव सकलसांसारिककार्यवैचित्र्यमुपपादयन्ति लोकवल्लीलाकैवल्यमित्यादिश्रवणाल्लीलाप्रवृत्तस्येश्वरस्य सृष्टिवैचित्र्यं न तावद्वैषम्यनैर्घृण्यानुमापकं भविष्यति, विचित्रसृष्ट्यभावे लीलाया एवासिद्धेः। न हि लोके लीलापटुस्सूत्रधारः स्वपात्राणां कानिचिच्चौरयन् कानिचिद्वदान्ययन्त्रपराणि च भिक्षार्थीकुर्वन् वचनीयो भवति। तथा स्वलीलासंपिपादयिषुरीश्वरो लोकदृष्ट्या कांश्चन दुर्मतीनपरांश्च सुमतीन् कुर्वन्न कथमपि वाच्यः स्यात्। एतेन स्वयमेव मनुष्यैस्तानि तान्युचितानि वानुचितानि कर्माणि कारयित्वा तेषां श्रेयोदण्डादिविधानमीश्वरस्यायुक्तमिति वदन्तः प्रत्युक्ताः, एवं चेश्वरेच्छाघटितया दृश्यकारणसामग्र्यैव सकलकार्योपपत्तावदृष्टकारणानुसन्धानक्लेशो व्यर्थः। एकादृष्टकारणेनानिर्वाहेऽदृष्टान्तरस्य तेनाप्यनिर्वाहे तदितरस्य कल्पने महद्गौरवमनवस्थादोषश्च।

ननु दृश्यकारणसाम्येऽपि फलवैषम्यमुपलभ्यते लोके, तत्कथमदृष्टकारणान्तरकल्पनां विनोपपादयितुं शक्येत। केन दृष्टकारणेन सममभ्यासशालिनोः सतीर्थ्ययोरेकतरस्य विद्वत्त्वमपरस्य च जडत्वमुपपाद्येयाताम् इति चेश्वरेच्छानियततत्तज्जनकगुणदोषकृतबुद्धिवैजात्येनैवेति गृहाण। वैषम्यनैर्घृण्यादिदोषस्तु नास्त्येवास्माकमित्यवोचाम। प्रत्युत स दोषः प्रारब्धवाद एवापद्यते, तत्र हि वर्तमानकुकर्मादीनां पूर्वकर्मनियतत्वेनावश्यंभावात्तदर्थं जनानां दण्डदानस्यानौचित्यात्। यदि च साध्वसाधुप्रवृत्त्यनुकूलेच्छातिरिक्तानामेव जीवावस्थानां प्रारब्धनियतत्वं तादृशेच्छयोस्तु स्वात्मयत्तत्वमेव। तथा च कुकर्मप्रवृत्तिनिवृत्त्योर्जीवाधीनत्वेऽपि ततोऽनिवर्तमानस्य जीवस्य दण्डविधानं न्याय्यमेवेति भण्यते चेदर्धजरतीयं जीवेच्छावैचित्र्यं पुनर्दुरुपपादमेव। एवं स्थितेऽनवस्थादिविविधदोषदूषितं प्रारब्धवादमपेक्ष्य दोषलेशशून्य ईश्वरेच्छावाद एवोपपन्नतरः प्रतीयते। उक्तानवस्थाया अस्वीकारे सांख्याचार्यादीनां सम्मतिश्चास्ति। तथा च द्वाविंशत्यधिकशततमसाङ्ख्यसूत्रे भाष्यकारः— "आदिसर्गे हि वृक्षं विनैव बीजमुत्पद्यते हिरण्यगर्भसंकल्पेन तच्छरीतादिभ्य इति श्रुतिस्मृत्योः प्रसिद्धम्।" तत्रैव धृतं विष्णुपुराणवचनं च—

"यथा हि पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः।
आदिबीजात्प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः" इति ॥

ततः प्रमदादासमित्रमहाशयो न लीलावादो युक्तो लोके लीलाकारिणामचेतनकाष्ठादि-निर्मितक्रीडनकोपादानस्यैव दर्शनात्, चेतनान्युपादाय तेषु सुखदुःखाद्युत्पादने दोषस्य दुरुद्ध-रत्वात्। न हि लोकेऽपि प्रभुरपि पृथ्वीपतिर्लीलावशपिशाचिकावेशदूषितो नेदीषु निजाश्रितेषु कांश्चन घातयन्नपरांश्च समेधयन् युक्तकारीति व्यपदिश्येत। प्ररब्धावादे तु युक्तकारिणः सुखयन्नयुक्तकारिणश्च पीडयन् विविच्य निग्रहानुग्रहौ विदधानो नृप इव मुच्यते वचनीयतायाः। तानि च कर्माणि पूर्वपूर्वजनुरर्जितकर्मनियतान्यपि क्षपयितुं शक्यन्ते सम्प्राप्तनरतनुना शृण्वता श्रुतिस्मृत्युदितानुपदेशानिति तदनुश्रुतमविदधाना विदधानाश्च कोपप्रसादयोः पात्रीक्रियन्त इति लोकदृष्टान्तेन सर्वांशे सादृश्यमश्नुतेऽयं वाद इति।

ततो विश्वनाथशास्त्री— न तावदस्त्ययं नियमो लोकेऽचेतनान्येव लीलायै गृह्यन्त इति नाट्ये चेतनानामपि ग्रहणदर्शनात्। तेष्वप्येकस्य रामभावेनापरस्य रावणतया च तात्कालिकसुखदुःखातिशयोत्पादनाच्चेति। ततो महाशयः— भो, नास्ति तेषां मध्ये कस्यापि दुःखलेशोऽपि कथमन्यथा ते प्रवर्तेरन्। सुखदुःखादि तु केवलमभिनयन्तीति। ततो ढुण्ढि-राजशास्त्री— ब्रह्मातिरिक्तवस्तुमात्रस्य सिद्धान्तेऽनङ्गीकारान्न कस्मिंश्चित्सुखं दुःखं वोत्पादि-तमीश्वरेणेति कोऽयं दोष इति। ततो महाशयः — भोः, कस्यां दशायामिदमुच्यते पारमार्थिक्यां व्यावहारिक्यां वा? पूर्वस्यां लीलावादः प्रारब्धवादः सुखं दुःखमिति सर्वमेवालीकमद्वैत-सिद्धान्तादिति वादमात्रस्य व्यावहारिकदशायामेवावसर इति पर्यालोच्यतां सा दुर्निवारेश्वर-वैषम्यनैघृण्या लीलावादे न वेतीति। ततो राममिश्रशास्त्री— अस्तीश्वरे वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कर्मप्रयोज्यत्वाच्छुभाशुभफलानामत एवोक्तं वैषम्यनैर्घृण्ये कर्मसापेक्षत्वादिति कर्मणां तु जडत्वादीश्वरः सिद्धः परमार्थतश्च भेद एव वास्तवो नाभेदो भेदपक्ष एव शास्त्रयोनित्वा-दित्यारभ्यानावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दादित्यन्तः शास्त्रसन्दर्भः सुयोजोऽभेदपक्षे च क्लिष्ट-योजनो न वा योजयितुं शक्यत इति। ततो महाशयः समानकर्मणामपि फलभेददर्शना-त्प्रारब्धमङ्गीक्रियत इति।

ततः केशवशास्त्री— ईश्वरस्य निर्गुणत्वस्वीकारान्न वेषमयनैर्घृण्ये लीलावादेऽपीति। ततो महाशयः— भो, इदं पारमार्थिकं न व्यावहारिकमिति। ततः केशवशास्त्री— नैर्घृण्यस्य घृणाभावरूपतया सुखदुःखाद्यभावइव सोऽपि चेत्स्वीक्रियेत कः स्याद्दोष इति। ततो महा-शयः— भो, घृणाभाव एव दोषः परदुःखप्रहाणेच्छा हि सा, सा चेदीश्वरे नाभ्युपगम्येत राक्षसे- भ्योऽप्यधिकं क्रौर्यमीश्वरेऽभिहितं स्यादिति। ततो बालशास्त्रिणः — भोश्चित्रीयते मे मानसमद्यतनेन वादेन यदुभाभ्यामपि वादिप्रतिवादिभ्यामीश्वरे नैर्घृण्यवैषम्ये नेष्येते तर्हि किमिति ते उद्भावनीये समाधेये च तदुद्भावनस्य प्रकृतकथानङ्गत्वादेकतरस्यैव दोषत्वे

तदुद्भावनस्य युक्तत्वात्। एवमीश्वरेच्छायाः कारणताकल्पनरूपो लीलावादः स्वस्वकृतकर्मणां फलप्रयोजकत्वरूपः प्रारब्धवादश्चेति पृथक् पृथक् स्वीकृत्य विवादोऽपि मह्यं न रोचते समाहृत्यैवोभयं समाधानस्य सुश्लिष्टत्वात्। नहि लीलावादेऽपि लौकिकीव लीला सर्वत आप्तकामे भगवति शक्याऽभिधातुं तस्यास्तात्कालिकसुखैकप्रयोजनकत्वात्। एवं प्रारब्धवादेऽपि सुकृतदुष्कृतकर्ममात्रोत्पाद्यत्वं सुखदुःखयोरशक्याभिधानमेव प्रतिबन्धकाभावादेरपि कारणताया आवश्यकत्वात्। नह्याद्यपक्षेप्येकेन सुकृतमपरेण दुष्कृतं च कारयित्वा सुखे दुःखे च तान् पातयन् भगवानवचनीयः स्यात्। एवमन्त्यपक्षेऽपि कर्ममात्रस्य कारणता दुर्वचेति स्पष्टमेव। भेदवादे चेदं दुष्परिहरमेव केवलेच्छायाः कारणत्ववादे। बुद्धिगताः सुखदुःखादयो नात्मन इति तु न शक्यं वक्तुं लोकेऽप्येवं काञ्चन ताडयतस्त्वद्बुद्धावेव दुःखं न तवेत्यभिदधतोप्यवैषम्यापातात्, एवमभेदवादेऽपि स्वाभिन्नेनेश्वरेणाभिन्ने नरान्तरे दुःखं सुखं चोत्पादयन् तदात्मन्येवोदपादयदिति साधीयसी वादसरणिः। दृश्यते च कर्मणां नानाजन्मसंचितपापनाशकता यमनियमादीनां वैदिकी नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलमिति तस्य बलं च प्रारब्धसंचितोभयविधदुरितनिवारकत्वमिति स्पष्टमेव। तस्मादल्पेनापि नियमेन बहुतरपापनाशे भगवदिच्छायाः कर्मणश्च कारणताऽभ्युपगमे न कोऽपि दोषावकाश इति।

एतच्च सर्वेष्वनुमोदयत्स्वेव पुनरिदमवोचन्। यदियं सभा साधीयो महोत्साहयुवपण्डितसभाजितेत्यनया तादृशं फलमुत्पादनीयं यच्चिरं सहृदयानामास्वादनीयतां व्रजेत्। यद्यपीदृशोऽपि विचारः प्रचुरजनोपकारदक्षोऽथाऽपि न तादृशो यथा कश्चन धर्मशास्त्रनिबन्धः सुतरामुपकारको भवेत्। वीक्ष्यन्तां च माधवाचार्यादीनां महात्मनां परिश्रमा यैः सकलार्यावर्तवसुमती निःशङ्कमनुतिष्ठति धर्ममनुगृहीता। तेषां च तावन्तो निबन्धा ये पूर्णायुषापि पुरुषेण न लेखितुमपि शक्यन्ते। अतस्तादृशो निबन्धो निर्मीयेत यत्र साकल्येन मतविवेकपूर्वकं कृत्स्ना धर्मविषयः शीलविनयार्जवादिसामान्यधर्मप्रशंसनप्रपञ्चनपुरःसर उपनिबध्येत। सर्वे च यूयं सभ्या युवानो महोत्साहा धीमन्तश्चेति मन्त्रये युष्माभिः सहान्यथा त्वेकेनेदृशपरिश्रमो दुष्कर एव। श्रूयते च माधवाचार्योपि वीरबुक्कभूपतेः प्रधानसचिवो धनेन विनयेन प्रणयेन च संकलय्य नानादेशवासिनः पण्डितान्निबन्धान्निरमापयदिदि। एवं यूयमप्येकचित्ताश्चेन्निबन्धमीदृशं निबध्नीयुः स्याज्जनानां महानुपकारो भवतां च कीर्तिराकल्पस्थायिनी मयाप्यत्र यथाशक्ति प्रयत्येतेति। ततो राममिश्रशास्त्री व्यावहारकाण्डसंग्रथनं रामकृष्णशास्त्री च कालविवेकनिबन्धनं ढुण्ढिराजशास्त्री च श्राद्धनिर्णयनिर्माणं प्रत्यशृण्वन् ततः संध्यासमये जाते सर्वे सभात उदतिष्ठन्निति शम्।

[८]

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकैकोनविंशतिशततमवैक्रमाब्दीयमाघकृष्णद्वितीयायां श्रीयुतप्रमदादासमित्रमहाशयानामुद्याने संस्कृतसमाजनाम्नी सभा प्रतिपक्षं प्रतिपदि भवन्त्यपि श्रीमत्याः

सकलवसुमतीतलवास्तव्यमनुजजनस्तव्यशासनाया विजयिनीदेव्या भारतवर्षराजराजेश्वरीपदस्वीकरणाकर्णनसमुन्मीलदतुलप्रमोदसन्ततिं सम्भूयानुभवितुं किल समास्तीर्णा। तां च समलमकुर्वत प्रतिसभमनायान्तोऽपि कतिपये श्रीमद्ग्राफसाहिबप्रभृतयो महाशयाः। अध्यासीनेषु च सर्वसभ्येषु यथोचितान्यासनानि तादात्विकस्वस्वतात्विकप्रमोदप्रकाशनमेव प्रधानं तद्दिनकार्यमालोचयता साम्प्रत प्रस्तुतमुपक्रम्यतामिति सप्रश्रयं निवेद्यमानाः प्रमदादासमित्रमहाशयेन श्रीबालशास्त्रिणो हर्षप्रकर्षकगद्गदाक्षरमिदमुपाददते स्म वचनम्। यथैव पूर्णचैतन्यः परमेश्वरो निखिलेषु चतुर्मुखप्रभृतिषु कीटपर्यन्तेषु जीवतत्वेषु तत्तददृष्टविशेषपर्यालोचनपुरःसरं स्वचैतन्यभागं तत्तदुचितं समर्पयन् ब्रह्मण्याहितेन चैतन्येन सृष्टिसंपादनं विष्णावाहितेन च तेन परिपालनं रुद्रसमर्पितेन च तेन संहरणं किं बहुना लोकेपि परस्परमुपकारानपकाराश्च किञ्चिज्ज्ञतां बहुज्ञतां च विरचयन् परमार्थतस्तत्तदव्यक्त्याविष्टचैतन्यप्रतिफलितसुखदुःखादिसंवेदनात्मकं फलं स्वयमेवोपभुनक्ति स्वचैतन्येनैव चैतन्यवत्तामभिमन्यमानानुचितकारिणोऽनुचितकारिणश्च योग्यराजादिद्वारेण साधुफलमसाधुफलं च प्रापयति तथानन्तशक्तेर्यस्यैव शक्तिलेशैस्तत्तत्कार्यशक्तानीव पृथिव्यादितत्त्वानि धारणाप्यायनप्रकाशनादीनि विचित्राणि कार्याण्यारभन्ते यदीयशक्तिमन्तरा न तृणमपि परस्पन्दितुं प्रभवति यच्चैतन्यसम्बन्धमन्तरा च कोऽपि किमपि न ज्ञातुमलं तथा साम्प्रतमसावपि निरवधिकैश्वर्यप्रभुशक्तिमन्त्रशक्तीनामेकमायतनं विजयिनी देवी तत्तत्पुरुषानुगतविवेकविनयविद्यादिभिरुदयमासादयन्त्या स्वेच्छयैव केषुचित्पीठाधिपत्यं केषुचिद्देशाधिपतितां केषुचिज्जनपदस्वामितां केषुचिन्नगराधिकारं ग्रामपरिवृढतां च स्वशक्तेरेव गुरुलघुखण्डसमर्पणपुरःसरं समर्पयन्तीं सकलां मेदिनीं परिपाल्य स्वयमाप्तसमस्तकामापि प्रजासम्बन्धिसुखसन्तत्या स्वयं सुखिनी तदीयदुःखैश्च दुर्मनायमाना विविधविद्याशिल्पादिकौशलशालिनो योग्यताविशेषविवेचनपुरःसरं ग्रामाधिपतिदेशपरिवृढादिद्वारा परितोषयन्ती विरूपमाचरतश्च दण्डयन्ती परमार्थतः स्वयैव शक्त्या सर्वं नियमयति निजेनैवैश्वर्येण सर्वाः प्रजाः सुखभागिनीः करोतीति कः संशयीत किमधिकेन तादृशतादृशाश्रुतदृष्टचरकारणसामग्रीसमवधानद्वारा पृथिव्यादीन्यपि तत्त्वानि नियमयन्ती प्रत्यक्षेश्वरतामपि विपश्चिन्मानसेषु सम्भावयति सा नानाविधद्वीपमण्डलान्यात्मसात्कृतवत्यपि भारतवर्षप्रजासु निरतिशयं स्नेहं प्रकाशयन्त्यद्य स्वीकरोति भारतवर्षराजराजेश्वरीति पदमिति कः स्यादस्माकमितोऽपि विशिष्टो महोत्सवाश्रयो वासरः सदृशो वा। तदद्यास्माभिरपरं किं विधेयमृते श्रीविश्वेश्वरं मुहुः प्रणम्य विजयिनीदेव्याश्चिरं साम्राज्यसम्पत्समुल्लासस्थैर्यहितोर्यथोत्साहं विचित्रैः श्लोकैरुपश्लोकनादिति तदेव सम्राट्साधुवादसंवलितं प्रस्तूयतामिति।

ततस्ताराचरणतर्करत्नमहाशयाः—अहो कथमियमद्य वसुधाऽसाधरणगुणगणविराजमानाधिपतिसम्प्राप्तिप्रमदमेदुरजननिचिता विराजते।।यादृशी च साम्प्रतमस्याः सम्राट् क्व तादृशी पुरा केन प्राक्तनेन महीभुजा परमुपकारकाणि पुस्तकानि प्राकाश्यन्त। यानि चिरकालातिक्रमवशान्नामशेषाणि कानिचिन्नाम्नाप्यश्रुतानि यथा साम्प्रतिकसम्राजा मुद्रणोपायसुलभानि विरचितानि स्वल्पव्ययेनापि समासादयितुमधुना शक्यन्ते। केन वा स्वस्वजातिवर्णदेशाद्य-

भिमानमुत्सार्य कृत्स्ने प्रजा सुतनिर्विशेषमपाल्यत, येन बलीयसाऽऽक्रम्यमाणा दुर्बला दुःखं नाप्नुवते स्म। केनान्येन पथिकजनानामनायासेन स्वल्पव्ययेन लघुना कालेनाभीप्सितदेशप्रप्तिहेतुभूतं बाष्पवेगवशवेगवत्तममनायासिततुरगादिवाहनं यानं निरमीयत। केन वा पुरा योगबलेनापि केनचिदेव शक्यसाधनं दूरतरदेशस्थवार्तोपलम्भवार्ताप्रापणादिकौशलं सर्वजनसुलभं समपाद्यत। कियतीं वा वाचं चिरं प्रपञ्चयामहे नानाविधोषधालयविद्यालयादिनिर्माणैरतीवोपकृता सकला प्रजा विस्मरत्येव पूर्वमहीपतीन्। तदधुना सर्वात्मना भगवन्तमम्बिकापतिमाराधयद्भिरस्माभिरिदमेव पुनः पुनराशंसनीयं यत्प्रतिपलोपचीयमानवैभवानुभावा भुवं भूषयेद्यशोवितानैर्देवी विजयिनी ससुतेति।

तदनु प्रमदादासमित्रमहाशयः श्रीविश्वनाथप्रणतिसम्राट्प्रशंसाबोधकपद्यवाचनपूर्वकमिदमाह— निःसंशयं चिरादभिलषितो मनोरथ आर्यावर्तवास्तव्यानां भागधेयोदयैरस्माकमद्य साधु फलितः। येन श्रीमती विजयिनीदेवी प्रजान्तरेभ्यो विशेषप्रियतां भारतजनेषु दर्शयन्ती सर्वेऽपीहत्या देशाधिपप्रभृतिसाधारणजनपर्यन्तं जना मत्सम्बन्धिन इति बोधयन्ती नानाविधान्तरीपपालिन्यपि भारतराजराजेश्वरीत्यसाधारणं निजं पदमनुमन्यते स्म। तदीदृशेवसरे यदि वयं तदीयधन्यवादपुरःसरं परस्परं चिरात्प्रचलितामीर्ष्यो परोत्कर्षासहिष्णुतां च तुन्दपरिमृजतां च विसृज्य परस्परसाहायकप्रवणमानसा मानसाधनतया विविधा विद्या मतिवैशद्यसम्पादकानि च विचित्राणि शिल्पानि शुभोदर्काङ्क्षोद्यमान् सम्यगुपाददीम कोऽस्मादपि परो लाभ इति विचिन्त्यताम्। यथाद्य यावदिहत्यानां वैमत्यमत्यन्तं दुरन्तमभूद्येन विजातीया इति गौडा महाराष्ट्रान् ते च गौडानिमे च वङ्गदेशनिवासिनोसूयन्तो द्वेषमेव स्वौन्नत्यसाधनमिति भ्राम्यन्त ईदृशीं परायत्ततामश्नुवते स्म येन द्वीपान्तरीयैः सुतरां संरुद्धव्यापाराः पारावारपतिता इव सांयात्रिका न कथमपि स्वोदयं सम्भावन्त्यपि। विचारचतुरचेतसां पुनरिदं न रोचते यदेकमपि द्वीपमधिवसतां भाषाभेदमात्रकेण कृतो विभिन्ना इति व्यपदेशः यथा किल द्वीपान्तरनिकेतना अपीमे समागत्य जनमिहत्यमपि स्वजनमिवायत्यां भूरिफलेषु कर्मसूत्साहजननपुरःसरं धनमपि निजं वितीर्य प्रेरयन्ति तथा वयमपि चेदधुनाऽपि वैमत्यत्यागं पुरस्कृत्य प्रवर्तेमहि महितेषु हितेषु कार्येषु प्राप्नुयामाल्पीयसैव कालेन परमामुन्नतिमिति दृढं निश्चिनोमि। अपि चायं न केवलं न यो धर्मोप्यस्माकं शीलं सत्यं परोत्कर्षसंतोषिता शमो विनय आर्जवमिन्द्रियनिग्रहश्चेत्यादिरसाधारणः साधारणः सर्वेषाम्। पश्यत भारतादीन् महत इतिहासान् यत्र शीलस्य कियन्माहात्म्यमुद्धुष्यते मुहुः—

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्॥
शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह विनश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः॥ इत्यादि।

एवं सत्यस्यापि—

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥इत्यादिना।

अनृतस्य च नानृतात्पातकं परमित्यादिनाऽतीव हेयता प्रदृश्यते। तद्यदि कश्चिदीदृशं प्रबन्धं विरचये यत्र दशकं धर्मलक्षणमिति प्रारभ्य सर्वेषां प्ररोचनं प्रमाणोपन्यासपुरःसरं भवेद्येन सर्वेषामुपकारः स्यात्तस्मै चेदृशमहोत्सवे पारितोषिकं विसृज्य श्रीमत्सभाध्यक्षाधिकारे मया स्थापितमर्प्येतेति। ततो बालशास्त्रिणः — न केवलमेतेन महदौदार्यं महाशयानामवगच्छामोऽपि तु विचार्यकारितामशेषजनोपकृतिदक्षतां च दृढमनुमिमीम इति।

ततो रामकृष्णशास्त्रिप्रभृतिभिर्विश्वनाथस्तुतिसम्राट्कीर्तिप्रतापादिप्रकाशकेषु पद्येषु वाच्यमानेषु ढुण्ढिराजशास्त्री वाचयति स्मैकमत्यवादम्। तदनु श्रीविश्वेश्वरसपर्यार्थमद्य कोऽपि गच्छतु समभ्यर्थयतां च भगवतो भारतेश्वरीभावुकाभिवृद्धिमिति बालशास्त्रिभिरादिष्टे केशवशास्त्री निजगमनोत्साहमदर्शयत्। ततः प्रमदादासमित्रमहाशयोपि मदीयमपि पूजासम्भारं प्रापयतु भवानिति। तदनु सायंसमयेपि प्रत्यासन्ने गुणिजनसमागमैकलोभिनस्सर्वेऽपि सभ्याः सम्भूय युगपदेव प्रश्रयं पुरस्कृत्य श्रीगाफसाहिबमहाशयान् श्रीथिबोसाहिबांश्चानुमन्येतां युवां सभाप्रोत्साहकतामिति विज्ञापयन्तस्तत्क्षण एव भृशं प्रसीदता गाफसाहिबमहाशयेन नितरामहमनुगृहीतोऽस्मि समागमादीदृश्याः सभाया इति परितोषिताः सभां व्यसृजन्निति। शम्।

शीतांशुशोभिशिरसं गिरिराजकन्यानेत्रम्बुजद्वयविकाससहस्रभानुम्।
श्रीविश्वनाथमधुना मधुनाशनेड्यं भक्त्या नताः स्म जनतास्मरणैकभूमिम् ॥१॥

प्राप्तोदया किल दया हृदयान्तरालात्तस्यैव सा विजयिनी जयिनी रिपूणाम्।
कल्याणकारकनया तनयाविशेषं पुष्णात्यशेषजनतां विनतां नितान्तम् ॥२॥

नानान्तरीपनृपमौलिमणिप्रभाभिराभासिताङ्घ्रियुगलाऽपि निजप्रतापैः।
सा भारती भुवमभावयदिद्धभाग्यामार्येश्वरीतिपदमात्मनि मानयन्ती ॥३॥

आशागजश्रुतिपथातिथिभिः शतघ्नीघोषैर्द्दुलिङ्घनधियेव चलद्भिरुच्चैः।
सम्राट्सभावसुमतीं समया स्तवैश्च साम्राज्यघोषमयतां व्रजति स्म सर्वम् ॥४॥
राज्याः पदं सककुदं सकलेश्वरेभ्यो भूपा न केवलममन्वत साधुवादैः।
आशान्तरालविततप्रतिनाददम्भाद्दिक्पालकैरपि सुरैरयमन्वमोदि ॥५॥

पुष्पाञ्जलीन् विसृजतां करकुड्मलेभ्यः कूलङ्कषप्रमदमेदुरमानसानाम्।
साहायकं विदधिरे सकलप्रजानां पुष्पोपमावियति काल्पनिकाः प्रदीपाः ॥६ ॥
चित्राम्बुधौ न निरमज्जयदाशु केषां चेतोऽद्भुतावियति दीपततिर्भ्रमन्ती।
दासीभवत्सकलदिग्वनिताकराग्रनीराजनाभ्रममहो हृदये दिशन्ती ॥७ ॥
ये सौखशायनिकतामगमन्नुडूनां नामाक्षरत्वमभजन्त च ये प्रदीपाः।
ते तत्रतापमवनौ गगने च सन्तं कस्यान्तरन्तरितबाधमबोधयन्न ॥८ ॥
अद्यानुरागतरुरार्यजनस्य मन्ये जातः फलेग्रहिरवाप्य दयाम्बु तस्याः।
आस्वाद्य यत्फलमतुल्यरसं चिराय पीयूषमीषदपि नेष्यति लोक एषः ॥९ ॥
तस्मादपारकरुणाभरितान्तरङ्गं सम्प्रार्थयाम गिरिशं नमितोत्तमाङ्गाः।
जीव्यात् प्रतिक्षणविवृद्धयशःप्रतापा पारेशतं विजयिनी शरदस्सपुत्रा ॥१० ॥
विश्वेशविश्वजयिनीयशसां प्रसारमासेदिवांसि सुखिसभ्यसुधीवचांसि।
संश्रुत्य संस्कृतसमाजसभासहायो गङ्गाधरोऽलिखदुदन्तममुं यथावत्। ।११ ॥

[९]

[१]स्वस्ति श्री१०५मती—

विजयिनीविनयेन मुदाऽऽदराद् भरतभूपतिवृन्दसमर्पितम्।
निजगुणानुगुणं भुवनेश्वरीपदमिदं त्रिगुणा हि विधौ दधौ ॥१ ॥

सा च निर्वैरोर्वीतलसाम्राज्यसुखमनुभवन्ती पुत्रपौत्रमित्रबान्धवादिपरिवारसमेता चिरं जीव्यादिति सर्वजगन्नियन्तारं विश्वेश्वरमनवरतं प्रार्थयते, धर्माधिकार्युपपदो ढुण्ढिराजशास्त्री।

॥अथैकमत्यवादः ॥

अहो! महदद्य सुदिनाहं यदस्मासु भारतवर्षीयप्रजासु मातेव वात्सल्यं वहन्ती श्री१०५मती श्वेतद्वीपनिकेतना विजयिनी देवीतः पूर्वमेव वस्तुसती भरतभूमिभूपालसामन्तचक्रवर्तिन्यपि सम्प्रति भारतवर्षीयमहाराजाधिराजप्रभृतिनिखिलभारतवर्षीयप्रजानां भूयो भूयोऽभ्यर्थनया भारतराजराजेश्वरीति निजमहत्त्वानुरूपां पदवीं स्वीचक्रे। तेन च भारतीयजनस्य सर्वथैकमत्यं सम्पादितं भविष्यतीति सुदृढमनुमिनोमि। अस्तीदं तावदसन्दिग्धतया निर्विवादं सकलजनसम्मतं यद् ऐकमत्येन बहूनि दुःसाधान्यपि कार्याणि तादृशकार्यकरणासमर्थैरपि साधयितुं शक्यन्ते।

१. पं. ३, न्यू सि. (अक्टूबर १, १८७७) २९३-३११.

तथा च श्लोकः—

बहूनामप्यसाराणां संयोगः कार्यसाधकः ।
तृणैरारभ्यते रज्जुस्तेन नागोऽपि बध्यते ॥१॥

यथा हि ऐकमत्येनैव च हितोपदेशे वर्णिताः कपोता जालबन्धेन जीवितसन्देहमापन्ना अपि जिजीवुः । सम्प्रत्यपि दृश्यतां तावत् पार्लिमेन्टनामकसभाव्यवस्थापनमुखेन, तत्तद्देशेषु चादरमात्रैकवेतनानां दण्डनायकानां (आनररीम्याजिस्त्रेट्) इति पदवीसमलङ्कृतानां प्रतिष्ठापनेन, उत्तमसाहसकार्यविवेचनादिषु प्राणदण्डादिषु च तत्तद्देशनिवासिनां महाप्रतिष्ठितानामतिलौकिकप्रतिभाशालिनां अफसर् इति पदभूषितानां द्वित्रपुरुषाणां प्राड्विवाककृतनिर्णयपरिशोधनाय वरणेन चैकमत्यसिद्धान्तमनुतिष्ठन्ती सम्राट् "**असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाः पार्थिवास्तथेति**" श्लोकार्थमनुसरन्ती क्रमेणोत्तरोत्तरं स्वाधिकारं विस्तारयन्ती च भारतश्वेतद्वीपादिविविधद्वीपोपद्वीपराजराजेश्वरीपदमलङ्कुर्वन्ती विराजते । परस्परवैमत्येनैव च सुन्दोपसुन्दौ समूलनाशं नष्टौ । तेनैव च भारतीयाष्टादशाक्षौहिणीसेनासमेतनिखिलवीरनाशपुरःसरं पृथ्वी पञ्चवीरावशेषिता बभूव । अन्योन्यसाहाय्यवैधुर्येणैव चास्मिन् भारतवर्षे क्रमशोऽपचयं गच्छन्त्यः शिल्पसङ्गीतचिकित्साविद्याः सम्प्रति लुप्तप्रचारा विनष्टकल्पा एवाभूवन् । वैमत्यकारणानि च धर्मो धनं धरा महत्त्वाकाङ्क्षा चेति चत्वारि । तत्र द्वितीयादिषु त्रिषु परकीयत्वाभावसहितमेव स्वकीयत्वं सर्वोऽपि जनो वाञ्छति । आद्ये पुनरेतद्विपरीतं सर्वो लोकोऽहमिवापरेऽपि तस्मिन् स्वीयत्वाभिमानं धारयेयुरिति सततमभिकाङ्क्षति । यद्यपि नीतिकुशला धनधराविवादपरिहारे बद्धादराः पूर्वकालिकराजेष्वपि बहवोऽभूवन्निति श्रूयते, तथापि न ते साम्प्रतिकसम्राडिव धर्माऽविरोधिन आसन् अपि तु परधर्मोन्मूलनपुरःसरं स्वस्वधर्मव्यवस्थापका बभूवुरिति तत्र तत्रेतिहासादिषु बहुत्र वर्णितम् । श्री१०५मन्महाराज्ञ्यामन्यां राज्यधुरं वहन्त्यां तू पूर्वकालिकाः शिल्पादिविलोपिन इव न साम्प्रतिका विद्वांसोऽन्योन्यसाहाय्यं विद्विषन्ति, प्रत्युत लुप्तप्रचारपुस्तकमुद्रणादिभिर्नवीनयन्त्रनिर्माणप्रकारप्रदर्शनादिभिर्विद्याशिल्पादिप्रचारमुपबृंहयन्त आङ्ग्लपण्डिताः परस्परसाहाय्यं कुर्वन्तोऽधिकसाहाय्यकारितया च स्वस्मिन्नधिकं महात्वं बुद्ध्यमाना ऐकमत्यसिद्धान्तमेवानुतिष्ठन्ति । तथैव भारतवर्षीयानस्मानपि सम्राडनुशासनमहिमैव तात्त्विके महावाकाङ्क्षाफले परस्परसाहाय्ये पूर्णोत्साहशालिनः करिष्यतीति सुदृढमाशासे । धनधरापहारकृतवैमत्यतमोन्मूलनसमर्थो दण्डनीतितरणिर्जागर्त्येवेति तेनाप्यैकमत्यमेव क्रमेणात्रापि भारते वर्षे बाढं सम्भावयामि । धर्मविषये यद्यप्यस्ति तत्तन्मनुजात्मसु स्वस्वधर्मप्रचिचारयिषा तथापि—

"श्रुतयो विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्था ॥

इति मान्यनिबन्धृवचनमादृत्य अस्मत्पूर्वजान् अपेक्ष्याहमस्मि बुद्धिमत्तरः सारासारविवेचनक्षमतर इत्यभिमानं परप्रतारणधियं च परित्यज्य यदि वयं परधर्मानविद्विष्यैव स्वस्वकुलोचितान् धर्मान् निखिलधर्ममूलभूतान् शमदमदयासत्यादिशीलपदाभिधेयान् धर्मांश्चानुतिष्ठन्तः परान्

प्रत्यपि श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितादित्येव निर्मत्सरा भूत्वोपदिशेम, तर्हि मन्ये, निःसन्देहं भारतीयजनस्य सर्वथैकमत्यं सम्पादितं भविष्यतीत्यलं सुधियामग्रे वाचां विस्तरेण।

सर्वेष्वस्मासु युवपण्डितेषु महोपकारप्रावण्येन परमवात्सल्येनास्माकं मुहुरभ्यर्थनेन चैतत्संस्कृतसमाजाध्यक्षपदं स्वीकुर्वन्तो गुरुवराः श्री६बालशास्त्रिण एतल्लेखगतं न्यूनातिरिक्तभावं परिहरिष्यन्तीति स्वाशासे।

अभ्यर्थये च परेशमेतत्संस्कृतसमाजसभ्यान् चिरमुत्साहशालिनः कुर्यादिति। शम्
ढुण्डिराजशास्त्री।

विश्वेश्वरेण क्षितिगोलपृष्ठेऽखिलस्थलानां खलु मध्यदेशे।
देशोऽङ्गलाख्यो विनिवेशितोऽस्तीत्येतद्धरागोलविदां प्रसिद्धम्॥१॥
मध्यः प्रदेशोऽस्ति यतः प्रधानं सर्वत्र तस्मात् तदधीश्वरी स्यात्।
सम्राट् परे माण्डलिकाश्च सर्वे भूपा इतीष्टं परमेश्वरस्य॥२॥
एवं समस्तावनिमण्डलस्याधीश्वर्यपि प्रेमभरेण साद्य।
निजेच्छया भारतवर्षराजराजेश्वरीत्थं पदमारुरोह॥३॥
ततो वयं भारतवर्षनिष्ठाः समग्रभूमण्डललोकमुख्याः।
जाताः स्म इत्थं सुविचिन्त्य कुर्मो विश्वेश्वरस्योत्तमधन्यवादम्॥४॥
सहात्मजा भारतवर्षराजराजेश्वरी जीवतु सा चिराय।
नीत्या सदा रक्षतु नश्च बापूदेवस्त्वितीशं भृशमर्थयेऽहम्॥५॥

२ २ २ १ १ २
स्वस्तिश्रीसम्पूर्ण- १० १२
२ २ २ २ २ २

१ २ १ २ १ १ २ १ २ १
तत्त्वाङ्कैर्व्यञ्जनैश्च मात्राभिः। १४ १८
२ २ २ २ १ २ १ २ २ २

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १
हरिवसुभूरविशशिभि- १० १२
१ १ १ १ २ १ १ १ १ २
१ १ १ १ १ १ १ १ २ १

स्सेवितचरणा जयत्याऽऽर्या ॥१ ॥ ११ १५
२ १ १ १ १ २ १ २ २ २ — —
४५ ५७

त्र्यर्थः श्लोकः —

तत्राद्यः — आर्या ईश्वरी जयति स्वस्ति च श्रीश्च ताभ्यां सम्पूर्णा तत्त्वानि च २५ अङ्काश्च ९ तावद्भिः व्यञ्जनैः हल्वर्णैः मात्राभिः स्वरैश्च सम्पूर्णेत्यन्वयः, हरिप्रभृतिभिर्देवैस्सेवितचरणा इति। एतेन आदिक्षान्ताऽक्षरमयी हरिहरविरिञ्च्यादिभिराराध्या श्रीशारदामूर्त्तिः प्रतिपाद्यते ॥१ ॥

अथवा आर्याछन्दः स्वस्तिरूपिण्या श्रिया सम्पूर्णा तत्त्वप्रमितैरङ्कैः पञ्चगुणैर्नवभिः पञ्चचत्वारिंशत्सङ्ख्यैरिति यावत्, व्यञ्जनैर्हल्वर्णैः सम्पूर्णा च पुनः हरि१२वसुभू १८रवि१२शशि१५भिर्मात्राभिस्सेवितचरणा एतेनाद्यपादे द्वादश द्वितीयेऽष्टादश तृतीये द्वादश चतुर्थे पञ्चदश मात्राः पञ्चचत्वारिंशद्धलश्चास्यामार्यायां सन्तीति सूचितम् ॥२ ॥

अथवा आर्या विजयिनी साम्राज्यपदारूढा देवी महाराज्ञी स्वस्तिश्रीपूर्वपदा तत्त्वानि पृथिव्यादीन्येवांकानि येषां तथाभूतैर्व्यञ्जनैरग्नियानादिभिः मात्राभिस्तारायन्त्रादिकलाभिश्च सम्पूर्णा हरिः सिंहस्तेन सिंहासनं वसु धनं तेन निधयो भूः सागरान्ता मेदिनी रविः रविवंश्या राजानः शशी चन्द्रवंश्या राजानश्च तैस्सेवितचरणा। एतेन स्वस्तिश्रीविजयिनी साम्राज्यपदारूढा देवी सागरान्तमेदिन्यनुशासिनी महाराज्ञी सर्वोत्कर्षेण वर्त्तत इति मन्मानसोल्लासस्सर्वानुल्लासयतु ॥३ ॥

गुरूणाम्पादपद्मेषु प्रभूणां हृदयाम्बुजे।
कवीनां करपद्मेषु विदुषां वदनाम्बुजे ॥२ ॥
खलवारणकुम्भेषु मित्राणां नयनाम्बुजे।
नारायणमनोभृङ्गझङ्कारः प्रविराजताम् ॥३ ॥

श्रीमत्पङ्कजपुञ्जसौरभभरभ्राम्यन्मिलिन्दावली-
सौन्दर्याश्रितगर्वहारिगलरुक्कर्पूरपूराकृतिः।
विश्वेशः करुणारसैकवरुणागारः शिवं सर्वदा
दद्यात्सेवकमण्डलाय मुदितो भक्त्याऽनुरक्त्याऽपि च ॥१ ॥

सोऽयं सम्प्रति सर्वलोककुशलाकाङ्क्षाऽवतीर्णोऽवनौ
नानाभूपतिमानितां विजयिनीत्याख्यां बिभर्त्त्यात्मना।
आर्यावर्तजनान् स्वकीयतरतां सम्प्रापयन्नश्नुते
श्रीमद्भारतराजराजपदवीमित्यद्य मोदामहे ॥२ ॥

नैतादृक् सकलेन्द्रियाणि मदयन् जातः कदाप्युत्सवो
नो वा क्वापि जनिष्यते दृढमिति स्वान्ते विनिश्चिन्वतः।
जीयादाप्रलयं यशःशशिकरैरेषा जनाह्लादिनी-
त्याशंसा सफलास्तु शम्भुकृपया श्रीरामकृष्णस्य सा ॥३ ॥

(संस्कृतसमाजसभायाः प्रधानसम्पादको रामकृष्णशास्त्री)

श्रीमद्राजसमाजपूजितपदा श्रीराजराजेश्वरी-
त्याख्यां प्राप्तवती सदा विजयतामानन्दयित्री भृशम्।
दीनानां परिपालने दृढमतिः कारुण्यवारांनिधिः
स्वीयैः सद्गुणमौक्तिकैः सुरचितां कीर्तिस्रजं बिभ्रती ॥१ ॥

आसादयति यद्रूपं हरेणुर्हरणैर्विना।
चिरपूर्वं हि ते भूयादिति याचे सदाशिवम् ॥२ ॥

काशीस्थसंस्कृतसमाजसभास्थितेन
श्रीरामचन्द्रविदुषा किल देव ईशः।
अभ्यर्थ्यते प्रतिदिनं खलु सार्वभौमी
जीव्यादियं शतसमाः स्वसुतैः समेता ॥३ ॥

(पौराणिकोपाह्वरामचन्द्रशास्त्री)

नमस्तस्यै यथाभक्तिभक्ताभीष्टविधायिने।
धारिणे सर्वभद्राणां नाशिने सज्जनापदाम् ॥१ ॥

सृष्ट्वा त्रैलोक्यमग्रे तदवनकुशलानिन्द्रचन्द्रादिदेवान्
दिग्राज्येषु न्ययुङ्क्त प्रबलतनुभृतो नागलोकाधिकारे।
शेषादींश्चोरगेन्द्रांस्तदनु पुरूदयो भूजनान् यो जुगुप्सुः
प्रादुश्चक्रे जयश्रीललितविजयिनीं नामराज्ञीं नृलोके ॥२ ॥

याऽऽदौ यस्य प्रसादादतुलगुणगणैर्भूषिता राज्यलक्ष्मीं
गौरद्वीपस्य धाम्नो विनयधनकलाशास्त्रजातस्य लेभे।
वर्षस्याऽस्यापि पश्चात्प्रचुरबुधवरैर्मण्डितस्याप राज्यं
प्राज्यं यत्नैरनेकैः सकलभुवनभृत्प्रेरितैर्भारतस्य ॥३ ॥

सेयं पुत्रैः प्रपौत्रैर्बहुलबलयशोराशिभी राजमाना
सम्पूर्णाभिः पराभिः प्रकृतिविततिभिः सेविता राजवर्यैः।
सम्राज्ञी भारतस्येत्यखिलजनमनःप्रेयसीं ख्यातिमद्य
स्वीकुर्वाणा सदा स्तात्सकलविजयिनी वर्षलक्षाणि लोके ॥४॥

इत्थं प्रशस्ताः समुदाशिषः स्युः सत्यीकृताः श्रीजगदीश्वरेण।
सम्प्रार्थिताः केशवशास्त्रिणा या विद्वत्समाजे परमादरेण ॥५॥

(केशवशास्त्री)

आनमन्नृपसहस्रविस्फुरन्मौलिरत्नलसदङ्घ्रिपङ्कजा।
अप्रमेयकरुणातरङ्गिणी श्रीमती विजयिनी विराजते ॥१॥

या प्रभावविजितान् जनेश्वरी भारतप्रभृतिभूरिनीवृतः।
पाति यूरपगतापि मातृवद्राजनीतिमनुसृत्य सर्वदा ॥२॥

यस्याः शरच्चन्द्रकराभिरामां कीर्तिं पवित्रां जगतीतलेऽस्मिन्।
गायन्ति सर्वे युववृद्धबालाः प्रमोदवाष्पाकुलनेत्रमालाः ॥३॥

यस्याः प्रतापज्वलनं प्रदीप्तं प्रतीपपृथ्वीपतयोऽभिमानात्।
उल्लङ्घयन्तः सहसा व्रजन्ति भङ्गं पतङ्गा इव दग्धपक्षाः ॥४॥

सा विधाय करुणामधीश्वरी भूतये भरतवर्षवासिनाम्।
स्वीचकार किल भारतावनेः सार्वभौमपदवीं समुन्नताम् ॥५॥

तदुत्सवे संमिलिता इदानीं श्रीविश्वनाथं वयमर्थयामः।
यावन्मही तिष्ठति पातु तावदार्य्येश्वरी भारतवर्षमेतत् ॥६॥

(पण्डितशीतलाप्रसादत्रिपाठिनः)

यः स्वेच्छैकसहाय एतदखिलं चित्रं जगन्निर्ममे
धीरैर्यन्मनसाऽपि नापि रचनाचातुर्यचिन्ताचरैः।
दीनानान्तरतापतापिततनून्मीनानिवाम्भोधरः
स्वीयान् वत्सलताम्बुधिः स्वकरुणाऽऽसारैर्मुहुः सिञ्चति ॥१॥

सम्प्राप्ता जनताऽतिपातिचरिता सर्वंसहामण्डले
कीर्त्तिक्रान्तदिगन्तराऽतुलदयादाक्षिण्यवारांनिधिः।

शक्तिस्तस्य विभोः समुद्रवसना साम्राज्यलक्ष्म्यास्पदं
सौभाग्यं विजयश्रियो विजयिनी देवी वरीवर्त्त्यसौ ॥२॥

नानादेशवसुन्धराऽधिपतिरप्यार्येऽनुकम्पाभराद्
या स्वीकर्तुमियेष सम्प्रति मनस्यार्येश्वरीति प्रथाम्।
युक्तं तत्प्रतिभात्यशेषजगतां संपालकेनाप्यहो
यत्पूर्वं विभुना दयाबहुतया गोपालतैवाश्रिता ॥३॥

इयं विदधती भुवं चिरतरं सनाथामिमां
प्रजासु दययाऽभिधामपि यथार्थयन्ती निजाम्।
जयत्वविरतं रिपून् परिभवं नयन्ती मुदा
जगत्प्रभुमिदं मुहुर्मुहुरिहाऽर्थयेऽहं सदा ॥४॥

(गन्धवट्युपाभिधो बापूशर्मा)

विजयते जगदीशकृपानिधिर्विजयिनी सुतवत्परिपालिनी।
भरतवर्षजनान्विनतान्सदा निजबलेन जितारिसमूहिनी ॥१॥

नीत्या शुक्रति बुद्धिवैभवबलाऽजीवत्यसौ शान्तितो
वैकुण्ठत्यरिसङ्घकक्षदहनात्पार्थत्यतिप्रीणनात्।
जम्बूद्वीपनिवासिलोकमनसां रामत्यहो दातृता-
शालित्वेन च कर्णति प्रतनुतश्चार्येश्वरी चन्द्रति ॥२॥

यत्कीर्त्तिः शिशिरांशुकान्तिनिचयः सन्तर्क्यते पण्डितैः
स्वर्गङ्गामवगाहते सितरुचिर्हंसीव लोकोत्तरा।
इन्द्रेण प्रतिमार्ग्यते त्रिभुवने. श्वेताश्व उच्चैःश्रवा
यत्कीर्त्या धवलीकृते त्रिनयनः स्वीयं वृषं मार्गते ॥३॥

दयानिधिः पण्डितमानतत्परा विद्यासमुद्रस्य च पूर्णचन्द्रः।
जीयाच्छतायुर्मुदिता सपुत्रा स्वामात्ययुक्ता ससुहृद्गुणाढ्या ॥४॥

सुरेशवन्द्याङ्घ्रियुगं सुधांशुचूडामणिं लोकगुरुं शिवेशम्।
श्रीदण्डिभट्टाख्ययुतस्त्रिनेत्रं नाथत्ययञ्चान्ध्रजविश्वनाथः ॥५॥

श्रीशम्भोः सकला कला विजयिनीवेषेण भूमण्डलं
कीर्त्या मण्डयितुं च खण्डयितुमप्यास्ते द्विषन्मण्डला।
सम्प्रत्यार्यजनानुरागमुदिता सा भारताधीश्वरी-
त्यर्थाख्यां समलङ्करोत्ययमतो लोकः सनाथीकृतः ॥६॥

एतादृक्प्रमदाप्तिजातपुलको दामोदरः शङ्करं
शश्वत्संप्रणिपत्य भक्त्यतिशयात्संयाचते सर्वदा।
जीव्याद्वर्षशतं सुतैर्विजयिनी स्वस्यानुरूपैर्वृता
यन्नीतिव्रततिश्रिता जनखगाः प्राप्तप्रमोदा इति ॥७॥
विजित्य वलयं भुवो मलयचन्दनाच्छं यशो
निचित्य महिमण्डलाखिलनृपालमालार्चिता।
प्रतापतपनं रिपूत्करतमांसि लोप्तुं सदा
प्रकाश्य भुवि जाग्रती जयतु राजराजेश्वरी ॥८॥
सुतैरतुलविक्रमैरमितसद्गुणालङ्कृतै-
श्चतुर्भिरिव दिग्गजैश्चतसृणां दिशां जित्वरैः।
सहेयमवनीमिमामवति भारतीं भारती
यथार्चितपदा तथा जयतु राजराजेश्वरी ॥९॥
शत्रुर्नीचति मित्रमुच्चति महीपालावली प्रह्वति
प्राज्ञः प्राज्यति तेजसां ततिरपि प्रोद्दण्डमार्तण्डति।
कीर्तिः पूर्णशशाङ्कति प्रतिदिनं राजानति स्वप्रजा
यस्याः सा जयताच्चिरं विजयिनी श्रीराजराजेश्वरी ॥१०॥
एतां भारतभूमिमुग्रयवनैर्दुष्टैर्जितामन्वहं
शोचन्तीं निजदुर्दशां हतपतिं नैतान् भजन्तीं मुदा।
पश्यन्ती सकलान् विजित्य कृपया या पाति हृष्टामिमां
लोकातीतपराक्रमा जयतु सा श्रीराजराजेश्वरी ॥११॥

(बेचनरामपण्डितस्य)

अथ पौषकृष्णप्रतिपदि संस्कृतसमाजनाम्नी सभोपस्तीर्णा तस्यां गङ्गाधरशास्त्री स्वलिखितं सन्दर्भमवाचयत्। तद्यथा— नैयायिकमते हि चत्वारि प्रमाणानि। तथा च सूत्रम्—

"प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानीति"। वैशेषिकास्तु द्वे पूर्वोक्त एव प्रमाणे अनन्तरयोस्त्वनुमानान्तर्गतत्वेनैव प्रामाण्यमभ्युपगच्छन्ति। अत एवोक्तम् —

"शब्दो मानयोर्नैव पृथक् प्रामाण्यमिष्यते।
अनुमानगतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतम्" ॥ इति।

युक्तं चैतत्— उपमानस्येतरप्रमाणान्तर्गतत्वं सांख्यादीनामभिमतं तैरेव निरूपितमिति न प्रकृते तत्र महान् प्रयासः सफलः। शब्दस्यानुमानादनतिरिक्तत्वं तु विस्पष्टतरम्। तथाहि— योऽयं घटमानयेत्यादिवाक्याद्घटकर्मकानयनादेः प्रत्ययस्तस्यानुमितित्वमेव। अन्यथा करादेर्यं कञ्चिदभिमुखीकृत्य स्वाभिमुखमाकृष्टादभिमुखीकृतस्वसमीपागमनेच्छाप्रत्ययस्यापि प्रमित्यन्तरताया दुर्वारतया तादृशकरवेष्टादेरपि पृथक् प्रामाण्यापत्तेः सुस्पष्टत्वात्। अतश्च यथा तादृशकरादिचेष्टावन्तं पक्षीकृत्य तत्कराभिमुखपुरुषादिकर्तृकस्वसमीपदेशप्राप्तीच्छा तथाविधकरचेष्टयाऽमुमातुं सुशका तथैव प्रकृतेऽपि शब्दोच्चारयिता पुरुषो मत्कर्तृकघटकर्मकस्वसन्निकृष्टदेशसंयोगेच्छावान् तथाविधशब्दोच्चारणादिति स्पष्ट एव परामर्शादिकः प्रत्ययः। अभिप्रायस्यानुमानादेव च न विषयस्य तथाविधस्यासत्त्वेऽपि दोषः। उच्चारयित्रिच्छायामविद्यमानस्यापि घटादेः प्रकारतायाः सम्भवेन तत्र तत्प्रकारकत्वादेरेवानुमानात्। एवमेव किल स्वामिनो दानेच्छाभावे दानाभावे च याचतिघटितवाक्याच्छाब्दबोधो नैयायिकैरपि निर्वहणीयः। यत्तूच्यतेऽभिनवकविरचितश्लोकादपि बोधोदयात् तत्र व्याप्तिग्रहस्याभावेन गत्यन्तरविरहाच्छब्दस्य प्रामाण्यमावश्यकमिति, तन्न विचारसुन्दरम्। भवन्मतेऽपि तादृशश्लोकवृत्त्याकाङ्क्षाज्ञानासम्भवेन शाब्दस्याप्यनुत्पत्त्यापत्तेः। वस्तुत आकाङ्क्षाया अकारणत्वात्। तस्मात् तत्र भवताप्यवान्तरपदयोराकाङ्क्षाया अन्यत्र सत्या ज्ञानात्सामान्यतो नामोत्तरषष्ठ्युत्तरनामादेः षष्ठीप्रत्यये स्वस्वामिभावादिसम्बन्धेन तत्प्रकृत्यर्थस्य तदुत्तरनामार्थादावन्वयक्रमेण विशिष्टबोधाङ्गीकारवन्मयापि तत्रावान्तरपदरूपसङ्केतज्ञानादवान्तराभिप्रायावगतिक्रमेण विशिष्टाभिप्रायो ज्ञातुं शक्य इति सममेव, अत एव कम्बलादिपदशक्त्यग्रहदशायामिव भवन्मते मन्मते तत्सङ्केताग्रहदशायामपि योग्यसम्बन्धेन ब्राह्मणादिप्रकारको वस्तुत्वादिरूपेण विशेष्यतामवलम्बमानो बोधो ब्राह्मणस्य कम्बल इत्यादिवाक्यादानुभविको भवन्मतेऽप्युपपादनीयो मन्मतेऽपि। किञ्च, भवन्मतेऽनेकत्र मुखं चन्द्र इत्यादौ शाब्दबोधस्य योग्यताज्ञानविरहादसम्भवेन तत्र मानसो बोध इत्युच्यते। तच्च शपथैकसंवेद्यमेव स्वकल्पितकार्यकारणभावस्याभावेनाभ्युपगन्तव्यमिति बद्धमुष्टिवानरन्यायायितमेव। अभिप्रायमनुमिन्वतां समञ्जसमेव सर्वमुपपद्यत इति प्रागेवावोचाम। न च स्पष्टमुपलभ्यते शब्दस्यापि चेष्टाविशेषानन्तर्गतत्वे दृढं प्रमाणम्। शाब्दयामीत्यनुव्यवसायस्तु न प्रत्ययान्तरत्वसाधको विप्रतिपत्तेरिति विशदमेव। तस्मात्करादिसङ्केतवच्छब्दोऽप्यनुमापक एवाभिप्रायस्येति सिद्ध्यतीति।

ततो रामकृष्णशास्त्री— नोपमानं तावत्प्रमाणान्तरेष्वन्तर्भवितुमर्हति। गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थज्ञानवतः पुंसः कदाचिद् गवयदर्शनं ततोऽतिदेशवाक्यार्थस्मरणमनन्तरं च गवयो गवयपदवाच्य इति गवयपदशक्तिग्रहात्मिका प्रमैवोपमितिरिति व्यवह्रियते, सा च नानुमितिरूपा सम्भवति, तस्या व्याप्तिग्रहपूर्वकत्वासम्भवात्। नापि शब्दरूपा, तस्याः परेणानभ्युपगमात्। अभ्युपगमेऽपि वा प्रकृतप्रमायाः शब्दजन्यत्त्वासम्भवेन तदसम्भवाच्च। एवं शाब्दस्यापि नानुमितावन्तर्भावो दृष्टान्तबलेन सूपपादः, दृष्टान्ते च तादृशचेष्टाया एकार्थप्रत्यायकत्वेन व्याप्तिग्रहस्य सुघटतया अनुमानसम्भवेऽपि शाब्दस्थले नानार्थप्रत्यायकत्वेन शब्दानां तदसम्भवात्।व्याप्तिज्ञानविरहवतः पुंसो बोधानापत्तेश्च। किञ्च भूतलं घटवन्न वेति सन्दिहानस्य पुंसो घटवद्भूतलमित्याप्तवाक्यात्तादृशाप्तेच्छाज्ञानेऽपि सन्देहानिवृत्तिरेव स्यात्, इच्छाज्ञानसन्देहयोरविरोधादिति।

ततो राममिश्रशास्त्री अमुमेवार्थमनुमोद्योपमितेः पृथक् प्रमितितां गोसदृशो गवयपदवाच्य इति वाक्यस्याप्तोक्तस्य गोसदृशप्रत्यक्षकाले स्मरणेन गोसदृशे गवयपदवाच्यत्वज्ञानमनुमितिरेवेति स्फुटमुपपाद्य शाब्दस्य तु पृथक् प्रमितित्वमावश्यकमन्यथा वेदप्रामाण्यस्य दुर्निरूपत्वात्, न हि तत्र कश्चन पुरुषः प्रत्यक्षोऽस्ति, यदभिप्रायं वेदस्य शब्दैरनुमिमीमहीत्यवोचत्।

ततो गङ्गाधरशास्त्री— भो, वेदस्य शब्दैरपीश्वरोऽनुमातुं शक्य एव। तादृंशशब्दानां तथाविधाभिप्रायानुमापकत्वपूर्वकमभिप्रायस्य स्वसमवाय्यनुमापकत्वात्। किञ्च, व्याप्तिमगृह्णतोऽपि पुरुषस्य शाब्दोत्पत्तिरुच्यते सा नोचिता, पदजन्यपदार्थोपस्थित्युत्तरमेव शाब्दस्य भवन्मतेऽपीष्टत्वेनोपस्थितौ पदजन्यत्वाय तदर्थविषयकबोधस्य तत्पदाव्यवहितोत्तरत्वव्याप्यतया मन्मतेऽपि तथाविधाभिप्राये तादृशशब्दाव्यवहितोत्तरत्वव्याप्तेः सुलभत्वात्। चेष्टैकमेवार्थं बोधयतीति तु न युक्तमङ्गुलिद्वयस्य स्वसमीपदेशप्रापणेन व्यक्तिद्वयकर्मकस्वसमीपदेशप्रापणस्यापि बोधात्। शाब्दसामग्र्याः प्रत्यक्षं प्रति प्रतिबन्धकत्वं न स्यादिति तु न। इच्छानां सर्वत्रोत्तेजकत्वेनेच्छाभावविशिष्टसामग्रीत्वेन प्रतिबन्धकतयेच्छानामनुगमासम्भवेन तेन तेनैव रूपेण प्रतिबन्धकताया वाच्यतया शब्दजन्यानुमितिं प्रति प्रत्यक्षसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वास्वीकारात्।

ततो रामकृष्णशास्त्री न ममायमाशयो यच्चेष्टैकमेवार्थं बोधयतीति परमेकविधार्थमेव बोधयतीत्येव, न ह्यङ्गुलीनां स्वसमीपदेशप्रापणं स्वसन्निकृष्टदेशप्रापणादन्यमर्थं बोधयति, शब्दस्तु तात्पर्यवशैनैक एव घटपटादीन्नानाविधानर्थान्बोधयति। तदनु प्रमदादासमित्रमहाशयः— न हि शब्दोऽपि युगपन्नानाविधानर्थान्बोधयति। प्रकरणादिसहकृतस्तु तत्तत्प्रकारेण भिन्नानिति चेच्चेष्टाप्येवमेव क्वचित्तात्पर्यग्राहकान्तरसत्त्वे तत्तत्प्रकारेण भिन्नार्थग्राहिका भवत्येव तात्पर्यग्राहकान्तरसत्त्वे चेष्टाया नैरर्थक्यमिति चेद्भवन्मतेऽपि तात्पर्यग्रहमन्तरा शाब्दबोधानुत्पत्तेस्तात्पर्यग्राहकान्तरस्यापेक्षिततया शब्दस्य वैयर्थ्यमिति तुल्यमेव। तस्माद्भोजनकालिकत्वविशिष्टसैन्धवशब्दो लवणतात्पर्यविषयस्सन्नेव पदार्थान्तरान्वयप्रयोजकोऽभ्युपेयः,

तथैव मन्मतेऽपि चेष्टाया अप्येवमेव प्रकरणसहकृतायाः स्वार्थबोधपूर्वकविशिष्टार्थबोधकत्वमिति युक्तमित्यवोचत्। ततो रामकृष्णशास्त्री तदुक्तमभ्युपगच्छन्ननुमितिसामग्र्यां शाब्दसामग्र्यां च युगपद्वर्तमानायां शाब्दसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वमनुमितिं प्रतीष्यते, तच्च भवन्मते न स्यादुभयोरप्यनुमितितया समूहालम्बनात्मकानुमितेरेवापत्तेरित्यभ्यधात्। ततः सर्वे सभासदः सम्प्रति सन्ध्यासमयो जातस्तद्दिनान्तरे एतस्य विचारो भविष्यतीति विचार्य सभां विससृजुरिति शम्।

अथ पौषशुक्लप्रतिपदि सभाप्रोत्साहकश्रीयुतप्रमदादासमित्रमहाशयानां गृहे संस्कृतसमाजनाम्नी सभोपस्तीर्णा। तस्यां च केशवशास्त्री सांख्यशास्त्रविषये कञ्चित्सन्दर्भलेखं निजनिर्मितं प्रथममवाचयत्। तद्यथा श्रीनित्यशुद्धबुद्धस्वरूपं जगदीश्वरं प्रणम्य तत्रभवतां सभाध्यक्षाणां सभासदां चानुमत्या साङ्ख्यशास्त्रमधिकृत्य किञ्चिज्जिज्ञास्यते। तत्र खलु पुरुषः प्रकृतिर्महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि भूतपञ्चकमिति पञ्चविंशतिः पदार्थाः स्वीक्रियन्ते। तेषां पुरुषो नित्यशुद्धबुद्धस्वरूपः प्रकाशात्मा चेतनोऽपरिणामी, प्रकृतिस्तु तद्विरुद्धस्वभावा गुणमयी परिणामिन्यचेतनेत्युच्यते। जडाया अपि प्रकृतेरचेतनस्यापि वत्सविवृद्धिनिमित्तं प्रवृत्तस्य क्षीरस्येव पुरुषविमोक्षणार्थं प्रवृत्तिः प्रतिपाद्यते। एवमबुद्धिपूर्वं प्रवृत्ताया अपि प्रकृतेः कार्याणां महदादीनां 'सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मादि'त्यादिना सकलविषयग्रहणक्षमत्वं बोध्यते। पुरुषस्य तु 'तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य, कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्चे'त्यादिना सत्यपि साक्षात्करणकर्तृत्वे दर्शनकर्तृत्वे चाकर्तृत्वं प्रदर्श्यते। तथा 'तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः। लिङ्गस्याविनिवृत्तेस्तस्माद्दुःखं स्वभावेने'त्यनेन तस्य जरामरणादिजन्यदुःखानुभवकर्तृत्वरूपबन्धम्, प्रकृतेस्तादृशबन्धमोचकत्वं चाङ्गीकृत्य 'तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्, संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति'रित्यादिना पुरुषस्य नित्यमुक्तत्वं च निरुच्यते। तस्येदृशनित्यमुक्तप्रकाशात्मकस्यापि प्रतिशरीरं भेदश्च साध्यते। अत्रेदं वदामो यदिदं सर्वं परस्परविरुद्धं बाधितमिव भासते। कथं नामैकस्या एव प्रकृतेर्जडत्वं चेतनत्वं च सम्भवेत्। परस्परविरुद्धयोर्धर्मयोरेकाधिकरणेऽवस्थातुमशक्यत्वात्। किञ्चान्तःकरणात्मिकायाः प्रकृतेश्चेतनत्वात्सकलसुखदुःखादिविषयानुभवकर्तृत्वेन भोक्तृत्वे सिद्धे किमिति पुरुषाख्योऽपरो भोक्ता कल्प्यते। कथं च तस्य नित्यमुक्तशुद्धप्रकाशात्मनो भोक्तृत्वं शक्यते वक्तुम्? कथं पुनस्तस्य ज्ञानित्वेन चेतनत्वेन वा प्रकृतिसाधर्म्यात्ततो वैधर्म्यम्? कथं वाऽस्य सुखदुःखादिभोक्तृत्वेऽप्यकर्तृत्वम्? अकर्तृत्वे च तस्याभिमानराहित्येन बन्धाभावात् कोऽसौ प्रकृतिप्रयासो यदात्मबन्धमोक्षणं नाम। यदि च सूर्याकाशादाविवालौकिकमारोपितमेव वा द्रष्टृत्वसाक्षित्वादिकमात्मन्युपेयते, तर्ह्याकाशादिसदृशेन सर्वव्यापकैकात्मनैव निर्वाहे नानात्मकल्पनवैयर्थ्यं स्वसिद्धान्तभङ्गश्चेति।

तदनु च राममिश्रशास्त्री— चेतनत्वं च यदि परिणामित्वं ज्ञानाद्यन्यतमरूपं वा, तदा तस्य बुद्धिमात्रवृत्तित्वेन जडत्वसामानाधिकरण्यस्य सुस्पष्टत्वया नात्रासम्भवोद्भावनसम्भवः। यदि चापरिणामित्वं चेतनत्वमभिप्रेयते, तदा तु पुरुषमात्रवृत्तित्वेनैव तस्य सांख्यशास्त्रे प्रसिद्धत्वेन शङ्काया एव नावसरः। तथा चान्तःकरणात्मिकायाः प्रकृतेश्चेतनत्वस्य दुरुपपादत्वेन ततः परो भोक्ताऽसंहतश्चेतनत्वादिधर्मवान् "संघातपरार्थत्वात्त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्। पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्चे"त्यादि विविधहेतुभिः स्पष्ट एव सिध्यति। न च शयनासनादिदृष्टान्तस्य संहतशरीराद्युपकारकत्वदर्शनेन तदनुरोधात् चेतनोऽपि संहत एव सिध्येत्। तेन संहतस्य सिद्धौ हि तस्यापि संघातरूपत्वेन तेनापि पुनः संहतस्यैव सिद्ध्यापत्त्या तेन तेनेत्यनवस्थाप्रसङ्गात्। दृष्टान्तदृष्टसर्वधर्मानुरोधेन त्वनुमानमिच्छतः सर्वानुमानोच्छेदप्रसङ्गात्।

ततः सभाप्रोत्साहकमहाशयेन चेतनत्वं किमात्मकं तर्ह्यभिमतं सांख्यानामिति पृष्टे राममिश्रशास्त्री पुनराह— चेतनत्वमपरिणामित्वं प्रतिबिम्बसम्बन्धेन सुखादिवृत्तिमत्त्वं वा, न ज्ञानाद्यन्यतमरूपं ज्ञानेच्छादेर्बुद्धिधर्मत्वेन चैतन्यस्यात्मधर्मत्वेन च तैः स्वीकारात्। ततोऽध्यक्षवराः श्रीबालशास्त्रिणः— "तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्। गुणकर्तृत्वे च तथा कर्तेव भवत्युदासीनः" इत्यनेन पुरुषसान्निध्यात्तद्गताश्चेतनत्वादयो धर्मा बुद्धौ, बुद्धिधर्माश्च कर्तृत्वादय आत्मनि प्रतिबिम्बन्तीति प्रतिपादनेन चैतन्यस्य अपरिणामात्मकत्वे प्रतिबिम्बसम्बन्धेन सुखादिवृत्तिरूपत्वे वा तादृशचैतन्यारोपस्य बुद्धौ निष्फलत्वमेवापतेदिति तत्स्वरूपं सम्यङ्निरूप्यतामित्येनमेवार्थं प्रौढतरवाग्विस्तरैः स्फुटमुपपादयन्। तदनु च राममिश्रशास्त्री, सत्यमेतत्। न चेतनत्वं प्रतिबिम्बसम्बन्धेन सुखादिवृत्तिरूपमित्यादि युक्तम्; किन्तु कार्यमात्रस्यासमवायिकारणपूर्वकत्वनैयत्येन सुखाद्यसमवायिकारणचेतनसंयोगाश्रयतयैव पुरुषः सिध्यतीति बुद्धौ चेतनसंयोगस्यावश्यकत्वेन सफल एव तदारोप इति।

तदनु बालशास्त्रिणः— तन्त्रान्तरीयसामग्रीसमवधानेनैव तदुत्पत्तिसिद्धेर्निराबाधतयाऽपूर्वतत्कार्यकारणभावकल्पनायां प्रमाणाभावः। अन्यथा तद्विरुद्धस्यैव कस्यचित्सिद्ध्यापत्तेः। संघातपरार्थत्वादित्यादिहेतुभिः स्फुटमेव तत्सिद्ध्या तत्साधने सिद्धसाधनप्रसङ्गाद् बुद्धिगतचैतन्याभिमानप्रश्ने पुरुषसिद्धेः साम्प्रतमनुपयोगाच्चेति तदेव स्पष्टमुपपाद्यतामिति।

राममिश्रशास्त्री चेतनत्वं प्रकाशात्मकत्वम्, तस्य बुद्धावारोपादेव चेतनोऽहं करोमीत्यादिव्यवहारोपपत्तिरन्यथा बुद्धिगतकर्तृत्वादेरात्मगतचैतन्यस्य च सामानाधिकरण्यविरहेण तदनुपपत्तेरिति। ततः सभाप्रोत्साहकमहाशयेन वेदान्तिमतसमानैवात्मसिद्धिरेतन्मतेऽपि संज्ञातेति प्रतिपादिते, राममिश्रशास्त्री सत्यमेतत् परं का नो हानिराशिकतन्मतसाभ्ये, एवं तु नित्यविभुत्वादिरूपैर्नैयायिकेनाप्यस्ति साम्यमिति। तदनु बालशास्त्रिणः— सम्यगेतन्निरूपितं परं आत्मनि कर्तृत्वाभिमानेनैव तादृशव्यवहारोपपत्तेर्बुद्धा चैतन्याभिमानस्य किं प्रयोजनमित्येतदवशिष्यते

तन्निरूप्यतामिति। ततो राममिश्रशास्त्रिणा गहनीयं विषयः सभान्तरे एतस्य विचारो भवेदित्यभिहिते संध्यासमयं दृष्ट्वा सभाध्यक्षानुमत्या सर्वे सभासदः सभां विससृजुरिति शम्।

अथ माघकृष्णप्रतिपदि प्रमदादासमित्रमहाशयानां गृहे संस्कृतसमाजनाम्नी सभोपस्तीर्णा। तस्यां प्रथमं रामकृष्णशास्त्री पूर्वसभावृत्तान्तं संवाच्य सभ्यानश्रावयत्। तदनु राममिश्रशास्त्री— अहं किल गतपक्षे ज्वरेण पीडितो नापारयं भाष्यपञ्चकविषये प्रतिश्रुतं सन्दर्भं लेखितुम्। तत् सभ्यैः सभाध्यक्षैश्च क्षम्यमाणमभ्यर्थये। आगामिप्रतिपदि च स्वस्थः स्यां चेदवश्यमेव तद्विलिख्य वाचयिष्यामीत्यभ्यधात्। ततः केशवशास्त्री पूर्वप्रक्रान्तकथाविषय एव प्रकृतेः सर्ववस्तुविषयकवृत्तिवैशिष्ट्येन तस्या एव प्रकाशरूपताया अनुभूयमानतया कथं जडत्वं कथं वा तद्विलक्षणः पुरुषश्चैतन्याश्रयः सिध्येदिति सन्देहमुदघाटयत्। ततो राममिश्रशास्त्री— संघातपरार्थत्वादिना परस्य सिद्धौ परश्चेतन एव सिध्यति संहतत्त्वेनैव च तस्या जाड्यमपि सिद्धश्च चैतन्यवानेवेति तेनाहितचैतन्यो वस्तुजातं गृह्णाति। संहतं तु नानुमापयत्यनवस्थापातादित्युक्तमेवेति। लोकेऽपि भोज्यभोजकाभ्यामवश्यं भूयत इति भोजकत्वाद् बुद्धेस्तया भोज्योऽपेक्ष्यते, स एव च पुरुषः, स च प्रकाशरूपतया प्रतिबिम्बमाश्रयन् सुखादि- मानिव भवतीति। ततः केशवशास्त्री— चैतन्यसम्बन्धमन्तरा विषयग्रहणाभावेन परकीयं चेच्चैतन्यं तत्रारोप्येतालमारोपेण वास्तविकमेव च तस्याश्चैतन्यमङ्गीकृत्य कार्यं निर्वाह्यतामित्यवादीत्।

ततो राममिश्रशास्त्री— सा हि जडैव सिद्धा ततश्च जाड्यचैतन्ययोः सामानाधिकरण्यस्यासम्भवाच्चैतन्याश्रयः परः सिध्यतीति। ततः केशवशास्त्री वास्तविकं चेत् चैतन्यं तत्र नेष्यते तदारोपितं कथंकार्यं निर्वाहयेदारोपेण तद्वत्तया ज्ञानस्य सौलभ्येऽपि कार्यस्य दौर्लभ्यान्न हि आरोपेण कार्यमात्रं सम्पादयितुं शक्यत इति। ततो राममिश्रशास्त्री— न हि युक्तिमात्रेण स्वमर्थं साधयामस्तस्याप्रतिष्ठानदोषग्रस्तत्वादत एव तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात्सिद्धमित्युक्तमेवमत्राप्यागमसहकृतया युक्त्या तस्या जाड्यं पुरुषस्य च चैतन्यं साधयाम इति। एवं परस्परमधरोत्तरेणानिश्चीयमाने विषये तद्विषये निश्चयाय प्रमदादासमित्रेण न हि बुद्धिः कदापि चैतन्यव्यतिरेकेणोपलभ्यते, तत्कथं बुद्धौ चैतन्यारोपप्रवादः स उपपाद्यतामिति विज्ञप्ता बालशास्त्रिणोऽवोचन्। ज्ञानं हि विषयेण सम्बध्यमानमेव विषयान् प्रकाशयति न त्वन्यथा। सर्वत्रैव सर्वविषयकज्ञानोत्पादप्रसङ्गात्। अत एव नैयायिका वैज्ञानिकानां मतमपहाय बाह्यपदार्थसत्तामास्थिषत। तदनु तेषां मतमेव युक्तं मन्यमानैः सांख्यैरपि ह्यतीतानागतवस्तुविषये तेषामसत्तया तैः साकं सम्बन्धस्यासम्भवेन बौद्धपदार्था आस्थीयन्ते। अथ बाह्यपदार्थैरपि सम्बन्धस्य दुर्निरूपतया ज्ञानमात्रविषये बुद्धेस्तदाकारतापरिणाम एव ज्ञानसामग्र्या जन्यते, सैव वृत्तिर्नाम। ततश्च बुद्धः परिणामितया तस्याश्च जडत्वव्याप्यतयाऽजडेन प्रकाशात्मना पदार्थेनास्त्यवश्यमपेक्षेति पुरुषोऽपि सिध्यति। स च सवितेव नानाविधं वस्तुजातं प्रकाशयन्स्त्रयं च प्रकाशात्मा दर्पण इव स्वस्मिन् सकलानि ज्ञानानि

प्रतिबिम्बरूपेण दधानोऽपि तेन तेन रूपेणापरिणमन् अपरिणामितालक्षणं प्रकाशत्वं तत एव च नित्यत्वमाश्रयतीति ।

ततो गङ्गाधरशास्त्री पूर्वप्रक्रान्तं शाब्दबोधस्यानुमितिगतार्थत्वं समानविषयकानुमित्यन्तर-सामग्रीसमवधाने शाब्दसामग्र्याः प्रतिबन्धकतावादिभिः शाब्दोत्पत्त्युपपादनस्य शक्यत्वात् प्रकृते च समूहालम्बनात्मकानुमितिद्वयापत्तिदोषदूषितमवधार्येत्थं तन्निराकरोत् । शाब्दस्यानु-मित्यन्तर्गतत्ववादिभिरपि समानविषयकानुमितिं प्रति शब्दजन्यानुमितिसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्व-मुच्यतेऽतो नायं दोषः । किञ्च, चेष्टायाः पृथक् प्रामाण्यापत्तिः कथं परिहृतेति । ततो राममिश्र-शास्त्री— शाब्दयामीत्यनुव्यवसायोदयात् शाब्दत्वस्य जातित्वं सिध्यतीति तस्याः पृथगेव प्रामाण्यम् । चेष्टायास्तु तथाऽनुव्यवसायानुदयान्न पृथक् प्रामाण्यापत्तिरिति । ततो बालशा-स्त्रिणः — भो, यदयं शब्दजबोधस्यानुमित्यन्तर्गतत्ववादे प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावविषय आक्षेप-समाधानोपन्यासो नायमुचितो यतो नायं वादः केवलं वैशेषिकान्नैयायिकान् वा विषयीकुरुतेऽपि तु सर्वानिव प्राभाकरादींस्तान्त्रिकांस्ततश्च केचन युगपदनेकज्ञानोत्पत्तिमभ्युपगच्छन्तः प्रतिबध्यप्रतिब-न्धकभावमेव न स्वीकुर्वन्तीति कस्तद्विषये दोषः । एवमनुव्यवसायविसंवादस्य दूषणतयोपन्या-सोऽप्यनुचितः कैश्चिदनुव्यवसायस्यैवानभ्युपगमादपरेषां च विप्रतिपन्नत्वात् । यस्त्वत्राभिनवकवि-विरचितश्लोकस्य तादृशार्थविषयकबोधेन व्याप्तेरग्रहात्तस्माद्बोधो न स्यादिति दोषस्य समाधानं भवन्मतेऽपि तद्वृत्त्याकाङ्क्षाज्ञाने कारणताया अग्रहात् कथं बोधः स्यादित्युक्तं तेन चित्रीयते मे मानसं यतस्तच्छ्लोकश्रावणप्रत्यक्षरूपस्यैव तद्वृत्त्याकाङ्क्षाज्ञानस्य सत्त्वात् तद्वृत्तिकारणता-ग्रहस्य चानुपयोगाच्छाब्दबोधस्योपपत्तिरनुमित्यन्तर्गतत्ववादे व्याप्तिग्रहासम्भव इति । एवं योग्यतासंशयेनापि शाब्दबोधो भवत्यनुमितिस्तु नैवमिति वैषम्यम् । किञ्च वेदवाक्येभ्य ईश्वर-मङ्गीकर्त्तॄणां तदभिप्रायानुमितिसम्भवेऽपि तमनभ्युपगच्छतां किमभिप्रायानुमितिः स्यादिति निपुणं निरीक्ष्यताम् । तेषामीश्वरानभ्युपगमस्य भ्रमत्वेऽपि शाब्दबोधस्तु तेषां भवद्भिरप्युपपादनीयः । न च भवन्मतेऽपि तात्पर्यज्ञानस्य कारणत्वात्तत्र किंनिष्ठतात्पर्यज्ञानं स्यादिति शङ्क्यम् । तात्पर्यज्ञानस्य कारणतायाः सर्वैरनभ्युपगमादिति ।

ततः प्रमदादासमित्रमहाशयः — ये हि विज्ञानात्मकमेव वस्तुमात्रमुपयन्ति, तन्नये विषय-ज्ञानयोः सम्बन्धस्यासत्त्वाद्विज्ञानस्यैव तत्तदाकारत्वसिद्धान्तेन तत्र स्वतः सिद्धचैतन्यसत्त्वात्कथं बुद्धेर्जडत्वसिद्धिः सर्वमतेषु च बुद्धेर्जाड्यं साधनीयमिति । ततो बालशास्त्रिणः— वैज्ञानिकानां मतं हि नैयायिकैरेव दूषितम्, तन्नास्ति प्रकृते तद्दूषणस्य सार्थक्यमिति । ततः प्रमदादा-समित्रमहाशयो नात्र केषाञ्चिन्मतमिति किञ्चनोपन्यस्यते न च तत् कस्यचिन्मतानुसारेण दूषणमर्हति यतोऽस्याः सभाया उद्देशो न मतप्रतिपादनेऽपि तु वस्तुतत्त्वपरीक्षण इति मतेषु पक्षपातमुत्सृज्य यदेव युक्तमाभासेत, तच्छुश्रूषामहे इत्यवोचत् ।

अथ बालशास्त्रिणः — आदौ तावत्प्रत्यक्षातिरिक्तमनुपयत्सु चार्वाकेषु बौद्धस्तन्मत-निरासपुरःसरमनुमानप्रामाण्यमास्थिषत । तदनु सांख्यास्तदुक्तमार्गेणैव बुद्धेर्जडत्वमसाधयन्

प्रकाशरूपतां च पुरुषस्य। एवं मध्ये बहुभिस्सैद्धान्तिकैर्वेदप्रामाण्यमपि निर्भरेण निरूपयद्भिर्यद्यपि स्वस्वमतानुसारेण पदार्थोत्पत्त्यादिक्रमो बुद्धेरात्मनिष्ठत्वादिकमपि च न्यरूप्यत, तथापि न तेषां तदंशे प्रामाण्यं न वा तस्य वस्तुस्थितौ तेषां तात्पर्यम्, "यत्परः शब्दः स शब्दार्थः" इति न्यायात्। पूर्वपूर्वमतोपगतापसिद्धान्तनिरास एव तेषां तात्पर्यात्। अतश्च नैयायिकादिभिर्बुद्धेरात्मगुणत्वव्यवस्थापनेऽपि सुखदुःखादेरात्मसमवेतत्वव्यवस्थापनेऽपि च परमार्थतो विचारे शाङ्करमेव मतं सकलसिद्धान्तशिरोमणिभूतमित्येव परमोऽस्माकं विश्वासः। अथापि कथाकाले तत्तन्मतोपरि निक्षिप्यमाणा आक्षेपा विचारपुरःसरं युक्तिभिर्निरसनीया एव। न हि देह एवात्मेति वदन् विना नैयायिकाद्युक्तयुक्त्युपन्यासं प्रथममेव नित्यशुद्धबुद्धमुक्त आनन्दस्वरूप एवात्मेति कथमञ्जसा श्रद्दधीत। एवमेव च किल सकलशास्त्राणामविरोध उपपादनीय इति वदन्ति स्म। तदुत्तरं चोत्तरसभायां विश्वनाथशास्त्री पुरुषबहुत्वं निरस्यामीत्यवोचत्। ततः सन्ध्यावन्दनसमये जाते सर्वे सभां व्यसृजन्निति शम्।

■

बालसरस्वतीभवनसभाप्रस्तावः

धर्माधिकारिश्रीढुण्ढिराजशास्त्री
काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालासरस्वतीभवनाधिकारी

* * *

१. अहो[१] ! महदद्य कल्याणं दिनं यद् वयं सकलभारतभूमण्डनायमानायाः प्रबल-कलिकरालकरवालदरद्रुतायाश्चिरन्तनीं स्वीयाभिजनभुवं परित्यज्य द्वीपान्तरे शरणमन्वेषयन्त्याः स्वनिदानभूतसंस्कृतनिबन्धविलोपनेनोत्तरोत्तरं ह्रसीयस्या गीर्वाणभाषायाः परित्राणाय महतापि द्विषता दुर्जयं रचयितुमिव कैलासवासिनोऽतिलौकिकप्रज्ञश्रौतस्मार्ताचार्यपण्डितवरश्रीबाल-शास्त्रिणः स्मारककार्यहेतुना श्रीबालसरस्वतीभवनं व्यवस्थापयितुं प्रवृत्ताः।

२. तत्र प्रथमं तावदशेषधिषणाधीश्वरदिगन्तविख्यातकीर्तिज्योतिष्टोमयाजिसवित्र्या धरित्र्या इव क्षमाशीलायाः सततमुपकारपरायणाया **गुरुवरश्रीद्बालशास्त्रिणो** मातुर्धन्यवादान् प्रकाशीकरोमि, या किल सर्वेभ्यः प्रथममधिकतमं च साहाय्यमस्मिन् बालसरस्वतीभवने मुद्राणां त्रिशत्याः प्रतिश्रुत्या ततस्त्रिगुणितादप्यधिकं द्रव्यं व्ययीकृत्य पुस्तकस्थापनोचितं गृहं सभाद्युपवेशनाय सुविस्तीर्णां शालां च निर्मायात्मनो धर्मशालाकल्पोक्तफलावाप्तये श्रीपरमेश्वर-प्रीत्युद्देशेनोत्सिसृक्षुः प्रतिश्रुतार्थं क्रमशः पूरयितुं वर्धमानोत्साहतया चाकरोत्।

३. द्वितीयतश्च विविधविद्यापारदृश्वनः **श्रीयुतडाक्तरजालीसाहिबाभिधधर्मशास्त्रमहाध्या-पकान्** परमादरपुरःसरमभिनन्दामि, यैरस्मिन्महति कार्ये परमोदारसाहायकमवलम्बितम्। विशेषतश्च वाराणसेयसंस्कृतपाठशालाध्यक्षप्रभुवर**डाक्तरथिबोसाहिब**महाशयानां धन्यवादान् गायामि, यैः किल कैलासवासिपण्डितचक्रवर्तिबालशास्त्रिणां महनीयकीर्तेः स्मरणस्य द्वीपान्तरेऽपि जिगमिषोर्द्वारमनर्गलीकृतम्।

४. तृतीयतश्च श्रीमन्महाराजाधिराजेत्यादिविविधविरुदावलीविराजमानमानोन्नतान् श्री५मिथिलाधीश्वरान् स्वसमानगुणशालिचिरायुष्मत्पुत्रपौत्रमहैश्वर्यैः सततमुत्तरोत्तरमुपचीयमानैः सममेधन्तामित्यादिभिर्विविधाभिराशीराजिभिरभिनन्दामि। ये हि बालसरस्वतीभवनव्यवस्था-पनवार्ताश्रवणमात्रेणापरान् महाराजान् यथाशक्ति यथोत्साहं निजामात्यपुरोहितादिप्रेरणानपेक्षं वितरणमादिशन्त इव सर्वेभ्यो महाराजेभ्यः प्रथमं मुद्राणां त्रिशतीं श्रीबालसरस्वतीभवन-व्यवस्थापनसम्पत्तये महतोत्साहेन प्राहिण्वन्। उत्तरोत्तरभाविनीमेतस्य बालसरस्वतीभवन-स्योन्नतिं श्रुत्वा निरन्तरं प्रातिवर्षिकव्ययार्थमपि किमपि यथोत्साहं वार्षिकं देयं प्रतिश्रोष्यन्तीत्यपि वाराणस्यां पाठशालास्थापनादिभिर्विविधैरुपायैर्विलुप्तप्रायशास्त्राणां पुन-रुज्जीवनाय बद्धपरिकरतया बाढं विश्वसिमि। इच्छामि चैवंविधमहाराजस्य सुकीर्तेरनुवादकं कविनामोल्लसितप्रबन्धं महासभायां विस्तरेण प्रकाशयितुम्।

---

१. पं. ५ न्यू सि. (१८८३) ३०२-३०४.

५. एतस्य स्मारककृत्यस्य मुख्य उद्देश उक्तशास्त्रिवरेष्वनुरागिणामत्र भवने दुर्लभपुस्तकानां च संख्या यथा यथा महीयसी सम्पत्स्यते, तथा तथा परमामुन्नतिमापत्स्यत इति मनसिकृत्य प्रेमपूर्वकं कथमपि स्वस्वसम्बन्धोऽनेन पुस्तकालयेन सहावश्यं विधेय इति मुहुर्विनयेन विज्ञापयामि।

६. प्रतिशृणोमि च मदीयवंशपरम्परासादितानि सुदुर्लभधर्मशास्त्रनिबन्धप्रभृतिविविध-विचित्रविषयकाणि लघूनि बृहन्ति च सम्पूर्णानि असम्पूर्णानि च मिलितानि पञ्चशत्या अन्यूनानि पुस्तकानि श्रीमद्बालसरस्वतीभवनाय वितरीतुमधोनिर्दिष्टोपधिभिः। यदि तेषा-मुपधीनामेकस्याप्यातिक्रमं बालसरस्वतीभवनसभा कुर्यात्, तर्हि मद्रिक्थाधिकारपरम्परागतः पुरुषो दत्तानि पुस्तकानि परावर्तयितुं शक्नुयात्।

१. मद्रिक्थाधिकारिपरम्परागतानामेकतमोऽवश्यं बालसरस्वतीभवनकार्यसभासभ्यो भवेत्।

२. मद्रिक्थाधिकारिपरम्परागताः सर्वे पुरुषा यस्मिन् यस्मिन् शास्त्रे अभ्यासपरा भविष्यन्ति, तस्य तस्य शास्त्रस्य यद्यत्र भवने अनेकानि पुस्तकानि स्युस्तर्ह्येकैकं पुस्तकं सर्वेषां पठनीयग्रन्थानामाश्विनसुदिद्वादशीमारभ्याश्विनवदिद्वादशीपर्यन्तमभ्यासार्थं स्वगृहे संस्थाप्य सरस्वतीपूजनाय प्रत्यर्प्य पुनर्ग्रहीतुं शक्नुयात्। एवं शास्त्राभ्यासविरक्तिपर्यन्तं कर्तुमर्हेयुः।

३. श्रीविश्वनाथेश्वरपार्श्ववर्तिस्थानादन्यत्र यदि बालसरस्वतीभवनं न भवेत्।

४. सभ्यानां पुस्तकालयाध्यक्षस्य वा प्रमादादिना पुस्तकानां संरक्षणस्याव्यवस्था न भवेत्।

५. अपूर्णपुस्तकानां परिपूरणाय यदि सभा यावच्छक्यं प्रयतेत।

६. सदृढमाशासे च मन्मित्राणि बहवोऽन्ये चेहामुत्र सुखप्रदोपायं पुस्तकवितरणं महता समुत्साहेन कुर्वन्तो मामनुकरिष्यन्तीति।

७. बालसरस्वतीभवनव्यवस्थापनस्य बहूनि साधुफलानि मनसिकृत्य राजकीयपुस्तक-संग्रहप्रबन्धोऽपि साधु साहय्यमस्मिन् दास्यतीति बाढं सम्भावयामि।

८. अभ्यर्थये च परेशमेतत्सभासभ्यान् श्रीयुतबाबूसाहिबप्रमदादासमित्रमहाशयश्रीयुत-पण्डितवरबापूदेवशास्त्रिमुखान् भूरिधिनेन मनसा कर्मणा वाचा च सर्वभावेनैतत्कार्यस्योन्नतौ प्रयतमानान् उत्तरोत्तरं महोत्साहशालिनश्चिरायुषश्च कुर्यादिति शम्। चै. शु. पञ्चम्याम्।

सं. १९४० ॥

अथ कातीयं शुल्बपरिशिष्टम्

[प्रथमा कण्डिका]

[[1]The above-named short tract is here published as a supplement to Baudhāyana's Śulba-sūtra printed in the old series of the Pandit. Compared with the latter it presents various features of independent interest as it exhibits the whole body of geometrical knowledge required by the *yājñīkas* in a more systematic form and moreover contains some rules for which no counterpart is to be found in Baudhāyana].

विष्णुं यज्ञभुजं नत्वा रामो नैमिषमाश्रितः।
सम्राजोऽग्निचितः सूनुः सूर्यदासस्य धीमतः ॥१॥

स्वयंकृतस्य सिद्धान्तं वार्त्तिकस्य समाश्रयन्।
करोति शुल्बसुत्राणां वृत्तिं बालावबुद्धये ॥२॥

रज्जुसमासं वक्ष्यामः ॥१॥

1. We will explain the employment of th cords (by means of which the sacrificial areas are measured out).

कर्मणां फलवत्त्वं च तत्र चाधिकारी तत्स्वरूपं च भगवता कात्यायनेन वाजसनेयिक-पञ्चदशशाखा विलोक्य कल्पसूत्रं निबध्नता प्रतिपादितम्। कर्म्मणः काल इव देशोऽपि तत्र तत्राङ्गत्वेन सूचितः। स वैशद्येन वक्तव्यस्तदर्थमिदं शुल्बपरिशिष्टं भगवतैवोपनिबद्धम्। तच्च कर्काचार्येण यद्यपि व्याख्यातमस्माभिश्चोपपत्तिप्रदर्शनेन वार्त्तिकैः प्रपञ्चितम्, तथापि सूत्रमात्रार्थो यथा सर्व्वेषां हृदि निविशेत एतदर्थं वृत्तिरियमारभ्यते। शुल्बनं शुल्बः शुल्ब-मानेऽस्माद्धातोर्घञन्तः मानकरणमित्यर्थः, इति ग्रन्थनामनिरुक्तिः। शुल्ब्यतेऽनेनेति वा अकर्तरि च कारके संज्ञायामिति घञ्। तत्र प्रतिज्ञासूत्रमेतद्रज्जुसमासं वक्ष्याम इति क्षेत्रपरिच्छेदिकाया रज्जोर्यः समासः सम्यगस्यत इति समासः श्रेत्रपरिच्छेदानुगुणतया धारणं तं वक्ष्यामः। यद्वक्ष्यति शङ्कोः पाशौ प्रतिमुच्य निरञ्छनेन गृहीत्वा दक्षिणपूर्व्वां दिशꣳहरन्तीत्यादिना। प्रतिज्ञा चैषा शिष्यबुद्ध्यनुकूलनाय कृता। यथा तदर्थिनोऽत्र प्रवर्त्तेरन्। अत्राधिकारिविशेषश्च ग्रन्थान्ते, भवन्ति चात्र श्लोका इत्युक्त्वा भगवतैव श्लोकान् प्रणयतोक्तः —

संख्याज्ञः परिमाणज्ञः समसूत्रनिरञ्छकः।
समभूमौ भवेद्विद्वाञ्छुल्बवित्परिपृच्छकः ॥ इति।

1. Pan. 4 (New Series) 1882, 94-103; 328-339; 382-389;487-491.

संख्या संख्याप्रतिपादकं गणितशास्त्रम्। परिमाणं मानविधिः। समेन सूत्रेण निरञ्छकः आकर्षकर्त्ता। परिपृच्छकः शिल्पादीनाम्। यदुक्तम्—

शास्त्रबुद्धिविभागज्ञः परशास्त्रकुतूहलः।
शिल्पिभ्यः स्थपतिभ्यश्चाप्याददीत मतीः सदा ॥इति।

तथा—

तिर्यङ्मान्यश्च सर्वार्थैः पार्श्वमान्यश्च योगवित्।
करणीनां विभागज्ञो नित्योद्युक्तश्च कर्म्मसु।

सर्वार्थैः सर्वप्रयोजने तिर्यङ्मान्या योजनं यो वेत्ति तथा पार्श्वमान्याः करणीनां करणीतत्करणाक्षणयानां कर्मसु नित्योद्युक्तोऽनलसस्तिर्यङ्मान्यादयः पञ्चरज्जवो वक्ष्यन्ते।

समे शङ्कुं निखाय शङ्कुसम्मितया रज्ज्वा मण्डलं परिलिख्य यत्र रेखयोः शङ्क्वग्रच्छाया निपतति तत्र शङ्कू निहन्ति सा प्राची ॥२॥

2. Having, on a level spot, planted a pole and having described (round it) a circle by means of a cord fastened to the pole (or else "measured by the pole") one fixes a pole on each of the two points where the end of the ploe's shadow touches the two halves of the circle; this (the line connecting these two points) is the east-line.

प्राग्वंशादौ प्राचीष्यते सा त्वर्क्कोदयोपलक्षिता अर्कोदयस्थलानि तु त्र्यशीतिशतम्। तन्मध्यमं प्राची। तच्च प्रत्यहं ज्ञातुमशक्यमिति तज्ज्ञानायेदं सूत्रम्। समत्वं भुवो जलस्याप्रस्रवतः समतया स्थित्या ज्ञेयम्। यदुक्तम्—

न जलात्सममन्यत्तु नान्यद्वृत्तात्प्रमा भवेत्।
नान्यद्दूरं भ्रमादूर्ध्वं नान्यत्सूत्रादृजू भवेत्।

यथा जलं समतयैव तिष्ठत्येवमन्यत्र। यथा वृत्तं सूत्रेण भ्रामितं प्रमितमेवमन्यत्र। यथा च भ्रान्तिगोचरीकृतमासन्नमपि दूरमेवमन्यच्छतयोजनस्थमप्यभ्रान्तानां न दूरम्। यथा च सूत्रमन्तद्वयाकर्षणात्प्राप्तमानमृजु स्यादेवमन्यद्रेखादिकं न। तत्र भूसमत्वकरणप्रकारोऽन्योऽपि वार्त्तिकोक्तः—

कीलेनैकीकृते मूले पृथक् सूक्ष्मसमाग्रयोः।
दण्डयोरग्रनैकट्ये तिर्यगन्योऽन्तराङ्कितः॥
कीलादिना योजनीयो दण्डः समतया द्वयोः।
मूलप्रोतं लम्बसूत्रं भुवं भार्य स्पृशेद्यतः॥

भूस्थेऽश्रयुग्मे मध्याङ्कात्तिर्यग्दण्डगतात्स्खलेत्।
तत्स्थलं पूरयेदन्यन्निम्नयेद्वा यथाविधि॥
अङ्के यावत्सूत्रमेति भूरित्थं वा समा भवेत् ॥इति।

शङ्कुलक्षणं चोक्तम्—

षडङ्गुलपरीणाहं द्वादशाङ्गुलमुच्छ्रितम्।
जठरं चाव्रणं चैव शङ्कुं कुर्याद्विशेषतः॥

षडङ्गुलद्वादशाङ्गुलयोर्विकल्पोऽल्पबहुक्षेत्रसाधनव्यवस्थितः परिणाहः अधःशिरोविस्तारो वा। तथा—

एकतक्ष ऋजुस्तीक्ष्णः खादिरः सममायतः।
शङ्कुः कार्यस्तु शुल्बज्ञैस्तस्यार्द्धं गमयेन्महीम्॥
प्रादेशमात्रो हविर्यज्ञे पूर्व्वलक्षणलक्षितः।
शङ्कुरामशिराः कार्यस्तस्याप्यर्द्धं निखानयेत्॥

एकतक्ष एकत एव सूक्ष्मीकरणार्थं तक्षणेन तनूकृतः। खादिर इति सारकाष्ठोपलक्षणार्थम्। अर्द्धं भुवि निखनेदित्यर्द्धमिति दृढस्थितियोग्यतोपलक्षणम्। हविर्यज्ञे पौर्णमासादिहविर्यज्ञसाधनीभूतवेद्यादौ साध्ये आमशिरा अशुष्कशिराः शुष्कशिरसो हि मुद्गरेण हनने भङ्गप्रसङ्गः। एतेन यत्र यथोपयुक्तस्तत्र तथा शङ्कुः कार्यः। न तु मानविशेषोपदेशेन दृष्टमदृष्टं वा कञ्चन विशेषं पश्यामः। अत्र तु सूक्ष्माग्रेण शङ्कुना भाव्यम्। यथा छायाग्रं सूक्ष्मं वृत्ते प्रविशन्निर्गच्छच्च साधु दिगग्रं परिच्छिन्द्यात्। मुद्गरोऽप्युक्तः—

द्विवितस्तिप्रमाणस्तु खादिरो मुद्‌गरस्तथा।
शङ्कुस्तेन निखेयः स्यात्तस्मात्तस्य परिग्रहः।

पक्षान्तरञ्च—

चतुरस्रं मुद्गरं कृत्वा षोडशाङ्गुलमायतम्।
अविद्धं क्रमणीयं च दारुमध्याच्च निर्म्मितम्।

अविद्धं मुष्टिग्राह्यकाष्ठान्तरेणाप्रोतम्। क्रमणीयं शङ्कुहननरूपक्रमणार्हम्। शङ्कोः साम्येनावस्थितेः प्रकारस्त्वस्मदुक्तः—

स्थास्यच्छङ्कोर्व्विपादेन मानेन विततेर्द्दलम्।
रचयञ्छङ्कोः समन्ताद् वृत्तमारचयेत्सुधीः॥

तन्मध्ये निहिते शङ्कौ साङ्घ्रिशङ्कुमितैर्गुणैः।
शलाकाभिर्व्वापि वृत्तदिग्गताभिः स्पृशेदथ॥
तदन्तैरत्र शङ्क्वग्रं तुल्यं स्याच्छङ्कुरित्यृजुः ॥ इति।

छायाप्रवेशनिर्ग्गमचिह्नार्थं तु वृत्तान्तरं वक्ष्यते। रज्जुश्चोक्ता—

अजीर्णा ग्रन्थिनी सूक्ष्मा समा श्लक्ष्णा त्वरोमशा।
रज्जुर्मानाधिकाकार्या अध्वरे योगमिच्छता॥
शाणी वा बाल्वजी चैव वैणवी वा विधीयते।
रज्जुरुभयतः पाशा त्रिवृता यज्ञकर्म्मणि॥
रज्जुर्मुञ्जमयी कार्या शणैस्तु परिमिश्रिता।
कात्यायनो वदत्येवमखण्डा कुशबल्वजैः॥ इति।

या कृष्यमाणा न हीना नाधिका भवति, तादृशी दृढा रज्जुः कार्येति तात्पर्यम्। त्रिवृतेत्यादि तु मौञ्जं त्रिवृद्रज्जव्यमित्यादिना घर्मोपकरणरज्जुपरतया यदुक्तं तदनुवादरूपं बोध्यम्। एवं समे स्थले उक्तलक्षणं शङ्कुमुदीरितयुक्त्या सुसमं निखाय तस्मिञ्छङ्कौ सम्मितया सम्यक्प्रक्षिप्तया डुमिञ् प्रक्षेपण इत्युक्तेः। उक्तरूपया रज्ज्वा मण्डलमग्रभ्रमणेन पूर्व्वाह्णे शङ्कुच्छायातः किञ्चिन्न्यूनं तत्प्रवेशार्हं परिलिख्य तत्र भ्रममण्डले शङ्कुच्छाया यत्र विशति, यतश्चापराह्णे निःसरति, तत्र स्थलद्वये मण्डलरेखायां चिह्ने कुर्याच्छङ्कू वा निखनेत्। तद्द्वयोपरि नीतं सूत्रं प्राची रेखा। शङ्कुसम्मितया शङ्कुतुल्ययेति न युक्ता व्याख्या। क्वचिद्देशे पौषमाघयोर्म्मध्याह्नेऽपि शङ्कुतोऽधिकैव तच्छायेति तदा तत्र वृत्तमध्ये छायाप्रवेशाभावापातादव्यापकत्वात्। अत्रातिसूक्ष्मता तु दिनान्तरेऽपि तत्रैव वृत्ते तस्यैव शङ्कोश्छायाप्रवेशनिर्गमौ साधयित्वा पूर्व्वदिनापरदिनच्छायानिर्गमान्तरालघट्यो भाजिकाः षष्टितः किञ्चिन्न्यूना अधिका वा पूर्वापरदिनयोर्म्मण्डले छायापगमान्तरमङ्गुलयवादिमितं पूर्व्वदिनस्यं छायाप्रवेशनिर्गत्यन्तरघटीभिर्गुणितं भाजिकाभिर्घटीभिर्हरेत्। लब्धमानेनाङ्गुलादिना यद्युदगयनं तदोत्तरतोऽथ दक्षिणं तदा दक्षिणतः पूर्व्वदिनापगमाच्चिह्नं कुर्यात्। छायाप्रवेशचिह्नं त्वविकृतमेव पूर्वदिनस्य। तयोरुपरि नीतं सूत्रं प्राची स्पष्टतरा। यदुक्तं मयैव वार्त्तिके—

द्युतिप्रवेशापगमान्तरालघटीहतं श्वोऽपगमान्तरालम्।
छायापगत्यन्तरनाडिकाप्तांशेनायनाशाचलितेन्द्रकाष्ठा ॥ इति।

प्रकारान्तरं चोक्तम्—

कृत्तिकाः श्रवणः पुष्यश्चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।
एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्रोदिते पुरः ॥ इति।

षडशीत्यङ्गुलमितं युगमात्रं यदोदितं कृत्तिकादिनक्षत्रमाकाशमारोहति, तदा तदुपलक्षिता प्राची ज्ञेया। यत्प्रोक्तं सूक्ष्मं प्राच्यानयनं न वेद, तं प्रत्येतत्। ध्रुववेधादिना दिग्ज्ञानप्रकारान्तराणि वार्त्तिकेऽस्माभिर्दर्शितानि। वेद्यादेर्दिगायत्तत्वादिक्कलाधनमादावुक्तम्।

तदन्तरं रज्ज्वाभ्यस्य पाशौ कृत्वा शङ्क्वोः पाशौ प्रतिमुच्य ।
दक्षिणायम्य मध्यमे शङ्कुं निहन्त्येवमुत्तरतः सोदीची ॥३॥

3. Having by a cord doubled their interval (i.e. having taken a cord whose length is double the interval of the two poles) and having made slings at its two ends and fastened them to the two poles one stretches the cord towards the south and plants a pole at is middle, the same is done on the north-side, this is the north line.

यौ प्राच्यन्तयोः शङ्कू पूर्व्वमुक्तौ तयोरन्तरं रज्ज्वा मित्वा तां रज्जुमभ्यस्य द्विगुणीकृत्य रज्ज्वन्तयोः पाशौ कृत्वा प्राच्यन्तशङ्क्वोः पाशौ प्रतिमुच्य निधाय रज्जुमध्यं दक्षिणत आकृष्य तेन मध्यमेन स्पृष्टे भूभागे शङ्कुं निखाय तथैवोत्तरतो रज्जुमध्यमाकृष्य तत्रापि तथैव शङ्क्वन्तरं निहन्ति ताभ्यां शङ्कुभ्यां परिच्छिन्नोदीची दिक्।

रज्ज्वन्तयोः पाशौ करोति ॥४॥

4. (In all cases) a sling is to be made at each end of the cord.

परिभाषेयं क्षेत्रमानार्थमुपादीयमानाया रज्जोः स्वरूपनियमार्था या रज्जुश्चतुरस्रादिक्षेत्रमानार्थमभ्यस्तादिस्वरूपोपदिश्यते, तस्या अन्तयोः पाशौ कुर्यात्तौ शङ्क्वोः प्रतिमोक्तव्यौ। वक्ष्यति— गार्हपत्याहवनीययोरन्तरं षड्धा सप्तधा वागन्तुसमं त्रेधा विभज्यापरवितृतीयलक्षणेन दक्षिणायम्य तस्मिन्नग्निरिति। तत्रेदमुपतिष्ठते रज्ज्वन्तयोः पाशौ करोतीति। एवमन्यत्रापि। ननु पूर्व्वसूत्रे पाशौ कृत्वेत्युक्तमेव पुनः किमर्थमुच्यते, रज्ज्वन्तयोः पाशौ करोतीति। उच्यते— पूर्वसूत्रोक्तं पाशकरणं न सर्व्वार्थम्। उदीचीसाधनत्वेनैव पूर्वमुक्तत्वात्। इदं तु सर्व्वार्थम्। एवं तर्हीदमेवास्तु पूर्व्वं मा भूत्, सत्यम्, इदं क्षेत्रपरिच्छेदिकास्वेव रज्जुषूपतिष्ठते। न च पूर्व्वत्र क्षेत्रपरिच्छेदः क्रियते; किन्तूदीचीज्ञापनमात्रमतः पुनरुक्तिर्न दोषाय। अथवा पुनरुक्त्या रज्ज्वन्तपाशकरणस्यानित्यत्वं ज्ञाप्यते। ततश्च. तिर्यङ्मान्यादिषु मानमात्रार्थासु सर्व्वरज्जुषु न प्राप्तमन्तयोः[१] पाशकल्पनम्।

श्रोण्यंसनिरञ्छनसंख्यासमासभङ्गेषु लक्षणानि ॥५॥

5. Marks (are to be made on the cord) at (the spots which are meant to fix the places of) the two *śroṇī* and the two *amsa*,

१. प्रान्तयोरिति पाठान्तरम्।

at the *nirañchana* (about which see *Sūtra* 12) and at the break (in the cord) which marks the combination of figures (i.e. the place where the two cords or parts of a cord, viz. the original one and the one added for the purpose of doubling the length join. Cp. *Sūtra* 12).

करोतीत्यनुवर्त्तते। श्रोणिमाने अंसमाने निरञ्छने आकर्षणमाने संख्यासमासभङ्गे च लक्षणानि करोतीत्युपदिश्यते। तत्तत्स्थानप्रक्लृप्त्यर्थम्। क्षेत्रायामप्रमिता दण्डरज्जुरेका। तावती द्वितीयाभ्यासरज्जुः। तयोर्या द्विसंख्या, तस्याः समासायैकीकरणाय यत्र दण्डरज्ज्वग्रे द्वैगुण्याय भङ्गो मोटनं क्रियते तावतीमभ्यासरज्जुं मातुं स संख्यासमासभङ्गः, तत्र यच्चिह्नं तत् क्षेत्रायामज्ञानार्थमेव तत्कृतपरिच्छेदान्तरस्यादृष्टत्वात्। श्रोण्यादिपदानि च तत्तत्परिच्छेदकरज्जुपराण्येव, ततश्च रज्जुगतान्येव लक्षणानि कार्याणि। निरञ्छनत्वरूपं वक्ष्यति। प्रमाणमभ्यस्याभ्यासचतुर्थे लक्षणं करोति तन्निरञ्छनमिति।

प्राच्यन्तयोः शङ्कू निहन्ति ॥६॥

6. He is to plant poles at both ends of the east-line.

इष्टक्षेत्रे यावती प्राचीष्यते। यथा महावेद्यां षट्त्रिंशत्प्रक्रमा। तावत्याः पूर्व्वापरान्तयोः शङ्कू निखेयौ। मानार्थौ चैतावुपदिष्टावाचार्येण। ननु समे शङ्कु निखायेत्यादिसूत्रे तत्र शङ्कू निहन्ति सा प्राचीत्युक्तमेव शङ्कुद्वयनिखननं किमिदं पुनरुच्यते, मैवम्, तद्धि दिङ्मात्रज्ञानार्थमुक्तं न त्विष्टक्षेत्रप्राचीपरिच्छेदकमित्यपुनरुक्तिः।

श्रोण्योरंसयोश्च ॥७॥

7. And likewise on the two west-corners and the two east-corners.

शङ्कू निहन्तीत्यनुवर्त्तते। क्षेत्रपरिच्छेदिकां वक्ष्यमाणरीत्या रज्जुं वितत्य दक्षिणोत्तरयोः श्रोण्योरंसयोश्च रज्जुगतं यत्र लक्षणं निपतति तत्र चतुरः शङ्कून्निहन्ति। मानोत्तरकालं क्षेत्रपरिच्छेदायेत्युपदेशः।

शङ्क्वोः पाशौ प्रतिमुच्य निरञ्छनेन गृहीत्वा दक्षिणपूर्व्वां दिशंहरन्ति ॥८॥

8. Having fastened the slings at the two poles (planted on the ends of the east-line) they seize the cord by the *nirañchana* mark and stretch it towards the south-east.

क्षेत्रपरिच्छेदाय रज्जुप्रसारणप्रकारोऽयम्। अंसनिरञ्छनचिह्ने पूर्व्वतः श्रोणिचिह्ने तु रज्जुगते पश्चिमतः कुर्व्वन् प्राच्यन्तगतशङ्क्वोः पाशौ प्रक्षिप्यांससन्निकृष्टनिरञ्छनस्थाने रज्जु-

मादाय दक्षिणपूर्व्वामाग्नेयीं दिशं प्रत्याकर्षेत्तत्र चांसलक्षणे पूर्व्वमुपदिष्टः शङ्कुर्देयः। दक्षिणपूर्वामिति दिङ्नामान्यन्तराल इति समासः।

एवमुत्तरतः ॥९॥

9. The same is done on the northern side.

शङ्क्वोः पाशौ प्रतिमुच्य निरञ्छनेन गृहीत्वेत्यादिविधिः पूर्व्वोक्त एवमित्यनेनातिदिश्यते। दक्षिणपूर्वामित्यत्र तूत्तरपूर्व्वां दिशं हरन्तीति विशेषः। उत्तरांसे च शङ्कुः। हरन्तीति बहुवचनोपदेशोऽत्र पृथुनि क्षेत्रे एकेन रज्जुप्रसारणं कर्त्तुमशक्यम्। क्रियमाणं वा न क्षेत्रमतसाम्येन परिच्छिनत्तीति बहुभिरपि सहायैः सूत्रप्रसारणं कार्यमिति सूचयितुम्। एवमन्यत्रापि। अंसौ नाम चतुरस्रक्षेत्रे आग्नेयेशानदिग्गतौ कोणौ। श्रोणी तु नैर्ऋतवायव्यदिग्गतौ कोणौ।

विपर्यस्येतरतः ॥१०॥

10. After having exchanged (the slings of the cord) the same is to be done on the other i.e. the western side (so as to fix the western corners of the square or oblong).

इतर इति पश्चिमभाग उच्यते। विपर्यस्येति च रज्जुपाशौ व्यत्यस्य पूर्व्वपाशं प्रत्यक्छङ्कौ प्रत्यक्पाशं तु प्राचि शङ्कौ न्यस्येत्यर्थः। एवंकृते हि निरञ्छनं प्रत्यक्छ्रोणिचिह्नसमीपवर्त्ति स्यात्। तत्र समचतुरस्रे यदंसचिह्नं तदेव श्रोणिचिह्नं दीर्घचतुरस्रे तु तयोर्भेद इत्येव विशेषः। यदि तु श्रोणिचिह्नं तत्सन्निहितनिरञ्छनचिह्नं च अंसचिह्नत्तत्सन्निहितनिरञ्छनचिह्नाच्चानुपदिष्टमपि रज्जुप्रान्तविभागे पृथक् क्रियते। तदा पाशविपर्यासं विनापि क्षेत्रपरिच्छेदः स्यात्। अत्र दक्षिणपश्चिमा दिशं हृत्वा दक्षिणा श्रोणिः पश्चिमोत्तरां च दिशं हृत्वोत्तरा श्रोणिः सम्पाद्येति भेदः। श्रोणिचिह्नयोः शङ्कू उक्तावेव।

स समाधिः सर्व्वत्र ॥११॥

11. This method of construction is to be used in all cases (for all squares and oblongs).

समाधिः सम्यगाधानकरणं मानप्रकारः स सर्व्वत्र समदीर्घचतुरस्रेषु क्षेत्रेषु रज्ज्वन्तयोः पाशौ करोतीत्यादिसूत्रैरुपदिष्टो ज्ञेयः।

प्रमाणमभ्यास्यभ्यासचतुर्थे लक्षणं करोति तन्निरञ्छनम् ॥१२॥

12. Having doubled the measure (i.e. the cord whose length is equal to that of the desired square of oblong) one makes a mark at the fourth part of the increase; this is the so-called *nirañchana*-mark.

निरञ्छनस्य पूर्वं विनियोग उक्त आकर्षणे न तु स्वरुपं तदिदमुच्यते। इष्टक्षेत्रायामः प्रमाणं तावन्मितां रज्जुमभ्यस्य द्विगुणीकृत्य। अभ्यासो हि द्वैगुण्ये प्रसिद्धः। पूर्वोऽभ्यास इति पाणिन्युक्तेः। तत्राभ्यस्तरज्जोः संख्यासमासभङ्गान्नेदीयसि चतुर्थेऽशे निरञ्छनचिह्नं करोति। यथा निरञ्छनाद् दण्डरज्ज्वाभ्यासरज्जावेकीकृतान्मानमेकतस्त्रयोंऽशाः अपरतश्च पञ्चांशा भवेयुः। न त्वभ्यासरज्ज्वन्तान्नेदियसि तुर्येऽशे निरञ्छनोपदेशः। निरञ्छनमित्याकर्षस्य संज्ञा व्यवहारार्था। अन्वर्था च सा, निरञ्छ्यत आकृष्यतेऽनेनेति।

अक्ष्णया तिर्यङ्मानीशेषः ।।१३ ।।

13. The diagonal cord is the remainder of the transverse cord. (After the cord has been stretched towards one side by means of the *nirañchana* it divides itself into two parts, forming the shorter side and the hypotenuse of a rectangular triangle)

पाशद्वयवती साभ्यासरज्जुरष्टभागा तस्यां निरञ्छनपर्यन्तं त्रयो भागास्तिर्यङ्मानी। तया हि तिर्यक् प्रमाणं मीयते श्रोण्यंसपरिच्छेदाय। तच्छेषस्तु पञ्चभागा रज्जुरक्ष्णया भवति कर्णरूपेण स्थिता भवति। पार्श्वमानी त्वत्र पूर्वापरशङ्क्वन्तरमेव चतुर्भागात्मकम्। एवं त्र्यश्रिक्षेत्रमेतत्तिर्यङ्मानीपार्श्वमान्यक्ष्णयाभिरुक्तम्। तत्रायं नियमः— यत्र तिर्यङ्मानी त्रयो भागाः। पार्श्वमानी च चत्वारस्तत्राक्ष्णया पञ्चैव भागाः। यतस्तिर्यङ्मानीवर्गपार्श्वमानीवर्गैक्यमूलमेवाक्ष्णया मानम्। तत्र तिर्यङ्मान्यास्त्रिरूपाया वर्गो नव पार्श्वमान्याश्चतूरूपाया वर्गः षोडश तदैक्यं पञ्चविंशतिस्तन्मूलं पञ्चेति। त्रिचतुष्पञ्चांशरूपाभिस्तिर्यङ्मानीपार्श्वमान्यक्ष्णयाभिस्त्र्यश्रिक्षेत्रं सर्वत्र बोद्धव्यम्। तिर्यङ्मान्यक्ष्णयाभ्यां रज्जुप्रसारणमिति पार्श्वमानी द्विगुणैव रज्जुः स्यात्। अथवा अत्रेयं शङ्का — आयामयुक्तविस्तारार्द्धमितयैव रज्ज्वा षड्भागरूपया क्षेत्रं परिच्छिद्येत किमधिकभागद्वयवर्धनेन? तत्रोत्तरम्— शेषभागद्वयं यदधिकं रज्जोरायामतो विस्तारार्द्धाच्च तदर्द्धार्द्धभागेनैकैकमंशमक्ष्णयायां तिर्यङ्मान्यां च योज्य क्षेत्रं परिच्छेत्तुमलं नान्यथा। तेनांशत्रयं तिर्यङ्मान्यंशपञ्चकञ्चाक्ष्णया भवतीति व्याख्यान्तरम्। अथवा त्र्यश्रिक्षेत्रप्रदर्शनमेवैतत्। निरञ्छनादुपरि पञ्चभागात्मिका रज्जुरक्ष्णया। निरञ्छनादधश्च त्र्यंशात्मिका रज्जुस्तिर्यङ्मानी रज्जुप्रसारणहीनस्य क्षेत्रायामस्य पार्श्वमानीरूपस्य शेषव्यपदेशः स चेत्येव त्र्यश्रिक्षेत्रं ज्ञेयमिति प्रदर्शनमन्यत्रापि ईदृङ्मानक्षेत्रग्रहणाय।

प्रमाणार्द्धं वाभ्यस्याभ्यासषष्ठे लक्षणं करोति तन्निरञ्छनम् ।।१४ ।।

14. Or else one adds half the measure and makes a mark at the sixth part of the increase; this is the *nirañchana*.

दीर्घचतुरस्रे महावेदिशालासद आदौ प्रकारान्तरमेतत्। प्रमाणमायाममानम्। षट्त्रिंशत्प्रक्रमा महावेद्याम्। विंशत्यरत्नयः शालायाम्। अष्टादश सदसि। तदर्द्धं क्रमशोऽष्टादश

प्रक्रमा दशारत्नयश्च नवारत्नयश्चाभ्यस्यन्ते वर्द्धन्ते तत्र संख्यासमासभङ्गादुपर्यभ्यस्तरज्जौ षोढा विभक्तायां संख्यासमासभङ्गसन्निहिते षष्ठेंऽशे लक्षणं करोति, तन्निरञ्छनम्। तन्महावेद्यामूनचत्वारिंशदंशेषु भवति। शेषे पञ्चदशांशाः। निरञ्छनं च श्रोणिमानश्चैकमेव। त्रिंशत्प्रक्रमश्रोणिपक्षे चैतत्। न त्रयस्त्रिंशत्प्रक्रमश्रोणिपक्षे। अंसचिह्नं तु तदुपरि त्रिषु प्रक्रमेषु द्वादशशेषणात्। अत्र हि तिर्यङ्मानी भागत्रयं त्रयमेकभागीकृत्य पञ्चभागरूपा तद्वर्गः पञ्चविंशतिः पार्श्वमानी च तथैव द्वादशभागात्मिका तद्वर्गः सचतुश्चत्वारिंशच्छतं तदैक्यमेकोनसप्तत्यधिकशतं तन्मूलं त्रयोदशभागास्त्रित्रिभागात्मकैकभागरूपाः। अक्षणयैकोनचत्वारिंशद्भागाः। तिर्यङ्मान्यक्षणया योगे सार्द्धायामरूपा रज्जुरिति ज्ञेयम्। शालायाञ्च त्रिंशदरत्नी रज्जुः। अभ्यासस्य दशारत्निरूपस्य षष्ठेंऽशे सषोडशाङ्गुलारत्निमिते निरञ्छनम्। तत्राष्टावरत्नयोऽष्टौ चाङ्गुलानि तिर्यङ्मानी चत्वारिंशच्चत्वारिंशदङ्गुलात्मकपञ्चभागा। एकविंशत्यरत्नयः षोडश चाङ्गुलानि अक्षणया चत्वारिंशच्चत्वारिंशदङ्गुलात्मकत्रयोदशभागा। विंशत्यरत्नयस्तु पार्श्वमानी तावत्प्रमाणद्वादशभागा। अत्र श्रोण्यंसचिह्नं निरञ्छनोपरि त्रीनरत्नीनष्टौ चाङ्गुलानि हित्वा पञ्चारत्नीञ्छेषयित्वा कार्यम्। सदसि च सप्तविंशत्यरत्नी रज्जुः। अभ्यासो नवारत्नयः। तस्य षष्ठे सार्द्धारत्नौ निरञ्छनम्। सार्द्धसप्तारत्नी तिर्यङ्मानी शेषणेन। निरञ्छनोपरि च त्र्यरत्निषु श्रोण्यंसचिह्नं सार्द्धचतुररत्निशेषणेन। सार्द्धोनविंशत्यरत्निरक्षणया। अत्र सार्द्धारत्निमितैकैकभागेन द्वादशभागाः पार्श्वमानी त्रयोदशाक्षणया पञ्च तिर्यङ्मानी द्रष्टव्या। एवमन्येष्वपि दीर्घचतुरस्रेषु आयामार्द्ध-आयामार्द्धषष्ठांशोनं ततोऽधिकोनं वा येषु विस्तारार्द्धं तेष्वेव दीर्घचतुरस्रेष्वेषा विधा नान्येषु।

अक्षणया तिर्यङ्मानीशेषः ॥१५॥

15. The diagonal cord is the remainder of the transverse cord (see *S.* 13).

व्याख्यात्रयेणाप्युक्तार्थमेतत्सूत्रम्। अत्र त्रयस्त्रिंशत्प्रतीचीपक्षेऽपि रज्ज्वन्तरं वार्त्तिके तूक्तं यथा—

दैर्घ्यद्विघ्ना रज्जुरूना दैर्घ्यत्र्यंशेन कर्षणम्।
तस्यां दैर्घ्यार्द्धे स्वतिथ्यंशाढ्ये कोणस्ततेर्द्दले॥
आयामार्द्धं स्वतिथ्यंशाढ्यमतो वोनितं भवेत्।
विस्तारार्द्धं चतुःस्रक्तौ यत्र तत्साधयेदियम्॥

महावेद्यां दैर्घ्याद् द्विगुणा द्वासप्ततिप्रक्रमा दैर्घ्यत्र्यंशोना षष्टिप्रक्रमा रज्जुः। तस्यां दैर्घ्यार्द्धे स्वपञ्चदशांशाढ्ये एकोनविंशतिप्रक्रमेषु प्रक्रमपञ्चमांशयुक्तेषु कर्षचिह्नं कार्यम्। द्विघ्नविस्तारार्द्धेषु पञ्चदशप्रक्रमेषु सार्द्धषोडशसु वा कोणस्य श्रोणेश्चिह्नं द्वादशसु त्वंसचिह्नम्। समचतुरस्रमनया साध्यते।

प्रमाणार्द्धे समचतुरस्त्रस्य शङ्कुः ॥१६॥

16. For (fixing the corners of) a square the pole has to be fixed at half the measure.

यस्यायामविस्तारौ तुल्यौ तत्समचतुरस्रम्। तस्य प्रमाणस्यायामस्यार्द्धे श्रोण्यंसपरिच्छेदकः शङ्कुः। सोऽभ्यासरज्जौ ज्ञेयः। निरञ्छनं त्वभ्यासचतुर्थ उक्तमेव। यदुक्तम्—

यावत्प्रमाणा रज्जुः स्यात्तावानेवागमो भवेत्।
आगमार्द्धे तु शङ्कुः स्यादन्तरर्द्धे निरञ्छनम्॥

आगमोऽभ्यासभागः। आगमार्द्धे शङ्कुः श्रोण्यंसार्थः। अन्तरर्द्धे संख्यासमासभङ्गागमार्द्धचिह्नयोरन्तराले निरञ्छनचिह्नम्।

शास्त्रवदर्द्धे दीर्घचतुरस्त्रस्य ॥१७॥

17. For oblongs (the pole has to be fixed) at half the (measure) prescribed by the holy text.

दीर्घचतुरस्त्रक्षेत्रस्य तिर्यङ्मानचिह्नं रज्जुपाशाच्छास्त्रवतः शास्त्रोक्तविस्तारस्यार्द्धे भवति। यथा महावेद्यां त्रिंशत्प्रक्रमश्रोणिपक्षे पञ्चदशसु। त्रयस्त्रिंशत्पक्षे सार्द्धषोडशसु प्रक्रमेषु तु विशेष उक्तः —

आधाने पदिकं कुर्यात्सोमे तु द्विपदो भवेत्।
अग्नौ च त्रिपदं कुर्यात्प्रक्रमं याज्ञिको बुधः ॥इति।

आहुश्च—

पञ्चदशमेकविंशं त्रिकमपरञ्च परतस्त्रिकञ्चापि।
द्वादशसु पाश उत्तम इति सोमे रज्जुमानम् ॥ इति।

पञ्चदशसु श्रोणिनिरञ्छनार्थं चिह्नम्। ततश्चिह्नादेकविंशतिप्रक्रमेष्वायाममानार्थं संख्यासमासभङ्गचिह्नम्। ततस्त्रिप्रक्रमेषु निरञ्छनचिह्नम्। ततोऽपि त्रिष्वंसमानार्थं चिह्नम्। चतुर्विंशतिप्रक्रमा हि प्राची। ततो द्वादशसु पाश एवेति चतुष्पञ्चाशत्प्रक्रमा रज्जुः प्रमाणार्द्धं वाभ्यस्येति कथिता। तथा सदसि नव तिर्यगिति शास्त्रोक्तविस्तारार्द्धे सार्द्धचतुररत्निषु श्रोण्यंसचिह्नम्, प्रकारान्तरेणपि। अष्टादशारत्नयो दैर्घ्यमिति पक्षमाश्रित्योक्तम्—

नवके लक्षणं कुर्यात्त्रीणि कुर्यात्त्रिषु त्रिषु।
उत्तमो नवकः पाशः सदसो मानमुच्यते ॥इति।

प्रथमं नवारत्निषु चिह्नं श्रोणिमानार्थम्। ततस्त्र्यरत्निषु श्रोणिभागे निरञ्छनार्थम्। पुनस्ततस्त्र्यरत्निष्वंसनिरञ्छनार्थम्। ततोऽपि त्र्यरत्निष्वंसार्थम्। ततो नवसु पाश एव। अत्र

पश्चिमप्रागन्तयोः शङ्कू निहत्य पाशविमोकः। श्रोण्यर्थञ्च न रज्जुव्यत्यासः। तदर्थं पृथङ् निरञ्छनोक्तेः। आयामस्तूदङेव। अत्र त्रित्र्यरत्निरेकैको भागः। तत्र त्रिभागा पार्श्वमानी चतुर्भागा तिर्यङ्मानी पञ्चभागाक्ष्णया। तिर्यङ्मान्यक्ष्णयैक्यं रज्जुः, निरूढपशुवेद्याश्च चतुररत्निश्रोणित्र्यरत्न्यंसषडरत्निप्राचीरूपरथपक्षे प्रोक्तम्—

नवारत्निमिता रज्जुर्लक्षिता षट्स्वतः परैः।

अर्द्धेऽर्द्धे त्रिषु पाशः स्यात्पशुवेदिप्रसाधनि॥ इति।

नवारत्निमितेति प्रमाणार्द्धं वाभ्यस्येति। एतस्यैवायं प्रपञ्चः सूचितः। षडरत्निषु लक्षणमायामपरिच्छित्त्यै संख्यासमासभङ्गरूपम्। ततोऽर्द्धारत्नौ निरञ्छनचिह्नम्। ततोऽप्यर्द्धारत्नौ श्रोणिचिह्नम्। ततोऽप्यर्द्धारत्नावंसचिह्नम्। त्रिषु स्थानेष्वर्द्धेऽर्द्धे लक्षणमित्यन्वयः। तत्रावृत्तिन्यायेन तु त्रिष्वित्यस्य पुनः संयोजनं त्रिषु पाशः स्यात्ततस्त्रिष्वर्द्धेषु पाशः स्यादित्यर्थः। अत्रांसार्थं रज्जुव्यत्यासो निरञ्छनैक्याद्बोध्यः। केचिन्निरूढपशौ पौर्णमासिकीमेव वेदिमूचुः। वेदिं करोतीति कर्क्वेण सूत्रं विभज्य व्याख्यातत्वाद्वरुणप्रघासवत्स्फ्याद्याग्निनिधानादिति पृथग्योगकरणात्, तत्र, स्फ्याद्याग्निनिधानान्ताः पदार्थाः सोत्तरवेदिके वरुणप्रघास एवोक्तास्ते वरुणप्रघासवदित्यतिदेशं विनापि लभ्येरंस्ततो वरुणप्रघासवदित्यधिकं सूत्रे तज्ज्ञापयति स्फ्याद्यादौ यन्मानं तदपि वरुणप्रघासवद्भवतीत्यपरः प्रपञ्चो वार्त्तिके दर्शितः। पौर्णमासिकी वेदिश्च व्याममात्रीं पश्चात्त्र्यरत्निप्राचीमिति पक्षमाश्रित्योक्ता—

षडरत्निर्द्विपाशा च मध्ये पञ्चसु लक्षिता।

द्विहस्तेऽङ्गुलषट्के च त्रिष्वष्टादशकेषु च॥

सार्द्धहस्ते च पाशः स्याद्वेदिः स्यात्पौर्णमासिकी॥इति।

षडरत्निरिति प्रमाणमभ्यस्येत्यादेः सूत्रस्यायं प्रपञ्च इत्युक्तम्। पाशद्वयं रज्ज्वन्तयोः पाशौ करोतीति सूत्रस्मारणमेतत्। पञ्चस्विति प्रदेशेषु तामेवाह— **द्विहस्त इत्यादि**। द्विहस्ते लक्षणं श्रोण्यर्थम्। ततोऽङ्गुलषट्के श्रोणिनिरञ्छनार्थम्। ततोऽष्टादशाङ्गुलेषु तु आयामार्थम्। तत्संख्यासमासभङ्गलक्षणम्। ततोऽप्यष्टादशाङ्गुलेष्वंसनिरञ्छनार्थं ततोऽप्यष्टादशाङ्गुलेष्वंसचिह्नार्थम्। ततः सार्द्धहस्ते पाशः। त्रिषु स्थानेष्वष्टादशाङ्गुलेष्वित्यर्थः। अत्रांसार्थं न रज्जुव्यत्यासो निरञ्छनभेदात्। अरत्निहस्तयोरत्र शास्त्रे एकविधत्वमत एव द्विहस्त इत्युक्तम्। पञ्चारत्निर्दशवितस्तिर्विंशतिशताङ्गुलः पुरुष इति पारिभाषिकाङ्गुलवितस्त्यरत्निग्रहणस्य वक्ष्यमाणत्वात्। व्यामश्च षण्णवत्यङ्गुलश्चतुररत्निरेवेति। व्याममात्रीमिति सूत्रेण द्विहस्त इत्येतस्यैकवाक्यता। यदुक्तम्—

तन्तुः पुष्करनालस्य षड्गुणः परिवेष्टितः।

वत्सतर्यास्त्रिहायण्या बालेन सदृशो भवेत्॥

त्रयस्त्रिहायणीबालाः सर्षपार्द्धं विधीयते।
द्विगुणं सर्षपं विद्याद्यवः पञ्च तु सर्षपाः॥
अङ्गुलस्य प्रमाणं तु षड्यवाः पार्श्वसम्मिताः।
चतुर्व्विंशाङ्गुलोऽरत्निर्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुला॥
व्यामस्य च प्रमाणं तु चतुर्न्यूनं शताङ्गुलम्।
पुरुषस्य प्रमाणं तु विंशतिस्तु शताधिका ॥इति।

यजमानेनोर्ध्वबाहुप्रपदोत्थितेन समस्थितेन वेति पुरुषमानं सूत्रितम्। तस्य पञ्चमोंऽशोऽरत्निः चतुररत्निर्व्यामः अरत्निचतुर्व्विंशो भागोऽङ्गुलम्। अरत्न्यर्द्धं वितस्तिः, अङ्गुलस्य षष्ठोंऽशो यवोदरविस्तारः। यवोदरविस्तारस्य पञ्चमोंऽशः सर्षपः। तस्यार्द्धं सर्षपार्द्धं सर्षपार्द्धस्य तृतीयोंऽशस्त्रिहायणीबालः त्रिहायणीबालस्य षष्ठोंऽशः पुष्करतन्तुरिति व्यवहर्त्तव्य इति संक्षिप्तोऽर्थः। न तु पुष्करनालतन्तुमारभ्य परिच्छिन्नमेवेदं प्रमाणमुपदिश्यते। तथा सति हि यजमानेनोर्ध्वबाहुप्रपदोत्थितेनेति सूत्रे यजमानग्रहणमनर्थकं स्यात्। दानवाचनान्वारम्भणवरवरणव्रतप्रमाणेषु यजमानं प्रतीयादिति परिभाषायाञ्च प्रमाणग्रहणमकर्त्तव्यं स्यात्। सर्व्वयजमानानामङ्गुलादिप्रमाणानां नियतत्वेनैकविधत्वात्। अतो यथोक्तैव व्याख्या। एवं वेदिकरणे माहात्म्यमन्यथाकरणे साहसोक्तिद्वारा प्रत्यवायश्चोक्तः—

अनेन विधिना यस्तु वेदिं करोति मानवः।
यजमानं तथात्मानमुभौ तारयते ध्रुवम्॥
अज्ञात्वा शुल्बसद्भावं यज्ञे सौत्रामणीसुते।
वेदिं ये कर्त्तुमिच्छन्ति गिरिं भिन्दन्ति ते नखैः॥ इति।
प्रमाणञ्च प्रमेयं च यच्चान्यद्वस्तुसंज्ञितम्।
सर्व्वं तच्छास्त्रतो ज्ञात्वा यज्ञे सिद्ध्यन्ति याज्ञिकाः॥
यथा न क्षीयते मानं यथा न च विवर्द्धते।
यथा च रमते दृष्टिस्तथा योगं समाचरेत् ॥इति।

अत्रायं प्रोक्तरज्जुद्वयसंक्षेपसंग्रहः—

द्विगुणा त्रिषु दोःकर्णा सार्द्धेषु त्रिषु दोःश्रुतिः।
श्रोण्यंसांकौ तयो रज्ज्वोर्द्वैष्णि शास्त्रेरितार्द्धतः॥

अस्यार्थः— आयामद्विगुणा सार्द्धायाममाना च क्षेत्रमानाय द्विधा रज्जुरुक्ता। तत्र या द्विगुणा साष्टभागा कार्या। तत्र त्रिभागो भुजः पञ्चभागः कर्णः। सार्द्धा त्वष्टादशभागा कार्या।तत्र पञ्चभागो भुजस्त्रयोदशभागश्च कर्णः। उभयोर्भुजभागमध्ये शास्त्रोक्तमानार्द्धमानेन श्रोण्यंसचिह्ने कार्ये यथासम्भवं भुजकर्णान्तरे निरञ्छनाङ्कः।

शकटमुखस्य चैवम् ॥१८॥

18. The same has to be done with regard to the areas shaped like the fore-part of a cart (the *praüga*).

प्रउगाकृतिचयनादौ शकटमुखाकृतित्र्यश्रिक्षेत्रम्। तत्रापि शास्त्रवदर्द्धे श्रोणिशङ्कुर्ज्ञेयः।

एतेन प्राग्वंशवेदिमानानि व्याख्यातानि ॥१९॥

19. Thereby the (measurements of the) *prāgvaṁśa* and the vedīs are explained.

समचतुरस्रदीर्घचतुरस्ररज्जुकथनेन प्राग्वंशस्य हविर्द्धानपत्नीशालादेर्वेदेश्चैष्टिकवारुण-प्रघासिकपाशुकसौमिक्यादेर्मानान्युक्तानि बोद्धव्यानि। दर्शितानि च तानि लेशतः शास्त्रवदर्द्ध इति सूत्रव्याख्यायाम्। वेदीनां बहुत्वान्मानानीति बहुवचनम्। मध्यसङ्गृहीतामिति इष्टि-वेद्यामुक्तम्। तत्र मध्यसङ्ग्रहे परिशिष्टम्—

आनीय रज्जुपूर्व्वार्द्धात्पश्चार्द्धं यावदेव तु।
द्विगुणीकृत्य तां रज्जुं तत्र शङ्कुं निखानयेत्॥
वेदिश्रोण्यंसयोर्मध्ये तया रज्ज्वाष्टभागया।
वा पृथुत्वतुरीयेण मध्येनालिख्य सङ्ग्रहौ ॥इति।

अत्रास्यार्थः— वेदेः प्राक्तिर्यङ्मानार्द्धे यः प्राच्यन्तशङ्कुस्तस्मादंसशङ्कुमेकं तद्भागगतं श्रोणिशङ्कुञ्चैकं वेष्टयन् रज्जुं पश्चात्तिर्यङ्मानार्द्धगतशङ्कुं यावदानयेत्। तस्या रज्जोर्मानं प्रोक्तरूपवेदिपक्षे सप्तपञ्चाशदधिकशताङ्गुलप्रमितं भवति। ततस्तां रज्जुं द्विगुणीकृतां पूर्व्वा-र्द्धशङ्कुतोऽसशङ्कुं वेष्टयंस्तथैव निदध्यात्। तदन्तश्चांसचिह्नादधः सार्द्धद्वाचत्त्वारिंशदङ्गुलान्ते श्रोणिचिह्नोपरि तु सार्द्धत्रिंशदङ्गुलान्ते पतति। तत्र शङ्कुरेवमुत्तरतः। तस्या एव सप्तपञ्चाश-दधिकशताङ्गुलमितायाः अष्टमोंऽशः सार्द्धैकोनविंशतिरङ्गुलानि किञ्चिदधिकानि तावता व्यासार्द्धेन तस्माच्छङ्कुद्वयाद्वेद्यभ्यन्तरीणे वृत्तार्द्धे लेख्ये। वेदिमभ्यस्य सङ्ग्रहं संक्षेपणं कुर्यात्। वाशब्दः पक्षान्तरे। अथवा तयोः पार्श्वद्वयनिखातशङ्क्वोरन्तरस्य पृथुत्वं षड्भागोनषडशीत्यङ्गुलसम्मितं भवति। तस्य तुरीयोंऽसः सार्द्धैकविंशत्यङ्गुलानि किञ्चिदू-नानि। तावता व्यासार्द्धेन वा पूर्ववत्संग्रहवृत्तार्द्धे उभयतो लेख्ये। वेद्यन्तरेषु तु न मध्यसङ्ग्रहः, प्रमाणान्तरोपदेशेन प्राकृतप्रमाणबाधात्।

शालामानं च ॥२०॥

20. And the measure of the *Śālā*.

एतेनैव व्याख्यातमिति पूर्वेणान्वयः। दीर्घचतुरस्रविधिना शाला कार्या। शालास्वरूपं परिशिष्टे पठ्यते।

विंशत्या तु करैः शाला दशायामेन विस्तृता।
विमितं चतुरस्त्रं स्याद्दशारत्निप्रमाणतः ॥

इति विंशतिहस्तायता दशहस्तविस्तृता शाला दशहस्तसमचतुरस्त्रं विमितमित्यर्थः। तत्र शाला सूत्रेषूदग्वंशोपदिष्टा। सैव सिद्धवत्सोमे प्राग्वंशत्वेनोपदिष्टा। इह तु यत्र शालायामेव सूत्रकृदुपदिष्टवान्। पूर्वसूत्रादस्य पृथक्करणे प्रयोजनमग्रिमसूत्रविशेषोक्तिः।

तत्रोदीची प्राचीवत् ॥२१ ॥

21. There the north line takes the place of the east line.

तत्र शालायां प्राच्यन्तयोः शङ्कू निहन्तीत्यादि यत्कार्यमुक्तम्, तदुदीच्यां कर्त्तव्यम्। उदगायामत्वाच्छालाया उदग्रज्जुन्यासः कार्य इति भावः।

सदसश्चैवम् ॥२२ ॥

22. And likewise that of the *Sadas*.

शालामानवत्सदसोऽपि मानं दीर्घचतुरस्त्रविधिना कार्यम्। सदसोऽपि हि दीर्घचतुरस्त्रं तत्रोदीची प्राचीवदित्येतदत्रापि सम्बद्ध्यते।

अपरिमितं प्रमाणादभूयः ॥२३ ॥

23. The word indefinite (wherever it is used with regard to measurements) means that the measure is to exceed the stated (definite) measure.

यत्र यत्र सूत्रकृताऽपरिमितशब्दः प्रयुक्तः, यथा वरुणप्रघासेष्ट्यामपरिमिता वेति, यथा च दीक्षासु द्वादश दीक्षा अपरिमिता वेति, तत्र तत्रोक्तप्रमाणादधिकप्रमाणं ग्राह्यम्। बहुत्वे हि रूढोऽपरिमितशब्दो बहुत्वं चापेक्षिकम्। अत उक्तप्रमाणापेक्षयैव बहुत्वं ग्राह्यं सान्निध्यात्। यत्त्विष्टिवेद्यामुक्तम् अपरिमितां वेति, तत्र नोक्तादधिकमानता; किन्तु मानाभावः। नात्र मात्रास्तीति श्रुतेः। यच्च चयने अपरिमितेष्टक इत्युक्तम्। तत्रापि नवैमे सर्वाणि रूपाण्युपधत्तानि वै वरे च यथनवाभ्यापयथेत्यनभ्यापनमव्यापनं श्रूयते। तेन सोऽप्यपरिमितशब्दो मानाभावार्थः। एतद्द्वयव्यतिरेकेण शास्त्रेऽन्योऽपरिमितशब्द उक्तमानाधिकार्थः।

प्रमाणे शास्त्रं प्रमाणं निर्ह्रासविवृद्ध्याः ॥२४ ॥

24. The precept contained in the holy text is the (only) rule for the measure of decrease and increase.

ह्रासस्य वृद्धेश्चोपदेशे तयोः प्रमाणे परिच्छेदे शास्त्रमेव प्रमाणं नान्यत्। यथा सौत्रामणीवेदेः सौमिकीतो ह्रासः प्रक्रमतृतीयेन मानं कृत्वैव। यथा चाष्टविधादिचयनेषु पुरुषमात्राभ्युच्चयेनैव वृद्धिः। यथा वाऽरत्निभिरेव यूपोच्छ्रायः।

योगश्च ॥२५॥

25. And (in addition) reasoning.

ह्रासवृद्ध्योर्योगो युक्तिश्च सति शास्त्रे प्रमाणं यथा चात्वालोत्करावन्तरेण संचर इति चात्वालसहपाठादुत्करोऽपि वेद्यन्त एव सम्भाव्यते। तत्राष्टप्रक्रमाद्याधानेषु यथा वेद्यन्त उत्करः पतेदेवं गार्हपत्याहवनीययोरन्तरं षड्धा सप्तधेत्यादि रज्जुमानं वक्ष्यमाणं कर्त्तव्यम्।

इतरस्य वितृतीये दक्षिणत इत्येतद्वक्ष्यामः ॥२६॥

26. We will now explain the *Sūtra* "*itarasya*, etc."

यत्कात्यायनेन दक्षिणाग्निं प्रकृत्य सूत्रितमितरस्य वितृतीये दक्षिणत इति तद्विविच्य वक्ष्याम इत्यर्थः।

गार्हपत्याहवनीययोरन्तरं षड्धा सप्तधा वागन्तुसमं त्रेधा विभज्यापरवितृतीयलक्षणेन दक्षिणायम्य तस्मिन्नग्निः ॥२७॥

27. Having divided the distance between the *gārhapatya* and the *āhavanīya* into either six or seven parts together with an added part (increase each of the six or seven parts by its own sixth or seventh part) and having divided (the whole length) into three parts, one stretches (a cord of the given length whose ends are attached to the two poles fixed in the centres of the two fire places) seizing it by a mark at its western third (the one nearest the *gārhapatya*) towards the south: on the spot (reached by the mark) the southern *agni* is to be placed.

गार्हपत्याहवनीयाग्निस्थानयोर्मध्ययोरन्तरालमितां रज्जुं षड्विभागां सप्तविभागां वा कृत्वा पक्षद्वयेऽप्येकैकं भागमपरषष्ठांशमितं सप्तमांशमितं वा वर्धयित्वा तां संवर्द्धितभागां रज्जुं त्रेधा विभज्य रज्जुप्रान्तपाशौ गार्हपत्याहवनीयस्थानशङ्क्वोः प्रक्षिप्य गार्हपत्यस्थानासन्नतृतीयभागकृतचिह्नेन दक्षिणत आकृष्याकृष्टचिह्नस्पृष्टभूभागे दक्षिणाग्निस्थानमध्यं बोध्यम्। अत्राग्न्यन्तरालरज्जोः षड्धाविभागपक्षे तावताधिकस्य वर्धने पुनस्तावत्या रज्जोस्त्रेधा विभज्य पश्चिमत्र्यंशे दक्षिणत आकृष्टे गार्हपत्यदक्षिणाग्न्यन्तरालरज्जुरक्षणया भवति। तत्र तिर्यङ्मानी- पार्श्वमान्यौ तुल्ये भवत एव इत्ययं पक्षो मुख्यः। अपि वान्तरं त्रिभागोनयेति सूत्रेणापि ह्याचार्यः समतिर्यङ्मानीपार्श्वमानीपक्षमेव विशदीकृत्य वक्ष्यति। ततः सप्तधाविभागपक्षोऽल्पान्तरत्वेन तिर्यङ्मानीपार्श्वमानीव्यतिरेके दोषाभावं मन्यमाने नोपन्यस्तः। एवं चेतरस्य वितृतीये दक्षिणत इति कल्पसूत्रेण सममप्यविरोधः।

विपर्यस्योत्तरत उत्करः ॥२८ ॥

28. Having exchanged (the end of the cord) one fixes the (place of the) *utkara* (by stretching the cord)towards the north.

विपर्यासः पाशयोः। उत्तरतश्चाकर्षः। तेन गार्हपत्याहवनीययोरन्तरालमितां रज्जुं षड्धा सप्तधा वा कृत्वा तावन्तमपरं भागं संवध्य त्रिधा विभज्य पूर्ववितृतीयलक्षणेनोदगायम्य तस्मिन्कर्षस्पृष्टभूभाग उत्करः। अत्र च चात्वालोत्करावन्तरेण संचर इति वेद्यन्तलग्नचात्वालसहपाठादग्रेणोत्करं तच्चात्वालं परिलिखेदिति श्रुतेः पूर्वेणोत्करसंचरं परिहाप्येति सूत्राच्चोत्करोऽपि वेद्यन्तलग्न एवेष्यते। ततश्च षड्धा सप्तधेत्युपप्रदर्शनमात्रे यथोत्तरतो वेद्यन्तलग्न एव उत्करः सम्भाव्यते तथा कार्यं तेनाष्टासु विक्रमेष्वादधीतैकादशसु द्वादशसु मत्या वेति मत्यादिपक्षाधाने कदाचिद्वेदेः पश्चिमतो दूरेऽप्युत्करापत्तेः। तच्चानिष्टम्। अग्नीदुत्तरत उत्करं करोतीति सूत्रेण वेद्युत्तरत एवोत्करस्योक्तत्वात्। तस्माद्वेदिलग्न एवोत्तरतः स कार्यः। उत्करश्च तीक्ष्णाग्रं कूटम्। पुञ्जराशिः उत्करः कूटमस्त्रियामिति कोशकृद्वचनात्। केचिदुत्कीर्यते एतस्मादेतस्मिन्नोत्कीर्यत इत्युत्करं गर्तं व्याख्यन्। ते रूढेर्योगाद्बलीयस्त्वं न जानन्तीत्युपेक्ष्याः। अत एव च उत्करे वाजिनमासादयतीत्यधिकरणस्य पूर्वपक्षे मीमांसायां तीक्ष्णाग्रे कूट उत्करे कथं वाजिनासादनं स्यादित्याशङ्कितम्। किञ्च, वेदिं परिसमूह्य वितृतीयेऽग्नीदुत्तरत उत्करं करोतीत्युत्करोत्पत्तिर्वेदिपरिसमूहनैस्तृणादिभिरेवोक्तेति कूटतैव सम्भाव्यते न गर्तता। अभिन्यासश्च गर्ते न सम्भवति वेद्यन्त उत्कर इति वेदिवितृतीय एवोत्तरपूर्वान्ते तूत्कर इति युक्तमुत्पश्यामो वितृतीयेऽग्नीदुत्तरत उत्करं करोतीति सूत्रम्।

अपि वान्तरत्रिभागोनया रज्ज्वा पूर्वार्धे
समचतुरस्रं कृत्वा श्रोण्यामग्निः ॥२९ ॥

29. Or else one makes a square at the eastern part (of the interval between *āhavanīya* and *gārhapatya*, i.e. a square lying to the west of the centre of the *āhavanīya*) by means of a cord which is less (in length) by one-third of the interval; in the south west corner of this square is the centre of the *dakṣiṇa agni*.

अपि वेति स्फुटतरवितृतीयसाधनपक्षान्तरपरिग्रहार्थम्। अन्तरं च पूर्वापराग्निद्वयस्य प्रकृतत्वात् तदन्तरमिव रज्जुः स्वतृतीयांशेनोना कार्या। तावत्या च करण्याऽऽहवनीयमध्यात्प्रत्यक् समचतुरस्रं कर्तव्यम्। तदग्निद्वयपूर्वापरार्धवर्त्ति भवति। तस्य चतुरस्रस्य दक्षिणश्रोण्यां दक्षिणाग्निस्थानम्। अयं कल्पसूत्राविरोधी मुख्यतरः पक्षः। अत्राष्टप्रक्रमाधानपक्षे प्रक्रमस्य च पादमात्रत्वकरणे दक्षिणाग्निखरस्यार्द्धचन्द्राकृतेररत्निमात्रस्य परिशिष्टोक्तस्य

पूर्वाग्रं वेदिमध्ये पततीति गार्हपत्यखरपूर्वभागादष्टपादेष्वाहवनीयखरपश्चिमभागः कर्तव्यः।एकादशद्वादशपरिमितप्रक्रमपक्षे तु गार्हपत्याहवनीययोरन्तरमेव तावन्मातव्यमिति वार्तिक उपपादितम्।

विपर्यस्योत्तरांऽस उत्करः ॥३०॥

30. The reverse thing having been done (i.e. the square having been made to the east of the centre of the *gārhapatya*) the *utkara's* place is to be fixed in the north-east corner.

विपर्यासवचनात्पश्चिमार्द्धे गार्हपत्यमध्यात्पुरस्तादग्निद्वयान्तरालमितरज्ज्वा स्वत्रिभागोनया करण्या चतुरस्रं कर्तव्यं तदुत्तरांसे चोत्करः। प्रदेशमात्रसूचनार्थमेतदुक्तम्। उत्करस्य तु वेदिलग्नत्वं प्रागुक्तमेव। उत्करश्च कूटरूपत्वाद्वृत्तः प्रादेशो याज्ञिकैः क्रियते। अत्र—

अरत्निश्चतुरस्रश्च पूर्वस्याग्नेः खरो भवेत्।
रथचक्राकृतिः पश्चाच्चन्द्रार्ध इव दक्षिणे॥

इति यज्ञपार्श्वपरिशिष्ट उक्तम्। तत्र समचतुरस्रकरणमुक्तम्। वृत्तकरणं च वक्ष्यति। चन्द्रार्धाकारा तु भूररत्निमितैवं कार्याऽस्मद्वार्तिकोक्तानुसारात्।

अग्नेरुदक्सार्द्धनवाङ्गुले मध्यं ततो लिखेत्।
वृत्तमेकोनविंशत्या प्राची ज्या मध्यगा भवेत्॥
उदगर्धं विहायार्वाक्खरोऽग्नेर्दक्षिणस्य तु॥

दक्षिणाग्निस्थानादुत्तरतः सार्धेषु नवाङ्गुलेषु मध्यं प्रकल्प्य तत एकोनविंशत्यङ्गुलमितव्यासार्धेन वृत्तं कृत्वा तन्मध्ये प्राची रेखारूपा कार्या। तया वृत्तं द्विधा भक्तं भवति। तत उत्तरभागमपहाय दक्षिणभागोऽरत्निमितो दक्षिणाग्निखरो विधेयः। प्रकारान्तराणि तु यानि वार्त्तिके दर्शितानि, तानि सर्वाणि पूर्वपक्षरूपाणि वृत्तार्धचन्द्रार्धत्वेन परिशिष्ट उक्तत्वाद्वृत्तार्द्धता वाऽस्मिन्नेव पक्षे प्रव्यक्ता भवति। अरत्निमात्रत्वं तु जीवाशरैक्यदलहतशरस्य वर्गं दशाहतं नवभिर्विभजेदवाप्तमूलं प्रजायते कार्मुकस्य फलमिति गणितात्प्रत्येतव्यम्। यद्यपि पिशीलमात्रा भवन्तीति धिष्ण्यानां विज्ञायते चतुरस्रा इत्येकेषां परिमण्डला इत्येकेषामित्यापस्तम्बोऽसूत्रयत्। पिशिलमानञ्च बह्वन्तरालमितं चतुर्मुष्टिमितं अरत्निमितं त्रिंशदङ्गुलं षट्त्रिंशदङ्गुलं वेति पञ्चधाऽऽचार्यैर्व्याख्यातं तथाप्यरत्निश्चतुरस्रास्त्विति परिशिष्टवचनादरत्निपरं पिशीलपदमेतच्छाखायां व्याख्येयम्। यच्चतुरस्रा इत्येकेषां परिमण्डला इत्येकेषामिति पक्षद्वयं दर्शितम्, तदपि शाखाभेदाद्व्यवस्थितम्। अस्यां शाखायां चतुरस्र एवाग्निखरः धिष्ण्यानां चयने

चतुरस्रतादर्शनात् प्रमाणं चतुरस्रमादेशादन्यदिति वक्ष्यमाणत्वात्। एतेन सभ्यावसथ्ययोः खरौ चतुरस्रावरत्निमितौ ज्ञेयौ। गार्हपत्यस्य वृत्तत्वन्तु परिशिष्टवचनाद्गार्हपत्यचितौ च परिमण्डलतादर्शनात्। दक्षिणाग्नेश्चार्द्धचन्द्रत्वं परिशिष्टादेव अन्यत्र समचतुरस्रता।

अग्नीनां तु खरः कार्यो मेखलात्रयसंयुतः।
द्वादशाङ्गुल उच्छ्रायो विस्तारे चतुरङ्गुलः॥

इत्यपि परिशिष्टे पठितम्। उक्तखरमानाद्बहिर्मेखलात्रयं चतुरङ्गुलमुपर्युपरि निवेश्यम्, यथा त्रितयं मिलित्वा द्वादशाङ्गुलमुच्चं भवति। तथाधानकाले सम्भारान्तर्गताः शर्कराः परिशिष्टे संख्याताः—

पञ्चाशच्छर्कराः पश्चात्पूर्वे दद्यात्त्रिसप्ततिम्।
एतत्स्याच्छर्करामानं दक्षिणे चैकविंशतिः ॥इति।

मन्त्रशास्त्रेऽपि समचतुरस्रयोन्याकारार्द्धचन्द्रवृत्तत्र्यस्त्रिषडस्त्रिचष्टास्त्रिपद्माकारपञ्चास्त्रिसप्तास्त्रिभेदाद्दशधा कुण्डान्युक्तानि, तानि च हस्तमात्रभूमिकान्यारभ्यादशहस्तभूमिकेभ्यो होमाधिक्याद्वर्धन्ते, वृद्धिश्च क्षेत्रफलगतैव कर्तव्या। द्विप्रमाणा चतुष्करणी, त्रिप्रमाणा नवकरणीत्यादिवक्ष्यमाणत्वात्। एतत्सर्वं सोपपत्तिकं शारदातिलकटीकायां विवृतमस्माभिः।

॥इति नैमिषीयसोमसुतरामचन्द्रकृतायां शुल्बसूत्रवृत्तौ
प्रथमा कण्डिका समाप्ता॥

अथ कातीयं शुल्बपरिशिष्टम्

[द्वितीया कण्डिका]

अङ्गुलै रथसम्मितायाः प्रमाणम् ॥१॥

1. The measure of (the *vedī*) measured by (the dimensions of) a chariot (is estimated) according to *aṅgulis*.

वरुणप्रघासे रथमात्र्युत्तरेति रथमात्री वेदिरुक्ता सेह विवेच्या। तदर्थमाह रथसम्मिताया वारुणप्रघासिक्या वेदेः प्रमाणमङ्गुलैर्वक्ष्यामीति सूत्रशेषः। यद्यपि तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेरिति समासान्तात्प्रत्ययविधानात्समासविशेष एवाङ्गुलेरदन्तता, तथापि अस्मादेवार्षप्रयोगाददन्तोऽप्यङ्गुलशब्दो नपुंसकलिङ्गोऽस्तीति ज्ञेयम्। तच्चाङ्गुलैर्मानं रथस्य रथकृच्छास्त्रप्रसिद्धमेवोच्यते सूत्रकृता।

तत्राष्टाशीतिशतमीषा ॥२॥

2. The pole is one hundred and eighty-eight *aṅgulis* long.

ईषा नाम रथे प्रागपरायतः काष्ठविशेषः, तेनात्रेषाशब्देन वेदेः पूर्वापरायामो लक्ष्यते। तदष्टाशीत्यधिकशताङ्गुलमितं भवति। चतुरङ्गुलोनाष्टारत्निमितमित्यर्थः।

चतुः शतमक्षः ॥३॥

3. The axle is one hundred and four *aṅgulis* long.

अक्षो नाम पश्चात्तिर्यग्रथाङ्गं काष्ठम्। तेनात्र वेदिश्रोण्यायामो लक्ष्यते। स चतुरधिकशताङ्गुलमितो भवति। अरत्निचतुष्टयं सत्र्यंशमित्यर्थः।

षडशीतिर्युगम् ॥४॥

4. The yoke eighty-six.

युगं नाम वाहस्कन्धोपरि दीयमानं काष्ठं रथाङ्गम्। तदत्र पुरस्तात्तिर्यगायाममंसं वेदेर्लक्षयति। षडशीत्यङ्गुलः प्राक्तिर्यगायामो दशाङ्गुलो न चतुररत्निमित इत्यर्थः।

चत्वारोऽष्टकाः शम्या ॥५॥

5. Thirty-two *aṅgulis* is the *śamyā* (according to whose dimensions the *cātvāla* is to be measured out).

शम्या नाम युगविवरप्रवेश्यं काष्ठं रथाङ्गम्। तदिह चात्वालमानकृत्काष्ठं लक्षयति। शम्येव शम्येति। सा चतुर्भिरष्टाङ्गुलैः कार्या द्वात्रिंशदङ्गुलेत्यर्थः। अत्र चतुररत्निः श्रोणिः।

षट्प्राची। त्र्यरत्नी अंसौ। तथा सप्त प्राचीत्यादिपक्षान्तराण्यपि कल्पसूत्रे दर्शितानि आपस्तम्बेन चोक्तानि। तानि रथप्रमाणस्यैवानियमेन पक्षान्तराणि ज्ञेयानि। अत एव च रामायणादौ बहुधा रथमानानि दर्शितानि। अत्र तु परिशिष्टकृतैकं पक्षमालम्ब्यैतत्प्रमाणमुक्तम्। तत्त्वतस्तु अनियम एव। अत एव चापस्तम्बः। पदयुगेऽरत्नावियति शम्यायाञ्च मानार्थेषु यथाकामी शब्दार्थस्य विषयित्वादित्यसूत्रयत्।

पैतृक्यां द्विपुरुषं चतुरस्रं कृत्वा करणीमध्येषु शङ्कवः स समाधिः ॥६॥

6. For the *paitṛkī* (i.e. the *vedī*, to be used at the *pitṛmedh*–sacrifice) a square whose area amounts to two square *puruṣas* is to be constructed and poles are to be fixed at the middle points of the sides; this is the mode of construction. (The four poles mark the corners of the *vedi* whose sides are marked by cords connecting the poles).

पितृमेधे दिक्स्रक्तिं पुरुषमात्रं मिमीत इत्युक्तं श्रुतौ सूत्रे च। अत्र ग्रन्थे तु विदिक्स्रक्तिः समचतुरस्रप्रकार एवोक्तः। अतो दिक्स्रक्तिताकरणार्थमयमारम्भः। समचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुर्द्विकरणीति वक्ष्यति। तया पुरुषमात्रसमचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्ज्वा करण्या द्विपुरुषक्षेत्रकं समचतुरस्रं कृत्वा तस्य पार्श्वमानीद्वयतिर्यङ्मानीद्वयरूपाणां दिक्चतुष्टयगतानां चतसृणां करणीनां मध्येषु शङ्कुचतुष्टयं दद्यात्। सूत्रचतुष्टयञ्च पातयेत्तद्दिग्गतकोणं पुरुषमात्रं समचतुरस्रं भवति स समाधिरिति क्षेत्रपरिच्छेद इत्यर्थः। कथं दिक्स्रक्तिता स्यादित्याक्षेपे ह्येवं समाधानं भवति। एवमन्यत्रापि समाधिशब्दार्थः।

करणी तत्करणी तिर्यङ्मानी पार्श्वमान्यक्ष्णया चेति रज्जवः ॥७॥

7. The terms "*karaṇī*" (the making one, the producing one i.e. the cord measuring the side of a square); *tat-karaṇī* (The one which produces so much, viz. a square of the double, threefold, etc. area); *tiryaṅmānī* (that which measures transversally i.e. the transverse eastern and western sides of areas); *pārśvamānī* (that which measures the sides i.e. those sides of areas which are parallel to the *prācī*); and *akṣṇayā* (the diagonal) must be understood to denote cords (measuring the sides of areas).

एताः पञ्च रज्जुविशेषाणां संज्ञा व्यवहारार्थाः क्रियन्तेऽन्वर्थाश्चैताः। **करणीति।** क्रियतेऽनया करणाधिकरणयोश्चेति ल्युट्। या समचतुरस्रे प्राचीमध्यरेखामिता रज्जुः, सा प्रमाणरज्जुः करणी नाम। तत्क्रियतेऽनया सा तत्करणी। तदिति क्षेत्रद्वैगुण्यत्रैगुण्यादि सामान्येनोच्यते। ततश्च द्वे क्षेत्रे समस्यैकत्र करोति सा द्विकरणी। एवं त्रिकरणी चतुष्क-

रण्यादयः। लाघविकेन तु सूत्रकृता तत्करणीत्येव द्विकरण्यादिसंज्ञाः संक्षिप्य दर्शिताः। तिर्यङ्मानं श्रोण्यंसरूपं मीयते यया सा तिर्यङ्मानी। प्राच्यन्तयोस्तिर्यङ्निविष्टं रज्जुद्वयम्। पार्श्वं मीयतेऽनया पार्श्वमानी। चतुरस्रपार्श्वद्वयमापिके प्रागायते रज्जू उच्येते। अक्षिवन्नयति क्षेत्रमक्ष्णया। अक्षिशब्दस्य टिलोपो नयतेर्णत्वमार्षम्। चतुरस्रे कोणात्प्रतिकोणं नीता हि मध्यरज्जुस्तच्चतुरस्रमक्षिद्वयरूपतां नयति। तथा त्र्यश्रिण्यपि तिर्यङ्मानीपार्श्वमान्यन्तौ नीताक्ष्णया भवति। एतासां संज्ञानां व्यवहारश्च बहुतरं तत्र तत्र द्रष्टव्यः। ननु शास्त्रादौ किं नैताः संज्ञाः कृताः? व्यवहारश्चाक्ष्णया तिर्यङ्मानीशेष इति संज्ञाकरणात् पूर्वं कृतो दृश्यते। सत्यम्, सकृत्स व्यवहारोऽतीतः। अग्रे त्वेतासां संज्ञानां भूयान् व्यवहार इति तत्सन्निधौ संज्ञाः कृताः। यथोत्तरत्र व्यवहारेषु ता बुद्धौ विपरिवर्तेरन्।

पदं तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुर्दशकरणी ॥८॥

8. A transverse side of one *pada*; a side of three *padas*; the diagonal of such (an oblong) is the side of a square whose area contains ten square *padas*.

दशपदोत्तरवेदिर्भवतीत्येवम्। पादप्रमाणा रज्जुस्तिर्यग्दक्षिणोत्तरत्वेन प्रसार्य तदेकतरान्ता त्रिपादप्रमाणा रज्जुः प्रागायता पार्श्वतः प्रसार्य तिर्यग्रज्जोरपरान्तात्पार्श्वरज्जोरग्रं नीता कर्णरूपाक्ष्णया रज्जुर्यस्य क्षेत्रस्य करणी क्रियते तत् क्षेत्रं दशपदमितं क्षेत्रफलकं भवति। सोमे हि दशपदोत्तरवेदिर्भवतीत्युक्तं तदर्थमेतदभिहितम्। तस्येति क्षेत्रापेक्षयोक्तम्। तेन पदं तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी यस्येत्यध्याहारः। यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्। एवमन्यत्रापि। अत्र च शाखान्तरश्रुतिर्मूलम्। शतपथे हि सर्वत इत्युपक्रम्य यजमानस्य वा दश दशपदानीति श्रूयते। तेन शतपदक्षेत्रफलैव प्रतीयते। कात्यायनश्च वरुणप्रघासे शम्यामात्रीं वितृतीयायामपरिमितां युगमात्रीं यजमानदशपद्यां वा सोमे वोत्तरे व्यपस्फुरणश्रुतेरसम्भवाच्चेति सूत्रयन्नवरतस्त्र्यरत्निप्राचीकायां वरुणप्रघासवेदौ दशपदकरणीकक्षेत्रफलाया वेदेः सिद्धवदसम्भवं हेतूकुर्वन् दशपदकरणीकामेवेच्छति। दशपदक्षेत्रफलायाश्च सम्भवाभावात्। दशपदकरणीकाया एव हि त्र्यरत्निप्राचीकायां वेदावसम्भवः। एतेन शुल्बकृत् कात्यायनादन्यो भाति।

द्विपदा तिर्यङ्मानी षट्पदा पार्श्वमानी
तस्याक्ष्णया रज्जुश्चत्वारिंशत्करणी ॥९॥

9. A transverse side of two *padas*; a side of six *padas*; the diagonal of such (an oblong) is the side of a square of forty *padas*.

चत्वारिंशत्पदोत्तरवेदिर्भवतीत्येतत्। पदद्वयमाना तिर्यङ्मानी षट्पदमाना तु यस्य पार्श्वमानी, तस्य क्षेत्रस्य याऽक्ष्णया रज्जुः, सा करणीभूय यच्चतुरस्रं करोति तच्चत्वारिंशत्पदक्षेत्रफलं भवति। उत्तरवेदिं निवपति चत्वारिंशत्पदामिति चयने सूत्रितम्। तदर्थमिदमुक्तम्।

उपदिष्टं युगप्रमाणꣳशम्याप्रमाणं च दर्शनात् ॥१० ॥

10. The measure of the yoke (*yuga*) and the *śamyā* have (already) been taught as it is seen (that the holy text mentions *uttara-vedis* having these measures; whereby a statement of their nature becomes needful.)

चयने युगमात्रीं वेत्युत्तरवेदिर्दृश्यते तथा सोमे शम्यामात्रीमिति तु वरुणप्रघासे उत्तरवेदिरुपदिष्टा दृश्यते। तस्माद्दर्शनाद्धेतोस्तत्सिद्धये युगप्रमाणं शम्याप्रमाणं चोपदिष्टं "षडशीतिर्युगं" "चत्वारोऽष्टकाः शम्ये"ति। उत्तरवेदिप्रसङ्गादेतत्सूत्रकृता स्मारितम्। अग्नौ चत्त्वारिंशत्पदोत्तरवेदिर्ह्यत्रोपदिष्टा युगमात्री तु कुत्रोपदेक्ष्यत इति शिष्यबुद्ध्याकाङ्क्षा भवति, तदर्थमिदमुच्यते युगमानोपदेशेन युगमितोत्तरवेदिरुपदिष्टा ज्ञेया तथा शम्यामात्रीत्यर्थः।

दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुस्तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोतीति क्षेत्रज्ञानम् ॥११ ॥

11. The diagonal cord of an ablong produces by itself both (squares) which the transverse side and the side produce if taken separately; this is the knowledge (requisite) for (the measurement of) areas.

दीर्घचतुरस्रे क्षेत्रे या तिर्यङ्मानी साऽन्यत्र करणीभूता यावत्समचतुरस्रं करोति तथा तस्मिन्दीर्घचतुरस्रे या पार्श्वमानी सान्यत्र करणीभूता यावत्समचतुरस्रं करोति तत्समचतुरस्रद्वयमेकीकृतं तस्यैव दीर्घचतुरस्रस्य याक्ष्णया रज्जुः, साऽयत्र करणीभूता समचतुरस्रं करोति। यथा पदं तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुर्दशकरणीति दीर्घचतुरस्रमुक्तम्। तत्र पदमात्री तिर्यङ्मानी करणी सती पदमात्रं क्षेत्रं समचतुरस्रीकरोति। त्रिपदा च पार्श्वमानी करणी सती नवपदक्षेत्रफलं समचतुरस्रीकरोति। त्रिप्रमाणा नवकरणीति वक्ष्यमाणत्वात्। तयोरक्ष्णया रज्जुः करणी सती नवपदफलं पदमात्रञ्च क्षेत्रद्वयमपि संक्षिप्य दशपदं समचतुरस्रं करोतीति युक्तमुक्तम्, कर्णस्य तिर्यङ्मानी-पार्श्वमानीवर्गद्वयैक्यमूलत्वात्। तथा द्विपदा तिर्यङ्मानी षट्पदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुश्चत्वारिंशत्करणीति दीर्घचतुरस्रं दर्शितम्। तत्र द्विपदा तिर्य्यङ्मानी करणी सती चतुष्पदफलं समचतुरस्रं करोति। द्विःप्रमाणा चतुष्करणीति वक्ष्यमाणत्वात्। षट्पदा च पार्श्वमानी करणी सती षट्त्रिंशत्पदफलं समचतुरस्रं करोति। यावत्प्रमाणा रज्जुर्भवति तावन्तस्तावन्तो वर्गा भवन्ति, तान्समस्येदिति वक्ष्यमाणत्वात्। तयोरक्ष्णया रज्जुश्चतुष्पदफलं षट्त्रिंशत्पदफलञ्च क्षेत्रद्वयमेकीकृत्य करणी सती संक्षिपति। चत्वारिंशत्पदफलं समचतुरस्रं करोतीति युक्तमुक्तम्। तथा प्रमाणं तिर्यग्द्विकरण्यायामस्तस्याक्ष्णया रज्जुस्त्रिकरणीति दीर्घचतुरस्रान्तरं वक्ष्यति। तत्रापि प्रमाणं करणीभवदेकं क्षेत्रं समचतुरस्रीकरोति।। द्विकरणी तु द्वे। तयोरक्ष्णया तदुभयं क्षेत्रं करणी सती

संक्षिपतीत्यपि युक्तम्। नन्वेतेषां त्र्यस्त्रीणामेव तिर्यङ्मानी-पार्श्वमान्यक्षणयोदाहृता न दीर्घ-चतुरस्राणामिति चेत्, मैवम्, तानि त्र्यस्त्रीण्येव द्वैगुण्येन दीर्घचतुरस्राणि तावत्तावत्तिर्यङ्मानी-पार्श्वमान्यक्षणयानि भवन्ति इति साम्यात्त्र्यस्त्रीण्यपि चतुरस्रत्वेनोदाहृतानीत्यदोषः। एतत्क्षेत्रज्ञानार्थमुपदिष्टम्। तेनैतस्यैव सूत्रस्य प्रपञ्चो दशकरणीचत्वारिंशत्करणीत्रिकरण्यादि-सूत्राणीत्यर्थः। एवमनुक्तक्षेत्राणामपि वृद्धिर्ज्ञेया। अत एवास्माभिः शुल्बवार्तिके उक्तम्—

एकोनेष्टस्य करणी पार्श्वे तिर्यगथैककम्।
तत्कर्ण इष्टकरणीत्येवं सर्वत्र दृश्यताम्॥इति।

यथा इष्टा पञ्चकरणी। तत्रैकोनेष्टकरणी चतुष्करणी द्विःप्रमाणा पार्श्वमानी। एककरणी तिर्यङ्मानी। तयोरक्षणया पञ्चकरणी भवतीत्यादि ज्ञेयम्। अन्यदपि वार्तिके उक्तम्—

यावती करणीष्टा सा सङ्ख्या भेद्या द्विधेच्छया।
तिर्यक्पार्श्वे तत्करण्यावक्षणयेष्टकरण्यपि॥इति।

यथा चत्वारिंशत्करणीष्टा, सा चत्वारिंशत्सङ्ख्येच्छया द्विधा भक्ता षट्त्रिंशच्चत्वारि चेति। तत्र षट्त्रिंशत्करणी षण्माना पार्श्वमानी चतुष्करणी तु द्विमाना तिर्यङ्मानी। तदक्षणया चत्वारिंशत्करणीत्यादि।

समचतुरस्रस्याक्षणया रज्जुर्द्विकरणी॥१२॥

12. The diagonal cord of a square produces the double (of the square produced by the side).

समचतुरस्रस्य क्षेत्रस्य याक्ष्णाया कर्णरज्जुः, सा करणी सती तावत्समचतुरस्रं द्विगुणं करोति। समग्रहणं दीर्घचतुरस्रव्युदासार्थम्। करणीवर्गौ हि क्षेत्रफलम्। तिर्यङ्मानी-पार्श्वमान्योर्यौ वर्गौ तदैक्यमूलं चाक्षणया। समचतुरस्रे च तिर्यङ्मानी-पार्श्वमान्यौ करणीतुल्ये एव। आश्वमेधिकचयने आद्योऽग्निर्द्विगुण इत्युक्तम्। तत्र द्विस्तावायामेऽस्या उपयोगो वक्ष्य-माणत्रिकरण्याश्च। क्षेत्रज्ञापने च।

करणीं तृतीयेन वर्धयेत्तच्च स्वचतुर्थेनात्म-
चतुस्त्रिंशोनेन सविशेष इति विशेषः॥१३॥

13. Increase the cord = side of a square by its third, the third again by its fourth part less its (the fourth part's) thirty-fourth part; this is the difference (of *karaṇī* and *dvi-karaṇī*); thus the term *viśēṣa* is explained (see the comm. for a different explanation of the last words).

द्विकरणीप्रमाणम्। या पूर्वं समचतुरस्रस्याक्ष्णया द्विकरणी उक्ता, सा कियती भवतीति स्वरूपज्ञानार्थमिदं सूत्रम्। द्विगुणीकर्तुमिष्टस्य समचतुरस्रस्य करणीं स्वतृतीयांशेन वर्द्धयेत्। तृतीयांशं स्वचतुर्थांशेन वर्द्धयेत्कीदृशेन स्वकीयचतुस्त्रिंशांशहीनेन। यथा द्वादशाङ्गुलकरणीकं समचतुरस्रं द्विगुणीकर्तुमिष्यते। तस्य करणी तृतीयांशेन वर्द्धितषोडशाङ्गुला भवति। स च तृतीयोंऽशश्चतुरङ्गुलात्मकः स्वकीयतुरीयांशेनाङ्गुलेन स्वचतुस्त्रिंशभागोनेन वर्द्धनीयः। अत्राङ्गुलस्योदरदेशमिताश्चतुस्त्रिंशत्तिला अवयवाः कथ्यन्ते। तत्र तिलोनसप्तदशाङ्गुला द्विकरणी भवति। अत्रात्मचतुस्त्रिंशेन भागेन स्वत्रयस्त्रिंशांशाधिकेनेति चतुस्त्रिंशो भागो विशेषणीयः। तदा सूक्ष्मतरमायातीति वार्तिके दर्शितमस्माभिः। सूत्रकृता त्वल्पान्तरत्वाच्छिष्यबुद्धिक्लेशो मा भूदित्ययमंश उपेक्षितः। ततश्च षोडशाङ्गुलानि द्वात्रिंशत्तिलास्त्रयस्त्रिंशांशोनश्चापरस्तिल इति सूक्ष्मद्विकरणीस्वरूपम्। करणीतो वर्द्धितोंऽशो यः स करणीद्विकरण्योर्विशेषो भेदको भवतीति विशेषो भेदोऽक्ष्णयायां करणीतः। अथवा इति विशेषः। अस्य भेदकस्य विशेषव्याख्या ज्ञेया। अत एवापस्तम्बस्तद्विशेषमभ्यस्य लक्षणं कृत्वार्द्धं मा गमयेदिति व्याजहार। इदं द्विकरण्यां प्रमाणं स्वरूपत उक्तम्।

प्रमाणं तिर्यग्द्विकरण्यायामस्तस्याक्ष्णया रज्जुस्त्रिकरणी ॥१४॥

14. Take the measure (i.e. the side of a square) for the transverse side, the diagonal of the square for the long side (of an oblong); the diagonal of this (oblong) produces three (squares of the original measure).

त्रिगुणीकर्तुमिष्टस्य क्षेत्रस्य करणी प्रमाणशब्देनोच्यते। सा तिर्यगिति तिर्यङ्मानी भवति यस्मिन् क्षेत्रे तथा तस्यैव त्रिगुणीचिकीर्षितक्षेत्रस्याक्ष्णया द्विकरणी आयामः पार्श्वमानी भवति यस्मिन् क्षेत्रे तस्य दीर्घचतुरस्रस्य त्र्यस्रिणो वा क्षेत्रस्याक्ष्णया तिर्यङ्मानी-पार्श्वमान्योरयं प्रापिताकरणरूपा रज्जुः। सा करणी सती तत्त्रिगुणीचिकीर्षितं समचतुरस्रं क्षेत्रं त्रिगुणीकरोति। आश्वमेधिकचयने त्रिस्तावायामेऽस्या उपयोगः। वक्ष्यमाणतृतीयकरण्याश्च सौत्रामणीवेदि-साधिकायां एकोनेष्टस्य करणीत्यादिपूर्वोक्तश्लोकस्यैवायमर्थ उक्तः।

तृतीयकरण्येतेन व्याख्याता ॥१५॥

15. Thereby the cord which produces the third part (of a given square) is explained.

सौत्रामण्यामुक्तं प्रक्रमतृतीयेनावृत्तेनेति। तत्र प्रक्रमतृतीयं प्रक्रमस्य तृतीयो भाग इति न, किन्तु प्रक्रमक्षेत्रतृतीयांशं या करणी समचतुरस्रीकरोति, सोच्यते। सैव चेयं तृतीयकरणी। तयैव प्रक्रमत्वेन कल्पितया सोमवद्या वेदिर्मीयते सा सौमिक्या वेदेस्तृतीयांशरूपा भवति। एवं हि श्रूयते। वितृतीये यजेत वितृतीयं वै सोमस्य सौत्रामणीति। सा तृतीयकरणी

त्रिकरणीकथनेनैवोक्ता भवति। कथं त्रिकरणीज्ञानात् तृतीयकरणी ज्ञाता भवति तच्छिष्यानुजिघृक्षया सूत्रकृदेव विवृणोति।

प्रमाणविभागस्तु नवधा ॥१६॥

16. The division of the (original square) measure is to be nine-fold (when we want to find the *tṛtīya-karaṇī*).

सूत्रे त्रिपदः प्रक्रमः पठ्यते। त्रिपदमानया करण्या समचतुरस्रीकृतं क्षेत्रं नवपदं भवति। द्वादशाङ्गुलञ्च पदमित्युक्तम्। तत्क्षेत्रं तिर्यङ्मानीद्वये पार्श्वमानीद्वये च त्रिधा त्रिधा विभज्य द्वे प्रागपरे द्वे दक्षिणोत्तरे सूत्रे मध्यतो दत्त्वा नवधा विभक्तव्यम्। पदपदक्षेत्रफलको यथैकांऽशो भवति।

करणीतृतीयं नवभागः ॥१७॥

17. The third part of the side (produces) the ninth part (of the square).

यस्य क्षेत्रस्य या त्रिपदा करणी, तस्यास्तृतीयांऽशो यः पदं स करणी सन् प्रक्रमनवभागं संक्षिपतीत्यर्थः। तृतीयेन नवमोंऽश इति वक्ष्यमाणत्वात्। तन्न पदमात्रम्।

नवभागास्त्रयस्तृतीयकरणी ॥१८॥

18. Three ninth parts (of the square) give (if combined into one square) that side which produces the third part (of the original square).

प्रक्रमक्षेत्रस्य नवमे भागे समचतुरस्रेऽक्षणया रज्जुर्नवमभागद्विकरणी सा पार्स्वमानी नवमभागकरण्योश्च तिर्यङ्मानी तयोरक्षणया रज्जुः करणी सती यत्समचतुरस्रं करोति, तत्र नवभागास्त्रयः संक्षिप्ता भवन्ति सैव तृतीयकरणी भवति। तृतीयकरण्येतेन व्याख्यातेति यदुक्तं तस्यायं प्रपञ्चः कृतः। तृतीयकरण्याः प्रयोजनमिदानीमाह।

सौत्रामण्यां प्रक्रमार्थम् ॥१९॥

19. At the *Sautrāmaṇī*— sacrifice it (viz : the *tṛtīyakaraṇī*) is employed instead of the *prakrama*.

तृतीयकरणीत्यनुवर्तते। सा सौत्रामण्यां प्रक्रमो भवति। एतदर्थमियमुक्ता। तया सोमवद्वेदिर्मीयते या सौमिक्या वेदेस्तृतीयांशरूपा भवेत्। परिशिष्टे चोक्तम्—

पदस्याक्षणया तिरश्ची चान्तयोरक्षणया भवेत्।

सौत्रामण्यां निमातव्या वेदिः स्यात्सोमवत्तय ।।इति ।

पदक्षेत्रस्याक्ष्णया पार्श्वमानी तिरश्ची तिर्यङ्मानी तयोरक्ष्णया तृतीयकरणी सौत्रामण्यां प्रक्रम इत्यर्थः । एवञ्च परिशिष्टकृतोऽपि त्रिपदप्रक्रमतृतीयांश एव सौत्रामण्यां प्रक्रमक्षेत्रमिष्टमिति गम्यते । केचित्तु सोमे तु द्विपदो भवेदिति । यः परिशिष्टे द्विपदः सौमिकः प्रक्रम उक्तः, तत्तृतीयभागसंक्षेपिकां तृतीयकरणीमाहुः, तन्न, पदस्याक्ष्णयेत्यादिपरिशिष्टवाक्यान्तरविरोधापातात् । तेन चयनवेदिरपि सोमवेदिरेव अग्निः सोमाङ्गमित्युक्तत्वात् । तत्र यः प्रक्रमस्त्रिपदस्तस्य तृतीयभागसंक्षेपिका या करणी, सैव सौत्रामण्यां प्रक्रमः । चयनानन्तरं च तदङ्गत्वेनापि श्रुतौ सौत्रामणी पठितेति सैव वेदिः प्रस्तुता द्विपदप्रक्रमस्य त्वनग्निकसोमवेदिर्विषय इति युक्तमुत्पश्यामः । अस्या एव च वेदेर्दुर्बोधत्वं परिशिष्टे पठन्ति —

अज्ञात्वा शुल्बसद्भावं यज्ञे सौत्रामणीसुते ।
वेदिं ये कर्त्तुमिच्छन्ति गिरिं भिन्दन्ति ते नखैः ।।इति ।

त्रिकरणी समासार्था ।।२० ।।

20. The *trikaraṇī* serves for the purpose of combining (areas) (on the purpose of this *Sūtra,* see the Comm.)

सौत्रामण्यां तृतीयकरण्याः प्रयोजनं तत्कथनमिह युक्तम् । त्रिकरणी किमर्थमुक्तेति तस्याः प्रयोजनकथनमेतत् । तृतीयकरण्यर्थं प्रक्रमनवभागास्त्रयः समसनीयाः स समासस्त्रिकरण्यैव कर्तुं शक्यस्तदर्थमियमुक्ता । अथवा त्रिगुणक्षेत्रसमासप्रदर्शनार्था त्रिकरणी तयाश्वमेधे त्रिस्तावापि सिध्यति ।

तुल्यप्रमाणाना꣡ᳫ समचतुरस्राणामुक्तः समासः ।।२१ ।।

21. (By the preceding rules) the combination of squares of equal size is (fully) explained.

दशकरणीचत्वारिंशत्करणीद्विकरणीत्रिकरणीकथनेन दिग्दर्शनरूपेण कल्पोपयुक्तस्तुल्यप्रमाणसमचतुरस्रसमासः क्षेत्रज्ञानार्थोऽप्युक्तः । पञ्चकरण्याद्यकथनात् सर्वेषां नोक्त इति चेत् । दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुस्तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी चेत्यादिना सूत्रेण दिग्दर्शनरूपेण सर्वेषामप्युक्तस्तत्रैवार्थे चैको नेष्टस्येत्यादिः श्लोकोऽस्माभिर्दर्शितः । एतेन च सूत्रेण सूचितोऽर्थः स्वयमेवाभ्यूह्य इत्याचार्यः प्रदर्शयति । अन्यथैतत्सूत्रप्रणयनमनर्थकं स्यात् । ततश्च येषां पञ्चादिसूत्राणां समासः साक्षान्नोक्तस्तेषामपि प्रकारान्तरेणोक्त एवेत्ययमेवास्यार्थः ।

नानाप्रमाणसमासे ह्रसीयसः करण्या वर्षीयसोऽप-
च्छिन्द्यात्तस्याक्ष्णया रज्जुरुभे समस्यतीति
समासः ॥२२ ॥

22. For the combination of squares of different area one is to cut off the side of the bigger one with the side of the smaller one (i.e. one cuts off from the bigger one an oblong, the shorter side of which is equal to the side of the smaller one); the cord diagonal to this (oblong) combines both (squares).— These are the rules for combining.

समचतुरस्राणामित्यनुवर्त्तते। पृथक्प्रमाणानां समचतुरस्राणां समासे कर्त्तव्ये ह्रस्वतरस्य करणीमानेन वृद्धतरस्य दिग्गतकरणीं तिर्यङ्मानीं पार्श्वमानीं वैकस्मात्कोणान्मित्वापच्छिन्द्याच्चिह्नयेदधिकांशं जह्यादित्यर्थः। तस्मादेव कोणादपच्छिन्नकरण्यपच्छेदपर्यन्तं तिर्यङ्मानी वा पार्श्वमानी वा। तस्मादेव च कोणाद्वृद्धतरक्षेत्रस्यान्या दिक्करणी तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी वा तयोरक्ष्णयापच्छेदाद् वृद्धतरकरण्यग्रं यावत्प्रवृत्तापच्छेदादधिकं भागं बहिष्कुर्वती अपच्छिन्नांशं तु त्र्यस्रिक्षेत्रान्तःकुर्वती दत्तान्यत्र चेत्करणी क्रियते तदा सा ह्रसीयो वृद्धतरं च तत्क्षेत्रद्वयं संक्षिप्य समचतुरस्रीकरोति। पुनस्तस्मिंश्चतुरस्र उक्तयुक्त्या भिन्नप्रमाणं चतुरस्रान्तरमपि प्रक्षेप्यम्, इत्यभिप्रायेण समचतुरस्राणामिति बहुवचनान्तमनुवृत्तं पदं व्याख्येयम्। यथा द्वादशाङ्गुलकरणीकाष्टाङ्गुलकरणीकसमचतुरस्रयोः समासे द्वादशाङ्गुलस्याधो दिग्गतकरण्यां तिर्यङ्मान्यामेकतः श्रोणेरष्टाङ्गुलेष्वपच्छिद्य चतुरङ्गुलां करणीं हित्वापच्छेदात्पार्श्वमान्यग्रं यावत्तथाक्ष्णयां नयेद्यथाऽष्टाङ्गुला तिर्यङ्मानी द्वादशाङ्गुलपार्श्वमानी यस्य तादृशं त्र्यस्रिक्षेत्रं भवति। साक्ष्णयाकरणी सती यत्समचतुरस्रं करोति तस्मिन्द्वादशाङ्गुलाष्टाङ्गुलयोः समासो भवति। एवं तुल्यप्रमाणनानाप्रमाणक्षेत्रसमास उक्तः ॥

॥ इति नैमिषीयसोमसुतरामचन्द्रकृतायां शुल्बसूत्रवृत्तौ
द्वितीया कण्डिका समाप्ता ॥

॥अथ विचारमाधुकरी[1] ॥

तत्रादौ शककालविचारः[2]

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः—भगवद्गीता।

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतेषु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥
सत्याश्रयस्य परमात्मवता प्रसादम्।
निर्म्मापितं मतिमता रविकीर्त्तिनेदम्॥

वसन्ततिलकायां जिनायतनमिति शेषः। तद्भित्तौ प्रशस्तिपट्टे[3] स्थिताः समनन्तरोक्ताश्चरणाः। अपाणिनीयस्त्रिंशत्पञ्चाशतोर्बहुवचनान्तः प्रयोगः कालिदासादीनां विश्रामादिवत् कविनिरंकुशत्वेन व्याकरणान्तरसमाश्रयणेन वा समाधातव्यः। त्रिंशत्स्वित्यत्र पञ्चाशत्स्वित्यत्रेव चकारोऽध्याहर्तव्यः। पञ्चशतेष्विति बहुवचनान्तः प्रयोगोऽपि चिन्त्यः। तत्समनन्तरोक्तश्चकारः शककालसमुच्चयार्थः। शकानामिति भवभूत्यादेः कविभ्य इत्यादिवत् पूजायां बहुवचनम्। स च योग्यत्वाच्छालिवाहनः। अनयोः स्वरसतस्त्रयः शककाला अनुष्टुभोरुक्ताः। एक इतोऽन्तः। द्वितीयः कालेऽन्तः। शेषस्तृतीयः। सत्याश्रयः पुलकेश्यपरनामा दाक्षिणात्यचुलुक्यवंशमुक्तामणिः कादम्बरीकृदाश्रयदानलब्धकीर्तिहर्षवर्द्धनसमकालीनः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः कश्चिज्जिनभक्तः।

॥अथ शककालोपपत्तिः॥

३००० + ३० = ३०३०—भारतादाहवात्।

६ + ५०० = ५०६

२५२४—शकानां भूभुजाम्।

---

१. माधुकर्या महाराष्ट्र्यामनुवादो विविधज्ञानविस्ताराख्ये (पु. १५, अं॰ २) गौर्जर्यां चाऽऽर्यज्ञानवर्धकाख्ये (अं॰ २९) मासिकपुस्तके द्रष्टव्यः।

२. पं. ६, न्यू सि. (१८८४) २७३-२८०.

३. अशेषं शिलालेखं दिदृक्षमाणैः सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमं पृष्ठं (Indian Antiquary, Vol. VIII.) द्रष्टव्यम।

७०० + ५ + ५० = ७५५—कलौ काले गते भारत आहवः। युधिष्ठिराभिषेकेण तच्छकारम्भ इति यावत्। एवं दाक्षिणात्यो यौधिष्ठिरः शककालः २५२४ वर्षाणि भवति।

(२) वराहमिहिरधृतो वृद्धगर्गस्तु षड्द्विकपञ्चेत्याह।

षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्चेति बृहत्संहितायां[१] सप्तर्षिचारे वराहाचार्यः। स च सप्तर्षिचारो वराहाचार्येण वृद्धगर्गसंहितायाः स्वसंहितायामवतारित इति कथयिष्ये वृद्धगर्गमतादित्युपक्रमतो विस्पष्टम्। अतो वृद्धगर्गवचनमिदं द्योतयेद् वृद्धगर्गकालम्। वराहमिहिरकालं तु कथञ्चनापि न द्योतयेत्। वचनमिदमवतारयताऽऽचार्येण केवलं ग्रन्थ-विस्तरस्यार्थमिति मुख एव कृता प्रतिज्ञा निर्वाहिता। एवं सत्यत्राऽऽचार्यस्य स्वकालाभि-धानभ्रमः पौर्वापर्यानवबोधमूलकः।

(३) तरङ्गिणीकारो[२] वराहमिहिरधृतं वृद्धगर्गं प्रमाणयति।

तरङ्गिणी राजतरङ्गिणीनाम्ना प्रसिद्धः कश्मीराणामितिहासः शकस्यैकादशे शतके पादशेषे प्राक्तनांस्तद्विषयकान् प्रबन्धादीनालोच्य कल्हणपण्डितेन विरचितः।

(४) तद्बहुवचनं संहिताकारैरिति तु पूजायां ज्ञेयम्।

उच्चारे संहिताकारैरेवं दत्तोऽत्र निर्णय इत्याह कल्हणः प्रथमस्यैव तरङ्गस्य भूमिकायाम्। उच्चारः (?) = चारः। संहिताकारैर्बृहत्संहिताकारैः। वराहाचार्यैरित्यर्थः। शकस्य नवं शतकं स्वयशःपूरेण श्वेतयता भट्टोत्पलेनापि सूर्यावतारत्वेन वर्णितत्वात् सवितृलब्धवरप्रसाद इत्याचार्येणैव तच्छिष्येण वा केनचिद् बृहज्जातकान्ते कथितत्वाच्च पूजैषा न विस्मयमा-वोढुमर्हति। एवं कल्हणस्यापि यौधिष्ठिरशककालाभिधानपरत्वेनैवैतद्वचनादरो न वराह-मिहिरकालाभिधानपरत्वेनेति ततोऽन्यथा लापनिका निर्मूलत्वेन हेया।

(५) एवमौत्तराहाणां शालिवाहनशके वर्षद्वयमधिकम्।

षड्द्विकपञ्चद्वियुत इति तैरास्थितत्वात्।

(६) हर्षस्य कश्मीरलाभो जयेनान्यथा वा षड्विंशे। तत्सममेव तदूर्ध्वमेव वा शालिवाहनेन दक्षिणदिग्विजयोद्यतस्य हर्षस्य पराभवः।

१. आर्या ३, पृ. ८५, बृहत्संहिता कलिकत्ताख्ये नगरे मुद्रिता।

२. आर्या ५६, पृ. ३, राजतरङ्गिणी कलिकत्तायां मुद्रिता।

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्षापराभिधः। एकच्छत्रश्चक्रवर्त्ती विक्रमादित्य इत्यभूदिति तृतीये तरङ्गे[१] कल्हणपण्डितवचनम्। तदादरेण हर्षो विक्रमादित्य इत्यनर्थान्तरम्। विक्रमो विक्रमादित्य इति वंशनाम रूढं वा योगरूढं वा मूलपुरुषतो नन्दमौर्यादिवत्। जयेन कश्मीरलाभस्य कुतोऽपि मातृगुप्ताख्यानेऽनुक्तावपि सिंहासनप्रत्यानयनकथया[२] जयेनैव हर्षस्य कश्मीरलाभः कल्हणेन वस्तुतः सूपपादितः। काश्मीरिकाणां राज्ञां सिंहासनस्योज्जयिनीं प्रति नयनं जितानेकोपमर्दजनन्या जयलक्ष्म्या वृतेनैव हर्षेण कृतं सम्भाव्यते नान्यथेति जयेनैव कश्मीरलाभो हर्षस्य भवितुमर्हति। कल्हणेन हर्षस्यैकच्छत्रत्वेन वर्णितत्वात् कश्मीरलाभात् परं सममेव वा शालिवाहनकृतः पराभवोऽवगन्तव्यो न प्राक्।

(७) गर्गः कश्मीरनिवासः कश्मीराभिजनो वा।

यत्र स्वयमुष्यते स निवासः। यत्र पूर्वैरुषितं सोऽभिजनः। हर्षः शालिवाहनसमकालीनः। अतः काश्मीरिको वैक्रमः शकः शालिवाहनशकतो न भिद्यते। एवं गर्गोक्तः शकः काश्मीरिको वैक्रम इति फलितम्।

(८) गर्दादिभिर्भिल्लादिभिर्लोपं प्रापिते वैक्रमे वंशे विद्याभिः कश्मीरादयः पर्यन्तजनपदाः स्वाधिष्ठानत्वेन वृताः।

अत्रैतदवधेयम्। विष्णुपुराणाद्युक्ता गर्दभिल्लादयः समकालीनत्वेन ग्राह्याः। न पौर्वापर्येण, अयोग्यत्वात्। हर्षस्य पुत्रः प्रतापादित्यः शीलादित्यापराभिधो वैरिणा निर्वासित इत्याह कल्हणः। अयं वैरी सौराष्ट्रक आसीदित्यनुमीयते। सौराष्ट्रोत्पादनसमनन्तरमेव प्रतापादित्यस्य पुना राज्यप्राप्तेः कल्हणेनाभिहितत्वात्। अयं सौराष्ट्रको वैरी चष्टनपुत्रो जयदामो भवितुमर्हति[३]। भिल्लजातीयेन गर्देन स पुनर्निर्वासितः। अवन्तीनां राजधान्युज्जयिनी। तत्र गर्दभिल्लो नाम राजेति जैनाः[४]। गर्दभीविद्येत्यादिनामनिर्वचनप्रयासः शकुन्तलादिनामनिर्वचनप्रयासवदकिञ्चित्करः। कालकाचार्यस्योपसिन्धु गमनाद् राजा क्षत्रपो रुद्रदामा भवितुमर्हति। स गर्दं समूलमुन्मूलयामास। रुद्रदाम्नो नियोगेन सुराष्ट्रान् कश्चित् पल्हवामात्यः शशासेति सुदर्शनशिलालेखे श्रूयते। ततोऽप्यनुमीयते। तद्भिन्नश्चष्टनादीनां जनपदो भवितुमर्हतीति। काश्मीरिकैः प्रतापादित्यस्य प्रतिद्वन्द्विषु सौराष्ट्रकत्वारोपस्तत्प्रायत्वाज्ज्ञेयः। हतविधिललितेषु रुद्रदामवंश्येषु गौतमीपुत्रपरिग्रहत्वेनोज्जयिन्याः सुप्रसिद्धत्वात्तच्छासितृणां[५] तद्वल्लभानां वा गुप्तानां शककर्तृसम्बन्धाभिमानित्वाभावाच्च प्रायः

---

१. श्लो. १२५, पृ. २६, राजतरङ्गिणी।

२. श्लो. ३३३, पृ. ३३ राजतरङ्गिणी।

३. जयदाम्नः पराक्रमित्वे सुदर्शनसरः शिलालेखः (No. XXII January 1862. Jour. B.B.R.A.S.) प्रमाणीकर्तव्यः।

४. पृ. १४२, Vol. IX, Jour. B. B. R. A. S.

५. पृ. ४१, July, 1853, Jour. B. B. R. A. S.

प्रतिष्ठासमनन्तरमेव वैक्रमशकलोपस्यात्यन्तिकत्वं विज्ञायते। अपूर्वस्य शकस्य प्रवर्तितत्वे-नाभिमानित्वाभावः। बाणेनोज्जयिनीसम्बन्धस्य[१] स्पष्टमभिहितत्वाच्छालिवाहनीये षष्ठे शतके तु गुप्तानां तद्वल्लभत्वे न काचिद् विप्रतिपत्तिः।

(९) एवं गुप्तकालात् प्रागराजकेऽनेकराजके वा काले गर्गवराहमिहिरादीनामुदयः।

प्राग्ग्रहणमतन्त्रम्। केषाञ्चिदुदयस्य गुप्तकालारम्भे केषाञ्चिच्च स्कन्दगुप्तादीनां कालेऽपि सुप्रसिद्धत्वात्। अराजकत्वं प्राय एकातपत्रत्वाभावात्। आवन्तिको वराहमिरिहः। अवन्तयोऽभिजना अस्य। न हि कश्मीरनिवासः कश्मीरेष्वात्मानं काश्मीरिकमभिधत्ते। आदिशब्देनार्यभटादीनां ग्रहणम्।

(१०) महापराक्रमिभिर्गुप्तैर्नवीनस्य शकस्य प्रवर्तितत्वाद् बलभीश्वरैस्तत्सेनापतिभिस्तस्यैवानुगृहीतत्वाद् वैक्रमः शको मध्यदेशे सुराष्ट्रादिषु च लुप्तप्रायः कश्मीरादिष्ववशेषितः।

महापराक्रमिणः समुद्रगुप्तकुमारगुप्तस्कन्दगुप्ताः। समुद्रगुप्तः कुमारगुप्तपितामहः। कुमारगुप्तस्कन्दगुप्तौ पितापुत्रौ। स्कन्दगुप्तस्य महापराक्रमित्वे सुराष्ट्रशासकत्वे च सौराष्ट्रकः शिलालेखोऽपि[२] प्रमाणम्। रूप्यपरीक्षयाऽऽहुः। सुराष्ट्रेषु पूर्वं रुद्रदामवंशः[३]। परश्चादनन्तरो गुप्तवंश इति, तन्न विचारसहम्। शालिवाहनशकात्प्राक् प्रवृत्तत्वेन शाहिकालस्य तथात्वे गुप्तकालारम्भ एव कुमारगुप्तेन शाहिवंशसमुच्छेदापत्तेः[४]। अत उभावन्तरा गौतमीपुत्रनिवेशो युक्तः। तेन रुद्रायितं रुद्रदामवंशं प्रति न कुमारगुप्तेन। रुद्रदामवंश्यान् प्रति रूप्यतो गुप्तानामानन्तर्ये तु न विवादः। कुमारगुप्ते दिवमुपेते विप्लुतां राज्यलक्ष्मीं समुद्धृत्य स्कन्दगुप्तेन सुराष्ट्रेषु पर्णदत्तस्थापनमिति कुमारगुप्तस्य पूर्वं सुराष्ट्राणां लाभो गौतमीपुत्र-वंश्येभ्यो भवितुमर्हति। स्कन्दगुप्तेन नियुक्तः पर्णदत्तो वलभीलेखोक्तो लोकोक्तश्च सेनाप-तिर्भवितुमर्हति। स्कन्दगुप्तस्य शक्तित्रयासम्पन्नता लोकोक्ताऽप्यसम्भवदोषानाघ्रातापि शिलालेखविरोधादुपेक्ष्या। असम्भवदोषानाघ्राता लोकोक्तिः शिलादिलेखाऽभावे सर्वथा प्रमाणम्। शिलादिलेखसत्त्वे तु तदविरोधिनी प्रमाणम्। नेतरा। राजा भट्टारको देव इति भट्टारकाऽपभ्रंशो [५]भटार्क इति शब्द एष जातिवाचकस्तद्वंश्यैः सेनापतित्वमपह्नोतुकामैः

---

१. पृ. १०५ हर्षचरितम् (कलिकत्तायां मुद्रितम्)।

२. पृ. १२८, July 1853, Jour. B. B. R. A. S.

३. पृ. १०, July 1853, Jour. B. B. R. A. S.

४. शाहिवंशसमुच्छेदकालो नवत्यधिकद्विशततमं द्विनवत्यधिकद्विशततमं वा शाहिवर्षम् (July 1853, Jour. B. B. R. A. S.)

५. पृ. ३५९, Vol. XI, Jour. B. B. R. A. S.

प्रयुक्तो भाति। अव्यवच्छिन्नराजवंशादिति पञ्चम्युपादानप्रयासतस्तत्पुत्रशब्दविरहतश्चाऽतत्पुत्रेण तद्वंश्येन गुहसेनेनापूर्वराजपदपरिग्रहः कृतः स्यात्। सेनापतिवंश्यानां सुराष्ट्रलाभो न क्वचिदपि लेखे जयपूर्वकमुपपादितो न च कस्यापि वलभीश्वरस्य गुप्तादिवंशमणीनामिव विजेतृत्वं कुतोऽपि श्रूयत इति वैष्णवगुप्तप्रतापानले निर्वाणभूयिष्ठ एव निर्वाणे वा गुहसेनस्य परममाहेश्वरस्य राजपदलाभः सम्भाव्यस्तद्वंश्यानां च प्रबलविजेत्रदर्शनेन नात्यल्पं कालमपराक्रमिणामपि सुखेनैव भोगभाक्त्वमुपपादनीयम्। आर्येतरनिग्रहः सुदर्शनशिलालेखोक्तो मैत्रकाणां म्हेतर इति प्रसिद्धानां शूद्राणां शूद्रप्रायाणां वा निग्रहः स्यात्। गुप्तकालस्य द्वितीयशतकान्ते बुद्धगुप्तः[१]। तदा ततो वा स्वल्पेनैव कालेन तृतीयशतकारम्भे तृतीयशतकस्य प्रथमे वा पादे व्यतीते राजपदभाजां गुहसेनादीनां वलभीश्वराणां कालोऽसङ्गत्यभावाद् गुप्तकाल एव भवितुमर्हति। अत्र द्वयोरभेदं प्रतिपादयन् बीरुणिरप्यनुसन्धेयः। शककालस्य चत्वारिंशदुत्तरयोः शतयोर्द्वयोर्गतयोरेकचत्वारिंशाद्गुप्तकालारम्भ इति बीरुणिः। मध्यदेशो मनूक्तः। आदिशब्देनानर्तादिपरिग्रहः।

(११) स कश्मीराणां गौडानां च प्रभुतायां पुनः प्रचारितः।

स्थानेश्वरः श्रीकण्ठानां राजधानी। तत्र पुष्पभूत्याख्यस्य राजर्षेर्वंशः प्रतिष्ठामाप। तस्य मौलिमाणिक्यायमानो हर्षवर्धनः पुलकेशिसमानकालीन आसीत्। इवल्लीशिलालेखः शकानां सप्ताधिकपञ्चशततमे वर्षे रविकीर्त्तिना सत्तामापादितः। तत्र भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्ष इत्युक्तम्। एष हर्षः सकलोत्तरापथमण्डलचक्रवर्त्तीति तस्य पुलकेशिना पराजयात् परमेश्वर इति पदं चुलुक्यवंशीयैरुपात्तमिति[२] च पुलकेशिपुत्रादीनां ताम्रलेखेषु श्रूयते। हर्षस्य महापराक्रमित्वं बाणकृतितोऽपि विज्ञायते। तत एव हर्षपितुर्हूणहरिणकेसरित्वं[३] हर्षभ्रातुश्च हूणदण्डनायोत्तरापथं प्रति प्रस्थानमवगन्तव्यम्। निर्दिष्टायां दिशि चीनोत्तरतो हूणानां प्रस्थानं[४] सन्निवेशनं च प्रमाणान्तरतोऽपि सिद्धम्। शालिवाहनीयस्य षष्ठस्य शतकस्यावसाने[५] तुरुष्कैर्हूणानां करदीकरणे पुष्पभूतिवंश्यैरसकृज्जनिताऽवनतिरपि कारणत्वेन वक्तव्या। नैष हर्षवर्धनो हर्षापरनामा विक्रमादित्यो[६] भवितुमर्हति। शकहूणयोरभेदाभ्युपगमेऽप्येतस्य कथमपि कश्मीरलाभस्य मातृगुप्तसम्बन्धस्य वा बाणेनानुक्तत्वात्। हर्षापरनामा विक्रमादित्य उज्जयिनीप्रियः। हर्षवर्धनस्य तु स्थानेश्वरो राजधानी। शककृत्काले सौराष्ट्रकाणां प्रभावशालित्वं स्वर्गं गत एव शककृति तत्पुत्रनिर्वासनश्रवणेनानुमीयते। तच्च प्रभावशालित्वं गुप्तकालात् प्राक्सम्भवति। हर्षवर्धनकाले तु श्रीकण्ठाः कान्यकुब्जा मालवा गौडा इति

---

१. पृ. २४७, Vol. VIII, Jour B. B. R. A. S.

२. January १८५१ Jour. B. B. R. A. S.

३. पृ. ८९, ११६ च (हर्षच.)।

४. पृ. १८, २२ च Vol. II, Gibbon, Chandos Library

५. पृ. ५५८, Vol. II, Gibbon, Chandos Library.

६. पृ. २२०, January 1861, Jour. B. B. R. A. S.

चतुर्षु प्रधानजनपदतत्त्वं परिसमाप्यते। नापि शालिवाहनीयस्य पञ्चमस्य शतकस्यावसाने षष्ठस्य वाऽऽरम्भेऽभ्युदयमापन्नो हर्षवर्धनः शालिवाहनीयस्य षष्ठस्य शतकस्य प्रथमे पादे गते यात्रानिमित्तेन चीनस्य त्सिंगस्य[१] तेषु तेषु जनपदेषु भ्रमतः समानकालीनः सुवचः। शीलादित्यो हर्षवर्धनपर्याय इत्याद्युल्लापा बाणाद्यनभिहितत्वेन निर्मूलत्वात् केवलं मनोराज्यविजृम्भितमित्युपेक्ष्याः। यदि त्सिंगसमानकालीनः कश्चिच्छीलादित्यः कान्यकुब्जाधिपतिः प्रमाणसिद्धो भवति, स राज्यश्रियः पुत्रो हर्षस्याऽपुत्रत्वाद्रिक्थादौ हर्षस्य वा पुत्रः पितृष्वसुरवीराया रिक्थादोऽस्तु। तस्मिन् त्सिंगस्य पुलकेशिप्रतिद्वन्द्वित्वभ्रमस्तु भाषानभिज्ञस्य श्रुतांशानवधारणोपादानत्वेन समाधेयः। उत्तरापथेश्वरादिदाक्षिणात्यैः प्रयुक्तं सन्दिग्धं पदं तदात्वेशितृशीलादित्यपरतया तत्त्वमजानानेन त्सिंगेन व्याख्यातमित्येतस्यापि पक्षस्यावकाश इति सुधीभिरूह्यमित्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या।

एतस्य पुष्पभूतिवंशस्य प्रभुतामनु कश्मीराणां प्रभुता। चिप्पटजयापीडस्य शालिवाहनीयस्याष्टमस्य शतकस्य द्वितीये पादे परलोकप्रस्थानादर्वाक् कल्हणोक्तिर्लौकिकवर्षमासतिथ्यादिविषयकसन्देहनिराकरणात् सर्वथा प्रामाण्यमर्हति। अत्र कश्चिदाह— सर्वथा दुष्टं कर्कोटकवंश्यवर्षपरिगणनं कल्हणस्य। हरिवेभ्यः परित्रस्तेन चन्द्रापीडेन चीनाधीश्वरस्य साहायकान्वेषणं शालिवाहनीयस्य सप्तमस्य शतकस्य पञ्चत्रिंशे। द्विचत्वारिंशे च राजपदेन चन्द्रापीडस्य चीनाधीश्वरेणानुग्रहः प्रमाणान्तरात् सिद्धः। कल्हणोक्तदिशा गमने तु द्वितीये राज्याभिषेको दशमे स्वर्गवासित्वं चापततीति त्रयस्त्रिंशद्वर्षविरोधात्[२] स्थालीपुलाकन्यायेन सर्वथा दुष्टमिति सुष्ठूक्तम्।

अत्रोच्यते— गोन्नदो गोनर्दो वा पञ्चत्रिंशतिमन्वशादित्युक्तम्[३]। पञ्चत्रिंशतमिति युक्तम्। बालादित्यस्य ज्यायान् भ्राता विक्रमादित्यो द्वाचत्वारिंशतिं[४] समा इत्युक्तम्। द्वाचत्वारिंशतमिति युक्तम्। रत्नप्रभादेव्यां जातो युधिष्ठिरः क्ष्मां च द्वाविंशतिं[५] समा इत्युक्तम्। क्ष्मां चत्वारिंशतं समा इति संग्रहतश्चकारस्य समुच्चयाभावतश्च युक्तः पाठः। प्रथमतरङ्गसमाप्तौ सङ्ग्रहश्लोकेऽष्टाविंशतिराजस्वित्युक्तम्। परिगणनेन राज्ञामेकविंशतित्वस्य सिद्धत्वेनैकविंशतिराजस्विति राजतरङ्गिण्यवसाने सङ्ग्रहोक्तस्यैव पाठस्यानुसरणं श्रेयः। पञ्चषष्ठे पृष्ठे षट्त्रिंशाब्दात्ययावधीत्युक्तम्। तस्य तरङ्गस्यैकत्रिंशवर्षान्तत्वाद् योग्यत्वाच्च षड्विंशाब्दात्ययावधीति युक्तम्। सर्वोऽप्येष लेखकापराधो मुद्रकापराधो वा न कल्हणस्य। सङ्ग्रहेऽपि ललितादित्यस्य राज्यं षड्विंशतिमेव वर्षाणि। जयापीडस्य तूक्तरीत्यैकविंशतिं वर्षाणि नैकत्रिंशतमिति ज्ञेयम्। तदन्तःपाति जज्जस्य वर्षत्रयम्।

---

१. पृ. ३१७, Vol. XVI, Jour. R. A. S. G. B. & I.

२. पृ. ९१, ९२, ९३ च, Cunningham's Geography of Ancient India.

३. श्लो. १९१, पृ. ७ राजतरङ्गिणी.

४. श्लो. ४७७ पृ. ३८.

५. श्लो. ३८१, पृ. ३५.

	व.	मा.	दि.	
*दुर्लभवर्धनः	३६	—	—	
दुर्लभः	५०	—	—	
चन्द्रापीडः	८	८	—	
तारापीडः	४	०	२४	
ललितादित्यः	२६	७	११	
कुवलयापीडः	१	०	१५	
वज्रादित्यः	७	—	—	
पृथिव्यापीडः	४	१	—	
संग्रामापीडः	०	०	७	
जयापीडः	२१	—	—	
ललितापीडः	१२	—	—	
संग्रामापीडः	७	—	—	
चिप्यटजयापीडः	१२	—	—	एकोननवते शान्तिमागतः
अजितापीडादयः	४२	—	—	एकत्रिंशेऽवन्तिवर्माभिषेकः
	व.	मा.	दि.	
	२३१	५	२७	

शालि. ७७७ अवन्तिवर्माभिषेकः

	व.	मा.	दि.	
	२३१	५	२७	
	५४५	६	३	
	८६	—	—	
	६३१	६	३	शालिवाहनाद् गतेषु चन्द्रापीडाभिषेकः ।

न काचिदेवमनुपपत्तिः — राज्ञो राजपदेनानुग्रहश्चीनानां केवलं निरर्गलः प्रलापः । न तावता प्रमाणान्तरासद्भावे चन्द्रापीडो द्विचत्वारिंशे तदूर्ध्वं वा प्रमीतो नैकचत्वारिंश इति सिध्यति । अकिञ्चित्करो वैष एकवर्षविरोधः । राजपदेनानुग्रहप्रदर्शनाय चीनाधीश्वरेण

*. पं. ६, न्यू सि. (१८८४) ३१०-३१९.

प्रहितानां पुरुषाणामतिदीर्घस्याध्वनः क्रमणे वर्षमपि गतं स्यादिति। तथात्वे नाममात्रशेषस्य चन्द्रापीडस्यानुग्रहोऽङ्गीकर्तव्यः। किलितो इति त्सिंगोक्तः कर्कटस्यापभ्रंशः। तद्वंश्ये कस्मिंश्चित् प्रशासति कश्मीरान् त्सिंगस्यागमनमिति प्रवरसेनस्य त्सिंगः समानकालीन इति यत् केनचिदुक्तं तत्परास्तं वेदितव्यम्। प्रवरसेनस्य कर्कोटवंशजातत्वाभावात् साधारणत्वाच्चानेकेषां काश्मीरिकाणां सवृद्धत्वस्य विहारनिर्मातृत्वस्य लिङ्गस्य। कर्कोटवंशस्य त्सिगेन श्रुतायास्तु निन्दाया अराजबीजित्वं[1] बीजम्। गोनन्दस्याग्रतो वर्षपरिगणनं विहायावन्तिवर्मणः पृष्ठतः परिगणनं तत्समनन्तरत्वेनासम्भवदोषानाघ्रातत्वेन च वर्षसंख्यायाः कर्कोटानां चन्द्रापीडाभिषेकवर्षनिश्चयाय। सङ्ग्रहकारेण पिण्डिता कर्कोटानां वर्षसंख्या मेघवाहनतद्वंश्यानां च वर्षसंख्या न प्रामाण्यमर्हतः। तत्रोक्तानां वर्षाणां सङ्कलनेऽप्रामाण्यस्य सूर्यवत्प्रकाशमानत्वात्।

	व.	मा.
मेघवाहनः	३४	—
तुंजीनः	३०	—
हिरण्यः	३०	२
मातृगुप्तः	४	९
मातृगुप्तः	१०	—
प्रवरसेनः	६०	—
युधिष्ठिरः	३९	३
नरेन्द्रादित्यः	१३	—
रणादित्यः	३००	—
विक्रमादित्यः	४२	—
बालादित्यः	३७	४
	व. ६००	६मा.

हर्षवर्धनप्रभृतिपराक्रमापह्नवपरस्य कल्हणस्य त्रीणि शतानि वर्षाणि रणादित्यस्य कश्मीरसिंहासनाध्यासनोक्तिरन्यत्रादृष्टचरमश्रुतचरं महासाहसम्। दश वर्षाणि कश्मीरोत्पत्तिमञ्जसा मातृगुप्ताय प्रजिघाय प्रवरसेनः। तावन्ति वर्षाण्यधिकं मातृगुप्तः प्राणान् दधार। अतो व्यतिक्रान्तेषु दशसु वर्षेषु क्रमेणोपचीयमानकोशदण्डतेजस एव प्रवरसेनस्य युक्ताऽभ्यमित्रीणतेति तस्य षष्ठिर्दशविरहिता भवितुमर्हति। एवमत्र शककृन्मातृगुप्तप्रवरसेनानां समकालीनताङ्गीकारो बाधकाभावेन नानुपपन्नः।

नैतच्छोधद्वयं स्वकपोलकल्पितं मन्तव्यम्, कल्हणोक्त्यन्तरेण सह संवादात्। प्रायस्तृतीयगोनन्दादारभ्य शरदां तदा द्वे सहस्रे गते त्रिंशदधिकं च शतत्रयमित्याह प्रथमतरङ्गारम्भे भूमिकायां कल्हणः।

१. चतुर्थस्य तरङ्गस्यान्त्ये द्वे पृष्ठे द्रष्टव्ये।

गोनन्दादयः	१०१४	९(?)	९(?)	मासदिवसानां निश्चयाभावो
प्रतापादित्यादयः	१९२	—	—	लेखकादिदोषहेतुकः।
मेघवाहनादयः	६००	१०	—	
दुर्लभवर्धनादयः	२३१	५	१७	
अवन्तिवर्मादयः	२९३	—	—	
	व. २३३२	०	२६	

वर्षद्वयाधिक्यं कथञ्चित्समाधेयम्। सङ्ग्रहोक्तेन सह संवादभावस्तु तत एव सङ्कलनेनावगन्तव्य इत्यलं पल्लवितेन। कर्कोटकवंश्यौ ललितादित्यजयापीडावनेकजनपदविध्वंसकौ। कश्मीराणां गौडानां च गुप्तकालाऽपरिग्रहेण च शकस्य तस्य पुनः प्रचारः।

(१२) चेराणां सप्तचत्वारिंशः क्षयः।

गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकालाद् हतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः।
नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कृत्वा विभाजयेच्छून्यशरागरामैः॥२०॥
फलेन युक्तं शकभूपकालं संशोध्य षष्ठ्या विषयैर्विभज्य।
युगानि नारायणपूर्वकाणि लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः॥२१॥
एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग्द्वादशकं क्रमेण।
हत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम्॥२२॥

एते बृहस्पतिचारे बृहत्संहितायां श्लोकाः। एषामुपपत्तिः —

१७७७
+ २३
६०) १८०० (३० = ३० अब्दानि बार्हस्पत्यानि

३०
× १२
३६०
× ९
३२४० ÷ ४
= ८१० ÷ २७
= ३० अ. बार्ह.

वसुदेवताद्यान्युडूनि। बार्हस्पत्यानीति शेषः।

एकं बार्हस्पत्यं वर्षं	सं.	नक्षत्राणि	अतः १ बार्हस्पत्यं नक्षत्रं
१	= ६०	=१३५	= ५ नक्षत्राणि

अथाष्टसप्ततः— १७७८ + २३

$$= \frac{१८०१}{६० (५)} \times \frac{१२ (१)}{१} = \frac{१८०१}{५} \times \frac{९}{१} = \frac{१६२०९}{५} \times \frac{१}{४}$$

$$= ८१० \frac{९}{२०}$$ = उडूनि बार्हस्पत्यानि गतान्यष्टासप्तते।

बार्ह. नक्षत्रं

$$\frac{९}{२०} \times \frac{५}{१} = \frac{४५}{२०} = २ \frac{१}{४}$$ नक्षत्राणि प्रतिवर्षम्।

एवं प्रतिवर्षं $(२ \frac{१}{४})$ सपादे द्वे नक्षत्रे गुरुर्भुङ्क्ते।

क्वचिदेकोनषष्टिः क्वचिच्च षष्टिः संवत्सराण्येकं बार्हस्पत्यं वर्षम्। तत्र मासस्थानापन्नानि युगानि द्वादशयुगं मासो र्बाहस्पत्यो राशिर्बार्हस्पत्य इति नार्थान्तरं राशिचक्रं सप्तविंशतिनक्षत्रात्मकमिति बार्हस्पत्यमेकं नक्षत्रं पञ्चनक्षत्रात्मकं चेति बृहत्संहिताश्लोकनिष्कर्षः। आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो यदा माघे बृहस्पतिरुदयं याति, तदा प्रभवः प्रवर्तत इति। संवत्सरकल्पनैषा तर्हि वर्षस्य माघारम्भत्वमभ्युपगच्छताम्। गुरोरुदयान्माघस्याद्यत्वम्। लघधोऽपि माघारम्भवर्षवादी। माघारम्भवर्षवादिनां गतानि वर्षाणीत्यादि श्लोकसङ्ग्रहः सङ्ग्रहकारेणाचार्येण गुरुचारे धृतः। अतः शेषांशकपूर्वत्वं तस्यैव न कार्तिकारम्भस्य चैत्रारम्भस्य वा वर्षस्येति ज्ञेयम्।

बार्ह० वर्ष०	क्षयः	वर्षसंख्या	लुप्तः	
१	५८	—	—	४७
२	११७	५९	३	१०७
३	१७६	५९	२९	१६७
४	२३५	५९	५५	२२७
५	२९५	६०	—	२८७
६	३५४	५९	२२	३४७
७	४१३	५९	४८	४०७

	बार्ह० वर्ष०	क्षयः	वर्षसंख्या	लुप्तः	
वराहमिहिरकृतसङ्ग्रहः	८	४७३	६०	—	४६७
	९	५३२	५९	१४	५२७
	१०	५९१	५९	४०	५८७
	११	६५१	६०	—	६४७
	१२	७१०	५९	७	७०७
	१३	७६९	५९	३३	७६७
	१४	८२८	५९	५९	८२७
	१५	८८८	६०	—	८८७
	१६	९४७	५९	२५	९४७
	१७	१००६	५९	५१	१००७
	१८	१०६६	६०	—	१०६७
	१९	११२५	५९	१८	११२७
	२०	११८४	५९	४४	११८७
	२१	१२४४	६०	—	१२४७
	२२	१३०३	५९	१०	१३०७
	२३	१३६२	५९	३६	१३६७
	२४	१४२२	६०	—	१४२७
	२५	१४८१	५९	३	१४८७
	२६	१५४०	५९	२९	१५४७
	२७	१५९९	५९	५५	१६०७
	२८	१६५९	६०	—	१६६७
	२९	१७१८	५९	२१	१७२७
	३०	१७७७	५९	४८	१७८७ केराणाम्

अश्विनी प्रथमं नक्षत्रम्। आश्विनः सौरो मास आद्यः, अश्विनीनां प्राथम्यात्। बार्हस्पत्यमानेऽप्याश्विनस्य वर्षस्यैवं प्राथम्यं युज्यते। मेषानुग्राहके सूर्ये सौरवर्षारम्भः। मेषादरवत्येव गुरौ तर्हि बार्हस्पत्यवर्षारम्भो युक्तः। ग्रहराजवद् ग्रहगुरुरपि मेषादरवांश्चैत्रे भवति। एवमाद्यमश्विन्यंशं यदा गुरुरभिप्रपन्नस्तदा प्रभवः। अभिप्रपन्न उदितश्चाभिप्रपन्नोऽस्त-मितश्चेति पक्षयोः कतरो वास्तव इति न विद्मः। पर्यालोचनया तु द्वादशमासात्मकबार्हस्प-त्यवर्षवत् षष्टिवर्षात्मकबार्हस्पत्यमहावर्षस्यापि क्वचिद् गुरूदयेन क्वचिद् गुर्वस्तमयेन निर्वाह उत्पलोक्तया दिशा भवितुमर्हतीत्येतावद्ब्रूमः। ज्योतिर्विदामेष विषय इत्यलम-प्रस्तुतप्रसङ्गेन। एवमष्टाचत्वारिंशः प्रभवः। तस्य वर्षस्य बार्हस्पत्याश्विनत्वानुमानात्। हर्ष-पराभवाच्चेराणां शकः। अतः षड्द्विकपञ्चद्विवादिनश्चेराः। अभिषेकाच्छकं गणयतां चतुर्द्विकपञ्चद्विवादिनां पञ्चाशः प्रभवः। अभिषेकश्चतुर्विंशे। पञ्चविंशाद्युक्ता गणना। केषाञ्चिच्चतुर्विंशादेव गणनयैकपञ्चाशः प्रभवः। हर्षपराभवः षड्विंशे। सप्तविंशाद्युक्ता गणना। षड्विंशाद्गणनयैकोनपञ्चाशः प्रभवः। एवं क्वचित्सप्तचत्वारिंशः क्षयः क्वचिदष्टा-चत्वारिंशः क्वचिदेकोनपञ्चाशः क्वचित् पञ्चाशश्चेति चतुर्धा शकप्रवृत्तिरिति फलितम्। चतुर्धाप्येषा शिलालेखादिषूपयुज्यते।

माघारम्भवर्षवादिनो वैष्णवाः। तेषामुपपन्नं युगानां श्रावणादित्वम्। विष्णुदेवतायाः श्रवणाधिष्ठात्रीत्वात्। श्रावणादीनि पञ्च बार्हस्पत्यानि वर्षाणि श्रावणं युगम्। श्रवणो धनिष्ठा चेति द्विनक्षत्रं श्रावणं वर्षम्। प्रतिषष्टिवर्षं गुरोः श्रवणाभिप्रपन्नस्यास्तमितत्वेन तदन्तत्वं महावर्षस्य धनिष्ठाभिप्रपन्नस्य चोदयेन तदादित्वमिति यथा महावर्षं विष्णोः प्रभवति तथा तस्मिन्नेव लीयत इति वैष्णवानामेष पन्थाः। कार्तिकारम्भवर्षवादिनामपि श्रावणादित्वं युगानां न विरुध्यते। चैत्रारम्भवर्षवादिनामपि तदविरुद्धम्। प्रगुणीभूतैर्वैष्णवैस्ततः प्राचीन-माश्विनस्य युगस्य प्राथम्यं कुण्डलनामवापितम्। वराहमिहिरेण वैष्णवस्यैव युगस्य प्राथम्या-भिधानादाश्विनयुगप्राथम्यलोपस्यातिप्राचीनत्वं निर्विवादम्। कालेनाश्विनयुगप्राथम्ये प्रस्मरण-महावात्यया क्वापि प्रविलापिते महावर्षस्य दुष्टमपि सार्वत्रिकं षष्ट्यब्दात्मकत्वमवलम्ब्य प्रायः प्रवृत्तिः शिलालेखादिषु। एवमेकषष्ठत्वं प्रभवत्वमिति तल्लक्षणमपूर्वं वेदितव्यम्।

अस्माकं पञ्चाङ्गेषु विक्रमस्य नाम्नाऽभिहितः संवत्सरः शालिवाहनस्यैव शकस्य। एकान्त-रता तूक्तदिशा समाधातव्या। तथा हि— क्वचित् सप्तपञ्चाशः क्षयः क्वचिदष्टापञ्चाशः क्वचि-देकोनषष्ठः क्वचित्षष्टितमः। सङ्ग्रहकारेण षड्विंशोऽपि शकमध्ये गणितः। अतोऽष्टापञ्चाशस्य तन्मते क्षयत्वम्। एवं १७७६ तमः क्षयः १७७७ तमः क्षय, १७७८ तमः क्षयः १७७९ तमोऽपि क्षय इति फलितम्। पञ्चाङ्गेषु १७७६ तमः क्षयलक्षणत्वात्क्षयः। सप्तसप्ततस्य क्षयीकरणं पञ्चाङ्ग-काराणां वराहमिहिरानुग्रहप्रयासः। वस्तुतस्तु तस्य प्रभवलक्षणत्वात् प्रभवत्वमेवाङ्गीकर्तव्यम्। केषाञ्चिन्मतेनाष्टाचत्वारिंशस्य क्षयत्वात् १७८८ तमस्य क्षयत्वे १७८९ तमस्य प्रभवत्वे च तदुभ-यलक्षणाभावेऽपि न विप्रतिपत्तिः। संवत्सरतः परिगणनं राजस्थाने प्राचीनशिलालेखादिषु दर्शना-भावाद् दाक्षिणात्यानामेव प्रियमासीदिति निश्चीयते।

(१३) शक्यतेऽनेन कालो गणयितुमिति शकुल् शकपदनिष्पत्तिः। स चासौ कालश्च नृपादिर्वेति कर्मधारयः। अस्य निर्वचनस्य साम्प्रदायिकत्वे वृद्धगर्गवचनमपि प्रमाणम्।

शकुलिति शक्लृधातोः षष्ठी। शककालनृपादयः शब्दाः श्रूयन्ते। तत्रोक्तरीत्या कर्मधारय एव। वृद्धगर्गेण शककालस्तस्य राज्ञश्चेत्युक्तम्। गर्गतोऽपि प्राचीनत्वं वृद्धपदं द्योतयति। अतो नास्माकं निर्वचनं स्वकपोलकल्पितम्।

(१४) षष्ठीतत्पुरुषप्रयासस्तु केवलमज्ञानविजृम्भितम्। उषवदातस्य शकत्वेऽपि नृपत्वाऽसिद्धेः। निरुपपदस्य श्वशुराभिधानं स्वमहिमख्यापनमात्रप्रयोजनम्।

कश्चिदाह[१]। शकस्य शकानां वा कालः शककालः। शको नाम कश्चिन्म्लेच्छगणो म्लेच्छपर्यायो वा भगस्थानशिलालेखेषु[२] प्रसिद्धो विक्रमादित्यस्य प्रतिपक्षत्वेन च लोकानां विदितः। तत्त्वेन प्रसिद्धस्योषवदातस्य पुष्करेऽभिषेकात् तेषां वाऽऽगमनाच्छककालस्य गुप्तकालवत् प्रवृत्तिः। अत्रोच्यते— पुष्करेऽभिषेकस्तीर्थाभिषेकस्तीर्थस्नानमिति यावन्न राज्याभिषेकः। उषवदातस्य शकत्वं तावत् सन्दिग्धम्। प्रागक्षरनिर्णाशात्। अस्तु वा शकत्वम्। न तावता तस्य नृपत्वं सिध्यति। भट्टारकस्तु क्षहरात्रो यस्य क्षत्रपो नहपानः। क्षहरात्रनहपानेत्येकस्यैव नामपरम्परेत्यस्वरसत्वाद् हेयम्। क्षत्रपो वा छत्रपो वा न सच्छत्रो भवितुमर्हति। तस्य वानरस्येव च्छत्रधारत्वं सर्वत्र सुप्रसिद्धम्। न क्वाप्युषवदातेन राजपदमङ्गीकृतम्। लेखेषु तु शकनृपेति प्रायः श्रवणम्। क्वचिद् वर्षाभिधानं भट्टारकस्य पूजितत्वेन भट्टारकपदवाच्यस्य श्वशुरस्य तत्पुत्र्या वा भवितुमर्हति। उषवदातो लेखेषु निरुपपदः प्रसिद्धः। सर्वत्र सभट्टारकश्वशुराभिधानमपि तस्याऽराजत्वेऽच्छत्रपत्वे च प्रमाणम्। न हि राजा क्वचित् कस्यचिन्मण्डलेश्वरस्य जामातृत्वेनात्मानं विख्यातिं गमयति। प्राकृत एव प्रसिद्धस्य राज्ञो मण्डलेश्वरस्यात्मश्वशुरत्वं कण्ठरवेणोद्घोषयेत्।

(१५) तेषु तेषु लयनकरणं लेखकादीनामिवाहल्यादीनां पुण्यक्षेत्रादिषु घट्टादिकरणमिव वा। एवमप्यसन्तोषे कालस्य मृत्युपरतया षष्ठीतत्पुरुषोऽस्तु।

ननु तेषु तेषु स्थानेषूषवदातेन लयनानि कृतानि बाढं। कृतानि। न तु तानि कृतानि तस्य राजत्वं द्योतयितुमलम्। यत्र यत्रोषवदातेन लयनानि कृतानि, तत्र तत्र लेखकैरपि लयनानि कृतानि। न केवलं लेखकैः स्वर्णकारादिभिरपि। न तावता तेषां लेखकानां वा स्वर्णकारादीनां

१. पृ. २३३, Vol. VIII, Jour. B. B. R. A. S. and Nasik Inscription (July 1853, Jour B. B. R. A. S.).

२. भगस्थानं "बेहिस्तून" (Behistun) इत्यपभ्रष्टम्।

वा राजत्वं सिध्यति अराजपदभाजां नहपानादीनां राजान्तराणां च बौद्धानामबौद्धानां वा लयनकरणेऽपि तावता न तज्जनपदशासकत्वं वक्तव्यम्। अन्यत्रेव साहायककरणं चाकिञ्चित्करम्। अहल्यया पुण्यक्षेत्रेषु काश्यादिषु घट्टाः कृता। न तावताऽहल्या तज्जनपदशासित्री भवति। कृष्णगिरौ केषाञ्चित् पल्हवानामपि[१] द्वित्रा लेखाः सन्ति। न तावता तत्र तेषां राज्यानुमानम्। बुद्धगयायां लेखसत्त्वेन चीनानां[२] राज्यं न केनाप्याश्रीयते धर्मैकधनाना[३]मौसुलानां शकप्रचारस्तत्प्रायत्वाज्जनपदानामधिकारिणां चांग्लशकप्रचारस्त्वांग्लीभूतेष्वेवेति द्वयमप्यनुदाहरणम्। एवं सत्यपि षष्ठीतत्पुरुषव्यसनं चेच्छकस्य शकानां वा कालो मृत्युर्विक्रमस्य शकारित्वेन कश्मीरादिष्वपि सुप्रसिद्धत्वेन तथात्वादित्यस्तु। प्रौढिवाद एषः। वास्तवं तु निर्वचनं प्रागुक्तं शक्नोतेरेव। अन्यथा युधिष्ठिरादीनां काले शकत्वाऽयोगात्। शकपदस्य म्लेच्छवाचकत्वे न विवदामहे केवलं शककाल इत्यत्र शकपदं न तदर्थकमिति ब्रूमः। हूनो हूणो वा नासिकादिलेखेषु श्रूयते। न स तत्र म्लेच्छवाचको भवितुमर्हति। स होनार्थकोऽवगन्तव्यः।

न तावता होनो हूनो हूणो वा कश्चिद् रूप्यविशेषो हूणाख्यान्म्लेच्छगणादस्माभिः स्वरूपतो लब्धत्वात्तन्नामत्वेन व्यवहृतो हूणराज्यं चाऽऽरामेश्वरमासीदिति वक्तव्यम्। होनो हूनो हूण इति वा सहयोः परस्परादेशत्वस्य सर्वसम्मतत्वात् सुवर्णशब्दस्यापभ्रंशः। अत्रापि हूणशब्दस्य म्लेच्छगणवाचकत्वे न विवादः। केवलं रूप्यविशेषस्य हूनस्य हूणस्य होनस्य वा म्लेच्छगणवाचकेन शब्देन न कोऽपि सम्बन्ध इत्येतावद् ब्रूमः। अथाह कश्चित्— गौतामीपुत्रः प्रतिष्ठानाधिपतिः[४]। तस्य लेखे खगरातवंशनिर्मूलनं श्रूयते। खगरात इति क्षहरात्रस्यापभ्रंशः। स शकः। ततः शालिवाहनशकगणनेति।

अत्रोच्यते— गौतमीपुत्रस्य प्रतिष्ठानाधिपतित्वं तावदसिद्धम्। नास्त्याख्यायिका तद्बोधिनी। नापि पुराणेषु तत्प्रतिपादकं वचनम्। पुराणेषु प्रत्युतान्ध्रस्य गौतमीपुत्रस्य मगधाधिपतित्वं श्रूयते। न तस्य प्रतिष्ठानाधिपतित्वस्य कश्चिच्छिलालेखः साक्षी। नापि पाश्चात्त्यभूगोलकारेण तत् कक्षीकृतम्। तन्मतेन प्रतिष्ठानाधिपतिः पुलोमा। नापि गौतमीपुत्रेण दक्षिणदिगधिपतित्वमात्मन उपवर्णितम्। आत्मनः शासनं तैर्गृहीतमित्येतावल्लेखेऽभिहितम्। न तावता स तद्राजेत्यभिहितं भवति। आत्मनो नर्मदामुत्तरेणैव प्रायो जनपदानां राजत्वं लेखे गौतमीपुत्रेणोक्तम्। राजा पुलोमा पद्माव्यपरनामा। राजराजो गौतमीपुत्रः। नैनयोः पितापुत्रत्वकल्पना न्याय्या। एतादृशस्य जीवतो राज्यं शासतश्च पितुरुपमर्दस्यादृष्टचरत्वात्। नापि पुलोम्नः करदत्वेन सम्भावना युक्ता। गौतमीपुत्रनामविरहितानामपि तल्लेखानां सद्भावात्।

---

१. पृ. २६५-२६८, Vol. IX, Indian Antiquary.

२. पृ. ३३९, Vol. X, Indian Antiquary.

३. पृ. ७३-७४, Vol. X, Jour. B. B. R. A. S.

४. पृ. ४१, July 1853, Jour. B. B. R. A. S.

किमित्यस्मिन्नेव लेखे द्वयोः सहभावः। अस्मिन्नेव लेखे गौतमीपुत्रेण शातवाहनकुल-यशःप्रतिष्ठापनकरत्वं स्वस्योपपादितम्। शातवाहनः शालिवाहन इत्यनर्थान्तरम्। कुलनामैतत्। केनापि राष्ट्रकूटेनान्येन वा वात्यायित्वाद्यशसः शालिवाहनवंशस्य तस्य पुनः प्रतिष्ठापने मैत्रीमापन्नेन गौतमीपुत्रेण यत्नः कृतः स्यात्। तस्य लेखो विजृम्भितमिति मन्महे। अतो लेख एतस्मिन् द्वयोः सहभावः प्रतिष्ठानाधिपतेश्च संवत्सराभिधानम्। शालिवाहनशककर्तुः शकारित्वं तु महाराष्ट्राणामपूर्वो लाभः। गौतमीपुत्रस्य शातकर्णित्वमपि श्रूयतेऽवन्तिराजत्वमपि श्रूयते। रुद्रदामोऽप्यवन्तिराजो निर्जितशातकर्णिरिति सुदर्शनसरः शिलालेख आह। प्रतिष्ठानाधिपतिः पुलोमाऽवन्तिपतिश्चष्टनश्चेति द्वौ पाश्चात्त्यभूगोलकारेणोक्तौ। पाश्चात्त्यभूगोलकारौ द्वौ। तयोः पूर्वः शालिवाहनशकस्य[१] प्रथमशतके पादशेषेऽर्धशेषे वाऽपरस्तु गतमात्रे प्रथमे शतके पादशेषे वा स्वप्रबन्धं निबन्धेत्याहुः। रुद्रदामा द्विःशातकर्णिं जिगायावन्त्यादींश्चोत्सादयामासेति गीयते।

राजराजो गौतमीपुत्रोऽपि महापराक्रमीति क्षहरात्रवंशनिर्मूलनकरश्चेति रुद्रदामगौतमीपुत्रयोः समानकालीनता न क्षोदक्षमा। गौतमीपुत्रो यज्ञश्रीशातकर्णी श्रीयज्ञशातकर्णीति श्रूयते। सुदर्शनशिलालेखे तादृशविशेषणाभावात्तत्रत्यशातकर्णेरन्यत्वं युक्तम्। रुद्रदामसमानकालीनः शातकर्णिर्गौतमीपुत्रस्य पूर्वजः कृष्णाख्यस्य पुराणोक्तः पुत्रः स्यात्। न संज्ञाऽभेदात्संज्ञ्यभेद इति पाश्चात्त्यभूगोलकारोक्तः पुलोमा प्रतिष्ठानाधिपतिर्भिन्न एव भवितुमर्हति। खगरातवंशः शाहिवंशेन कथं सम्बद्ध आसीदिति विस्पष्टं न विज्ञायते। शाहिवंश एव खगरातवंशत्वेनाभिमतो लेखकारस्येत्यत्र तु न काचिद् विप्रतिपत्तिरित्यलमतिप्रसङ्गेन।

*(१६) नक्षत्रेषु कृत्तिकानां श्रुतिसिद्धेन प्राथम्येन मासानां कार्त्तिकप्रथमतायाः प्रसिद्धत्वाद् वर्षव्यवस्थायास्तदाश्रितत्वाच्च युगव्यवस्थायास्तदाऽऽत्मकत्वं समाश्रीयते।

कृत्तिकानामाग्नेयत्वादग्नेश्च मुखत्वात् कृत्तिकानां मुखत्वम्। मुखत्वं प्राथम्यमित्यनर्थान्तरम्। कृत्तिकाः प्रथममिति श्रुतिः। अत्र कश्चिदाह। वसन्तावतारलक्षणं[२] नक्षत्रप्राथम्यम्। इदानीमश्विनीषु वसन्तावतारः। अतोऽश्विनीनां नक्षत्रव्यूहे प्रथमत्वम्। यदा भरणीषु तदा भरणीनां प्राथम्यम्। पूर्वं वैदिके काले कृत्तिकासु वसन्तावतार आसीत्। अतो वेदेषु कृत्तिकानां प्रथितं प्राथम्यम्। वसन्तस्याऽऽद्यत्वमपि श्रुतिसिद्धम्। इदमाद्यत्वं मनसिकृत्य वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीतेत्यादयः श्रुतयः प्रवृत्ताः। पुरा वसन्तावतारः पूर्वं परःसहस्रेभ्यो वर्षेभ्यो माघादर आसीत्। तं हृदि निधाय माघशुक्लप्रवृत्तस्य पौषकृष्णसमापिन इति लगधस्योक्तिः। ततः पूर्वं मार्गशीर्ष आसीत्। अतस्तदानीन्तनत्वेन च भगवतो मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकर इत्युक्तिः सङ्गच्छते। समाख्याबलान्मूलस्याप्येवमनुमेयम्। नक्षत्रमालाया मूलत्वेन मूलमिति।

---

१. पृ. २३६-२३८ Vol. Jour. B. B. R. A. S.

* पं. ६, न्यू सि. (१८८४) ३६१-३७२.

२. पृ. २२ (Vol. III) Theosophist.

अत्रोच्यते— सर्वोऽप्येष मनोराज्यविलासः। नक्षत्रप्राथम्यस्य वसन्तावतारलक्षणत्वे मानाभावात्। क्षपाह्रासादिवद् वसन्तस्यायनेन सम्बन्धज्ञानसत्त्वस्य पूर्वेषां दुरुपपादत्वात्। अव्यवस्थाया ज्ञानाभावस्य सदापदेन निःसन्देहत्वात्। वसन्तावतारः प्रतिनक्षत्रं प्रायश्चत्वारिंशदूनं वर्षसहस्रं व्याप्नोति। एतस्य वसन्तावतारस्य पृष्ठतोगामित्वं धर्मः। एतावव्यवस्थौ नक्षत्रव्याप्तिधर्मौ पुरस्कृत्य व्यवस्थोत्तरा अस्माकं ज्योतिर्विदः प्रवृत्ता इति कुत एषा प्रवृत्तिः। वैदिकेषु कालेषु वसन्तावतारस्य कृत्तिकालक्षणत्वं न प्रत्याचक्ष्महे, केवलं नक्षत्रप्राथम्यस्य वसन्तावतारलक्षणत्वेन व्यवस्थापने किं प्रमाणमिति पृच्छामः। कृत्तिकाप्राथम्येन वसन्तस्य प्राथम्यमिति युक्तः पक्षः। कृत्तिकाप्राथम्यं त्वाग्नेयत्वेनेति प्रागुक्तम्। हेमन्तग्रीष्मयोः सन्धिकालत्वमपि पुष्पादिसमृद्धिमत्त्वेन सह वसन्तस्य प्राथम्ये हेतुत्वेन निवेशनीयम्। माघस्याद्यत्वे बीजं तूक्तं प्राक्।

इह खलु त्रिविधा जनपदाः। केचिद् हेमन्तप्रधानाः। हिमो हिमन्नित्यनर्थान्तरम्। पाणिनेर्हैमनस्य हेमन्ताद् व्युत्पत्ति- प्रयासो हिमन्शब्दस्य लोकेऽदर्शनात्तत्काले। हेमन्तप्रधानेषु शतं हिमा इति प्रयोगः पुरा स्ववबोधः। केचिच्छरत्प्रधानाः। शरत् सरदीत्यनर्थान्तरम्। नदपूरेण प्लावितस्य जनपदस्य शरदुत्पादकत्वाच्छरद्। जीवाव शरदः शतं शतं जीव शरदो वर्धमाना इत्यादयः प्रयोगाः शरत्प्रधानेषु पुरा सुवचाः। केचिद्वर्षप्रधानाः। तत्र वर्षाणि गतानीति प्रयोगः समञ्जसः। एतद् वर्षादिशब्दानां त्रिविधं प्रवृत्तिनिमित्तम्। मन्त्रकर्तॄणां वा मन्त्रद्रष्टॄणां वा हिम्यवासित्वान्मार्गशीर्षस्याग्रहायणिकत्वम्। अतो भगवद्वचनं मासानां मार्गशीर्षोऽहमिति सङ्गच्छते। तस्याऽऽग्रहायणिकत्वं लोकसिद्धं गृहीत्वा भगवतः प्रवृत्तत्वात्। कुसुमाकरत्ववचनं तु पुष्पादिसमृद्धिमत्त्वेन सन्धिकालत्वेन च रमणीयत्वात्। यत्तु तेनैव कस्यचिदाङ्ग्लस्यानुप्रवेशेन स्वमतसिद्ध्यर्थं मूलोपन्यासः कृतस्तन्महासाहसं कृतम्। ज्येष्ठायाः प्राचीनं नाम ज्येष्ठघ्नी मूलस्य मूलबर्हणीति श्रुतिषूक्तत्वेन[१] द्वयोरपि संज्ञयोः फलतः प्रवृत्तिसम्भावनया तदभिमताऽपूर्वनिर्वचनस्याऽश्रौतत्वेनानुपादेयत्वादित्यलमप्रस्तुतप्रसङ्गेन। कृत्तिकानां नक्षत्रेषु प्रथमत्वेन कार्त्तिकस्य मासेषु प्रथमत्वं कार्त्तिकस्य मासेषु प्रथमत्वेन बार्हस्पत्येषु वर्षेषु कार्त्तिकस्यैव वर्षस्य प्रथमत्वं भवितुमर्हति। तथा चासीदिति वर्षाणि कार्त्तिकादीनीत्यादिवराहमिहिरवचनतोऽनुमीयते। एवं सति युगव्यवस्थाऽपि कृत्तिकातो युक्ता।

(१७) मौना मासा द्वादशैव संवत्सरे। तादृशं शतमेकः पादः।

संवत्सरे मौन इति शेषः। मुनयः सप्तर्षयो देवता अस्येति मौनः। मुनयो वर्षाणिं शतं प्रतिनक्षत्रं भुञ्जते। मौनः संवत्सरो वर्षमिति यावदेवं २७०० वर्षात्मकः। मौनो मास एवं सपादद्विशतवर्षात्मकः। शतं मौनानि वर्षाण्येकः पादः। चतुष्पाद् युगमित्याहुः। एवं १०८०००० वर्षात्मकमेकं युगम्। चत्वारि युगानि ४३२०००० वर्षात्मकान्येवमवगन्त-

१. अनुवा.२. प्रपाठ.५, कां.१, तैत्ति. ब्राह्म.।

व्यानि। सैषा मौनी प्राचीना षोडशपादात्मिका व्यवस्था पौराणिकैः पादविकला त्रेता द्विपादविकलो द्वापरः पादद्वयविकलः कलिरिति दशपादात्मिकीकृत्याऽन्यथात्वं प्रापिता। ४३२०००० वर्षाणि पादास्तु दशेति ४३२००० वर्षात्मकः कलिरेकः पादः। स द्विगुणितो द्वापरः। त्रिगुणितस्त्रेता। चतुर्गुणितः कृतमिति। त्रयश्च युगपादा इति वदत आर्य्यभटस्य चत्वारि युगानि युगं महायुगमिति यावदवान्तरयुगानि च महायुगपादत्वेनाभिमतान्यासन् योग्यत्वादिति निश्चीयते।

(१८) मुनीनां कृत्तिकायोगे कलियुगारम्भः प्राचाम्।
व्यतीता सप्तशती सयोगाश्च मघाभिर्मुनयः।
एतत् कल्हणोक्तेन न संवदति संवदति तु
रविकीर्तिवचनेनास्मदनुगृहीतया दिशा।

एवं तर्हि कृत्तिकातः कलियुगारम्भो भवितुमर्हति। कृत्तिकातोऽष्टम्यो मघाः। आसन्मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपताविति गर्गोक्तिः। कालेः पञ्चपञ्चाशेषु सप्तसु शतेषु गतेषु युधिष्ठिरशकारम्भ इति रविकीर्तिः। यदि पूर्वोक्तं प्रमाणं रविकीर्तिः प्रमाणं भवितुमर्हति, न कल्हणः। अतः "शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले। कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः"॥ इति तदुक्तिर्हेया। रोहिणीतो युगारम्भाङ्गीकारे प्रामाण्याभावात्।

(१९) प्रायः शककालोऽभिषेकादिति षट्पञ्चाशमभिषेकवर्षम्। द्व्यधिकशतवर्षलोपस्तु कथञ्चित् समाधेयः।

अभिषेकवर्षाच्छककालगणने मङ्गलीशशिलालेखः[1] प्रमाणम्। युधिष्ठिराभिषेकः कलियुगस्य पञ्चपञ्चाशेषु सप्तसु शतेषु व्यतीतेषु षट्पञ्चाशे जात इति निश्चीयते। चेरादिभिस्तु हर्षपराभवाद्गणितो विक्रमप्रियैः शकपराभवाच्चेति प्रायोवचनम्। एकः शकः कनिष्कः। तत्तुल्यकालत्वात्[2]। यथासम्भवमैतिह्यादन्यत्र पूर्वापरविरोधाद्यनेकदोषवती तरङ्गत्रयी न प्रमाणमिति कल्हणेन कनिष्कस्य द्वापञ्चाशत्सु पठनमकिञ्चित्करम्। द्व्यधिकशतवर्षलोपः कल्हणोक्ताविति शेषः। कलौ काले भारतादाहवादिति द्वौ मिलित्वा ३० + ३००० + ७०० + ५ + ५० = ३७८५ वर्षेषु गतेष्वित्यर्थे कृते तु ततो युधिष्ठिरशककालस्य प्रमाणान्तरात् सिद्धत्वेन तदधिक (२५२६ + ५०६) गतशालिवाहनशकव्यवकलने त्र्यधिकेषु सार्द्धेषु सप्तसु शतेषु वर्षेषु कलेर्गतेषु युधिष्ठिरशकारम्भ इति फलति। सत्येवं कलिकालगणनायां काश्मीरिकैर्बहुतिथे काले गते सम्प्रदायविच्छेदेन कृत्स्नमेकं नक्षत्रं मौनं विस्मृतमिति सम्भावना सावकाशेत्यूह्यं सुधीभिः। प्रयाणात्[3] सप्तर्षिशकस्तु कश्मीराणां

१. पृ. ३६३, Vol. VI, Indian Antiquary.

२. पृ. ५०, ललितविस्तर (Calcutta Edition) भूमिका।

३. पृ. ६०, Extra No. of 1877, Jour. B. B. R. A. S.

बौद्धप्रायत्वाद् बौद्धैः क्षुण्णेन पथा प्रस्थितानां तत्रत्यानां निर्माणं लौकिकवर्षपरिग्रहश्च संहिताकाराणां पद्धतेरादरायेति तस्य द्व्यामुष्यायणत्वे न शङ्का।

(२०) शकारिर्विक्रमादित्य इत्यस्मिन् विक्रमद्वयता कल्हणेन निराकृताऽप्यकामतः स्वीकृता ॥

शकारिर्विक्रमादित्य इति संभ्रममाश्रितैः। अन्यैरत्रान्यथाऽलेखि विसंवादि कदर्थितमिति द्वितीयतरङ्गारम्भे। विक्रमपराभवस्य नर्मदां दक्षिणेन त्रिलिङ्गादिष्वपि सार्वत्रिकी प्रसिद्धिः। शालिवाहनशकः काश्मीरिकविक्रमशकतोऽभिन्नश्चेति विक्रमस्यैकस्य शालिवाहनसमकालीनता युक्ता। राजस्थानीये विक्रमशके पञ्चत्रिंशमेकं शतमधिकमिति कल्हणेनापि विक्रमद्वयता च स्वीकृतेति युक्तं तस्य विक्रमस्य शालिवाहनसमकालीनाद् विक्रमादन्यत्वम्। विक्रम इति शालिवाहनवद्वंशनामेत्युक्तं प्राक्। बाधकसत्त्वे हि लोकोक्तिरप्रमाणं न बाधकाभावे। साधकानि तु बहून्युपपादितानि। सर्वथा लोकोक्तिर्निर्मूला न भवति। भोजकालिदासयोरकबरबीरबलयोश्चेवान्यगतानामपि लोकोक्तीनां मूलान्यन्वेषणपरेणैवोपलब्धव्यानीति।

(२१) एवं द्वावपि शकारी विक्रमौ। पूर्वस्तज्जनपदवासिभिः स्वीकृतोऽपि पर्यन्तजनपदेष्वपि स्वशकं प्रवर्तयता तद्वंशमणिना तेषां विस्मारितप्रायः।

शिलालेखेष्वभिषेकः संवत्सरप्रवृत्तिनिमित्तम्। प्रायः संवत्सरारम्भः शकः। स वंशे विजेतुर्जन्मना प्रसरति। वंशस्य समूलमुन्मूलने लुप्यते परिशिष्यतेऽपि। लोपे परिशेषे चादृष्टमेव प्रभवति। विजिगीषुत्वेन गुप्तकालप्रसरो गुप्तवंशस्य समूलमुन्मूलनात् कालेन गुप्तकाललोपो गुप्तकालेन प्रायो निरवकाशितस्यापि विक्रमशकस्य पुनः प्रचारः शाहिवंशोन्मूलने तद्वर्षोच्छेदश्चुलुक्यमौलिरत्नेन विक्रमेण शिवच्छत्रपतिनेव प्रवर्तितस्याप्यात्मशकस्य[१] गन्धर्वनगरायमाणत्वं शालिवाहनवंशस्य कुतोऽपि समाप्तावपि परिशिष्यत एव तच्छक इति सर्वाप्येषा भगवतो विधेः क्रीडा।

(२२) ६५३ + २५२६ = ३१७९। सैषा कश्मीराणां पद्धतिः कलियुगारम्भे निजधामगते कृष्णे तस्मिन्नेव तदाहनीत्यादिवदद्भिर्वैष्णवैरन्यथा प्रस्थापिता। युधिष्ठिरशकांतःपातिविक्रमशकग्रहणं च कापिशायनमदमत्तस्य कपेर्वृश्चिकेन संदंशः। एवं तदनुरूपा च वर्षसहस्रत्रितयमित्येषागीतिस्तदनुयायिभिः प्रक्षेपिता।

३१७९ — १३५ = ३०४४ युधिष्ठिरशककाल इति फलितम्।

---

१. पृ. १८७-१९३, Vol. VIII, Indian Antiquary.

यदैव भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज ! तदा प्रवृत्तस्तु कलिरिति वैष्णवमपि पुराणं कलियुगारम्भेऽनुसन्धेयम्। युगवर्षसंख्याऽन्यथोपपादनं कलियुगारम्भान्यथाकरणं नन्दकालापलापप्रयासश्चन्द्रगुप्तान्तानां राज्ञां कुलादिविप्रलापबाहुल्यं चेति महत्येषाऽनर्थपरम्परा वैष्णवोत्पातकृता सर्वेषां दोषाणामेकैकमप्येतेषामायतनं किमुत समवायः। तत्राद्यौ द्वावनर्थावुक्तस्वरूपौ। अधुना शेषयोः स्वरूपमाविष्क्रियते। ते तु पारिक्षिते काले मघास्वासन् द्विजोत्तम। तदा प्रवृत्तश्च कलिरिति विष्णुपुराणे। ते सप्तर्षय इत्यर्थः। यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि। तदा प्रवृत्तस्तु कलिरिति विष्णुभागवतस्य द्वादशस्कन्धे शुकवचनम्। एष एकत्रिंशः श्लोकः। यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि। प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविद इति त्रयस्त्रिंशः। अतोऽपि विस्पष्टं यस्मिन्नहनि भगवान् निजधाम गतस्तस्मिन्नेवाहनि मघासु सप्तर्षयः प्रविष्टा इति। प्रयास्यन्ति यदा चैते पूर्वाषाढां महर्षयः, तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यतीति च नन्दकालनिश्चयो विष्णुपुराणे। सप्तर्षयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणामिति विष्णुपुराणवचनाच्छतं ते चरन्ति वर्षाणामिति बृहत्संहितोक्तस्य पौराणिकानां सम्मतत्वे न सन्देहगन्धोऽपि। मघातः पूर्वाषाढैकादशीति कलियुगारम्भनन्दाभिषेकयोरन्तरमेव सहस्रमेकं समा भवितुमर्हति। एवं सति विष्णुपुराणकारः परीक्षिज्जन्मनन्दाभिषेकयोरन्तरं केवलं वर्षसहस्रं पंचदशोत्तरमित्याह।

भागवतकारस्य तु तदेव शताधिकं सम्मतम्। विष्णुपुराणपरिगणितानां बार्हद्रथानां प्रद्योतनानां शैशुनागानां च वर्षाणां सङ्कलने कलियुगस्य पञ्चदशसु शतेषु गतेष्वेव नन्दाभिषेकः प्रतीयते। भागवतात्तु नन्दाभिषेको द्व्यनेषु पञ्चदशसु शतेषु गतेष्वनुमीयत इति व्याख्यातो नन्दकालापलापप्रयासः। इदानीं चन्द्रगुप्तान्तानां राज्ञां कुलादिविप्रलापबाहुल्यं व्याख्यायते। तत्रादौ विचार्यते। किं पितृतो जातिनिर्णय उत मातृत इति। मातृत इति लोकः। अतो भगवत्पादानां ब्राह्मणत्वम्। पितुरब्राह्मणत्वेऽपि मातुर्ब्राह्मणत्वात्। समशेरबहादुरस्य च मौसलत्वं पितुर्ब्राह्मणत्वेऽपि मातुर्मौसलत्वात्। ऋषीणां तु श्रुतिदृशां पितृतो जातिनिर्णय इत्याहुः। मातुर्मात्स्यिककन्यात्वेऽपि वेदव्यासस्य ब्राह्मणबीजित्वाद् ब्राह्मणत्वम्। क्षत्रियाणीपुत्रस्य परशुरामस्य तथैव तथात्वमिति कलौ मातृतो जातिनिर्णयो युक्तः। अतः शूद्रापुत्रस्य नन्दस्य शूद्रत्वमेवेति।

अत्रोच्यते— जातिः पितृत एव, पितुरेवोत्पादकत्वात्। तच्चोत्पादकत्वं यथा युगान्तरे, तथैव कलौ। न पूर्वमासीदद्य नास्तीति। अतः पारस्करो ब्राह्मणस्य भार्याचतुष्टयं विधत्ते। शूद्रा मन्त्रवर्जमितरा समन्त्रमिति तयोर्भेदः। एवं वृषलीगमनादिनिषेधोऽपरिणीताया एव युक्तः। ननु युगान्तरीया स्थितिरेषा, मैवम्, आपस्तम्बादिसूत्राणां कलियुगार्थमेव प्रवृत्तेः प्रत्यक्षत्वात्। प्रत्यक्षाऽभावे ह्यनुमानं प्रमाणम्। नापि युगान्तरे सङ्करकल्पना यदवलम्बनेनोभयोः सङ्करयोर्युगान्तरविषयत्वं कल्प्येत। न केवलमनुलोमस्य निषेधः क्वापि न स्मर्यते; प्रत्युत पारस्करादिषु तद्विधिर्याज्ञवल्क्यादिषु च ततः सन्ततेः कालेन धर्मोत्पादक-

जातिलाभः श्रूयते। नन्वयं जातिरनैकान्तिकी भवति, बाढम्, भवति जातिरनैकान्तिकी। इष्टमस्माकमेवं सिध्यत्यापस्तम्बश्चानुगृहीतो[१] भवति। अतो युक्तः पितृतो जातिनिर्णयः। एवमप्यनपगच्छति मातृतो जातिनिर्णयतिमिरे ब्राह्मणकन्यायाः क्षत्रियेण क्षत्रियबन्धुना वा सपाणिपीडनमपाणिपीडनं वा परिगृहीतायाः सन्ततेर्ब्राह्मणत्वं त्वयाऽकामेनाप्यभ्युपेयम्। अथवा पितृतोऽस्तु जातिनिर्णयो मातृतो वा। उभयथापि चन्द्रगुप्तस्य शूद्रत्वं न सिध्यति। नन्दस्य क्षत्रियत्वे त्वनास्तिको विशाखदत्तः प्रमाणम्। शिर्के-चिल्के-चालके वेति प्रसिद्ध-चह्वाण-पवार-कदम-चावडे-प्रभृतीनां चुलुक्य-चाहमान-प्रमार-कदम्ब-चापोत्कटादिवन्मोरे इत्येतस्य कुलविशेषवाचकस्य प्राकृतस्य पदस्याऽप्राकृतकरणप्रयासो ब्राह्मणानाम्। अतो मुद्राराक्षसे रघुनन्दनादिकुलपुत्रादिवन्मौर्यपुत्रप्रयोगः। पुत्रनिर्विशेषत्वेन च तस्य स्वामिपुत्रत्वम्। वृषलत्वमपुण्यभूमिमातृककुलजातत्वाद्बौद्धस्याशोकस्य पितामहत्वाच्च। मुरायाः पुत्र इति व्युत्पत्तिस्तु कनखलादिव्युत्पत्तिवन्निर्मूला। स्त्रिया यविधायकशास्त्राभावात्। स्वामिपुत्रत्वादिस्मरणाच्चाणक्यविद्वेषित्वाच्च तत्सवर्णैः पौराणिकैर्नन्दोपरि पङ्क्तिनिक्षेपस्तद्विशेषणदानेन च स्वतो बलीयसीनामपि स्मृतीनां विरोधं तृणाय मत्वा तदर्वाक्तननृपतीनां शूद्रत्वस्थापनप्रयासो महासाहसम्। यादृशी स्थितिर्नन्दादर्वाक् तादृशी प्रागपि। बिम्बसारादयः प्रद्योतनाः कुलान्तरजा वा भवितुमर्हन्ति। तेषां शिशुनागकुलोत्पन्नत्वं तु महावंशविरोधादुपेक्ष्यम्[२]।

यत्र यत्र साक्षादन्यथापि वा बौद्धसम्बन्धस्तत्र तत्र महावंशस्य वेदत्वहानिर्नायुक्ता। स्वस्वधर्ममधिकृत्य हि प्रायः सर्वेषां ग्रन्थकृतामतिशयोक्तिः प्रेयसी। तदादरेण पौराणिकानां बौद्धधर्मपरिग्रहीतुरशोकस्य वंशनिन्दा बौद्धानां च भगवतः[३] शौद्धोदनेर्वंशाभिसम्बन्धप्रशंसा। अतः शिशुनागस्य स्वामिवधेन पूर्ववत्परवच्च सिंहासनाक्रमणानुमाने न दोषावतारः। अन्यथाकरणं तु महावंशकृता तदात्मजस्य कालवर्मणः कालाशोकस्य काकवर्णस्य वा कालस्याभ्यर्हितत्वात्। शिशुनागस्तदात्मजस्तदात्मजाश्च दशाष्टषष्टिं वर्षाणि महीं शशासुरिति महावंशकारः। न केवलं चन्द्रगुप्तान्तानामेषाऽवस्था तदर्वागपि प्रायः सैव समुल्लसति। बृहद्रथस्य मौर्यस्यान्त्यत्वे बाणोक्तिसंवादेन सन्देहाभावेऽपि पुष्यमित्रस्य स्वयं सिंहासनाक्रमणे कालिदासवचनविरोधात् सन्देहो युक्तः। अग्निमित्रवसुमित्रावन्तरा स्थितः सुज्येष्ठो वसुज्येष्ठो वा द्वयोः पितापुत्रत्वस्य बाणकालिदासाभ्यां कण्ठरवेणोक्तत्वात् पौराणिकसङ्कल्पजन्मत्वेन स्थानविपर्यासोत्प्रेक्षणेन वा ततः समुद्धर्तव्यः। अधिकचत्वारिंशेषु शतेषु कलेर्वर्षेषु गतेषु गुप्तकालोक्तिः पौराणिकानामेव शोभत इति सर्वमेतद्यदि नोन्मत्तप्रलपितं क उन्मत्तः किं वोन्मत्तप्रलपितमिति निरूप्यताम्। अतो वंशतदनुचरितवान् पुराणांशः सर्वथा प्रामाण्यं

१. धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ। अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ — पट० ५, प्र० २, आपस्तम्बधर्मसूत्रम्.

२. पृ. ३९-४०, Upham's Mahawanse.

३. पृ. ४५, Ibid ibid.

नार्हति। क्षीरनीरन्यायेन संकीर्णयोः सदसतोः प्रायो दुर्विवेकत्वादित्यलमप्रस्तुतप्रस्तावनेन। सन् राजस्थानीयो विक्रमशकः। तस्य युधिष्ठिरशकान्तःपातित्वं वचनादनुमीयते। वर्षसहस्र-त्रितयं शतमेकं सप्ततिर्निवाग्रा च। शककालयातमिश्रं कलेर्गतं धर्मपुत्रात्त्विति प्रक्षेपिता गीतिः। प्रक्षेपितत्वं तु सर्वत्रानुपलम्भात्।

(२३) श्रौतं नक्षत्राणां कृत्तिकाप्रथमत्वम्। वास्तवमश्विनीप्रथमत्वम्। आरम्भनक्षत्रेण मासानां संज्ञाव्यवहारस्य युक्तत्वेऽपि वैदिकैरपूर्वमवसाननक्षत्रप्राधान्यमालम्ब्य कार्त्तिकप्रथमताव्य-वस्थापनेनाश्विनस्यान्तिमत्वं स्वीकृतं चान्द्रं च मानं प्रवर्तितम्। वसन्तस्याद्यत्वं न निराकृतमिति तु नाश्चर्यम्। दाक्षिणात्यानामाश्विनप्रथमत्वेऽपि चान्द्रेण मानेन चैत्रप्रथमत्वं यज्ञविद्याफलम्।

यतः पादादिकल्पना तदेव नक्षत्रं प्रथमं भवितुमर्हति। तादृशमश्विनी मघा मूलमिति त्रयम्। तत्र मूलं माससंज्ञाऽप्रतिष्ठापकत्वेन त्याज्यम्। मासप्राथम्यतो नक्षत्रप्राथम्यं नक्षत्र-प्राथम्यतो वा मासप्राथम्यमित्यत्र द्वितीयं ज्यायः, अन्यस्य प्रवृत्तिनिमित्तस्य माससंज्ञास्व-दर्शनात्। यदि च मेषः प्रथमो राशिरश्विनी प्रथमं नक्षत्रं भवितुमर्हति, आश्विनश्च प्रथमो मासः, मेष आश्विन इत्यनर्थान्तरम्। बार्हस्पत्यानि वर्षाण्याश्वयुजतो गणयत आर्यभटस्याप्य-श्विनीनां नक्षत्रव्यूहमुखत्वमभिमतमासीदित्यनुमीयते। वसन्तावतारलक्षणत्वोत्प्रेक्षणेनार्यभटका-लज्ञानप्रयासस्तु मोहविजृम्भितम्, मानाभावात्। अमरसिंहेन वा मार्गशीर्षस्याग्रहायणिकत्वोक्त्या वसन्तावतारलक्षणप्रामाण्येन तस्य श्रुतितोऽपि प्राचीनत्व-मङ्गीकर्तव्यम्।

अथेदानीमृतुविचारः— वर्षाशब्दस्य वृष्टिः प्रवृत्तिनिमित्तम्। ग्रीष्मशब्दस्य तापो घर्मो गरमेति। शिशिरोऽनुकरणम्। अस्माकमेतदृतुत्रयम्। वर्षाणि गतानीति वर्षप्रधानत्वात् प्रयोगः। हेमन्तशब्दस्य हिमं प्रवृत्तिनिमित्तम्। शरच्छब्दस्य तत्पातजा तल्लयजा वाऽऽर्द्रता भूमेः सरदीति प्रसिद्धा। वसन्तस्य ग्रीष्महेमन्तयोः सन्धित्वेन माहात्म्यविशेषः। हिम्यवासिनां प्रायो हेमन्तवसन्तग्रीष्माः। हेमन्तप्रधानानां शतं हिमा इत्यादयः प्रयोगाः। यथा हिमपातादिजा सरदी तथा वर्षजापीति तत्रापि शरच्छब्दप्रयोगः। फलदायिनीत्वेन च तत्प्राधान्यम्। अतस्तदन्तत्वं वर्षस्य वैदिकानाम्। जीवेम शरदः शतमित्यादिप्रयोगसिद्धिश्च। एतया दिशाऽपि मार्गशीर्षस्याग्रहायणिकत्वं सूपपादम्। वसन्तस्याद्यत्वं तु ब्राह्मणकालीनम्। तदानीं मन्त्र-कृतामभावेन मन्त्रव्याख्यातृणां च बहुलीभवनेन वसन्तस्य शरद इव वर्षपर्यायत्वाभावः।

एतादृशोऽभावोऽर्वाक्कालिकत्वं तस्य पिशुनयति। ब्राह्मणकाले वर्षस्य फाल्गुनान्तत्वं तैत्तिरीयाणां[1] श्रुतितः सुग्रहम्। वर्षस्य फाल्गुनान्तत्वेन वसन्तस्याद्यत्वं न विरुध्यत इति ज्ञेयम्। पूर्वं ब्राह्मणकालेऽप्यृतवः[2] पञ्चैवासन्, न षट्। षष्ठो दुर्लक्षणः शिशिरोऽपूर्वः। ऐतरेयकेऽपि (१।१।१) हेमन्तशिशिरयोः समासः समाम्नायते। अत्रत्यानां प्राचीनेषु शिलालेखेषु[3] ऋतुत्रयं पक्षो दिवसश्चेति स्मर्यते। तत्र पक्षा नक्षत्राण्यृत्ववयवा नव प्रत्यृतु दिवसः क्वचित्पक्षादिः। त एते यथासम्भवमेको द्वौ त्रयश्चत्वारः पञ्च वा ऋतवः पूर्वं पश्चान्मासाः। ते द्वादशैव। ततो द्वादशैव नक्षत्राणि पूर्वं गृहीतानीति। यदि मासाभिधाने नक्षत्राणां सप्तविंशतित्वमभविष्यज्ज्येष्ठश्रावणयोः पौषज्ज्येष्ठश्रावणानां वा संज्ञानां मूलश्रविष्ठे पुनर्वसुमूलश्रविष्ठा वा प्रवृत्तिनिमित्तत्वमाश्रयिष्यन्। वैशाखस्य राधेति संज्ञान्तरं राधेत्यनूराधायाः संज्ञान्तरत्वेन सुप्रसिद्धमेव। ततो विशाखानुराधयोरेकत्वं विशाखा राधा तदनु राधाऽनुराधेति कालेन विशाखा द्वेधा कृतेति चाऽवसीयते। पूर्वोत्तरसंज्ञाकरणप्रयासतोऽपि न पूर्वं सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि भवितुमर्हन्ति। उपरिष्टादषाढानामवस्ताच्छ्रोणाया अभिजित्कल्पना देवनक्षत्राणि पितृनक्षत्राणीति समविभागार्थमिति तावन्मात्रफलका न ततोऽन्यत्र सप्तविंशतित्वं नक्षत्राणां व्युदसितुमुत्सहते। ब्राह्मणो वा अष्टाविंशो नक्षत्राणामित्यादिश्रुतिभ्यः सप्तविंशतित्वस्यैव प्रतीतेः। तेषां सप्तविंशत्या नक्षत्राणामृतुत्रयानुग्रहाय त्रेधा विभागो राश्यनुग्रहाय द्वादशधा। राशिमासयोः केवलं संज्ञा तत्प्रवृत्तिनिमित्ते भिन्ने। आरम्भनक्षत्रेण माससंज्ञानां नियमनाभावान्मासापेक्षया राशयोऽर्वाक्कालिकाः। अनियतं हि प्राचीनं न नियतम्।

आरम्भनक्षत्रेणैव प्रायो मासाभिधानं दृश्यते, युक्तं च तत्। वैदिकानामवसाननक्षत्रादरः स्वलक्षणत्वाय। एतादृशं स्वलक्षणत्वं पक्षप्रतिपक्षत्वाग्रहश्च सर्वत्रोपलभ्येते। फल्गुन्यन्तं वर्षं चित्राद्यन्ता मासाः शरदन्ता ऋतवः पूर्णिमान्तो मासः पूर्णचन्द्रातोऽन्त्यः पक्ष इत्यन्तवादिनो वैदिकाः। एतादृशं स्वलक्षणत्वमभिप्रेत्यैवाश्विनस्य कार्तिकत्वं व्यवस्थापितम्। कार्तिकस्य प्राथम्यावलम्बनेन वैदिकैः कृत्तिकानां प्राथम्यग्रहः। एतद् वास्तवं कृत्तिकानां प्राथम्यनिमित्तम्। अग्नेर्मुखत्वेन तस्मिन् प्रथमानां कृत्तिकानां देवतात्वारोपः। यज्ञविद्याप्रियं चान्द्रं मानम्, धर्मे तत्प्रधानत्वात्। अवैदिकानामस्माकं दाक्षिणात्यानां सौरं मानम्। प्राचीनेषु शिलालेखेषु तस्य दर्शनाद् मासानां संज्ञान्तराऽऽवृतत्वेऽपि द्रविडेष्वद्यत्वेऽप्युपलम्भाच्च। वसन्तस्याद्यत्वाऽनिराकरणे तु तस्य प्राकृताऽनभिमतत्वं निमित्तम्। न वसन्तस्याद्यत्वमवैदिकलोकाभिमतं यत्तस्य निराकरणे प्रयत्नः क्रियेत। अवैदिकसम्प्रदायादिनिराकरणे हि वैदिकानां प्रयत्नः प्रसक्तः। वसन्ताद्यत्वमभ्युपगच्छद्भिर्ब्राह्मणैर्ब्राह्मणकालीनैः केवलं पूर्वस्य कालस्य स्वकालतो भेदः साधित इत्यपूर्वं वसन्ताद्यत्वं वैदिकानामेव परिग्रहो वेदितव्य इति नाश्चर्यमिति तत्त्वम्।

---

१. न पूर्वयोः फल्गुन्योरग्निमादधीत। एषा वै जघन्या रात्रिः संवत्सरस्य। उत्तरयोरादधीत। एषा वै प्रथमा रात्रिः संवत्सरस्य। (तै. ब्रा. २।१।१)

२. यदि वसन्ते प्रमीयते वसन्तो भवत्यादयः श्रुतयो द्रष्टव्याः। तै. ब्रा. १०।४।१

३. पृ. ४१, ४६, १५८, Jour. B. B. R. A. S. of 1853.

पुष्पादिसमृद्धिमत्त्वारम्भोऽपि वसन्तस्याद्यत्वाऽऽग्रहे निमित्तम्। चैत्रवैशाखावेव वसन्तः। यदि मासान्तरयोरपरि वसन्तत्वमभ्युपागंस्यत मधुमाधवाविति यौगिक्यौ संज्ञे, तत्समानार्थके वाऽपरे तयोः प्रावर्तयिष्येताम्। न च तथा कयोरपि प्रवर्तिते इति चैत्रवैशाखावेव वसन्तः। मधुमाधवाविति सहःसहस्यादिवत् पितापुत्रत्वकल्पना तदनु जातत्वात् काव्यस्य महिमा। आश्विनस्य चैत्रत्वं य आहुस्तेषाममान्तोऽपि मासो वक्तव्योऽमान्तोंऽन्त्यश्च पक्षः। प्राचीनप्राय एष पक्षः, लगधेनोद्दिष्टत्वात्। गुरूदयेन वर्षादिं स्वीकुर्वतां योग्यत्वाच्चन्द्रोदयस्य पक्षस्याद्यत्वं चन्द्रानुदयस्य चान्त्यत्वम्।

(२४) वर्षाणामभिधानाय योग्यत्वाद् बृहस्पतिचारो नियोजितः।

अभिहिता मासाः। अभिधातव्यानि वर्षाणि। तत्र बृहस्पतिचारस्यैव योग्यता। बृहस्पतेर्हि प्रायो वर्षमेकं राशिभोगः।

(२५) अस्य द्वादशवर्षात्मकस्य बार्हस्पत्यस्य वर्षस्यैकाऽवस्था-कल्पनया पञ्चावस्थः षष्टिसंवत्सरात्मकः कालपुरुषः प्रकल्पितः। षष्ट्यब्दानां षष्टिरिति वदतार्य्यभटेनाप्येतस्य हस्तो दत्तप्रायः।

एवं द्वादशवर्षात्मकमेकं बार्हस्पत्यं वर्षम्। पञ्चसंवत्सरमयं युगमित्याहुः। प्रथमः संवत्सरो द्वितीयः परिवत्सरस्तृतीय इडावत्सश्चतुर्थोऽनुवत्सरः पञ्चम इद्वत्सर इति बृहत्संहिताकारः। श्रुतौ तु पञ्चममनभिहितमप्यनुमेयम्। अनभिधानं चातुर्मास्ययागस्य पर्व-चतुष्टयात्मकत्वात्। यथा पञ्चर्तवो वर्षं तथा पञ्च वर्षाणि युगम्। अग्निसूर्यचन्द्रप्रजापतिरुद्रा इति तद्देवतोपलक्षिताः प्रभवविभवप्रमोदप्रजापतित्वक्षयाः पञ्चावस्थाः। विभवः पराक्रमः। एतत्पञ्चावस्थः पुरुषान्तरवत् कालपुरुषो युगम्। एवं प्रायः षष्टिसंवत्सरात्मकमेकं बार्हस्पत्यं युगम्। द्वादशवर्षात्मक एतस्य युगस्य संवत्सरादिः प्रभवाद्यपरनामा। सैषा कल्पना न्याय्या। ये तु षष्टिवर्षात्मकमेकं बार्हस्पत्यं वर्षमित्याऽऽस्थिषत, तेषां द्वादश युगानि राशयः कथमपि प्रतिवर्षाभिधानयत्नश्च। षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादा इत्यार्यभटस्य स्वकालस्मरणी।

॥ इति भगवद्भक्तसङ्गृहीतायां विचारमाधुकर्यां शककालो विचारः प्रथमः॥

■

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

श्रुतम् मे गोपाय